ऋग्वेद संहिता

भाषा भाष्य

भाग 7

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद विषय-सूची

षष्ठेऽष्टके प्रथमेऽध्याये षोडशो वर्गः ।

नवमे मण्डले प्रथमसूक्तारम्भः

सू० [१] यहां से पवमान सौम्य नवम मण्डल प्रारम्भ होता है । सोम पवमान का वर्णन । शिशु के समान विद्या के गर्भ से अविद्या-निष्णात शिष्य का वर्णन । सोम और इन्द्र । सोम-जीव, नव ब्रह्मचारी, वर, उत्तम सुख, राजा आदि का वर्णन । सभापति सोम । पक्षान्तर में सोम ओषधि के गुण । सूर्यदुहिता विद्या, सोम सेनापति, अध्यात्म में, दश योषा दश इन्द्रियें । ऐश्वर्य-भाजन सोम, गुरु शिष्य का वर्णन, राजा, प्रजा, इन्द्र के कर्त्तव्य । (पृ० १–५)

सू० [२] सोम पवमान । ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्य । ओषधिवत् मधुर होने का उपदेश । विद्वान् की शोभा । समुद्रवत् अध्यक्ष का वर्णन । शासक के कर्त्तव्य । प्रभु से प्रार्थनाएं । (पृ० ५–८)

सू० [३] सोम पवमान । विजिगीषु राजा उसका अभिषेक । उसका कण्टक-शोधन का कर्त्तव्य । राज्याभिषेक के कर्त्तव्यों की सूचना । राजा का प्रयाण, विजय और अभिषेक । शासन कार्य । दण्डधारा और जलधारा का सदुपयोग । आत्मगति का वर्णन । (पृ० ८–१०)

सू० [४] प्रभु से प्रार्थना । शासक के कर्त्तव्य. प्रजा के बल की

सू० [११] तेजस्वी पुरुष की स्तुति। विद्वानों का राजशक्ति से सहयोग। शक्तिप्राप्ति की कामना। विद्वान् की वाणी का आदर। योग्य पुरुष का अभिषेक, सोमाभिषव और सोम-सवन, अध्यक्ष का कर्त्तव्य। प्रजापालनार्थ अध्यक्ष का स्थापन। अध्यक्ष प्रजा को ऐश्वर्य दे। (पृ० ३०–३२)

सू० [१२] आचार्य-कुल में शिष्य और शासन में सोम-पुरुषों का स्थापन। माता और वत्सवत् शिष्यजनों का गुरु से सम्बन्ध। नवाध्यक्ष का नवाभिषेक। समुद्र और मेघ के तुल्य शास्यशासकों के कर्त्तव्य। अभिषिक्त पदाधिकारी को आगे बढ़ने का उपदेश। (पृ० ३२–३५)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [१३] विद्यास्नातक का वर्णन। विद्वान् का अध्यक्ष पद पर स्थापन। विद्वानों का कर्त्तव्य। राजा से फल प्राप्त करने की प्रार्थना। अध्यक्ष प्रजा को सम्पन्न करे। तीव्रवेग अश्वों के समान वीरों का कर्त्तव्य। अध्यक्षों का प्रजा के प्रति रक्षा का कर्त्तव्य। (पृ० ३५–३८)

सू० [१४] तरङ्गस्थ पुरुष के दृष्टान्त से अध्यक्ष की उन्नत पद प्राप्ति। पांचों जन-संघों से अध्यक्ष का प्रस्ताव समर्थन। राजा का देश को निष्कण्टक करना। सूर्यवत् तेजस्वी का अभिषेक, उसकी प्रकृति। उसके अधीन सेना और वीर पुरुष। प्रजा की शासक के प्रति स्वीकृति। (पृ० ३८–४०)

सू० [१५] राजा का उन्नति-पथ में प्रयाण। उसका लोक-हितार्थ कार्य। राजा को सत् शिक्षण। सैन्यबल रखने का उपदेश। सुसज्जित सेनापति का वर्णन। वीर का अभिषेक। (पृ० ४०–४२)

सू० [१६] अभिषेक का प्रयोजन। अध्यक्ष का गुण दानशीलता। शासक के योग्य पुरुष के गुण। उसकी सभा-भवन में सभाध्यक्ष पद पर

सू० [२४] भक्त साधकों की उन्नति। जलधाराओं से उनकी उपमा। जीव को उन्नति पथ पर अग्रसर होने का उपदेश। इन्द्रियों के जय का उपदेश। परमेश्वर प्राप्ति का उपदेश। आनन्दमय परम पावन प्रभु। परमपावन, परम रक्षक प्रभु। सूक्त में एक सोम प्रभु और अनेक सोम जीवों का वर्णन। (पृ० ५८–५९)

सू० [२५] सर्वदुःखहारी 'हरि' प्रभु से प्रार्थना। जीव का देह में आने का कारण। सर्वश्रेष्ठ क्रान्तदर्शी आत्मा। साधनाओं के पश्चात् उपासक को मोक्षलोक की प्राप्ति। (पृ० ५९–६१)

सू० [२६] परमेश्वर का सूक्ष्म बुद्धि से विचार करने का उपदेश। स्तुतिकारिणी वेदवाणियां। धारणावती बुद्धि द्वारा भगवान् की प्राप्ति। योग-समाधि द्वारा प्रभु की प्राप्ति, उसकी उपासना, स्तुति, प्रार्थना आदि। (पृ० ६१–६२)

सू० [२७] स्तुत्य पुरुष का वर्णन। अभिषेक योग्य पुरुष के गुण। उसका कर्त्तव्य। उसका प्रभाव। उसकी सूर्य के समान स्थिति। (पृ० ६२–६४)

सू० [२८] रक्षक पद के योग्य पुरुष का वर्णन। अभिषेक योग्य के कर्त्तव्य। उसका अभिषेक। उसको ऐश्वर्य-पद प्राप्ति। उसका कर्त्तव्य, दुष्टों का दमन। (पृ० ६४–६५)

सू० [२९] आत्मा की देह में राजा के समान स्थिति। सातों प्राणों के स्वामी आत्मा की सातों प्रकृतियों के स्वामी राजा से तुलना। राजा के समान आत्मा के साधनों का वर्णन। आत्मा को लोकजय का उपदेश। निन्दकों से रक्षा की प्रार्थना। ऐश्वर्य शक्ति आदि की प्रार्थना। (पृ० ६५–६७)

सू० [३०] बलवान् शासक की घोषणा। शासक के कर्त्तव्य। शासन-बल की उत्पत्ति। वेगवान् जल के तुल्य शासक के कार्य। बलवान् नेता के अभिषेक का उपदेश। (पृ० ६७–६८)

सू० [३९] बुद्धिमान् के कर्त्तव्य । परमधाम प्राप्ति । जीव की प्रभु में निमग्नता । प्रभु का उपास्य के हृदय में आविर्भाव । समबुद्धि उपासकों के लक्षण । (८१–८२)

सू० [४०] ज्ञानी की स्तुति । जीव को परमेश्वर की ओर जाने का उपदेश । परमेश्वर से बलों और ऐश्वर्यों की प्रार्थना । (पृ० ८२–८४)

सू० [४१] परिव्राजकों के कर्त्तव्य । ज्ञान का प्रचार । आदरणीय रक्षक । विद्युत् के तुल्य दीप्तियों की प्रतीति । ईश्वर वा राजा से ऐश्वर्य याचना । पालन करने की प्रार्थना । (पृ० ८४–८५)

सू० [४२] सर्वोत्पादक प्रभु सर्वसुखप्रद है । सर्वज्ञानप्रद प्रभु । वीर राजाओं का युद्धप्रयाण । पवित्रपद में स्थित का कर्त्तव्य । अभिषिक्त के कर्त्तव्य । (८५–८७)

सू० [४३] प्रभु की स्तुति और प्रार्थनाएं । सर्वशासक प्रभु । (पृ० ८७–८८) इत्यष्टमोऽध्यायः ॥ इति षष्ठोऽष्टकः समाप्तः ॥

सप्तमोऽष्टकः । प्रथमोऽध्यायः ॥

सू० [४४] अयास्य प्राण की उपासना । सर्व-शासक की स्तुति, उसके कर्त्तव्य । (पृ० ८९–९०)

सू० [४५] परमेश्वर से प्रार्थना । मिलकर ईश्वर-स्तुति करने का उपदेश । बल की याचना । (पृ० ९०–९२)

सू० [४६] कुशल पुरुषों के कर्त्तव्य । वर के प्रति ब्रह्मचारिणी । कन्या के तुल्य ब्रह्मचारियों का गुरु के प्रति उत्सुकतापूर्वक गमन । तेजस्वी पुरुषों का राजा के बल वृद्धि करने का कर्त्तव्य । धनदाता के कर्त्तव्य । दश प्रकृतियों प्रजाओं का शासक के प्रति कर्त्तव्य । (पृ० ९२–९३)

सू० [५७] मेघवत् शासक के कर्त्तव्य। शत्रुदमन, सबको सन्मार्ग दिखाना आदि अनेक कर्त्तव्य। (पृ० १०५—१०६)

सू० [५८] प्रभु की उपासना। उसके सहस्रों ऐश्वर्य। (पृ० १०६—१०७)

सू० [५९] उत्तम शासक के कर्त्तव्य। प्रजा के चित्त को स्वच्छ रखे, सबको अपने वश करे। (पृ० १०७—१०८)

सू० [६०] गायत्री द्वारा प्रभु की स्तुति। सहस्र द्रष्टा प्रभु की प्राप्ति। राजा का राष्ट्र में प्रवेश। (पृ० १०८—१०९)

सू० [६१] राजा के कर्त्तव्य। राजा को शत्रु नगरों के तोड़ने का उपदेश। अश्वविन् से अश्वों की प्राप्ति। राजा प्रजा का मित्र होकर रहे। प्रजा को सुख दे। शासक और प्रभु का वर्णन। उसके अनेक कर्त्तव्य। राजा के प्रताप का महत्व। ऐश्वर्य का राज्य में समान विभाग। इन्द्र पद के योग्य पुरुष। प्रजा में ऐश्वर्य के साथ २ शान्ति स्थापन करे। राष्ट्र में राजा का तेजस्वी पद। राजा का कर्त्तव्य, सर्वोत्तम तेज, वीरों के कर्त्तव्य। उनके उत्साह योग्य कार्य। शत्रुनाश, प्रजा की मान-रक्षा। (पृ० १०९—११६)

सू० [६२] उत्तम पदों पर अभिषिक्त जन। बलवान् शासक के कर्त्तव्य। अभिषिक्त का वर्णन। उसको सजाने आदि का प्रयोजन। उसका विद्वानों के प्रति कर्त्तव्य। वह सर्वबन्धु हो। राजा के ईश्वरवत् कर्त्तव्य। विद्वान् कुलवान् को राजा करें। राजा के प्रयाण का प्रकार। राजा का जैत्ररथ। त्रिबन्धुर रथ की अध्यात्म और राजनीति पक्ष में व्याख्या। अभिषेक घट के तुल्य राष्ट्र में अभिषिक्त राजा की शोभा। राष्ट्र के सब उत्तम जन उसके पोषक हों। बहुश्रुत पुरुष का अभिषेक करो। मुख्य शासक के नीचे अनेक गौण शासक हों। बलशाली बनने के लिये योग्य कलाविदों से ज्ञान प्राप्त करे। राजा प्रजाओं को ज्ञान धनादि से समृद्ध करे। राजा की विभूति का प्रदर्शन। अधीनों के प्रति राजा की आज्ञावाणियों का

प्राप्त होना। विद्वान् कैसे ऐश्वर्यवान् को इन्द्रपद के लिये अभिषेक करें। (पृ० ११६–१२४)

सू० [६३] राजा प्रजा को समृद्ध करे। प्रजा को समृद्ध करके ही बल बढ़ावे। वह सैन्य बल का स्वामी होकर राष्ट्र में विचरे। परिब्राजकों का आश्रमों से आश्रमान्तर में प्रवेश। वीरों और विद्वानों का सबको श्रेष्ठ बनाते हुए, दुष्टों को दण्डित करते हुए विद्वान् शासकों का आगे बढ़ाना। राजा का राष्ट्रशोधन का कर्त्तव्य। राज्यकार्य में आकाशयानों का प्रयोग। वीर पुरुष का पदाभिषेक। राजा प्रजा को समृद्धिशाली बनावे। उसके ऐश्वर्य में सहस्रों गौएं आदि हों। अभिषेचनीय प्रजा की स्थिति। किरणों के समान शासकों के कर्त्तव्य। उनका राष्ट्र-शोधन कार्य। अभिषिक्त का सूर्यवत् पद। जलों और ओषधिरसों के तुल्य राजा का अभिषेक। उसके कर्त्तव्य, समृद्धि प्राप्ति। कुशल श्रेष्ठ पुरुषों का भिन्न २ उत्तम पदों पर अभिषेक। परिब्राजकादि के तुल्य अन्य अभिषिक्तों के कर्त्तव्य। प्रभु का गुण-स्तवन। उसके 'वायु' पद की व्याख्या। विद्वान् का ज्ञान-सागर प्रभु में प्रवेश। बुरे व्यक्तियों को त्यागने का कर्त्तव्य। विद्वानों का कर्त्तव्य। वायु वा जलधाराओं के तुल्य शासकों की विद्यास्थानों से उत्पत्ति। दुष्टों का नाश। वीर शासक का कर्त्तव्य। उसका सर्वैश्वर्य-धारण। (पृ० १२४–१३१)

सू० [६४] राजा के कर्त्तव्य। राष्ट्र-चक्र प्रवर्तन। प्रमुख पुरुषों की ज्ञान, बल, धन आदि की प्राप्त्यर्थ नियुक्ति। शासकों और स्नातक पुरुषों के वेष आदि का वर्णन। विद्वानों का गुरुओं को दक्षिणा दान। प्रचारकों का किरणों के तुल्य कर्त्तव्य। विद्वान् परिब्राट् को ज्ञानी होने का उपदेश। परिब्राजक को भ्रमण का उपदेश। शासक का कर्त्तव्य। धर्माध्यक्ष के कर्त्तव्य। अभिषिक्त पुरुष के कर्त्तव्य। छाज के समान सत्यासत्य का विवेक। विवेक से प्रभु-पद की प्राप्ति। कर्मनिष्ठ पुरुषों का प्रभु को प्राप्त होना। ज्ञानी को प्रभु-पद-प्राप्ति का अवसर। ज्ञानी और

अज्ञानी लोगों की ऊर्ध्वगति और अधःपतन। इन्द्र की प्राप्ति के लिये विद्वान् को आदेश। विद्वान् के ज्ञान का और राजा के वचन का सब श्रवण करें। शासक और विद्वान् का कर्त्तव्य। वह सर्वपालक वाणी का प्रयोग करे, सर्वप्रिय होकर अभिषिक्त हो। उसको सैनिक के समान सदा सज्जन रहने का आदेश। वानप्रस्थ के अनन्तर संन्यास का आदेश। संन्यासी का पद। (पृ० १३१–१३९)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [६५] वरणीय वर। कन्याओं को ऐश्वर्यवान् पुरुष को वरण करने का उपदेश। योग्य-विद्या स्नातक ऐश्वर्य प्राप्त करे। विद्वान् की सेवा करे, संयम से जीवन बितावे। वीर्यवान्, बली, हृष्टपुष्ट, पवित्राचार हो। शस्त्र आदि से शोभित होकर राजा वा वीर के तुल्य गृहस्थ में प्रवेश करे। सुशोभित होकर गृहस्थ में पैर रखे। वर की राजा के तुल्य स्तुति हो। वीर पुरुष की स्तुति। देह में वीर्य के तुल्य बलवान् राष्ट्र में शासक के कर्त्तव्य। राजा को ऐश्वर्य के लिये प्रेरणा। वह अपने अधीनों को प्रेरित करे। प्रजा के प्रतिनिधियों रूप कलशों से राजा का राज्याभिषेक। बलशाली का निर्णायक पद पर अभिषेक और उसका कर्त्तव्य। सेनापति और राजा का सर्वोपरि प्रयाण योग्य होना। राजा से गौ आदि ऐश्वर्यों की प्रार्थना। मनुष्यों के पालनार्थ राजा का अभिषेक, राजा का श्येनपक्षी के समान मार्ग। राजा को उत्तम उद्योग से उत्तम २ अधिकार प्राप्ति। प्रजा की उन्नति के लिये धन प्राप्ति का आदेश। अभिषिक्तों के कर्त्तव्य। अध्यक्ष शासकों पर भी एक विद्वान् पुरुष की नियुक्ति। अभिषिक्तों की आकाश में नक्षत्रवत् प्रजाओं में स्थिति। उसकी स्तुति वा प्रस्ताव और उसका वरण। (पृ० १३९–१४६)

सू० [६६] परमेश्वर का वर्णन। वह सर्वप्रकाशक है। सूर्यवत् प्रभु। सब सुखों और शक्तियों का दाता प्रभु। सर्वप्रकाशक प्रभु।

सर्वसाशक, वाणियों का परम लक्ष्य है। प्रभु जोव का सुखदाता आनन्दप्रद है। वेद के सातों छन्द उसकी स्तुति हैं। वह प्रभु वेदों से एक मात्र स्तुत्य है। पक्षान्तर में वेदज्ञ का वर्णन। ईश्वर के सृष्ट लोकों का प्रसार। राष्ट्र में शासक पद पर कोश से पुष्ट राजा की स्थिति। उपासकों के तुल्य शिष्यों का गुरु-सेवन। शिष्य के प्रति विद्वानों का कर्त्तव्य। शासक के सख्य की कामना। शासक का महान् पद। पराक्रमी को विजयोद्योगी होने का उपदेश। अति पराक्रमी, अति शूर अतिदानी प्रभु। प्रभु का मित्र-भाव के लिये वरण। उससे बलादि की याचना। पुरोहित का वर्णन। उसकी महागृह, महाप्राण से उपमा। बल की प्रार्थना। अध्यक्ष की उत्तम उद्योग के लिये नियुक्ति। उसका कर्त्तव्य अज्ञान नाश। तेजस्वी के गुणों का स्वतःप्रकाश। वही सब गुणों से शोभित होता है। उसके कर्त्तव्य। प्रभु से जीवन-दान की प्रार्थना। (पृ० १४६–१५३)

सू० [६७] शासकों का वर्णन। सेनापति का वर्णन। उत्तम उपदेष्टा के कर्त्तव्य। उनका कण्टक-शोधन कार्य। इन्द्र पद पाकर सर्वोपकारी हो। उत्तम पुरुष ही विवाह योग्य वर हो। वही मधुपर्क योग्य होता है। तेजस्वी पुरुष कन्याओं का पति होने योग्य है। विद्वान् का कार्य। वह पवित्र होकर स्वच्छ वस्त्र पहने, उत्तम गृह में प्रवेश करे। वीर राजा का बलप्रयोग उसका अन्नादि के लिये उद्योग। अभिषिक्तों का सबकी रक्षा के लिये सज्ज रहना। विद्यार्थी का वीर के सदृश कर्त्तव्य। राष्ट्र का कण्टक-शोधन करने वाले के कर्त्तव्य। वह किनको दण्ड दे। ज्ञानी लोग सबको पवित्र करें। शासक और विद्वान् का कर्त्तव्य। उत्तम अन्न, जल, दुग्ध आदि की वृद्धि करना। अन्यायी की दुर्दशा पावमानी ऋचाओं के अध्ययन का महत्व। (पृ० १५३–१६१)

सू० [६८] विद्वानों के कर्त्तव्य। ज्ञानवान् अध्यक्षों के कर्त्तव्य। घोषणा और उपदेशों से ज्ञान-आदेश प्रसारित करें। सभापति व प्रजाओं के प्रति शासक का कर्त्तव्य। माता-पिता की सेवा और अपने शक्तिमान्

होने का उपदेश। ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी का विद्या-गर्भ से उत्तम जन्म। स्नातकों का अभिषेक। परमेश्वर की योग द्वारा उपासना। प्रभु की स्तुति, प्रार्थना। परमेश्वर सर्वव्यापक, उसकी उपासना। (पृ० १६१–१६५)

सू० [६९] परमेश्वर की उपासना। मन्त्रों द्वारा स्तुति। सर्वशासक परमेश्वर। सर्वदुःखहारी प्रभु। सूर्य की रश्मियों के तुल्य जगत् की शक्तियों का कार्य। राजा के अधीन भृत्य शासकों के कर्त्तव्य। ईश्वर से ऐश्वर्य की प्रार्थना। महारथियों के समान स्नातकों के कर्त्तव्य। सोम शिष्य के कर्त्तव्य। (पृ० १६५–१७०)

सू० [७०] विद्यार्थी के लिये वेदविद्या का दोहन। ब्रह्मचारी के लिये भिक्षावृत्ति, ब्रह्मचर्य पालन, विद्योपार्जनार्थ गुरुगृह में वास, और प्रभु की आराधना। ब्रह्मचारी का राजा के तुल्य नियमबद्ध होकर अन्तःशत्रुओं का दमन। प्रभु के उपासक परिव्राजक की लोक-सेवा। ब्रह्म-जिज्ञासु पुरुष के कर्त्तव्य। ज्ञानी का आमरण अभिषेक और मधुपर्कादि से आदर। विद्वान् से ज्ञान-प्राप्ति की प्रार्थना। शिष्य की ज्ञान-गर्भ से उत्पत्ति (पृ० १७०–१७४)

सू० [७१] दान दक्षिणा आदि की व्यवस्था। उपदेशक का कर्त्तव्य। उसका आदरणीय पितृतुल्य पद। स्नातक का आदरयोग्य पद। सभापति राजा के तुल्य विद्वान् का आदर। प्रधान अध्यक्ष पर दशावरा परिषत् की योजना। अध्यक्ष के अधिकार। उसको सर्वोपरि आसन-ग्रहण की प्रेरणा। प्रभु का वर्णन। उसका अनादि शासन। प्रजा द्वारा चुने अध्यक्ष का उत्तम शासन। राजा वा सेनापति का प्रबल शासन। (पृ० १७४–१७८)

सू० [७२] अभिषेक योग्य पुरुष के गुण, उसके कर्त्तव्य। मधुपर्कादि से उसका आदर और गुण स्तवन। उत्तम शासक के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। सेनापति सोम। गुरु से ज्ञान की प्राप्ति का उपदेश। सोम का

स्वरूप तपस्वी साधक का उच्च प्रकाशमय परलोक को प्राप्त करने का उपदेश। प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। (पृ० १७८–१८२)

सू० [७३] जगत्स्रष्टा की स्तुति। प्रभु ने मस्तक के तीन भाग बनाये, सत्य की नौका। परमेश्वर की स्तुति करने वाले, उसकी महिमा की वृद्धि करते हैं। गुरु का वर्णन। प्रभु के उपासकों का वर्णन। सूर्य की किरणों के तुल्य विद्यार्थियों के कर्त्तव्य। विद्वानों और अविद्वानों के भिन्न २ मार्ग। वेदज्ञान के अभ्यास से वाणी का पवित्र होना। न्याय-शासक का रूप और कर्त्तव्य। न्यायी की वाणी पर आश्रित यज्ञ। (पृ० १८२–१८६)

सू० [७४] प्रभु से शरण की याचना। सर्वव्यापक, सर्वपालक, सर्वसुखदाता प्रभु। भूलोकरक्षक सूर्य और जल का वर्णन। कालमय प्रभु का अन्न जगत् है। सूर्य द्वारा जलवृष्टि का वैज्ञानिक रहस्य। सूर्य की दिव्य शक्तियां। जलवृष्टि का रहस्य। वीर के तुल्य प्रभु का कृपायुक्त व्यवहार। प्रभु का परमानन्द रस। (पृ० १८६–१९०)

सू० [७५] सेनापति के कर्त्तव्य। वक्ता और ज्ञान-रक्षक के कर्त्तव्य। तेजस्वी और विद्यानिष्णात पुरुष का वर्णन। उसकी सर्वप्रियता। ज्ञानवान् और अध्यक्ष का वर्णन। (पृ० १९०–१९२)

तृतीयोऽध्यायः

सू० [७६] प्रभु का वर्णन। शासकवत् परमेश्वर का वर्णन। जगद्-उत्पादक का वर्णन। वही वेद-ज्ञान का प्रकाशक है। वही जीव के कोशों को बनाता, कृपालु और रक्षक है। (पृ० १९२–१९४)

सू० [७७] वज्रवत् बलशाली आत्मा। प्रभु सर्वव्यापक, सब जीवों का चालक है। ज्ञानी पुरुषों के कर्त्तव्य। प्रभु का अपूर्व शासन। सर्व-कामनाप्रद प्रभु। (पृ० १९४–१९६)

सू० [८६] परमेश्वर और उपासकों का वर्णन। उपासकों के कर्त्तव्य। अश्ववत् विद्वान् का प्रभु की ओर बढ़ना। आत्मोपासना। सर्व-व्यापक प्रभु की हृदय में परिशोध। यज्ञमय जगच्चक्र का प्रवर्त्तक प्रभु। व्यापक प्रभु और आत्मा का वर्णन। मातृवत् प्रभु का भक्त का बालवत् उपसेवन। आत्मा का वर्णन। षोडशकल आत्मा हरि का वर्णन। आत्मा का शूरवत् अभिषेक। आत्मा की पक्षी के तुल्य संसार-गति का वर्णन। ज्ञानी आत्मा का स्वतन्त्र लोकों में विचरण। सुखप्रद स्वामी प्रभु। आत्मा परमात्मा का परस्पर सख्य-भाव। एकाग्रचित्त होकर परस्पर मिलकर प्रभु की स्तुति का उपदेश। उत्तम सम्पद्, बल, वीर्य आदि की प्रार्थना। प्रभु की अद्भुत रचना। देह और उसकी रचना। आत्मा में भी व्यापक परमेश्वर। उसका कर्म बन्धन-दाहक ज्ञान का प्रकाश करना। आत्मा की अनेक देहों में गति। गुरु से ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में जाने का उपदेश। सर्वस्तुत्य और शरणयोग्य प्रभु। वेदाभ्यास। आत्म-परि-शोधन पूर्वक ज्ञान के अभ्यास से ऐश्वर्य पद की प्राप्ति। प्रजाओं और सेनाओं द्वारा राजा का अभिषेक। जगत् का राजा महान् प्रभु। वह समुद्रवत् अपार, सर्वज्ञ सर्वेश्वर है। सर्वधारक प्रभु। उपदेष्टा की उत्तम गति। स्तुतियों का लक्ष्य प्रभु। विद्वान् का प्रशस्त मार्ग। अभिषेकयोग्य की ऐश्वर्यपद प्राप्ति। आत्मा का स्वच्छ होने का वर्णन। विद्याशास्ता को जिज्ञासु शिष्यों की प्राप्ति। ज्ञानी पुरुष का वेदवाणियों से ज्ञान प्राप्त करना। प्रभु से ऐश्वर्यों और सुखों की याचना। सर्वोपास्य प्रभु। उप-देष्टा के कर्त्तव्य। गुरु-शिष्य के परस्पर कर्त्तव्य। आचार्य और प्रभु का शिष्य और जीवों के प्रति दया का बर्त्ताव। उपासकों का योगसाधना द्वारा प्रभुसाक्षात्। देह से देहान्तर में कैंचुली से सर्पवत् जाने वाले आत्मा को ज्ञानोपदेश। प्रभु और आत्मा का वर्णन। जगत्-धारक प्रभु। ईश्वर की महती शक्तियां। ईश्वर स्तुति। (पृ० २१६—२३५)

सू० [८७] परमेश्वर की उपासना। सर्वाश्रय प्रभु। पूज्य विद्वान्

ज्ञानी का वर्णन। उपासकों के कर्त्तव्य। अभिषिक्त शासक के कर्त्तव्य। अभिषेचित को उपदेश। शासक गुरु से मेघगर्जनावत् ज्ञान वाणी का शिष्य को प्राप्त होना। ज्ञान-सञ्चयार्थ गुरुकुलोपासना का उपदेश। (पृ० २३५–२३९)

सू० [८८] शिष्य के प्रति आचार्य के कर्त्तव्य। रथ के अश्वों के समान शिष्यों को इन्द्रिय दमन का उपदेश। विद्याव्रत-स्नातक का विद्या प्राप्ति के अनन्तर गृह में आवर्त्तन, गृहाश्रम में प्रवेश। विद्वान् का सेनापति के तुल्य आत्म-विजय। जलों में प्रशान्त अग्नि के तुल्य शिष्य की वनस्थों के बीच ज्ञान-प्राप्ति। विद्वानों का आगमन और प्रभु वा जनों के प्रति गमन। विद्वान् वा राजा का अन्यों को बिना पीड़ा दिये आना और विजय करना। राजा के कर्त्तव्य। (पृ० २३९–२४२)

सू० [८९] विद्वान् आगे बढ़ें। राष्ट्रपति के तुल्य देह में आत्मा और जीव का वेदवाणी पर आरोहण। सिंहवत् उद्योगी को प्रजादि सम्पदाओं की प्राप्ति। अश्ववत् बलवान् की नायक पद पर नियुक्ति। उसको अनेक शक्तियों की प्राप्ति। सर्ववशी प्रभु। इन्द्र-पदोचित पुरुष के कर्त्तव्य। (पृ० २४२–२४५)

सू० [९०] साधक पुरुष की ईश्वर प्राप्ति। सर्व-शक्तिमान् प्रभु। आत्म साधक के कर्त्तव्य। शासक के कर्त्तव्य। प्रभु के प्रसादन का उपदेश। आत्मपावन का उपदेश। (पृ० २४५–२४७)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [९१] वाग्मी नेता के तुल्य वाक्पति का वर्णन। आत्मा का स्वरूप। ज्ञानोपदेष्टा प्रभु। उपदेष्टा वेदज्ञ का वर्णन। राष्ट्र-शोधक वीर के कर्त्तव्य। सन्मार्ग की याचना। ज्ञान प्रकाश की प्रार्थना। (पृ० २४७–२४९)

सू० [९२] प्रभु की उपासना । सेनापति के कर्त्तव्य । हृदय में परम-देव की प्राप्ति । प्रभु के अंगभूत ३३ देव, उसकी ज्ञानप्रद सात छन्दो-वाणियां । प्रभु का पावन रूप । सिंहवत् शासक का अभिषेक । (पृ० २४९–२५२)

सू० [९३] देह में आत्मा की स्थिति । बालकवत् देह में आत्मा का शक्ति-सञ्चय । गो-वत्सवत् देही का ज्ञानवान् और पुष्ट होना । उपास्य से ऐश्वर्य आदि की कामना । (पृ० २५२–२५४)

सू० [९४] आभूषणों के समान आत्मा में गुण, वाणी, स्तुति आदि की उपमा । प्रभु का दो प्रकार का वर्णन । ज्ञान रूप से और काम्य रूप से । ज्ञानप्रद प्रभु का राष्ट्रपति के समान शासन । विजेता के समान तेजस्वी की स्थिति । ईश्वर से समृद्धि आदि की याचना । (पृ० २५४–२५६)

सू० [९५] वानप्रस्थ में विद्वान् के कर्त्तव्यों का वर्णन । वाणी को बढ़ाने का विद्वानों का कर्त्तव्य । गुरु-वाणियों का वर्णन । परमेश्वर में आनन्द लाभ करने का उपदेश । शिष्य का कर्त्तव्य । (पृ० २५६–२५८)

सू० [९६] सेनापति का वर्णन । सेनापति के अश्वों और पदाधिकारियों का सुभूषित करना । उसका रण में प्रयाण । उसका उद्देश्य । सर्वशासक प्रभु । सर्वोपदेष्टा का वर्णन । उत्तम शासक उपदेष्टा और आत्मा का वर्णन । वीर विजेता के तुल्य आत्मा का वर्णन । देह में आत्मा के तुल्य सर्वशासक प्रभु और राष्ट्रपति राजा का वर्णन । परमात्मा का मेघ के तुल्य वर्णन, जगत्-शासक प्रभु और राजा से प्रजाओं की प्रार्थना । विद्वान् और वीर के कर्त्तव्य । सर्वप्रिय शासक । राजा शासक के कर्त्तव्य । उसका अभिषेक और पद प्राप्ति । उपदेष्टा के कर्त्तव्य । वीर युवा अश्व के तुल्य आत्मा का देहों में संक्रमण । तेजस्वी के कर्त्तव्य । अभिषेकयोग्य के कर्त्तव्य । स्नातक के गृहाश्रम-धारणवत् राजा का राष्ट्र-भारका धारण । उत्तम शासक । (पृ० २५८–२६७)

सू० [९७] शासक के राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य। सेनापति के सभापतिवत् कर्त्तव्य। अभिषिक्त के कर्त्तव्य। विद्वानों के कर्त्तव्य। जीव का राजावत् वर्णन। आत्मा का वीर सेनापतिवत् वर्णन। विद्वान् उपदेष्टा के कर्त्तव्य। परमहंसों की प्रभु-शरण-प्राप्ति। अवर्णनीय महान् प्रभु। विद्वान् और वीर राजा के कर्त्तव्य। जीव का जिज्ञासु शिष्यवत् वर्णन। दश प्राण युक्त आत्मा का वर्णन। राजसभा के स्वामिवत् आत्मा का वर्णन। सत्कारयोग्य शासक का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। मुमुक्षु जनों का वर्णन। उत्तम विद्वान् के कर्त्तव्य। अग्रणी विद्वान् के कर्त्तव्य। ऐश्वर्य पदाधिकारी के कर्त्तव्य। उपास्य प्रभु का वर्णन। विद्वान् शासक के कर्त्तव्य। उसके कण्टक-शोधन का कर्त्तव्य। प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। दयालुतापूर्ण कर्त्तव्य। दुष्टों का दमन करे। मेधावी का माता पिता से भी अधिक मान्य पद। प्रभु की उपासना। (पृ० २६७–२८८)

सू० [९८] तेजस्वी के कर्त्तव्य। अभिषिक्त शासक के कर्त्तव्य। उसका राजकीय भव्य वेश। पांचों प्रजाओं से उसका अभिषेक। उसके प्रति जनसभाओं के कर्त्तव्य। उसके कर्त्तव्य और जिम्मेवारियां। उत्तम अनेक पदाधिकारियों के कर्त्तव्य। कैसे को पदाभिषिक्त करें। (पृ० २८८–२९२)

सू० [९९] स्तुति का पात्र शासक। उसका प्रयाण उसका प्रजाओं द्वारा अभिषेक। आत्मा का वर्णन। आत्मा वा प्रभु का प्रजाओं में शक्ति-वितरण। देहगत हृदय व आत्मा का वर्णन। (पृ० २९२–२९४)

सू० [१००] परमेश्वर के परम प्रेमरस का आस्वादन। प्रभु से प्रार्थनाएं। वाणियों का लक्ष्य प्रभु। विद्वान् का राज्य पद पर अभिषेक। उसके प्रजा आदि के प्रति कर्त्तव्य। उसका स्तुत्य पद। सूर्यवत् उसका वर्णन। प्रभु का विश्व धारण। (पृ० २९४–२९७)

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [१०१] आत्मा की उन्नति के लिये तृष्णालु चित्त का दमन। शासक और परिव्राजक का कर्त्तव्य। आत्मा का शासकवत् प्रतिपादन। शासकों के तुल्य विद्वानों का कर्त्तव्य। प्रभु की उपासना का उपदेश। आत्मा और परमात्मा में मित्रता का सम्बन्ध। पूषा प्रभु और पूषा आत्मा। वेदवाणियों और विद्वानों का लक्ष्य प्रभु है। उसकी साधना और साक्षात् करने का उपदेश। विद्वानों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। उनके उत्तम गुण। आत्मा की साधना के पूर्व लोभादि को विजय करने का उपदेश। माता पिता वा प्रिय पतिवत् प्रभु। विश्वधारक प्रभु। सब वाङ्मय के ऊपर मेघवत् प्रभु। (पृ० २९७–३०२)

सू० [१०२] प्रभु की आज्ञावाणी वेद। यज्ञमय प्रभु का रम्य रूप। विद्वान् प्रभु की स्तुति उपदेशादि करे। सर्वोपास्य प्रभु। महायज्ञ के निर्माता आत्मा और प्रकृति। प्रभु से शुद्ध निष्पाप होने की प्रार्थना। (पृ० ३०२–३०४)

सू० [१०३] नियमपूर्वक देव-उपासना करने का उपदेश। व्यापक प्रभु। अन्तर्यामी प्रभु। सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वनेता, सर्वःदुखहारी है। अविनाशी, अमृत प्रभु। परम पावन व्यापक प्रभु। (पृ० ३०४–३०६)

सू० [१०४] सबको मिलाकर उपासना करने का उपदेश। व्यापक प्रभु की उपासना करो। उपासना और ज्ञान का फल बल, ज्ञान, तेज और शान्ति सुख प्राप्ति है। प्रभु से अपनी अभिलाषाएं प्रकट करना। मार्गदर्शी ज्ञानी प्रभु है। वंचक को दूर करने की प्रार्थना। (पृ० ३०६–३०७)

सू० [१०५] व्यापक प्रभु की स्तुति। यज्ञों द्वारा उपासना। उपासित प्रभु सुख देता है। बल देता है, दानशील दयालु प्रभु। दुष्टों से बचने की प्रार्थना। (पृ० ३०७–३०९)

सू० [१०६] राष्ट्र में सर्वसुख साधक विद्वानों की प्रभु-उपासना। यथार्थ ज्ञान के लिये प्रभु-उपासना। आश्रय योग्य प्रभु। सर्वद्रष्टा, सर्वसुख दाता। सर्वलोक नियन्ता, सब की एक मात्र गति सर्वद्रष्टा, उसकी उपासना। बन्धन-मोचन के लिये प्रभु की उपासना। गुरुवत् प्रभु की उपासना। उसका स्तुति। हृदय में प्रभु का आविर्भाव। साक्षात् प्रभु प्राप्ति। (पृ० ३०९—३१३)

सू० [१०७] सोम। अभिषेक-योग्य पुरुष का वर्णन। राजा के कर्त्तव्य। उसकी गुण-स्तुति। अध्यक्ष के गुण और कर्त्तव्य। उसका उत्तम पद प्राप्त करते हुए सुपरीक्षित होना। वह उच्च पद पावे। सर्व-शास्ता प्रभु। पक्षान्तर में अभिषिक्त राजा से तुलना। समुद्रवत् रस-सागर प्रभु। साधक विद्वान् को मोक्ष मार्ग का उपदेश। स्तुत्य आत्मा। सर्वप्रेरक पूर्ण प्रभु। रथ के तुल्य रसवान् प्रिय आत्मा। रस-सागर प्रभु की ओर विद्वानों का मार्ग। दिनरात्रिवत् जगत् की उत्पत्ति-प्रलय करने वाला प्रभु। व्यवस्थापक प्रभु। मेघवत् आनन्दवर्षी प्रभु। विद्वान् परिव्राजक के कर्त्तव्य, उसकी दीक्षा, प्रभु से इन्द्रिय रूप शत्रुओं द्वारा गिरने से बचने की प्रार्थना। प्रिय परमात्मा से मोक्ष की याचना। ऐश्वर्य याचना। प्रभु का दर्शन। सुखप्रद प्रभु की ज्ञानवाणियों से स्तुति। ज्ञानियों को मोक्ष-लाभ। आत्मा का गर्भ में प्रवेशवत् आनन्दमय कोश में प्रवेश। (पृ० ३१३—३२१)

सू० [१०८] आत्मा से सुख की आशंसा। उसका वर्णन। अमृत-रूप मोक्ष की ओर अमृतत्व की प्राप्ति। आत्मा में स्तुति-प्रेरक प्रभु। अव्यक्त प्रभु की उपासना। आत्मा की उपासना। प्रभु से आनन्दमय कोष में प्रवेश करने में बाधक मध्यमकोशों के खोलने की प्रार्थना। सेनापति और परमेश्वर का वर्णन। समस्त ऐश्वर्य के स्वामी से प्रार्थना का उपदेश। सर्वप्रकाशक पिता प्रभु। समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी प्रभु।

उत्तम शासक के कर्त्तव्य । सागरवत् प्रभु सबका परम लक्ष्य । (पृ० ३२१–३२७)

सू० [१०९] जीव को प्रभु की प्राप्ति का उपदेश । सद्भावना । परम रसरूप प्रभु । सूर्यवत् सुखरसवर्षी प्रभु । उससे अनेक प्रार्थनाएं । विश्वकर्त्ता प्रभु । सर्वसुखप्रद प्रभु । ऐश्वर्यप्रद प्रभु । रसप्रद प्रभु उसका ध्यानाभ्यास । प्राणायाम । प्रभु के परम रस की प्राप्ति । उसका साक्षात् । साधक को उपदेश । साधना का मार्ग । परम सुखार्थ ज्ञानोपासना । आत्मा का शोधन । परमेश्वर प्राप्त्यर्थ तपः-साधना । (पृ० ३२७–३३१)

सू० [११०] वनस्थ और संन्यस्त जनों के कर्त्तव्य । श्रम से प्रभु की प्राप्ति । प्रभु स्तुति । प्रभु के साक्षात् के लिये साधना । प्रभु-कृपा से प्रभु की प्राप्ति । सर्वोत्पादक प्रभु सोम । सर्वशासक दयालु । दुर्गम-तारक प्रभु । (पृ० ३३१–३३४)

सू० [१११] राष्ट्रशोधक राजा के तुल्य आत्मशोधक विद्वान् का वर्णन । आत्मा और राजा का बलवान् होना । साधक का वीर के तुल्य उद्योग । (पृ० ३३४–३३६)

सू० [११२] नाना बुद्धियों और नाना कर्म के करने वालों में विद्वान् और वैद्य के तुल्य ऐश्वर्य के पद की ओर न बढ़ने का उपदेश । बाणकार के समान बाणों, वा शस्त्र-बल से ऐश्वर्य प्राप्त करने का आदेश । व्यवसाय वालों का राजा द्वारा संघटन । योग्य व्यक्ति को अनुरूप ऐश्वर्य प्राप्त करने का आदेश । (पृ० ३३६–३३८)

सू० [११३] शस्त्रबल पर राजा का राज्य की रक्षा का कर्त्तव्य । वह न्यायानुसार शासन करे। सेना, सामन्त आदि उसे पुष्ट करें । वह पुरोहित आदि उत्तम कार्यकर्त्ता जनों द्वारा प्रजा को सत्य की शिक्षा करे । प्रभु के ऐश्वर्यों के तुल्य राजा के ऐश्वर्य और राजा का दुष्टों के नाश का कर्त्तव्य । विद्वानों से शासित राज्य हो । अमृत लोक का वर्णन । प्रभु से

अमृत होने की प्रार्थना । ज्योतिर्मय लोकों में अमृतत्व प्राप्ति । सुखमय लोकों में अमृतत्व की प्रार्थना । (पृ० ३३८–३४२)

सू० [११४] उत्तम गृहपति का लक्षण । उत्तम शासक का आदर-पूजा करने का आदेश । सात सचिवादि से राज्य का शासन । राजा का कर्त्तव्य । प्रजा की सब कष्टों से रक्षा । (पृ० ३४२–३४३)

इति पावमानं सोम्यं नवमं मण्डलम् ।

अथ दशमं मण्डलम् (सू० १–४५)

सू० [१] अग्नि । सूर्य के तुल्य तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य । अरणियों में अग्नि के समान स्व-पर सैन्यों और शास्य शासक वर्गों में राजा की स्थिति । सूर्य के तृतीय आकाशवत् ज्ञानी का तृतीय आश्रम का सेवन और ज्ञान-प्रसार । काष्ठाग्निवत् राजा का वर्धन । ज्ञानी व बलशाली की ज्ञान बल प्राप्त्यर्थ उपासना । तेजस्वी राजा का सत्संग करना । राजा का पुत्रवत् पालन का कर्त्तव्य । (पृ० ३४४–३४७)

सू० [२] राजा के कर्त्तव्य । विद्वान् के कर्त्तव्य । राजा और विद्वान् हमारी अज्ञान द्वारा हुई त्रुटियों को पूर्ण करें । यज्ञ का उपदेश । विद्वान् होकर अन्यों को ज्ञान दे । विद्वान् स्वयं गृहपति और कुलपति होकर पितृयाण मार्ग से कर्म करे । (पृ० ३४७–३४९)

सू० [३] गृहस्थ होने का उपदेश । सूर्य के तुल्य गुरु-गृह में विद्वान् स्नातक होना । गृहस्थ के कर्त्तव्यों और राजा प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन । प्रकाशयुक्त किरणों के तुल्य विद्वानों का वर्णन । सूर्यवत् प्रचण्ड राजा का तेज । राजा के आज्ञा वचनों का वर्णन । गृह-तन्त्र के तुल्य राज्यतन्त्र की तुलना । (पृ० ३४९–३५२)

सू० [४] प्रपावत् रस-सागर प्रभु । शरणयोग्य प्रभु । पृथ्वी को राजा का पुत्रवत् पालन-पोषण । मूढ जन तेजस्वी की महिमा को नहीं

जानते। अग्नि के तुल्य राजा की उत्पत्ति। बाहुओं के तुल्य राजा की सेनाओं के कर्त्तव्य। राजा की वाणी प्रजा की वृद्धि करे। (पृ० ३५२–३५५)

सू० [५] राजा और प्रभु का उत्तम वर्णन। विद्वानों के कर्त्तव्य। प्रजा राजा का पालन करे। अन्नार्थी कृषकों आदि के तुल्य धनार्थी जनों को राजा की अपेक्षा। सात प्राणों सहित आत्मा के तुल्य राष्ट्रपति का वर्णन। ऋषियों की उपदिष्ट, सात मर्यादाएं। उनके उल्लंघन के पाप। उत्तम अध्यक्षवत् प्रभुसर्वाश्रय। (पृ० ३५६–३५९)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [६] आचार्य का वर्णन। उपनीत शिष्य की प्राप्ति और वृद्धि। धर्म का शिक्षक गुरु। प्रभु और सेनापति का वर्णन। सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष। बहुश्रुत तेजस्वी पुरुष की संगति का उपदेश। ऐश्वर्यवान् बलवान् पुरुष के कर्त्तव्य। सत्संग से ज्ञान प्राप्ति। (पृ० ३६०–३६२)

सू० [७] प्रभु से रक्षा की प्रार्थना। स्तुत्य और मनोगम्य प्रभु। प्रभु, पिता, बन्धु, भाई, मित्र है। परमेश्वर के अनुग्रह की विभूति। यज्ञाग्निवत् प्रभु की स्तुति। प्रभु का आत्मयज्ञ, प्रभु से बल, आयु, जीवन आदि की याचना। (पृ० ३६२–३६५)

सू० [८] महान् प्रभु का वर्णन। देहगत आत्मा का वर्णन। विराट् प्रभु का वर्णन। लोकधारक प्रभु। नेत्रवत् प्रकाशक प्रभु। विराट् विश्व-यज्ञ का चालक व्यापक प्रभु। वही जगत् को भी प्रलयकाल में लीलता है। परमेश्वर की व्यवस्था में रह कर जीवों का देह-बन्धनों में आना। परमेश्वर की देह में अद्भुत रचना। (पृ० ३६५–३६८)

सू० [९] आप्त जनों के कर्त्तव्य। जलों से उनकी तुलना। जलों का रोगों को, और आप्तों का पापों को दूर करने का कर्त्तव्य। (पृ० ३६८–३७०)

सू० [१०] यम, यमी । स्त्री पुरुषों का यम यमी रूप । उनका सख्य भाव । सन्तान उत्पत्ति के प्रति उनका कर्त्तव्य । वैवस्वत यम यमी का रहस्य । पुत्रों के कर्त्तव्य । पुत्रार्थिनी स्त्री की अभिलाषा । पाणि-ग्रहीता पुरुष से ही सन्तान हो । निः-सन्तान स्त्री पुरुषों के पुत्र न होने में कारण पर विचार । समर्थ पुरुष से समर्थ स्त्री की सन्तान प्राप्ति का आग्रह । पुरुष का अज्ञानवश हुई भूल को अपनी असमर्थता बतलाना । रथ-चक्र के जोड़े की तरह पत्नी का स्वपुरुष से ही सन्तान प्राप्ति कर गृहस्थ चलाने का संकल्प । पुरुष का स्त्री को अन्य पुरुष से सन्तान उत्पन्न करने का 'नियोग' अर्थात् आदेश देना । पुत्रार्थिनी स्त्री की स्वपुरुष से ही सन्तान प्राप्ति की प्रबल इच्छा । भावी सन्तानों को लक्ष्य कर अन्य पुरुष से क्षेत्रज पुत्र प्राप्त करने का पुनः आदेश । पुत्रार्थिनी के आग्रह का कारण । असमर्थ पुरुष की भ्रातृतुल्यता । भगिनी से संग करना पाप । स्त्री का परीक्षार्थ पुरुष के प्रति आक्षेपवचन । पुरुष की आज्ञा । असमर्थ स्त्री पुरुषों के लिये नियोग-विधान का प्रतिपादन । (पृ० ३७०–३७६)

सू० [११] राजा वा गृहपति के कर्त्तव्य । विदुषी स्त्री की अभि-लाषा । स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य । उत्तम प्रजाओं द्वारा उत्तम पुरुष का नायकवत् वरण । शासक को ऐश्वर्य के तुल्य प्रजाप्रिय होने का उपदेश । उषा-सूर्य के दृष्टान्त से शासक के कर्त्तव्य । राजा सेनापति और सभापति के कर्त्तव्य । (पृ० १७६–३८०)

सू० [१२] प्रधानपद पर स्थित के कर्त्तव्य । अग्नि तुल्य राजा के कर्त्तव्य । पृथिवी तुल्य राजा के उदार कर्त्तव्य । माता पिता गुरु आदि से प्रार्थना । शासक के कर्त्तव्य । अविज्ञेय परम रहस्य । उसके ज्ञान का आदेश । सूर्यवत् सर्वशासक प्रभु की उपासना । (पृ० ३८०–३८४)

सू० [१३] हविर्धान । स्त्री पुरुषों को वेद-धर्म का उपदेश । योगमार्ग का वर्णन, ज्ञानारम्भ के समान ही ब्रह्मज्ञान की शिक्षा । राजा के भृत्यों के तुल्य आत्मा के प्राणों का वर्णन । (पृ० ३८४–३८६)

सू० [१४] नियन्ता राजा का सत्कार योग्य पद। सत्कार योग्य यम, राजा, आचार्य, गुरु, विवाह्य आदि। उत्कृष्ट पुरुष की नियन्तृ-पद पर स्थापना। मार्गदर्शी पुरुषों को तृप्त करने का उपदेश। राजा का विद्वानों के प्रति कर्त्तव्य। ज्ञानी पुरुषों का सत्कार। पितृजन उनके उपदेश किये मार्गों पर आगे बढ़ने का आदेश। सत्संगति और गृहस्थ का उपदेश। राष्ट्र भूमि को उत्तम बनावें। चतुरक्ष शबल दो सारमेयों और पितरों का स्पष्टीकरण। प्रभु से मुक्ति की प्रार्थना। यम नाम राजा के दो प्रकार के सैन्यों का वर्णन। अध्यात्म में—प्राण और अपान के बल से दीर्घ-जीवन का उपदेश। राजा का आदर। उसके राज्य में निवासियों का कर्त्तव्य। राजा और ज्ञानदर्शी विद्वानों के प्रति सत्कार। प्रभु में छः महती शक्तियां। त्रिष्टुप् गायत्री आदि समस्त वेद के छन्दों, मन्त्रों की परमेश्वरपरक संगति होने से उनकी उसमें स्थिति। (पृ० ३८६–३९२)

सू० [१५] मनुष्यों को उन्नति का उपदेश। प्रजा-पालक जनों के कर्त्तव्य। ज्ञानियों का आदर। आदरणीय जनों के उचित आदर का उपदेश। बर्हिषद् पितृगण सौम्य पितृगण माता, पिता, गुरुओं का ज्ञानोपदेश का कर्त्तव्य। प्रजापालक जनों के कर्त्तव्य। सोम्य पितर, यम, नव गृहस्थ। वेदज्ञ विद्वान् पितर, अग्निष्वात्त पितरों के कर्त्तव्य। तेजस्वी राजा। उसका पितरों, प्रजा-पालक अध्यक्षों को देह-पोषणार्थ देने योग्य वेतन, अग्नि दग्ध, अनग्नि पितरों का विरेचन। (पृ० ३९२–३९७)

सू० [१६] विद्यासम्पन्न आचार्य। विद्यार्थी का तप और विद्या में परिपाक। स्नातक होने के अनन्तर शिष्य का घर में आगमन। व्रतचर्या आदि से बिना पक्ववीर्य हुए गृहस्थादि में प्रवेश का निषेध। तप द्वारा आत्मा की शुद्धि। विद्यार्थी का तपोव्रत के अनन्तर पितृ-गृह में आवर्तन। विषैले कीट, पतङ्गादि के दंशों से निवृत्ति और रोगनाशक का उपदेश। स्वस्थ रहने का उपदेश। गुरु का कर्त्तव्य सन्मार्ग में प्रवर्त्तन। विद्यादि

के योग्य पात्र शिष्य का लक्षण । गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा अज्ञान आदि का दूर करना । दुष्टों को दूर करने का उपदेश । समिधा हाथ में लेकर शिष्य को गुरु के समीप जाना । गुरुजनों के प्रति अवरों का सेव्य भाव । ताड़नापूर्वक शिष्य को ज्ञान, विद्या का वर्णन । (पृ० ३९७–४०२)

सू० [१७] परमेश्वर द्वारा प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति । सूर्य उषा का वर्णन । प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति, आकाश की उत्पत्ति । ज्ञानमयी वाणी का वर्णन । पूषा । पशुपालवत् पालक और प्रभु के कर्मों का वर्णन । रक्षा और सन्मार्ग की याचना । सर्वफल दाता प्रभु पूषा । सरस्वती नाम से प्रभु का वर्णन । आपः । आप्त जनों के कर्त्तव्य । सूर्य और ऋतुओं वा मासों के दृष्टान्त से आत्मा और प्राणों का वर्णन । प्रभु के दिये सोम रस का स्वरूप । सर्वोत्पादक तत्व द्रप्स सोम । शुद्धि करने की प्रार्थना । (पृ० ४०२–४०८)

सू० [१८] मृत्यु । दीर्घजीवन का उद्देश्य । देवयान और पितृयाण मार्ग । मृत्युपद का लोप । दीर्घ-जीवन का उपदेश । मनुष्य की परम आयु १०० वर्ष । अल्प आयु में मृत्यु न हों । जीवन की नसैनी । स्त्रियें पति-वियुक्त न हों । पति के बाद भी स्त्री पुत्रादि के पालन के लिये जीवित रहे । पुत्र न हो तो नियोग से पुत्रोत्पत्ति कर ले । मृत पुरुष के हाथ से पुत्र को अधिकार प्राप्त हो । भूमि, आदि की प्राप्ति और शत्रुओं से रक्षा । पक्षान्तर में स्त्री आदि के कर्त्तव्य । भूमि गृह आदि सुख सामग्री की प्राप्ति । उत्तराधिकारी को उपदेश । बाण के पीछे लगे पंखों के तुल्य सेनापति के कर्त्तव्य । (पृ० ४०८–४१३)

सप्तमोऽध्यायः

सू० [१९] अग्नि, सोम, आप, गावः । तेजस्वी और धनवान् अध्यक्षों और उनके अधीन सम्पन्न प्रजाओं के परस्पर कर्त्तव्य । प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य । जीवों का आवागमन । जीवों के लोक-लोकान्तर

में आने जाने पर ईश्वरीय व्यवस्था। उसका गोपालवत् वर्त्तन। जीव का मोक्षादि से भी आना। प्रभु का न्याय और सम व्यवहार। प्रभु का उत्तम शासन। (पृ० ४१३–४१६).

सू० [२०] प्रभु से सत्पथ की प्रार्थना। मातृवत् प्रभु। वृत्तिदाता शासक। राजा के कर्त्तव्य। विद्वान् के कर्त्तव्य। यज्ञ और परम पुरुष की उपासना। जीवनप्रद प्रभु की उपासना। उत्तम पुरुषों का कर्त्तव्य। प्रभु का उत्तम शासन। श्रद्धापूर्वक उपासना। (पृ० ४१६–४१९)

सू० [२१] प्रभु की उपासना। यज्ञ। प्रभु की स्तुति। प्रजा के नाना व्यवहार। प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। विद्वान् के कर्त्तव्य। प्रभु का वर्णन। उसकी स्तुति (पृ० ४१९–४२२)

सू० [२२] परमेश्वर का निरूपण। पिता के तुल्य प्रभु। देह में आत्मा की रीति। देह-प्राप्ति के सम्बन्ध में जिज्ञासा। प्रभु से ज्ञान, बल आदि की याचना। दुष्टनाश की प्रार्थना। सर्वपालक-पोषक प्रभु। प्रेरक प्रभु। शूरवीर के कर्त्तव्य। शक्तिशाली से अपने कार्यों की सफलता की प्रार्थना। उत्तम कर्मों के लक्षण। तेजस्वी पुरुष से भूमि के समान प्रजा की समृद्धि। राजा को प्रजाक्षय न कर उनके पालन का उपदेश। (पृ० ४२२–४२७)

सू० [२३] सेनापति के कर्त्तव्य। राष्ट्रपति के कर्त्तव्य। राजा को राष्ट्र का स्वामी होने का उपदेश। राजा की प्रजा पर उदार दृष्टि। राजा का परम पौरुष। परम स्नेही सखा प्रभु। (पृ० ४२७–४३०)

सू० [२४] प्रजा को पुत्रवत् पालन करने का आदेश। महान् प्रभु की शरण। पाप से बचाने की प्रार्थना। दो अश्वी। पति-पत्नी, स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ४३०–४३२)

सू० [२५] प्रभु से सुख-समृद्धि की प्रार्थनाएं। सर्वशरण्य प्रभु। प्रभु की कृपा से उत्तम देह-प्राप्ति। सर्वरक्षक प्रभु। द्रोही से रक्षा की प्रार्थना। सर्वदाता प्रभु (पृ० ४३२–४३६)

सू० [२६] सर्वपोषक प्रभु। शोधक प्रभु। सर्वसंचालक दुःखहारी, प्रकृत्यादि का स्वामी। सब ऐश्वर्यों का स्वामी, सर्वमित्र, ध्रुव अविनाशी, सब का बलप्रद। वह महान् शक्तिशाली है। (पृ० ४३६–४३८)

सू० [२७] ऐश्वर्यवान् प्रभु का वर्णन। इन्द्र पद पर स्थित राजा के प्रति कर्त्तव्य। दुष्ट-नाशक प्रभु। प्रभु और राजा का सामर्थ्य। राजा के कर्त्तव्य। सर्वोपरि शक्तिशाली प्रभु। जीवों की प्रभु-शासन में स्थिति। कर्मफलभोगी जीवगण। अन्धी प्रकृति से प्रभु की श्रेष्ठता। सौभाग्यवती स्त्री के समान ईश्वराधीन प्रकृति का वर्णन। प्रकृति में प्रभु का अद्भुत व्यापन। प्रभु का मातृत्व। राजावत् भोक्ता आत्मा के आठों प्राणों की देह में केन्द्रित व्यवस्था। दश प्राणों में एक आत्मा की व्यवस्था, आत्मा, दशों प्राण, और उनमें दो मुख्य प्राण, अपान, और देह में रुधिर आदि की व्यवस्था। अग्निवत् आत्मा का वर्णन। जगत् का अनादि-सञ्चालक प्रभु। उसका जीवों की सृष्टि बनाना। सूक्ष्म शरीरादि से जीवसर्ग की व्यवस्था। जीव को प्रभु का व्यापक भय। परम कारणरूप परमाणुमय प्रकृति से स्थूल जगत् की उत्पत्ति और जीवों की रक्षणव्यवस्था, प्रभु की प्राणदायी शक्ति। (पृ० ४३९–४४९)

सू [२८) देह का मुख्य शासक आत्मा। उत्तम शासक के कर्त्तव्य और वीर पुरुषों के अभिषेक। प्रभु और राजा का सामर्थ्य। प्रभु का मङ्गलजनक उपदेश। सर्वोपरि शासक का बल। उसका शत्रु-नाश करना कर्त्तव्य। शत्रु नाश का उपाय और वीर सैनिकों का कर्त्तव्य। वे कैसे निर्भय हों। वे उत्साह से बड़े बली का भी मुकाबला करें। वेतन-भोगी वीर, सैनिकों का सशस्त्रास्त्र रह कर सदा तैयार रहने का कर्त्तव्य। शाकाहारी शान्त पुरुषों का वर्णन। 'वसुक्र' की व्याख्या। (पृ० ४४९–४५३)

सू० [२९] राष्ट्र-रक्षार्थ एक नायक के अधीन उत्तम जनों के दल की स्थापना। तीनों शक्तियों से युक्त शतपति नायक महारथी का

स्थापन। प्रभु की वा शासक की समर्चा की उत्सुकता। प्रभु के लिये भक्त की उत्सुकतापूर्वक अनुग्रह की याचना। उससे मोक्ष-याचना। प्रभु के बनाए आकाश और पृथिवी माता पिता के तुल्य हैं। राजा का मधुपर्क से आदर करने का आदेश। शासक का व्यापक सामर्थ्य। (पृ० ४५४–४५७)

सू० [३०] प्रभु वाणी की कामना। परस्पर मिलाकर गृहस्थ बनाने का उपदेश। रक्षार्थी लोगों का महापुरुष का आश्रय लेने और उसके आदर का उपदेश। तेजस्वी महापुरुष का वर्णन। राजा प्रजा का परस्पर प्रसन्नता का व्यवहार। संकट से रक्षा करने वाले का आदर करने का आदेश। राजा प्रजा का व्यवहार। नदी सूर्यवत् राजा प्रजा का व्यवहार। स्त्रियों के कर्त्तव्यों का वर्णन। विद्वानों के कर्त्तव्य। आप्त प्रजाओं के कर्त्तव्य। उत्तम स्त्री-जनों के कर्त्तव्य। विद्वानों का कर्त्तव्य। (पृ० ४५७–४६३)

सू० [३१] आचार्य का उपासन। गुरु-शुश्रूषा और मनोदमन, ध्यान, धारणा, सदाचार और गुरुवत् प्रभु की उपासना का उपदेश। जीवार्थ जगत्-सर्ग। सब ज्ञान वालों से ज्ञान प्राप्त करना। प्रभु की वेदवाणी, सृष्टिविषयक प्रश्न आकाश और भूमि कहां से बने। सर्वधारक प्रभु। वही आकाश और पृथ्वी का कर्त्ता है। सूर्य और वृष्टि के दृष्टान्त से प्रभु के जगत्सर्जन का वर्णन। गो-वृषभ के दृष्टान्त से ब्रह्म द्वारा प्रकृति का जगत् को उत्पन्न करना। प्रभु का उत्तम स्वामित्व। (पृ० ४६३–४६७)

सू० [३२] स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। सत्संग यज्ञों द्वारा प्रभु की अर्चना और सत्फल। स्त्री पुरुष के दृष्टान्त से जीव के लिये समस्त ऐश्वर्य का वर्णन। अध्यक्ष में प्रमातृ शक्ति के शासन का वर्णन। अद्वितीय प्रधान पुरुष का सूर्यवत् दुष्टदमनकारी और ज्ञान-दाता विद्वानों के सत्कार का उपदेश। अर्चना से आत्मज्ञान की प्रार्थना। आत्मज्ञान के निमित्त

अज्ञानी ज्ञानी की उपासना करें। जीवरूप अग्नि की गति। षोडश-कल आत्मा वा गुरु की उपासना। (पृ० ४६८—४७१)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [३३] प्रभु की शरण याचना। भक्त का प्रभु से व्यथाओं का निवेदन। चिन्ताओं से पीड़ित भक्त की प्रार्थना। भयदायक जनों के नाश की प्रार्थना। अनेक सुखों के दाता प्रभु की स्तुति। सुखद वाणियों के उपदेष्टा प्रभु का स्तवन। प्रजारक्षक का आदर। आत्मा का ऐश्वर्य। उसका शतायु जीवन। (पृ० ४७२—४७४)

सू० [३४] अक्षकृपि प्रशंसा अक्षकितव-निन्दा। जूए के अक्षों के तुल्य प्रलोभन देने वाले इन्द्रियों का वर्णन। जूएखोर के दारिद्र्य और अधःपतन। इन्द्रिय लम्पट की बुद्धिहीनता। जूए के दुष्परिणाम। जूए-खोर की दुर्दशा। उसकी और इन्द्रिय लम्पट के गृहस्थ स्त्री की भी दुर्दशा। जूएखोर की व्यसनमग्नता उसका घोर अधःपतन। जूएखोर के समान धनार्थी विवाद-कलही का वर्णन। उत्तम अध्यक्षों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। नीच अध्यक्षों का वर्णन, उसके दोष। उच्छृंखल द्यूत व्यसनी की दुर्दशा। कितव। अन्यों का छीन झपट लेने वाले का अन्त-स्ताप। सर्वश्रेष्ठ राजा का आदर। द्यूत का निषेध और कृषि की प्रशंसा। अध्यक्षों को सदुपदेश। (पृ० ४७५—४८०)

सू० [३५] शिष्यों, जिज्ञासुओं के कर्त्तव्य। उत्तम माता पिता और गुरु जनों की इच्छा। राजसभा से रक्षा की प्रार्थना। उत्तम प्रभुशक्ति के कर्त्तव्य। उत्तम विदुषी स्त्रियों के कर्त्तव्य। प्राभातिक सूर्य रश्मियों का रोग-नाशक गुण। अग्निवत् तेजोमय से सुख-कल्याण की प्रार्थना। प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। ज्ञान-प्राप्ति की प्रार्थना। द्रोहरहित पुरुषों का सत्संग। विद्वानों का किरणों के तुल्य आदर। यज्ञ में ऋत्विजों की

तरह सात विद्वानों की राष्ट्र में स्थापना। ज्ञानी पुरुषों से यज्ञ-रक्षा की प्रार्थना। विद्वानों से ज्ञानोपदेश की याचना। बलवानों और सम्पन्नों से रक्षा-याचना। तेजस्वी और सम्पन्नों की शरण। (पृ० ४८०—४८६)

सू० [३६] कर्मनिष्ठ स्त्री पुरुषों का सत्कार। उत्तम पुरुषों से रक्षा की प्रार्थना। राजा की सूर्यवत् स्थिति। पूज्यों की अर्चना। उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। प्रभु की आत्मदेह में प्राणापान की प्राप्ति। प्रभु की उपासना। आत्मज्ञान के श्रवण का उपदेश। विजयप्रद ज्ञान, कर्म, बल आदि की याचना। वीर भोग्य ऐश्वर्य की कामना। प्रभु के परम सुख और निष्पापा की कामना। प्रभु के व्रत में लगे श्रेष्ठ पुरुषों से ऐश्वर्य-वृद्धि की प्रार्थना। सर्वत्र प्रभु की भावना। (पृ० ४८६—४९२)

सू० [३७] सर्वश्रेष्ठ प्रभु के सत्य ज्ञान उससे प्रभु का स्तवन। सर्वाश्रय से रक्षा की आकांक्षा। स्वप्न-जागरण और जन्म-मरण। प्रभु से उत्तम आचरणोपदेश की प्रार्थना। माता पिता आदि आप्त जनों से सुखी जीवन की प्रार्थना। प्रभु से दीर्घ जीवन की प्रार्थना। प्रभु के चिरकालिक साक्षात् की याचना। प्रभु से निष्पाप होने की प्रार्थना। प्रभु से शान्ति की याचना। विद्वानों से सर्व-सुख कल्याण की कामना। अपराधी को दण्ड देने की प्रार्थना। (पृ० ४९२—४९६)

सू० [३८] राजा के कर्त्तव्य। राजा प्रजा में ऐश्वर्य की वृद्धि करे। हम दुष्ट शत्रु के विजेता हों। ऐश्वर्य-वर्धक राजा को हम सदा चाहें और पावें। राजा विद्वान् और आत्मा का वर्णन। (पृ० ४९६—४९९)

सू० [३९] जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। उत्तम उपदेष्टा को पालक रूप से स्वीकार करना। जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। वे दोनों सदा सत्याचरणी हों, स्त्री पुरुषों के रथकार के समान कर्त्तव्य। जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के वैद्यों के तुल्य कर्त्तव्य। विद्या पारंगत माता-पिता, गुरुजनों के कर्त्तव्य। माता पिता को शुद्ध कन्या का नियमानुसार योग्य

से विवाह करने का आदेश। वे विद्वानों को पालें। विद्या में निष्णात स्त्री-पुरुष जीव को कष्ट से उबारें। प्राण उदान के तुल्य वे वीर पुरुषों को आने वाला सामर्थ्य दें। वे रथी सारथिवत् जिसको बड़ी पालक शक्ति सौंपे वह पाप से दूर रहे। वे रथों से यातायात करें। वे रथों से पर्वतादि देशों में भी जावें। ऐसे व्यक्तियों के हाथों ही प्रजा को सौंपे जो जितेन्द्रिय और शक्तिशाली हों। (पृ० ४९९–५०५)

सू० [४०] जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। वे अपने कार्यों को नियत कालों में व्यवस्थित करें। वे प्रातः स्तुति करें और अपनी शक्ति अधिकारों को सदा प्राप्त करें। उनके कर्त्तव्य। सभाओं के नायकों के कर्त्तव्य। उत्तम स्त्री पुरुषों के शासन कर्त्तव्य। सभा सेना के अध्यक्षों के कर्त्तव्य। विद्वान् स्त्री पुरुष अचेत, सेवक, विधवा, ज्ञानदाता और उपदेष्टा आदि का पालन करें। स्त्री के कर्त्तव्य। पति के घर जाते हुए स्त्री को पितादि बन्धुओं से बिछुड़ते हुए न रोने का उपदेश। युवा-युवतियों का गृहस्थ-प्रवेश के पूर्व माता पितादि से योग्य शिक्षा की प्रार्थना। वर वधू को माता पिता आदि का उपदेश, वे अपनी कामनाओं पर नियन्त्रण रखें। उत्तम अन्न और ज्ञान से तृप्त हों। (पृ० ५०५–५११)

सू० [४१] त्रिकाल शक्तियुक्त प्रभु की स्तुति। उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। योगाभ्यास द्वारा प्रभु का ध्यान करें। उत्तम ज्ञानी आचार्य का सत्संग करें। (पृ० ५११–५१२)

सू० [४२] प्रभु को प्राप्त करने का उपदेश। प्रभु की सेवा करो। उत्तम पालक प्रभु। विवाद के अवसर पर राजा शासक की पुकार। प्रभु पर विश्वासी के निर्विघ्न मार्ग। राजा शत्रु का दूर से ही नाश करे। राजा के कर्त्तव्य। मनुष्य को विजयोद्योगी होने का उपदेश। प्रभु और राजा से अज्ञान और धनों के विजय की प्रार्थना। प्रभु से रक्षा की प्रार्थना। (पृ० ५१२–५१६)

सू० [४३] पति को स्त्रियों के तुल्य प्रभु को स्तुतियां प्राप्त हों। राजावत् प्रभु की स्तुति। सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। उत्तम २ नायकों का समर्थ पुरुष को आश्रय रूप से अपनाना। प्रजा को कृतकर्मा कुशल पुरुषों के संग्रह का उपदेश। राजा प्रजा के सुखों का सदा ध्यान रखे। समुद्र के समान राजा बलवान् राजा का सर्वाश्रय पद। क्रुद्ध सांड के समान प्रजाओं वा शत्रुओं के राजा का उग्र रूप। राजा स्वयं दुधार गौ के समान प्रजा को ऐश्वर्य दे। प्रजा अन्नादि से सम्पन्न, ज्ञानी, धन सम्पन्न हो। राजा प्रजा का सख्य हो। (पृ० ५१६–५२१)

सू० [४४] राजा के कर्त्तव्य। राजा का रथ और सैन्य दृढ़ हों। बलवान् जन राजा के रक्षक हों। प्रजा बलशाली। राजा से प्रजा की समृद्धि याचना। उपासना न करने वालों का अधःपतन होता है। अजितेन्द्रियों का अधःपतन और जितेन्द्रियों की उन्नति। प्रभु का प्रसाद और कोप। प्रभु से दुष्टों के नाशक बल की याचना। अज्ञान दुर्भिक्ष आदि का विजय। परमेश्वर से रक्षा की याचना। (पृ० ५२१–५२६)

सू० [४५] मुख्याग्नि सूर्य, अध्यात्म में प्राण। जाठर और भौम ये तीन अग्नियें। तीन लोकों में विद्यमान उसके तीन रूप। उसका एक निगूढ़ रूप। ज्ञानद्रष्टा अग्नि। आकाश रथ विद्युद् अग्नि। सूर्यवत् राजा का कर्त्तव्य। आत्मा रूप अग्नि का प्रकाश। शिष्य रूप अग्नि का वर्णन, उसको गुरुवत् प्रभु का उपदेश। सर्वैश्वर्यप्रद सर्वज्ञानप्रद प्रभु। सर्व-हितकारी, वैश्वानर अग्नि। (पृ० ५२६–५३०) इत्यष्टमोऽध्यायः॥

इति सप्तमोऽष्टकः।

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

षष्ठेऽष्टके सप्तमेऽध्याये षोडशो वर्गः

नवमे मण्डले प्रथमोऽनुवाकः

[१]

अथातः पावमान सौम्यं नवमं मण्डलम् ॥ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ गायत्री । ३, ७—१० निचृद् गायत्री । ४, ५ विराड् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) विद्यादि से स्नान करने वाले ! एवं अन्यों को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाले ! तू (इन्द्राय पातवे) उत्तम ऐश्वर्य भोग के लिये (सुतः) अभिषिक्त है। तू (स्वादिष्ठया) अति स्वादु मीठी (मदिष्ठया) आनन्ददायिका, (धारया) वाणी से (पवस्व) श्रोताओं को पवित्र कर। अन्यों से सुखकारिणी वाणी से व्यवहार कर।

गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक, विद्या-गर्भ से निकलता हुआ विद्यार्थी, आश्रम से आश्रमान्तर जाते हुए आश्रमी सर्व प्रथम अभिषेक करता है। इसी प्रकार प्रत्येक अधिकारी अपने पद पर नियुक्त होते समय अभिषिक्त होता है। वे सब ही 'सोम' कहाते हैं। इस सोम-प्रकरण में सामान्यतः

ये सभी लक्षणावृत्ति से 'सोम' जानने चाहियें। अध्यात्म में—जगदुत्पादक, जगत्प्रेरक प्रभु भी 'सोम' है और उसका ऐश्वर्य तथा उसका द्रष्टा, इन्द्रियों द्वारा ऐश्वर्यों का भोक्ता जीव 'इन्द्र' है। जहां जीव 'सोम' है वहां 'इन्द्र' शब्द से जगत् का ऐश्वर्य और उसका स्वामी प्रभु जानना चाहिये। 'सोम' अर्थात् नवीन ब्रह्मचारी के साथ इन्द्र और अग्नि आचार्य के वाचक होते हैं, 'सोम' गृहस्थाभिलाषी वर है तो 'इन्द्र' ऐश्वर्य है, जब वह 'इन्द्र' है तो 'सोम' गृहस्थ के उत्तम सुख हैं। वनस्थ विद्वान् एवं प्रभुपरायण मुमुक्षु वा परिव्राजक 'सोम' पवमान पद से वर्णित होते हैं। यज्ञ में सोम नामक ओषधि-विशेष का रस भी गृहीत होता है। अनेक स्थलों पर सोम अन्न एवं सामान्य ओषधि का वाचक भी है। जो यथास्थान संकेत से बतलाया जावेगा।

इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा राष्ट्र को कण्टक-शोधनादि द्वारा पावन करने से 'पवमान सोम' कहा जाता है। देह का राजा जीव, ब्रह्माण्ड का स्वामी ईश्वर और आश्रम का गुरु, गृहपति आदि सभी 'सोम' कहे जाते हैं।

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्।
द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥

भा०—(विश्व-चर्षणिः) सबका द्रष्टा (रक्षोहा) दुष्टों का नाशक विद्वान् (अयः-हतम्) सुवर्णादि से बने (योनिम्) आसन पर (द्रुणा अभि) द्रुतगामी सैन्य से युक्त होकर (सधस्थे) एक साथ बैठने के सभा भवन में (आ सदत्) सबके सन्मुख विराजे। (२) 'सोम' नामक ओषधि देह-शोधन और रोग नाश करने के कारण 'विश्वचर्षणि और रक्षोहा' है।

वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः।
पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥

भा०—तू (वरिवः-धातमः) श्रेष्ठ ऐश्वर्य को धारण करने वाला, (मंहिष्ठः) उत्तम दाता और (वृत्रहन्-तमः) अज्ञान एवं रोगादि शत्रुओं का नाशक (भव) हो। तू (मघोनाम्) धन सम्पन्नों को (राधः अर्ष) धन प्रदान करता है।

अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (महानां देवानां) बड़े २ विद्वान्, तेजस्वी जनों की (अन्धसा) उत्तम धन आदि ऐश्वर्य और अन्न द्वारा (वीतिम् अभि अर्ष) कामना को पूर्ण कर और (वाजम्) बल (उत श्रवः अभि अर्ष) ज्ञान एवं यश भी प्राप्त करा।

त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे।
इन्दो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! दयार्द्र! हम (दिवे-दिवे) प्रतिदिन, (त्वाम्) तुझको (अच्छ चरामसि) उत्तम रीति से प्राप्त होते हैं। (नः) हमारा (तत् इत्) वह तू ही (अर्थम्) धनवत् प्राप्य है। (नः आशसः) हमारी सब आशाएं और कामनाएं तुझ पर ही आश्रित हैं। इति षोडशो वर्गः॥

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता।
वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से दुही गई, प्रदान की गई विद्या या पदवी (ते) तुझ (परिस्रुतं सोमं) अभिषिक्त सोम विद्यार्थी को (शश्वता) सनातन नित्य (वारेण:) वरण करने योग्य (तना) विस्तृत ज्ञानैश्वर्य से (पुनाति) पवित्र करती है।

(२) हे सौम्य युवक! (सूर्यस्य दुहिता) तेजस्वी पिता की पुत्री (ते

परिस्रुतं सोमं) तेरे निषिक्त वीर्य को (वारेण) वरणीय (शश्वता तना) स्थायी उत्तम पुत्र रूप से (पुनाति) प्राप्त करे।

तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश।
स्वसारः पार्ये दिवि ॥ ७ ॥

भा०—(तम् ईम्) उस अभिषिक्त (अण्वीः) प्राणधारिणी (दश योषणाः) दशों दिशाओं की प्रेमयुक्त प्रजाएं (समर्ये) मनुष्य-सहित राष्ट्र में (आ गृभ्णन्ति) अपनाती हैं और वे (स्वसारः) स्वयं उसको प्राप्त वा शत्रु को सुख से उखाड़ फेंकने में समर्थ सेनाएं (पार्ये दिवि) पालन करने योग्य, तेज से युक्त पद पर स्थापित करती हैं। (२) अध्यात्म में— दश इन्द्रियां सूक्ष्म रूप होकर उस जीव को अपना रही हैं।

तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम्।
त्रिधातु वारणं मधु ॥ ८ ॥

भा०—(अग्रुवः) आगे आने वाले, प्रमुख प्रजाजन, (ईम्) सब ओर से (बाकुरम्) तेजस्वी, सूर्यवत् प्रकाशमान् (दृतिम्) पात्र के समान ऐश्वर्य को ग्रहण करने वाले (त्रि-धातु) तीनों प्रकार से (वारणं) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ (मधु) मधुर स्वभाव से युक्त (तम्) उसको (हिन्वन्ति) बढ़ाते और (धमन्ति) अधिक तीव्र करते हैं।

अभी३ममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम्।
सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥

भा०—(अघ्न्याः धेनवः शिशुम्) न मारने योग्य, गौवें जैसे बालक को (पातवे) दूध पिलाने के लिये (श्रीणन्ति) अपने साथ मिलाती हैं वैसे ही (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् ज्ञानदर्शी आचार्य की (अघ्न्याः धेनवः) नाश न होने वाली वाणियां (पातवे) पालन करने के लिये (सोमम् शिशुम्) शिशु विद्यार्थी को (अभिश्रीणन्ति) प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार अभिषिक्त राजा को अहन्तव्य प्रजाएं गौवत् ऐश्वर्य पद देने के लिये सब ओर से एकत्र होती हैं।

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते।
शूरो मघा च मंहते ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—(अस्य इत् मदेषु) इस अभिषिक्त राजा के (मदेषु) आनन्दोत्सवों में प्रसन्न होकर (शूरः इन्द्रः) शत्रुनाशक सेनापति (विश्वा वृत्राणि) समस्त शत्रुओं को (आ जिघ्नते) नष्ट करता है और वह (मघा च मंहते) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[२]

मेधातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६ निचृद् गायत्री। २, ३, ५, ७—९ गायत्री। १० विराड् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या। इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥१॥

भा०—हे (इन्दो) इस प्रकार से विनीत होकर गुरु की परिचर्या करने वाले! हे (सोम) विद्यार्थिन्! ब्रह्मचारिन्! ज्ञानोपासक! तू (देववीः) ज्ञान दाता को प्राप्त होने वाला होकर (पवित्रं) पवित्र करने वाले (इन्द्रम्) तत्वदर्शी गुरु को प्राप्त होकर (रंह्या) शीघ्र ही (अति पवस्व) अपने को खूब पवित्र कर और तू (वृषा) बलवान् होकर (इन्द्रम् आविश) उस आचार्य को प्राप्त हो। (२) इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा देव, विद्वानों को प्राप्त कर पवित्र इन्द्र-पद को प्राप्त करे और बलवान् होकर ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र पद पर विराजे।

आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः।
आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) आह्लादककारक! सोम्य! तू (वृषा) बलवान् (द्युम्नवत्तमः) अति तेजस्वी होकर (महि प्सरः) उत्तम ज्ञान का (आ वच्यस्व) अभ्यास कर और (धर्णसिः) धारणशील होकर (योनिम्) गुरु-गृह में (आ सदः) रह। राजा भी धनैश्वर्य-सम्पन्न और बली होकर प्रजा को सुख दे।

अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥

भा०—(सुतस्य) अभिषिक्त और शुद्ध-पवित्र (वेधसः) जिस विद्वान् पुरुष की (धारा) वाणी ओषधि लता के समान (प्रियं मधु) प्रिय और मधुर वचन (अधुक्षत) प्रदान करे वही (सु-क्रतुः) उत्तम ज्ञान और कर्मवान् पुरुष (अपः वसिष्ट) आप्त प्रजाजनों पर अध्यक्ष रूप से रहे ।

महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (महान्तं मही: आपः सिन्धवः) महान् समुद्र के प्रति बड़ी २ तीव्र जलधारायें और नद (अनु अर्षन्ति) जाते हैं और वह (गोभिः वासयिष्यते) गमनशील नदियों और जलों से पूर्ण हो जाता है वैसे ही (यत्) जब हे सोम विद्यावान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष ! तू भी (गोभिः) उत्तम ज्ञानयुक्त वाणियों, भूमियों वा चमकीले वस्त्रों द्वारा (वासयिष्यसे) आच्छादित किया जाय, तब (त्वा महान्तं) तुझको महान् जान कर (अनु) तेरे पीछे (आपः) आप्त प्रजाएं और (सिन्धवः) वेग से जाने वाले अश्वारोही जन भी (अर्षन्ति) चलें ।

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(समुद्रः) समुद्र के समान सर्वाश्रय, (दिवः विष्टम्भः) भूमि का विशेष आश्रय और (धरुणः) धारण करने वाला (सोमः) सौम्य स्वभाव का वीर्यवान् पुरुष (अस्मयुः) हम प्रजाओं को चाहने वाला होकर (अप्सु) जलों में स्नात पुरुष के समान (पवित्रे) पवित्र राज्य-कार्य में (मामृजे) अभिषिक्त किया जाय । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण रोचते ॥६॥

भा०—(वृषा) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, (हरिः) दुःखों और मन का हरण करने वाला, (महान्) महान्, (मित्रः न) स्नेही जन के समान (दर्शतः) व्यवहारों का द्रष्टा, न्यायशील शासक (सूर्येण सं रोचते) सूर्य के समान प्रकाशित होता है।

गिरस्त इन्दु ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः।
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (अपस्यवः) कर्मों का उपदेश करने वाली, (गिरः) ये वाणियां (ते ओजसा) तेरे पराक्रम से (मर्मृज्यन्ते) शुद्ध-पवित्र होती हैं (याभिः) जिनसे तू (मदाय) प्रजा के हर्ष के लिये (शुम्भसे) सुशोभित होता है।

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे।
तव प्रशस्तयो महीः ८ ॥

भा०—(मदाय) हर्ष, स्तुति और (घृष्वये) शत्रु जनों से संघर्ष करने के लिये (लोक-कृत्नुम्) उत्तम लोकों के बनाने वाले (तं त्वा) उस तुझसे ही हम (ईमहे) याचना करते हैं। (तव प्रशस्तयः महीः) हे प्रभो! तेरी महिमा प्रशंसनीय है।

अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया।
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वर्षा वाले मेघ के समान तू भी (इन्द्रयुः) ऐश्वर्ययुक्त, राजपद का इच्छुक (पर्जन्यः) सब सुखों का दाता होकर (अस्मभ्यम्) हमें (मध्वः धारया) मधु धारा के समान मधुर ज्ञान की वाणी से (पवस्व) पवित्र कर।

गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत।
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (यज्ञस्य) पूज्य पद के लिये (पूर्व्यः) सब गुणों से पूर्ण (आत्मा) आत्मा के समान प्रिय है और तू ही (गोपाः) गौवों और वाणियों का रक्षक (नृषाः असि) मनुष्यों का स्वामी (अश्वसाः वाजसाः) अश्वों और बलों का भोक्ता राष्ट्र के आत्मा के तुल्य (असि) है।

इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[३]

शुनःशेपः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ विराड् गायत्री । ३, ५, ७, १० गायत्री । ४, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥

भा०—(एषः) यह (देवः) तेजस्वी (अमर्त्यः) अन्य मनुष्यों में असाधारण वीर (पर्णवीः इव) पक्षी के समान वेगवान् रथों से जाता हुआ (द्रोणानि अभि आसदम्) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (दीयति) प्रयाण करता है।

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति ।
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥

भा०—(एषः) यह (देवः) तेजस्वी (पवमानः) राष्ट्र को पवित्र करता हुआ, (अदाभ्यः) अपराजित होकर (विपा) विशेष पालक शक्ति से (कृतः) समर्थ (ह्वरांसि) कुटिल जनों को (अति धावति) आक्रमण करता है, उनको जीत कर प्रजा में शान्ति रखता है।

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ३ ॥

भा०—(एषः देवः) यह दानशील, तेजस्वी पुरुष (पवमानः) सबको शुद्ध करने वाला, (विपन्युभिः) विशेष स्तुति करने वालों, विविध व्यवहार कुशल और (ऋतायुभिः = ऋतयुभिः) सत्य को चाहने वाले जनों द्वारा

(पवमानः) अभिषिक्त होकर (हरिः) सबका दुःखहारी जन (वाजाय) ज्ञान और बल की प्राप्ति के लिये (मृज्यते) परिष्कृत और अभिषिक्त किया जाता है।

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः ।
पवमानः सिषासति ॥ ४ ॥

भा०—(एषः शूरः) वह शूरवीर (सत्वभिः) अपने बलों द्वारा (विश्वानि वार्या) समस्त ऐश्वर्यों को (यन् इव) मानो प्राप्त करता हुआ (पवमानः) स्वयं पवित्र हुआ (सिषासति) सबमें न्याय का विभाजन करे।

एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति ।
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

भा०—(एषः) यह (देवः) तेजस्वी पुरुष (पवमानः) राष्ट्र को दुष्ट पुरुषों से रहित करता हुआ, शत्रु पर चढ़ाई के लिये उद्यत होकर (रथर्यति) रथों और रथारोही सैन्य की कामना करे और उनको (दशस्यति) योग्य वेतनादि भी दे और उनके लिये (वग्वनुम्) उत्तम वचन (आविः कृणोति) प्रकट करे। इति विंशो वर्गः ॥

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ६ ॥

भा०—(एषः) यह (देवः) तेजस्वी राजा, (विप्रैः) विद्वानों से (अभिस्तुतः) सब प्रकार से स्तुति किया जाकर (रत्नानि दधत्) नाना ऐश्वर्यों को धारण करता हुआ (दाशुषे) कर देने वाले राष्ट्र के लिये (अपः वि गाहते) अभिषेचनीय जलों में स्नान करता है। राज्याभिषेक में समस्त जल समस्त प्रजाओं एवं समस्त राष्ट्र के प्रतिनिधि होते हैं और इसी प्रकार यज्ञ में 'वसतीवरी' जलों से पूर्ण द्रोणकलश भी प्रजारूप जलों से पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधि कहा जाता है।

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया ।
पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

भा०—(एषः) यह (पवमानः) शत्रु पर आक्रमण करके राष्ट्र को स्वच्छ करने वाला वीर (धारया) वाणी वा शस्त्र की धारा से (रजांसि) समस्त लोकों को (तिरः) पराजित करता हुआ और (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, (दिवं वि धावति) विजयार्थ विशेष वेग से जाता है।

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः। पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥

भा०—(एषः) यह (पवमानः) राष्ट्र को पवित्र करता हुआ (सु-अध्वरः) हिंसा रहित, (अस्पृतः) किसी से पराजित न होने वाला, वीर पुरुष (रजांसि तिरः) रजोगुणों से मुक्त, (दिवं वि आसरत्) विजयार्थ विविध दिशाओं में प्रयाण करता है।

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। हरिः पवित्रे अर्षति ॥९॥

भा०—(एषः देवः) यह विजिगीषु पुरुष (प्रत्नेन जन्मना) अपने सनातन से प्राप्त जन्म अभिषेकादि संस्कार द्वारा (देवेभ्यः) विजयेच्छु पुरुषों के लिये (सुतः) अभिषिक्त होकर ऐश्वर्य प्राप्त करके, (हरिः) सब प्रजा का चित्त हरण करके (पवित्रे) राष्ट्र रक्षा रूप पवित्र पद पर (अर्षति) आता है।

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः।
धारया पवते सुतः ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—(एषः उ स्यः) यह वह है जो (पुरु-व्रतः) बहुत से व्रतों, कर्मों का पालन करके स्वयं (जज्ञानः) नया जन्म लेता हुआ, (इषः) उत्तम कामनाओं और अन्नादि को (जनयन्) पैदा करता हुआ (सुतः) अभिषिक्त होकर (धारया पवते) वाणी से सबको पवित्र करता है (धारया पवते) या अभिषेक जल धारा से पवित्र किया जाय। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[४]

हिरण्यस्तूप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, १० गायत्री। २, ५, ८, ९ निचृद् गायत्री। ६, ७ विराड् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने वाले वा राज्याभिषेक विधि से पावन किये जाने वाले ! तू हमें (महि श्रवः सन च) महान् यश और धन प्रदान कर और स्वयं प्राप्त कर । तू (जेषि च) विजय कर । (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें उत्तम २ धन सम्पन्न करा ।

सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू हमें (ज्योतिः सन) प्रकाश दे, (स्वः सन) सुख दे । (विश्वा च सौभगा सन) सब प्रकार के ऐश्वर्य दे । (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें सबसे श्रेष्ठ बना ।

सना दक्षमुत क्रतुमप सोममृधो जहि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (दक्षम् सन) बल और ज्ञान दे । (क्रतुम् सन) कर्म सामर्थ्य दे । (उत) और (मृधः जहि) दुष्टों को दण्ड दे । (अथ) और (नः) हमें (वस्यसः कृधि) उत्तम श्रेष्ठ धन का स्वामी बना ।

पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवितारः) पवित्र करने वाले विद्वान् जनों ! आप लोग (पातवे इन्द्राय सोमम्) पालक परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये अपने आत्मा के समान (इन्द्राय पातवे) ऐश्वर्ययुक्त राज्यपद के लिये इस (सोमम्) उत्तम वीर्यवान् पुरुष को (पुनीतन) पवित्र करो । फिर वह (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें उत्तम धनसम्पन्न करे ।

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (नः) हमें (तव क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्म सामर्थ्य एवं (तव ऊतिभिः) अपनी रक्षाओं से (नः) हमें (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् के अधीन (आ भज) रख, (अथा नः वस्यसः कृधि) और हमें उत्तम धनैश्वर्य का स्वामी बना। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम् ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—(तव क्रत्वा) तेरे ज्ञान और (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाओं और शिक्षाओं से हम (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यम् पश्येम) सूर्य के समान तेरे प्रताप और ज्योतिर्मय आत्म-स्वरूप को देखें। हम चिरजीवी हों। (अथ नः० इत्यादि पूर्ववत्)

अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! हे (स्वायुध) उत्तम शस्त्र-अस्त्रों के स्वामिन् ! तू (द्वि-बर्हसं) प्रजा राजा दोनों लोकों को बढ़ाने वाला (रयिम् अभि-अर्ष) ऐश्वर्य प्राप्त कर (अथ नः० इत्यादि पूर्ववत्)

अभ्यर्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥

भा०—हे शासक ! तू (सासहिः) शत्रु-विजयी और (अनपच्युतः) अपराजित रह कर (समत्सु) संग्रामों में (रयिम् अभि अर्ष) ऐश्वर्य का लाभ कर। (अथा नो० इत्यादि पूर्ववत्) हमें सर्वश्रेष्ठ, धनसम्पन्न बना।

त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पवमान) राष्ट्र को शत्रु नाशन आदि द्वारा पवित्र करने वाले, (वि-धर्मणि) विविध उपायों से राष्ट्र के धर्मों के निर्णय देने वाले

'विधर्मा' नाम राजसभा के बीच (त्वां) तुझको विद्वान् जन (यज्ञैः अवीवृधन्) आदर सत्कारों से बढ़ावें, तुझे उत्साहित और शक्तिशाली बनावें। (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें सबसे श्रेष्ठ, धनधान्य पूर्ण कर।

रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (चित्रम्) आश्चर्यकारक, उत्तम, (अश्विनम्) निरन्तर वृद्धिशील (विश्वायुम्) जीवन भर तक साथ देने वाले, सर्वजन हितकारक (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त करा। (अथ नः वस्यसः कृधि) और हमें धन-धान्य से पूर्ण कर। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४—६ गायत्री। ३, ७ निचृद गायत्री। ८ निचृदनुष्टुप्, ९, १० अनुष्टुप्। ११ विराडनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति।
प्रीणन्वृषा कनिक्रदत् ॥ १ ॥

भा०—(समिद्धः) तेजस्वी, (विश्वतः पतिः) सब प्रकार से प्रजाओं का पालन करने वाला, (पवमानः) सबको पवित्र करता हुआ, (प्रीणन्) सबको प्रसन्न करता है और वह (वृषा) बलवान्, प्रबन्धक, प्रजा पर सुख की वर्षा करता हुआ, (कनिक्रदत्) हर्ष ध्वनि, गर्जना और घोषणाएं करता हुआ, (वि राजति) विशेष शोभा को प्राप्त करता है।

तनूनपात्पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति।
अन्तरिक्षेण रारजत् ॥ २ ॥

भा०—(तनून-पात्) अपने देह वा बल को न गिरने देने वाला बलिष्ठ बलीवर्द जैसे (शृङ्गे शिशानः) दोनों सींग पैने करता हुआ टक्कर लेने

के लिये (अर्षति) आगे बढ़ता है और जैसे (पवमानः) वेग से बहता वायु (तनूनपात्) प्राण से देह को न गिरने देता हुआ (अन्तरिक्षेण रारजत्) अन्तरिक्ष में विराजता है और (पवमानः तनूनपात्) जैसे, 'पावक अग्नि, (शृङ्गे शिशानः) जो ज्वालाएं तीक्ष्ण करता हुआ अन्तरिक्ष में चमकता है वैसे ही (तनूनपात्) राष्ट्र का अधःपतन न होने देने वाला, (पवमानः) अभिषिक्त राजा वा सेनापति (शृङ्गे) हिंसाकारिणी, अगल बगल की दो सेनाओं को सींगों के समान (शिशानः) तीक्ष्ण करता हुआ (अर्षति) आगे बढ़े और वह (अन्तरिक्षेण) स्व और पर दोनों पक्षों के बीच में विराजे ।

ई॒ळेन्य॒ः पव॑मानो र॒यिर्वि रा॑जति द्यु॒मान् ।

मधो॒र्धारा॑भि॒रोज॑सा ॥ ३ ॥

भा०—(ईडेन्यः) अति पूज्य, प्रजा को अतिप्रिय, (पवमानः) अभिषेक योग्य, (रयिः) ऐश्वर्यवत् सुखों का दाता (रयिः = रजिः) प्रजा का अनुरञ्जन करने वाला, (द्युमान्) तेजस्वी, (मधोः) बल की (धाराभिः) धाराओं से और (ओजसा) अपने पराक्रम से (राजति) विराजता वा राजा बनता है ।

ब॒र्हिः प्रा॒चीन॒मोज॑सा पव॑मानः स्तृ॒णन्हरि॑ः ।

दे॒वेषु॑ दे॒व ई॑यते ॥ ४ ॥

भा०—(देवः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा (देवेषु) विद्वानों और तेजस्वी लोगों में या उनके अधीन (ओजसा) पराक्रम से (प्राचीनम्) अपने आगे आये (बर्हिः स्तृणन्) शत्रु को कुशा के समान काटता और भूमि पर बिछाता हुआ इस प्रकार (पवमानः) राष्ट्र का कण्टक शोधन और अपना अभिषेक करता हुआ, (हरिः) सेना को साथ लेकर (ईयते) आगे बढ़े ।

उदा॒तैर्जि॑हते बृ॒हद् द्वारो॑ दे॒वीर्हि॑र॒ण्ययीः॑ ।

पव॑माने॒न सुष्टु॑ताः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—(बृहद्-द्वारः) बड़े २ फाटकों के समान विशाल, उदार

(हिरण्ययीः) सुवर्णादि से वा लोह हथियारों से सजी, (देवीः) विजयाभिलाषिणी सेनाएं (द्वारः) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ होकर (पवमानेन) अभिषेक योग्य, राजा के साथ (सु-स्तुताः) उत्तम रीति से प्रशंसित होकर (आतैः) अपने पराक्रमों से (उत् जिहते) उत्तम पद प्राप्त करती हैं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति।
नक्तोषासा न दर्शते ॥ ६ ॥

भा०—(पवमानः) अभिषिक्त राजा (सु-शिल्पे) उत्तम शिल्पों से सम्पन्न, (बृहती) बड़ी गुणयुक्त, (मही) पूज्य, (नक्तोषासा न) रात्रि और दिनवत् (दर्शते) अति दर्शनीय, नक्त अर्थात् रात्रिकाल के समान भूषणों से रहित पुरुष और उषावत् सुन्दर स्त्री, अथवा उषस् अर्थात् दिन के समान तेजस्वी पुरुष और रात्रिवत् लज्जाशील स्त्री दोनों वर्गों को वह (वृषण्यति) बलवान् करे, दोनों वर्गों का हित चाहे।

उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे।
पवमान इन्द्रो वृषा ॥ ७ ॥

भा०—(पवमानः इन्द्रः) अभिषेक योग्य, ऐश्वर्यवान् (वृषा) बलवान् पुरुष, (उभा देवा) दोनों तेजस्वी, (नृ-चक्षसा) मनुष्यों के द्रष्टा, (दैव्या) देवों के हितैषी, (होतारा) दानशील और ज्ञानसागर, विद्वान् और व्यवहार-कुशल ब्राह्मण और वैश्य वर्गों को (हुवे) स्वीकार करे, आदर से सत्कार करे।

भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही।
इमं नो यज्ञमा गमन्तिस्रो देवीः सुपेशसः ॥ ८ ॥

भा०—(पवमानस्य) अभिषेक योग्य राजा की (मही भारती, सरस्वती, इडा) महती भारती, सरस्वती और इडा ये (तिस्रः) तीनों (सुपेशसः) उत्तम रूपवती (देवी) ज्ञान, धन और मान देने वाली प्रजाएं (नः इमं यज्ञम् आगमन्) हमारे इस यज्ञ, सत्संग और पूज्य पुरुष को भी प्राप्त हों।

भारती, साधारण प्रजाजन, 'सरस्वती' उत्तम ज्ञानवान् वर्ग और 'इडा' अन्नप्रद कृषक वर्ग वा स्तुति आदि से मान देने वाले, अधीन भृत्य वर्ग।

त्वष्टा॑रमग्र॒जां गो॒पां पु॑रो॒यावा॑न॒मा हु॑वे।
इन्दु॒रिन्द्रो॒ वृषा॒ हरि॒: पव॑मानः प्र॒जाप॑तिः ॥ ९ ॥

भा०—(त्वष्टारम्) सूर्य के समान तेजस्वी, (अग्रजाम्) अग्रासन पर विराजमान (गोपाम्) भूमि के पालक, (पुरोयावानम्) सबसे आगे प्रयाण करने वाले को मैं (आ हुवे) आदर से पुकारता हूँ कि वह (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्दु' है। वह (इन्द्रः) सूर्यवत् देदीप्यमान होने से 'इन्द्र', (वृषा) सुखों का वर्षक होने से 'वृषा', (हरिः) प्रजा के दुःख हरने से 'हरि', (पवमानः) अभिषिक्त होने से 'पवमान' और (प्रजापतिः) प्रजा का पालक होने से 'प्रजापति' है। इसी प्रकार परमेश्वर भी सर्वस्रष्टा होने से 'त्वष्टा', सर्व प्रथम होने से 'अग्रजा', दयार्द्र होने से 'इन्दु', सुखवर्षी होने से 'वृषा' पाप भयहारी होने से 'हरि', परम पावन होने से 'पवमान', चराचर प्रजा का पालक होने से 'प्रजापति' है।

व॒न॒स्पतिं॑ पवमान॒ मध्वा॒ सम॑ङ्ग्धि॒ धार॑या।
स॒हस्र॑वल्शं॒ हरि॑तं॒ भ्राज॑मानं हिर॒ण्यय॑म् ॥ १० ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे! (मध्वा धारया) जल की धारा से जैसे (सहस्र-वल्शं हरितम् वनस्पतिं समंजते) हजारों कल्लों वाले हरित वृक्ष को सींचा जाता है, वैसे ही तू (वनस्पतिं) ऐश्वर्यों और तेजों के पालक, वटादिवत् आश्रितों के पालक (सहस्र-वल्शं) सहस्रों शाखाओं से युक्त, (हरितम्) हरे भरे, भवभय-हारी, (हिरण्ययम्) सुवर्णादि से आढ्य, (भ्राजमानं) तेजस्वी राष्ट्रकुल को (मध्वा धारया) मधुर वचन, अन्न और धारा अर्थात् दण्ड-विधान रूप वाणी और जलधारा नहर आदि से (सम अङ्धि) अच्छी प्रकार उज्ज्वल कर, पूजित कर और सेचन कर।

विश्वे॑ दे॒वाः स्वाहा॑कृतिं॒ पव॑मान॒स्या ग॑त।
वा॒युर्बृह॒स्पति॒: सूर्यो॒ऽग्निरिन्द्र॑: स॒जोष॑सः ॥ ११ ॥ २५ ॥

भा०—(वायुः) वायुवत् बलशाली, (बृहस्पतिः) वेदवाणी का रक्षक, (सूर्यः) सूर्यवत् सर्वप्रकाशक, (अग्निः) अग्रणी नेता (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वर्ग, (विश्वे देवाः) सब विद्वान् वीर (सजोषसः) परस्पर प्रीतियुक्त होकर (पवमानस्य) अभिषेक योग्य, प्रजा को पवित्र करने वाले राजा के (स्वाहाकृतिम्) उत्तम वचन, धन आदि दान एवं मान को (आ गत) प्राप्त हों। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[६]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७ निचृद् गायत्री । ३–६, ९ गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (वारेषु) वरणीय पदों और निवारण करने योग्य शत्रुओं में भी (अस्मयुः) हमारा प्रिय, (अव्यः) रक्षक और (देवयुः) विद्वान् वीरों को चाहता हुआ, (वृषा) बलवान् होकर (मन्द्रया धारया) हर्षजनक वाणी से (पवस्व) हमें प्राप्त हो ।

अभि त्यं मद्यं मदमिन्दविन्द्र इति क्षर ।
अभि वाजिनो अर्वतः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् है, (इति) इसलिये तू (त्यं मद्यम्) उस हर्षजनक (मदं) आनन्द को (अभि क्षर) सब ओर से प्रवाहित कर और (वाजिनः अर्वतः) वेगवान्, शत्रुहिंसक जनों को प्रजा के रक्षार्थ (अभि क्षर) सब ओर भेज ।

अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ३ ॥

भा०—हे शासक ! (त्यं) उस (पूर्व्यं मदं) सर्वश्रेष्ठ आनन्द को (अभि सुवानः) उत्पन्न करता हुआ और (वाजम् उत श्रवः) ऐश्वर्य और

यश को भी (अभि सुवानः) उत्पन्न करता हुआ तू (पवित्रे) राष्ट्र को पवित्र करने वाले राज्य पद पर (आ अर्ष) प्राप्त हो।

अनु द्रुप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन्।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ ४ ॥

भा०—(द्रप्सासः इन्दवः) द्रुत वेग से जाने वाले, स्नेहार्द्र जन (अपः न) जलधाराओं के समान (प्रवता) उत्तम मार्ग से (अनु असरन्) राजा का अनुसरण करें और वे भी (इन्द्रम्) तेजस्वी, वीर को (पुनानाः) अभिषेकादि से पवित्र करते हुए (इन्द्रम् आशत) राज्य-कार्य को प्राप्त हों।

यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश।
वने क्रीळन्तमत्यविम् ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(यम्) जिस (वाजिनम्) ऐश्वर्यवान् (अत्यविम्) सूर्य से भी अधिक तेजस्वी, (वने क्रीडन्तम्) ऐश्वर्य में, शत्रु-हनन के संग्राम आदि कार्य में रमण करने वाले पुरुष को (अत्यम् इव) अश्व के समान ही (दश) दशों दिशाओं की (योषणः) प्रेमयुक्त प्रजाएं (मृजन्ति) अभिषिक्त करती हैं। हे राष्ट्र ! तू (तम् इन्द्रम् आशत) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को प्राप्त कर। इति षड्विंशो वर्गः ॥

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये।
सुतं भराय सं सृज ॥ ६ ॥

भा०—(तम्) उस (वृषणं) सुखादि की वर्षा करने वाले, (रसं) बलवान् (सुतं) अभिषिक्त पुरुष को (मदाय) प्रजाजन के हर्ष और (भराय) भरण पोषण के लिये (देव-वीतये) वीरों की रक्षा करने के लिये (गोभिः सं सृज) उत्तम वाणियों और भूमियों से युक्त कर। उसकी स्तुति कर और उसे भूमियों का अध्यक्ष बना। समाज में वीर पुरुषों का प्रशंसा और उनके जीवन के लिये भूमि, वेतन आदि का प्रबन्ध होना चाहिये।

देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः।
पयो यदस्य पीपयत् ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जब (अस्य) इसका (पयः) बल, वीर्य (पीपयत्) परिपूर्ण हो जाता है, तब वह (देवः) दानशील, तेजस्वी पुरुष (सुतः) अभिषिक्त होकर (धारया) अपनी धारणा शक्ति और वाणी वा खड्ग बल से (देवाय इन्द्राय) विजयोत्सुक, तेजस्वी, ऐश्वर्य सम्पन्न पद के लिये (पवते) आगे बढ़ता है और सबके समक्ष अभिषिक्त किया जाता है।

आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः।

प्रत्नं नि पाति काव्यम् ॥ ८ ॥

भा०—वह स्वयं (आत्मा) आत्मा के समान सामर्थ्यवान् (यज्ञस्य) परस्पर दान-आदान-सत्संग के मध्य (सुतः) अभिषिक्त होकर और (रंह्याः) वेग से (सु-स्वानः) उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर (पवते) पवित्र होता है, एवं (प्रत्नं) सनातन से चले आने वाले (काव्यम्) विद्वानों से बनाये वा परमेश्वरोक्त नित्य वेद की मर्यादा (नि पाति) अच्छी प्रकार पालन करता है।

एवा पुनान इन्द्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये।

गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥ ९ ॥ २७ ॥

भा०—(एव) इस प्रकार (इन्द्रयुः) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ हे (मदिष्ठ) अतिस्तुत्य ! तू (पुनानः) स्वयं पवित्र या अभिषिक्त होता हुआ, (वीतये) रक्षा वा तेजस्वी होने के लिये (मदं दधिषे) स्तुत्य गुण को धारण कर और (गिरः) वेदवाणियों को भी (गुहा चित्) अपनी बुद्धि में (दधिषे) धारण कर। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[७]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५—९ गायत्री। २ निचृद् गायत्री। ४ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः।

विदाना अस्य योजनम् ॥ १ ॥

भा०—(सु-श्रियः) उत्तम शोभायुक्त, (इन्दवः) स्नेही जन (ऋतस्य पथा) सत्य के मार्ग से ही (अस्य) इसके (ऋतस्य) सत्य ज्ञान वेद के (योजनम्) योग अर्थात् प्रयोग को (विदानाः) जानते हुए (धर्मन्) धर्म मार्ग में (असृग्रम्) स्वयं चलें अथवा ·(धर्मन् असृग्रम्) धर्मों-नियमों का निर्माण करें ।

प्र धारा॒ मध्वो॑ अग्रि॒यो म॒हीर॒पो वि गा॑हते ।

ह॒विर्ह॒विष्षु॒ वन्द्यः॑ ॥ २ ॥

भा०—(हविःषु) आह्वान करने योग्य आदरपूर्वक आमन्त्रित जनों में (वन्द्यः) श्रेष्ठ (हविः) सर्वोत्तम आमन्त्रित राजा ही (अग्रियः) अग्रासन के योग्य होकर (मध्वः धाराः प्र गाहते) जल और ज्ञान की धाराओं को वाणियों के समान उत्तम रीति से विगाहन करे, उनमें स्नान करे और वह (महीः अपः) पवित्र जलों के तुल्य आदरणीय प्रजाजनों को भी (वि गाहते) विशेष रूप से प्राप्त करे, उनमें विचरे अर्थात् उनके सुखदुःखादि में सम्मिलित हो ।

प्र यु॒जो वा॒चो अ॑ग्रि॒यो वृषाव॑ चक्रद॒द् वने॑ ।

सद्मा॒भि स॒त्यो अ॑ध्व॒रः ॥ ३ ॥

भा०—(अग्रियः) अग्रासन के योग्य (वृषा) उतम प्रबन्धक, (सत्यः) सज्जनों में श्रेष्ठ, (अध्वरः) प्रजापीड़नादि से रहित, अहिंसक पुरुष (वने) ऐश्वर्य में स्थित होकर (सद्म अभि) सभा के सन्मुख (युजः वाचः अव क्रदत्) युक्ति युक्त वाणियों का उपदेश करे । सर्वदा न्याय मार्ग में स्थित रहे ।

परि॒ यत्का॒व्या॑ क॒विर्नृ॒म्णा वसा॑नो॒ अर्ष॑ति ।

स्व॑र्वा॒जी सिषासति ॥ ४ ॥

भा०—(यत्) जो (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् होकर (नृम्णा) नाना ऐश्वर्यों अथवा मनुष्यों के चित्तों को (वसानः) अपने वश करके (परि

अर्षति) उन्हें प्राप्त करता है; वह (वाजी) बलवान् पुरुष (स्वः सिषासति) सुख-समृद्ध राज्य को प्रदान करता है। (२) इसी प्रकार (यत् वसानः नृणा काव्या अर्षति सः कविः वाजी स्वः सिषासति) जो गुरु के अधीन रहकर विद्वानों में बनाये विद्या-धनों को प्राप्त करता है वह स्वयं मेधावी, ज्ञानी होकर अन्यों को ज्ञान प्रदान करता और सुख प्राप्त कराता है।

पव॑मानो अ॒भि स्पृधो॒ विशो॒ राजे॑व सीदति ।
यदी॑मृ॒ण्वन्ति॑ वे॒धसः॑ ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—(यद् ईम्) जब इसको (वेधसः) विद्वान् लोग (ऋण्वन्ति) सन्मार्ग में प्रेरित करते हैं तब वह (पवमानः) पवित्र होकर, (स्पृधः अभि) अपने स्पर्धालु शत्रुओं पर आक्रमण करता हुआ (राजा इव विशः सीदति) राजा के समान समस्त प्रजाओं पर अध्यक्ष होकर विराजता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

अव्यो॒ वारे॒ परि॑ प्रि॒यो हरि॒र्वने॑षु सीदति ।
रे॒भो व॑नुष्यते म॒ती ॥ ६ ॥

भा०—जो पुरुष (हरिः) मनोहर, पराक्रमी, (प्रियः) सर्वप्रिय होकर (अव्यः वारे) भूमिरक्षण में वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ पद पर (सीदति) विराजता है वह (रेभः) स्वयं उत्तम विद्वान्, आज्ञापक होकर (मती) बुद्धि या वाणी द्वारा सबकी सेवा करता है।

स वा॒युमिन्द्र॑म॒श्विना॑ सा॒कं मदे॑न गच्छति ।
रणा॒ यो अ॑स्य॒ धर्म॑भिः ॥ ७ ॥

भा०—(यः अस्य धर्मभिः) जो इसके धर्मों से (रण) आनन्दित होता है वह (वायुम् इन्द्रम्) बलवान्, ऐश्वर्यवान् और (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (मदेन साकं) आनन्द के साथ (आगच्छति) प्राप्त होता है।

आ मि॒त्रावरु॑णा॒ भग॒ं मध्वः॑ पवन्त ऊ॒र्मयः॑ ॥ ८ ॥
वि॒दा॒ना अ॑स्य॒ शक्म॑भिः ॥ ८ ॥

भा०—(मध्वः) सर्वप्रिय उपदेष्टा शक्तिशाली जन की मधुर (ऊर्मयः) वाणियां, तरङ्ग के समान (मित्रा-वरुणा भगं) स्नेही और श्रेष्ठ जन को (पवन्ते) प्राप्त होतीं और उनको पवित्र करती हैं और वे (अस्य शक्मभिः) उसकी शक्तियों वा सुखों द्वारा (विदानाः) ज्ञान अथवा ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए (पवन्ते) पवित्र हो जाते हैं।

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये।
श्रवो वसूनि संजितम् ॥ ९ ॥ २९ ॥

भा०—हे (रोदसी) सूर्य पृथिवी के समान ज्ञानी अज्ञानी जनों! आप दोनों (मध्वः) सर्वप्रिय, सबको सुख देने वाले होकर (वाजस्य) ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (अस्मभ्यम्) हमें (श्रवः) श्रवण योग्य वेद-ज्ञान, अन्न और (वसूनि) नाना जीवनोपयोगी धन (संजितम्) विजय करके प्राप्त कराओ। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[८]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ८ निचृद् गायत्री। ३, ४, ७ गायत्री। ६ पादनिचृद् गायत्री। ९ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन्।
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (सोमाः) अभिषिक्त वीर्यवान् जन (अस्य वीर्यम् वर्धन्तः) ओषधि रसों के तुल्य इसके बल को बढ़ाते हुए, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा की (प्रियं कामम् अभि अक्षरन्) प्रिय अभिलाषा को लक्ष्य करके नदी वेग के समान आगे बढ़ें।

पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना।
ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥ २ ॥

भा०—(पुनानासः) अभिषेकादि से पवित्र, युद्धार्थ दीक्षित होकर (चमू-सदः) सेनाओं के अध्यक्ष पद पर स्थित नायक जन (वायुम्) बलवान् मुख्य सेनापति और (अश्विना) अश्वों पर सवार दो प्रधान नायकों को (गच्छन्तः) प्राप्त होते हुए (ते) वे (नः सुवीर्यम्) हमारे लिये उत्तम बल को (धातु) धारण करें।

इन्द्र॑स्य सोम॒ राध॑से पुना॒नो हार्दि॑ चोदय।
ऋ॒तस्य॒ योनि॑मा॒सद॑म् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! तू (पुनानः) स्वयं पवित्र होकर और अन्यों को पवित्र करता हुआ, (हार्दि) सबके हृदयों का प्रेमपात्र बनकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी जन को (राधसे) धन प्राप्त करने और (ऋतस्य योनिम्) न्याय के स्थान पर (आसदम्) विराजने के लिये (चोदय) प्रेरित कर।

मृ॒जन्ति॑ त्वा॒ दश॒ क्षिपो॑ हि॒न्वन्ति॑ स॒प्त धी॒तय॑ः।
अनु॒ विप्रा॑ अमादिषुः ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! (त्वा दश क्षिपः मृजन्ति) तुझे दसों दिशाओं में बसने वाली प्रजाएं अभिषिक्त करती हैं और (सप्त धीतयः) राज्य की सात धारण शक्तियां (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं। (विप्राः अनु अमादिषुः) विद्वान् पुरुष तेरी प्रतिदिन स्तुति करें, तुझे प्रसन्न करें। राज्य में—राजा, प्रजा, मन्त्री, भूमि, कोश, सेना और दुर्ग ये सात शक्तियां होती हैं। इन्हें सात 'प्रकृति' कहा जाता है।

दे॒वेभ्य॑स्त्वा॒ मदा॑य॒ कं सृ॑जा॒नमति॑ मे॒ष्य॑ः।
सं गोभि॑र्वासयामसि ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—(मेष्यः अति सृजानम्) शत्रु पर शस्त्रादि वर्षण करने या भेड़े के समान टक्कर लेने वाली शत्रु-सेना के ऊपर रहते हुए (त्वा) तुझको (देवेभ्यः मदाय) वीरों और विद्वानों के हर्ष के लिये (गोभिः) उत्तम

वाणियों से हम (सं वासयामसि) अच्छी प्रकार बसावें, उत्तम वस्त्र अलंकरादि से आच्छादित करें।

पुनानः कुलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः।
परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥

भा०—(कलशेषु पुमानः) कलशों में स्थित जलों से अभिषिक्त हुआ (हरिः) उत्तम पुरुष, (अरुषः) रोषरहित सौम्य स्वभाव होकर (गव्यानि वस्त्राणि) उत्तम राज्योचित वस्त्रों और अलंकारों को (परि अव्यत) धारण करे।

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः।
इन्दो सखायमा विश ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! दयावन्! तू (नः मघोनः आ पवस्व) हमारे उत्तम धनवानों को प्राप्त हो और उनको पवित्र या उत्तम पदों पर अभिषिक्त कर। तू (नः विश्वा द्विषः अप जहि) हमारे समस्त अप्रीतिकर शत्रुजनों को दण्डित कर और (सखायम्) मित्र-स्नेह भाव को (आ विश) प्राप्त कर।

वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि।
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ८ ॥

भा०—(दिवः पृथिव्याः अधि) आकाश से पृथिवी के ऊपर (वृष्टिं) जलवृष्टि के समान, (द्युम्नम्) उत्तम अन्न, धन की (परि स्रव) सब ओर वर्षा कर। हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! शासक! तू (नः पृत्सु) हमारी प्रजाओं और सेनाओं में (सहः धाः) बल धारण करा।

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम्।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ९ ॥ ३१ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (स्वर्विदम्) ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले, (इन्द्र-पीतं) ऐश्वर्य के पालक वा भोक्ता (नृचक्षसं) सब मनुष्यों के

द्रष्टा, (त्वा) तुझको प्राप्त करके (प्रजाम्) उत्तम सन्तति और (इषम्) अन्न को (भक्षीमहि) प्राप्त करें । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[९]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१, ३—५, ८ गायत्री । २, ६, ७, ९ निचृद् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

परि॑ प्रि॒या दि॒वः क॒विर्वयां॑सि न॒प्त्यो॑र्हि॒तः ।
सु॒वा॒नो या॑ति क॒विक्र॑तुः ॥ १ ॥

भा०—(कविः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी (कवि-क्रतुः) क्रान्तदर्शी लोगों के समान कर्म करने वाला पुरुष (सुवानः) अभिषिक्त हो । वह (हितः) श्रेष्ठ पद पर नियुक्त होकर (नप्त्योः) अपने से सम्बद्ध शास्य शासक जनों के (प्रिया) प्रिय (दिवः वयांसि) ज्ञानों और बलों को (परि याति) प्राप्त करता है ।

प्रप्र॒ क्षया॑य॒ पन्य॑से॒ जना॑य॒ जुष्टो॑ अ॒द्रुहे॑ । वी॒त्य॑र्ष॒ चनि॑ष्ठया ॥२॥

भा०—हे वीर पुरुष ! तू (पन्यसे) स्तुति करने वाले (अद्रुहे) द्रोह रहित प्रजावर्ग के लाभ के लिये और उनकी (क्षयाय) ऐश्वर्यवृद्धि के लिये (जुष्टः) सेवित एवं प्रीतियुक्त होकर (चनिष्ठया) उत्तम (वीती) नीति द्वारा (प्रप्र अर्ष) आगे बढ़ ।

स सू॒नुर्मा॒तरा॒ शुचि॑र्जा॒तो जा॒ते अ॑रोचयत् ।
म॒हान्म॒ही ऋ॑ता॒वृधा॑ ॥ ३ ॥

भा०—(सुनुः मातरा) माता-पिता को पुत्र के समान, (सः) वह (जातः) उत्पन्न होकर और (शुचिः) शुद्ध, व्यवहारवान्, (महान्) गुणों में महान्, (सूनुः) प्रजा का शासक होकर (मही) महान्, (ऋत-वृधा) न्याय से बढ़ने वाले (जाते) राजा के उत्पादक शास्य, शासक दोनों वर्गों को (अरोचयत्) चमकाता एवं दोनों को प्रिय लगता है ।

स स॒प्त धी॒तिभि॑र्हि॒तो न॒द्यो॑ अजिन्वद॒द्रुहः॑ ।
या एक॒मक्षि॑ वावृ॒धुः ॥ ४ ॥

भा०—(याः) जो सात प्रकृतियां (अद्रुहः) द्रोहरहित होकर (एकम्) एकमात्र (अक्षि) क्षीण न होने वाले समुद्र के समान अथाह, गम्भीर एवं (अक्षि) चक्षुवत् सर्वद्रष्टा शासक को (ववृधुः) बढ़ाती हैं, (सः) वह भी उन (सप्त) सातों प्रकार की (नद्यः) प्रकृतियों को (धीतिभिः) अपने धारण पोषण और पालन आदि सामर्थ्य से (अजिन्वत्) पूर्ण और तृप्त करता है।

ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः।
इन्दुमिन्द्र तव व्रते ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राष्ट्रजन ! (तव व्रते) तेरे कार्य के लिये (ताः) वे प्रजाएं (सन्तम्) बलवान् (अस्तृतम्) न मारे जाने वाले, (युवानम्) युवा (इन्दुम्) सोमवत् ऐश्वर्यवान्, जन को (महे) बड़े भारी कार्य के लिये (अभि आदधुः) सबके सामने अग्रासन पर स्थापित करते हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः। क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥६॥

भा०—(अमर्त्यः) जिस प्रकार अमृत, नित्य आत्मा (सप्त पश्यति, अतर्पयत्) सात प्राणों को देखता और तृप्त करता है, उसी प्रकार (वह्निः) कार्य भार को वहन करने वाला और (वावहिः) सबको अपने में धारण करने वाला होता है। वह (सप्त) सातों (देवीः) व्यवहारकुशल, विदुषी प्रकृतियों वा प्रजाओं को (पश्यति) देखता है और वही (क्रिविः) कूप के समान (अतर्पयत्) सबको अन्न जल से तृप्त करे। राजा अन्न-करदात्री भूमियों और प्रजाओं को जल और अन्न से तृप्त करें। कृषि करावे और नहरें कूप आदि बनवावे।

अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या।
तानि पुनान जङ्घनः ॥ ७ ॥

भा०—(पुमः) हे पुमन् ! हे नरों, हे (सोम) उत्तम शासक ! तू (कल्पेषु) शस्त्रों के द्वारा छेदन-भेदन के अवसरों, संग्रामों में (नः अव)

हमारी रक्षा कर और (तमांसि) अन्धकार के समान दुःखदायी विघ्नों के समान (तानि योध्या) उन युद्ध-योग्य शत्रु-सैन्यों को, हे (पुनान) अभिषिच्यमान ! तू (जंघनः) दण्डित कर, दूर कर।

नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः । प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥ ८

भा०—(नव्यसे) अति स्तुत्य और (नवीयसे) सदा नवीन, नित्य (सूक्ताय) उत्तम वचन के (पथः) ज्ञान के मार्गों को (साधय) हमारे लिये बतला और (प्रत्नवत्) पूर्व के समान (रुचः) अपनी कान्तियों और इच्छाओं को (रोचय) प्रकाशित कर।

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् ।
सना मेधां सना स्वः ॥ ९ ॥ २३ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने वाले ! तू (वीरवत्) वीर पुरुष के समान पराक्रम से (महि श्रवः) बड़ा भारी यश और अन्न (गाम् अश्वम्) गौ और अश्व (रासि) प्रदान कर। तू (मेधां सन) उत्तम बुद्धि दे और (स्वः सन) सुख प्रदान कर। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१०]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, ८ निचृद् गायत्री । ३, ५, ७, ९ गायत्री । ४ भुरिग्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः ।
सोमासो राये अक्रमुः ॥ १ ॥

भा०—(रथाः इव) वेगवान् रथों और (अर्वन्तः न) अश्वों के समान (स्वनासः) अधिक स्वन अर्थात् ध्वनि करते हुए (श्रवस्यवः) ज्ञान श्रवण में उत्सुक (सोमासः) विद्यार्थी और (श्रवस्यवः सोमासः) यश के इच्छुक पदाभिषिक्त जन (राये प्र अक्रमुः) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये बढ़ें। इसी प्रकार विद्यार्थी जब स्नातक हो जावें तब (राये) गृहस्थ आश्रम के लिये और धन प्राप्ति के लिये आगे बढ़ें।

हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः ।
भरासः कारिणामिव ॥ २ ॥

भा०—(हिन्वानासः भरासः रथाः इव) आगे बढ़ते हुए और वेग से मनुष्यों को ले जाने वाले रथ जैसे (कारिणाम्) कर्मकुशल पुरुषों के (गभस्त्योः) हाथों में रहते, उनकी बागडोर सदा उनके हाथों में रहती है वैसे ही (भरासः) प्रजा के भरण पोषण करने वाले जन सदा (कारिणम्) कर्म करने में समर्थ, कुशल जनों के (गभस्त्योः) बाहुबल पर (दधन्विरे) स्थापित और पोषित होते हैं।

राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते ।
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ३ ॥

भा०—(सोमासः) स्नातक अभिषिक्त पदाधिकारी (प्रशस्तिभिः) उत्तम २ प्रशंसाओं से (राजानः) राजाओं के समान और (सप्त धातृभिः यज्ञः) सात छन्दों रूप वाणियों से यज्ञ के समान (सप्त धातृभिः) सर्पणशील व्यापक (गोभिः) वाणियों द्वारा (अञ्जते) कान्ति और तेज को प्रकट करते हैं।

परि सुवानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
सुता अर्षन्ति धारया ॥ ४ ॥

भा०—(इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त स्नेहार्द्र जन (सुवानासः) विद्या, व्रत और पदाधिकार में अभिषिक्त वा स्नान करते हुए (सुताः) और अभिषिक्त होकर (मदाय) आनन्द देने के लिये (बर्हणा गिरा) बड़ी वेदवाणी और (धारया) धारणा वा लोक वाणी से (परि अर्षन्ति) सर्वत्र विचरण करें।

आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम् ।
सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ५ ॥ ३४ ॥

भा०—(विवस्वतः) विविध ऐश्वर्यों और प्रजाओं के स्वामी के (आपानासः) चारों ओर के रक्षक (उषसः) प्रतापी, तेजस्वी, जन (उषसः भगम्) सेव्य सूर्य को उषाकालों के समान (भगम्) ऐश्वर्ययुक्त राजा

को (जनन्त) प्रकट करते हैं और (सूरा:) विद्वान् लोग उस (विवस्वतः) प्रजाओं के स्वामी राजा के (अण्वं) यश को (वि तन्वते) फैलाते हैं। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः।
वृष्णो हरस आयवः ॥ ६ ॥

भा०—(प्रत्नाः) पुराने, अनुभवी (कारवः) स्तुतिकर्त्ता, कर्मकुशल (आयवः) ज्ञानी मनुष्य, (वृष्णः) सब सुखों के वर्षक (हरसः) सकल दुःखहारी प्रभु की (मतीनां) मननीय वेद-वाणियों के (द्वारा अप ऋण्वन्ति) द्वारों को विवृत करें, उनके गूढ़ मर्मों की व्याख्या करें। अथवा (मतीनां कारवः) उत्तम वाणियों के उपदेशक ज्ञानी लोग, दुःखहारी प्रभु की प्राप्ति के (प्रत्ना द्वारा) सनातन मार्गों को (अप ऋण्वन्ति) बराबर खोलते रहा करें।

समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः।
पदमेकस्य पिप्रतः ॥ ७ ॥

भा०—(सप्तजामयः) सात वा समवाय अर्थात् संघ बना कर रहने वाले बन्धु जनों के समान (होतारः) ज्ञानदाता, (समीचीनासः) सम्यक् ज्ञानवान् होकर, शिर में सात प्राणों के समान (एकस्य पदम्) एक स्वामी के उच्च पद को पूर्ण करते हुए (आसते) विराजें।

नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित्सूर्ये सचा।
कवेरपत्यमा दुहे ॥ ८ ॥

भा०—(सूर्ये सचा चक्षुः चित्) सूर्य के आश्रय पर जिस प्रकार चक्षु स्थिर है उसी प्रकार मैं (नः) अपने लोगों के (नाभा) नाभि या केन्द्र स्थान में (नाभिम्) एकत्र बांध रखने वाले केन्द्रीय व्यक्ति को (आ ददे) स्वीकार कर लूं और मैं (कवेः) क्रान्तदर्शी पुरुष के (अपत्यम्) सन्तानवत् शिष्य को (आ दुहे) प्राप्त करूं।

अभि प्रिया दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्।
सूरः पश्यति चक्षसा ॥ ९ ॥ ३५ ॥

भा०—(सूरः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (गुहा हितम्) गूढ़ बुद्धि में विराजमान (दिवः प्रिया पदम्) तेजोमय प्रभु के प्रिय रम्य स्वरूप को (अध्वर्युभिः) अपने अविनाशी सामर्थ्यों से, (चक्षसा) दर्शन और वेद-वचन से (अभि पश्यति) सर्वत्र देखता है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[११]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१–४, ९ निचृद् गायत्री । ५—८ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवाँ इयक्षते ॥ १ ॥

भा०—हे (नरः) मनुष्यों ! आप लोग (पवमानाय) सबको पवित्र करने वाले, एवं अपने आप पवित्र होने वाले (इन्दवे) दयालु एवं प्रकाश-युक्त, तेजस्वी (अस्मै) इस पुरुष के (उप गायत) गुणों का वर्णन करो जो (देवान् अभि इयक्षते) विद्वानों और वीरों का सब प्रकार से आदर करता है।

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः ।
देवं देवाय देवयुः ॥ २ ॥

भा०—(अथर्वाणः) शान्तिजनक अहिंसक जन (ते देवाय) तुझ तेजस्वी पुरुष के (देवं) प्रकाशक (देवयु) विद्वानों को चाहने वाले (पयः) पोषण बल को (मधुना) ज्ञान वा अन्नादि से (अभि अशिश्रयुः) परिष्कृत करते हैं। राजा में बल है तो विद्वानों में ज्ञान है। विद्वान् ही उसका सहयोग करके उसके बलैश्वर्य को ज्ञानसम्पन्न करें। उसको अन्धा बैल न बना रहने दें।

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! तू (सः) वह (नः) हमारे (गवे) गौ आदि पशु के लिये (शम्) शान्तिदायक हो। (नः जनाय शम्) हमारे

मनुष्यों के लिये शान्तिदायक हो। (नः अर्वते शम्) हमारे अश्वों के लिये कल्याण और शान्तिकारक हो। हे राजन् ! तू (ओषधीभ्यः शम्) ओषधि, अन्नादि वनस्पतियों के लिये भी शान्तिकारक हो।

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे।
सोमाय गाथमर्चत ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषों ! (बभ्रवे) सबके पालन पोषण में समर्थ (स्व-तवसे) स्वयं वा ऐश्वर्य से बलशाली, (अरुणाय) तेजस्वी, अन्यों से अपराजित (दिवि-स्पृशे) ज्ञान में चरम सीमा तक पहुँचे हुए या परम पद में स्थित (सोमाय) ऐश्वर्ययुक्त जन की (गाथम्) वाणी की (अर्चत) अर्चना या आदर करो, उसके गुणों की स्तुति करो।

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन।
मधावा धावता मधु ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—(हस्त-च्युतेभिः) आप लोग हाथों या कुशल पुरुषों से सञ्चालित (अद्रिभिः) मेघों के समान शस्त्रास्त्र वर्षाओं वा जल-धारावर्षी कुम्भों से (सुतं) अभिषिक्त (सोमं) शासक को (पुनीतन) पवित्र करो और (मधौ) सबको आनन्द देने वाले, मधुर प्रकृति पुरुष के ऊपर (मधु) माधुर्य (आधावत) प्रवाहित करो। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन।
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रजाजनों ! आप लोग (इन्दुम्) ऐश्वर्ययुक्त, स्नेहार्द्र पुरुष की (नमसा इत्) नमस्कार द्वारा (उप सीदत) उपासना करो। (दध्ना इत्) धारण सामर्थ्य से (अभि श्रीणीतन) उसका आश्रय लो और (इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त राज्यासन पर उसे (अभि दधातन) स्थापित करो। (२) ओषधि पक्ष में—सोम को अन्न, दधि आदि से मिलाओ (इन्द्रे) सूर्य के प्रकाश में रक्खो और उसका सेवन करो।

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (अमित्रहा) स्नेह न करने वालों को नाश करने वा दण्डित करने वाला, (विचर्षणिः) विशेष रूप से सबका द्रष्टा और (देवेभ्यः) नाना कामना वाले मनुष्यों को (अनु-काम-कृत्) इच्छाओं को निरन्तर पूर्ण करता हुआ, (गवे) भूमि के लिये (शं पवस्व) शान्ति-सुख की धारा बहा ।

इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे ।
मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ८ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! वीर्यवन् ! तेरा (इन्द्राय) ऐश्वर्य पद को प्राप्त करने (पातवे) पालन करने के लिये और (मदाय) आनन्द लाभ के लिये (परि सिच्यसे) अभिषेक किया जाय । तू (मनः चित्) सबके मनों को जानने वाला और (मनसः पतिः) सबके मनों का स्वामी है ।

पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः ।
इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ९ ॥ ३७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! परमानन्ददायक ! हे (इन्दो) स्नेहार्द्र ! हे (पवमान) पवित्र करने वाले, परम पावन ! तू (नः) हमें (सुवीर्यं रयिम्) उत्तम बलप्रद ऐश्वर्य (रिरीहि) प्रदान कर और (नः) हमें (इन्द्रेण युजा) तेजस्वी सहयोगी मित्र से युक्त कर । इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

[१२]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६—८ गायत्री । ३—५, ९ निचृद् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने ।
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥

भा०—(सोमाः) बलवान् (इन्दवः) ऐश्वर्यवान्, प्रजास्नेही, (मधु-अत्तमाः) उत्तम ज्ञान और बल से युक्त जन (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (ऋतस्य सादने) न्याय के आसन पर (असृग्रम्) नियुक्त किये जावें। इसी प्रकार सोम ज्ञानवान् विद्यार्थी, ब्रह्मचारी (ऋतस्य सादने) वेदाध्ययन के स्थान-गुरु-गृह में तैयार होते हैं। वे इन्द्र, आचार्य के ज्ञान को धारण करते हैं।

अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः ।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

भा०—(गावः मातरः वत्सं न) गोमाताएं जैसे बछड़े को देख कर प्रेम से पुकारती हैं वैसे ही (सोमस्य पीतये) ब्रह्मचारी के पालन के लिये (विप्राः) विद्वान् जन (वत्सं इन्द्रं) ज्ञान के उपदेष्टा वा अपने अधीन ब्रह्मचारियों को रखने वाले विद्वान् को लक्ष्य कर (अभि अनूषत) उत्तम स्तुति करते हैं।

मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥

भा०—(सोमः) वीर्यवान्, ब्रह्मचारी (गौरी अधि श्रितः) वेदवाणी में दत्तचित्त होकर और (विपश्चित्) विद्वान् बन कर (सिन्धोः ऊर्मा) समुद्र की उच्चतम तरङ्ग के सदृश (सादने) उत्तम आसन पर गुरुगृह में (मदच्युत्) अन्यों को आनन्दजनक होता हुआ (क्षेति) रहता है।

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते ।
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥

भा०—(विचक्षणः) विविध तत्वों का द्रष्टा, (सोमः) विद्या-व्रत-स्नातक, (यः) जो (सुक्रतुः) उत्तम कर्म से युक्त, (कविः) क्रान्तदर्शी है। वह (दिवः नाभा) विद्या के सम्बन्ध में (अव्यः) ज्ञानी गुरु के (वारे) बुराइयों से वारण करने वाले गुरुगृह में (महीयते) प्रतिष्ठित होता है।

इसी प्रकार विचक्षण, सुज्ञानी, दूरदर्शी जन (दिवः नाभा) भूमि के केन्द्र में (अव्यः वारे) भूमिरक्षक के उत्तम पद पर प्रतिष्ठित हो।

यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः।

तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥ ३८ ॥

भा०—(यः) जो (सोमः) विद्वान् अभिषेक योग्य पुरुष (कलशेषु आ) जलों से भरे घड़ों के बीच अर्थात् उनके जल से स्नान करता है वह (पवित्रे अन्तः) पवित्र पद पर (आहितः) स्थित होता है (तम्) उसको (इन्दुः) समस्त ऐश्वर्य (परि सस्वजे) प्राप्त होता है। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः॥

प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि।

जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥

भा०—(समुद्रस्य विष्टपि अधि) आकाश के ऊपर विद्यमान् (इन्दुः) कान्तियुक्त विद्युत् वा जल युक्त मेघ, (मधुश्चुतं कोशं जिन्वन्) जल देने वाले कोश को धारण करता और (वाचं प्र इष्यति) गर्जना करता है अथवा अभिषिक्त पदाधिकारी (समुद्रस्य अधि विष्टपि) समुद्र के समान सैन्य और प्रजा के अध्यक्ष पद पर विराजता हुआ वा समुद्र अर्थात् अति हर्ष युक्त प्रजा के अध्यक्ष पद पर विराजता हुआ (मधुश्चुतं) प्रजा को अन्न, वृत्ति, वेतनादि देने वाले (कोशं) खजाने को (जिन्वत्) बढ़ाता हुआ (वाचम् प्र इष्यति) आज्ञा, या वाणी को प्रेरित करता है, वह सब पर शासन करता है।

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः।

हिन्वानो मानुषा युगा ॥ ७ ॥

भा०—वह विद्वान् या राजा (नित्य-स्तोत्रः) सदा अन्यों को उपदेश देने वाला, अन्यों से सदा प्रशंसनीय, (वनस्पतिः) ऐश्वर्यों और तेजों का पालक (मानुषा युगा हिन्वानः) मनुष्यों के जोड़ों, स्त्री पुरुषों की वृद्धि, उन्नति करता हुआ, (सबर्दुघः सन्) उनमें ज्ञान का सञ्चार करता हुआ

(धीनाम् अन्तः) उनकी बुद्धियों और कर्मों के बीच (वाचं प्र इष्यति) वाणी की प्रेरणा करता है।

अभि प्रियो दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति।
विप्रस्य धारया कविः ॥ ८ ॥

भा०—(कविः) क्रान्तदर्शी (सोमः) शासक, (विप्रस्य धारया) विद्वान् की वाणी से (हिन्वानः) आगे बढ़ता हुआ, (दिवः) कामना से युक्त प्रजा के (प्रिया पदा) प्रिय पदों को (अभि अर्षति) प्राप्त होता है। इसी प्रकार सोम, विद्यार्थी, विद्वान् आचार्य की वाणी से उपदिष्ट होकर (दिवः प्रिया पदा) विद्या के उत्तम पदों को प्राप्त करता है, नाना उपाधियों से भूषित होता है।

आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम्।
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ९ ॥ ३९ ॥ ७ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने और पवित्र होने वाले! (इन्दो) स्नेहार्द्र! तू (अस्मे) हमारे लिये (सहस्र-वर्चसम्) सहस्रों तेजों से युक्त, (सुआभुवम्) चारों ओर से आने वाले उत्तम सुखों के उत्पादक (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ धारय) सब ओर से धारण कर। इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः। इति षष्ठाष्टके सप्तमोऽध्यायः॥

अथाष्टमोऽध्यायः

[१३]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३, ५, ८ गायत्री। ४ निचृद् गायत्री। ६ भुरिग्गायत्री। ७ पादनिचृद् गायत्री। ९ यवमध्या गायत्री ॥

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः।
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

भा०—(सोमः) विद्यावान्, स्नातक (पुनानः) अभिषिक्त होकर (सहस्रधारः) सहस्रों वाणियों का ज्ञाता होकर और (अत्यविः) सूर्य से भी अधिक तेजस्वी बनकर (वायोः इन्द्रस्य) वायु और विद्युत् के (निष्कृतम्) पद को (अर्षति) प्राप्त होता है। वह वायु के समान प्रबल और विद्युत् के समान तेजस्वी, शत्रुहन्ता वा ज्ञानवान् आचार्य के पद को प्राप्त होता है।

पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत।
सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (अवस्यवः) ज्ञान, प्रीति और रक्षा चाहने वाले प्रजागण आप लोग (देव-वीतये) ज्ञानी और धन देने वाले पुरुष को प्राप्त करने के लिये (पवमानं सुष्वाणम्) शासन द्वारा पवित्र करने वाले और ऐश्वर्यादि प्रदान करने वाले (विप्रम्) बुद्धिमान् की (अभि प्र गायत) स्तुति-अर्चना करो।

पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः।
गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥

भा०—(देव-वीतये) शुभ गुणों के प्रकाश करने और जिज्ञासु जनों की रक्षा के लिये और (वाज-सातये) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, (सोमाः) उत्तम विद्वान् जन, (सहस्र-पाजशः) सहस्रों बलों वा ज्ञान से सम्पन्न होकर (गृणानाः) उपदेश देते हुए (पवन्ते) सबको पवित्र करते हैं।

उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः।
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दया स्नेहादि से आर्द्र पुरुष ! राजा और तू (नः) हमें (वाज-सातये) ज्ञान और बल देने के लिये (बृहतीः इषः) बड़ी २ कामनाओं, उत्तम अन्नों और बलवती सेनाओं को तथा (द्युमत्) तेज से युक्त (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को (पवस्व) प्राप्त करा।

ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।
सुवाना देवास इन्दवः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त, (देवासः) तेजस्वी पुरुष (सुवानासः) अभिषिक्त होते रहें। (ते) वे (नः) हमें (सहस्रिणं रयिम्) सहस्रों की संख्या में परिमित (सुवीर्यं) उत्तम बलदायक (रयिम् आ पवन्तम्) ऐश्वर्य प्राप्त करावें और अपरिमित धन और बल को प्राप्त करें। इति प्रथमो वर्गः ॥

अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये ।
वि वारमव्यमाशवः ॥ ६ ॥

भा०—(वाज-सातये) संग्राम में लड़ने के लिये जैसे (आशवः) तीव्र वेग से जाने वाले (अत्याः) घोड़े (हेतृभिः हियानः) सारथियों से प्रेरित होकर (अव्यं वारम्) भूमि के पार (असृग्रम्) वेग से जाते हैं वैसे ही (हेतृभिः) पोषक गुरुओं से (हियानाः) प्रेरित वा शासित होकर (वाज-सातये) ज्ञान-ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (आशवः) शीघ्रकारी, कुशल जन (अव्यं वारम् वि असृग्रम्) वरणीय रक्षक पद को प्राप्त हों।

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न धेनवः ।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥

भा०—(वाश्राः धेनवः वत्सं अभि न) हंभारने वाली गौएं जैसे बछड़े के प्रति आकृष्ट होती हैं और (धेनवः वत्सं न) जैसे दूध पिलाने वाली माताएं (वत्सं अभि सर्षन्ति) अपने बच्चे के प्रति जाती हैं और वे (गभस्त्योः दधन्विरे) उसे अपने बाहुओं में ले लेती हैं वैसे ही (इन्दवः) स्नेह से आर्द्र हृदय वाले, दयालु (वाश्राः) उत्तम उपदेष्टा जन प्रजाओं के पास (अभि अर्षन्ति) जाते हैं और उनको (गभस्त्योः) बाहुओं द्वारा अपनी रक्षा में (दधन्विरे) धारण करते हैं।

जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥

भा०—(मत्सरः) सबको सन्तुष्ट करने में समर्थ पुरुष (इन्द्राय जुष्टः) ऐश्वर्यवान् शासक आदि के पद के लिये नियुक्त हो। वह (पवमानः) अभिषिक्त होकर (कनिक्रदत्) शासन करे और (विश्वा) समस्त (द्विषः अप जहि) शत्रुओं को नष्ट करे।

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः।
योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—हे (स्वर्दृशः पवमानाः) सूर्य के समान तेजस्वी चक्षु वाले, वा सबको देखने वाले ज्ञानदर्शी जनो ! हे अभिषेक युक्त जनो ! आप लोग (अराव्णः) अराति अर्थात् शत्रु जनों को (अपघ्नन्तः) विनष्ट करते हुए (ऋतस्य योनौ सीदत) न्याय और ज्ञान के पद पर विराजो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१४]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३,५,७ गायत्री । ४,८ निचृद् गायत्री । ६ ककुम्मती गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः।
कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ १ ॥

भा०—(सिन्धोः ऊर्मौ अधि श्रितः) नदी या समुद्र की तरंग पर स्थित मनुष्य जैसे (परि प्र असिष्यदत्) दूर २ तक चला जाता है वैसे ही (पुरु-स्पृहं) बहुतों को अच्छा लगने वाले, (कारं) कार्य या रथ को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ, (सिन्धोः ऊर्मौ) समुद्र के समान अपार जन समूह के बीच उन्नत पद पर (अधि श्रितः) अधिष्ठित होकर (परि प्र असिष्यत्) सब प्रकार से उन्नति की ओर जाता है।

गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः।
परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥ २ ॥

भा०—(यदी) जब (सबन्धवः) समान रूप से संबद्ध, (पञ्च व्राताः) पांचों प्रकार के मनुष्य-संघ, (अपस्यवः) कर्म की इच्छा करते हैं

तब वे उस (धर्णसिम्) सबके धारक पोषक को (गिरा) वाणी द्वारा (परि-कृण्वन्ति) स्तुति से सुशोभित करते हैं।

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत ।

यदी गोभिर्वसायते ॥ ३ ॥

भा०—(यदी) जब वह (गोभिः) उत्तम वाणियों से (वसायते) आच्छादित, अलंकृत होता है तब (आत्) अनन्तर ही (विश्वे देवाः) ऐश्वर्य आदि नाना अभिलाषाओं वाले मनुष्य (अस्य शुष्मिणः रसे) इस बलवान् पुरुष के बल के अधीन रह कर (अमत्सत) बहुत प्रसन्न होते हैं।

निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा ।

अत्रा सञ्जिघ्रते युजा ॥ ४ ॥

भा०—वह (नि-रिणानः) शत्रुओं का नाश करता हुआ (वि धावति) विविध मार्गों से जावे, वह देश को निष्कण्टक करे और (शर्याणि) शरों से नाश करने योग्य (तान्वा) देहधारियों को (जहत्) नष्ट करे। (अत्र) इस कार्य में वह (युजा) सहायक वर्ग से (सं जिघ्रते) भली प्रकार मिल कर रहे।

नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा ।

गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (विवस्वतः शुभ्रः) सूर्य के शुभ्र प्रकाश के समान (नप्तीभिः युवा) बलवान् पुरुष अपने साथ सम्बद्ध प्रजाओं और सेनाओं के द्वारा (मामृजे) अभिषिक्त होता है वह (गाः कृण्वानः न) दूध का सेवन करने वाले के समान स्वयं भी (गाः कृण्वानः) उत्तम आज्ञा-वाणियां प्रकट करता हुआ (निर्णिजम्) अपने रूप, वेश एवं यश को शुद्ध, स्वच्छ और उज्ज्वल कर लेता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या ।

अनुमियर्ति यं विदे ॥ ६ ॥

भा०—वह (अण्व्या) सूक्ष्म या मनुष्यों के हितार्थ (गव्या) वाणी से (श्रिती) आश्रय प्राप्त करने के लिये (तिरश्चता) प्राप्त जनों को जो (अति जिगाति) अपने गुणों से वश में कर लेता है वह (यं) जिसके प्रति (विदे) जानने के लिये (वग्नुम् इयर्ति) उपदेश, वचन भी कह देता है, उसे भी वश में कर लेता है अर्थात् वह लोकप्रिय हो जाता है।

अभि क्षिपः सम॑ग्मत म॒र्जय॑न्ती॒रिष॒स्पति॑म् ।
पृ॒ष्ठा गृ॑भ्णत वा॒जिनः॑ ॥ ७ ॥

भा०—(क्षिपः) राष्ट्र में रहने और शत्रुओं को उखाड़ फेकने में समर्थ प्रजाएं और सेनाएं (इषः पतिम्) सेनाओं के पालक, अन्नों के पालक, स्वामी का (मर्जयन्तीः) अभिषेक करती हुई (अभि सम् अग्मत) उसे प्राप्त होती हैं और (वाजिनः) बली एवं ऐश्वर्यवान् जन उसके (पृष्ठा) पृष्ठ के ऊपर पोषक होकर उसका आश्रय (गृभ्णत) ग्रहण करते हैं।

परि॑ दि॒व्यानि॒ मर्मृ॑श॒द्विश्वा॑नि सोम॒ पार्थि॑वा ।
वसू॑नि याह्यस्म॒युः ॥ ८ ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) अभिषिक्त पुरुष ! तू (अस्मयुः) हमारा स्वामी होकर (विश्वानि दिव्यानि पार्थिवा वसूनि) सब दिव्य और पार्थिव धनों को (परि मर्मृशत्) ग्रहण करता हुआ (याहि) हमें प्राप्त हो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[१५]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—५, ८ निचृद गायत्री। २, ६ गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

ए॒ष धि॒या या॒त्यण्व्या॒ शूरो॒ रथे॑भिरा॒शुभिः॑ ।
गच्छ॒न्निन्द्र॑स्य निष्कृ॒तम् ॥ १ ॥

भा०—(एषः) वह (इन्द्रस्य निष्कृतम् गच्छन्) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता के पद को प्राप्त होता हुआ (शूरः) शूरवीर (आशुभिः रथेभिः) वेग से

जाने वाले रथों, साधनों और सैन्यों सहित (अण्व्या धिया) सूक्ष्म बुद्धि से विचार कर (याति) प्रयाण करे, आगे बढ़े।

एष पुरू धियायते बृहते देवतातये। यत्रामृतास आसते ॥ २ ॥

भा०—(एषः) यह (बृहते) बड़े भारी (देव-तातये) विद्वानों के हित साधनार्थ (पुरू) बहुत अधिक (धियायते) ज्ञान सम्पादन तथा कार्य करना चाहता है। (यत्र) जिसके आश्रय पर (अमृतासः) सब लोग अमर के समान (आसते) जीवित रूप में सुख से रहते हैं।

एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुभ्रावता पथा।
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ३ ॥

भा०—(एषः) वह (हितः) स्थापित वा कार्य से युक्त होकर (अन्तः) अन्तःकरण में (शुभ्रवता पथा) शुद्ध भाव से युक्त मार्ग द्वारा (वि नीयते) विशेष रूप से ले जाया जावे और शिक्षित हो (यदि) जब कि (भूर्णयः) पालक पोषक जन (तुञ्जन्ति) उसे शिक्षा दें अथवा दुष्टों का हनन करें।

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा।
नृम्णा दधान ओजसा ॥ ४ ॥

भा०—(यूथ्यः वृषा) यूथपति नर जैसे (शृङ्गाणि दोधुवत् शिशीते) सींगों को कंपाता और तीक्ष्ण किये रखता है वैसे ही (एषः) वह (ओजसा) बल पराक्रम से (नृम्णा) नाना धनैश्वर्यों को धारण करता हुआ, (यूथ्यः) अपने यूथ में सबसे श्रेष्ठ (वृषा) बलवान्, उत्तम प्रबन्ध कर्त्ता, (शृङ्गाणि) शत्रु को हनन करने के साधन, अस्त्र शस्त्रों को (दोधुवत्) प्रयोग में लावे और (शिशीते) उनको सदा तीक्ष्ण बनाये रक्खे।

एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः।
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥

भा०—(एषः) वह (वाजी) बलवान् (सिन्धूनां पतिः भवन्) महा नदीवत् धारा-वेग से जाने वाले अश्वों, अश्वारोहियों का समुद्रवत् नायक होकर (शुभ्रेभिः अंशुभिः एषः) शुद्ध दीप्तियुक्त तेजों और गुणों से युक्त

होकर वह (रुक्मिभिः) तीक्ष्ण धार वाले आयुधों से सुसज्जित सहयोगियों सहित (ईयते) जाता है।

एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति।

अव शादेषु गच्छति ॥ ६ ॥

भा०—(एषः) वह (परुषा) कठोर स्वभाव के (पिब्दना) पीड़ित करने योग्य, दुष्टों को (अति ययिवान्) अतिक्रमण करके जाने वाला (शादेषु) शत्रु का नाश करने वाले सैन्यों के आश्रय पर (वसूनि) नाना ऐश्वर्य (अव गच्छति) प्राप्त करता है।

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः। प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ७ ॥

भा०—(महीः इषः) बहुत बड़ी २ सेनाओं को नियोजित करने और शत्रु-सेनाओं पर आक्रमण करने में समर्थ (एतं) उस (मर्ज्यम्) अभिषेचनीय वीर को (आयवः) मनुष्य लोग (द्रोणेषु उप मृजन्ति) कलशों के बीच खड़ा कर स्नेहपूर्वक अभिषिक्त करें।

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः।

स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ ५ ॥

भा०—(स्वायुधम्) उत्तम अस्त्र-शस्त्र-सम्पन्न उत्तम योद्धा और (मदिन्तमम्) सबको प्रसन्न रखने वाले (एतम् उ त्यं) इस उस वीर को (दश क्षिपः) दशों दिशा-निवासिनी प्रजाएं और दश दिग्विजयिनी सेनाएं और (सप्त धीतयः) सातों राष्ट्रधारक प्रकृतियें (मृजन्ति) अभिषिक्त करें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१६]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री। २, ८ निचृद् गायत्री। ३—७ गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र ते सोतारं ओण्योऽरसं मदाय घृष्वये।

सर्गो न तक्त्येतशः ॥ १ ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! (मदाय) आनन्द लाभ और (घृष्वये) शत्रुओं के साथ संघर्ष अर्थात् उनकी प्रति स्पर्द्धा करने के लिये (सोतारः) अभिषेक्ता जन (ओण्योः) आकाश और पृथिवी के तुल्य परस्पर रक्ष्य-रक्षक, शास्य-शासक वर्गों के (रसं) बलस्वरूप (ते) तुझे वे अभिषिक्त करते हैं और तू (सर्गः न एतशः) शुभ वर्ण के जल वा वेगवान् अश्व के समान (तक्ति) जावे ।

क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा ।
गोषामण्वेषु सश्चिम ॥ २ ॥

भा०—(क्रत्वा) कर्मसामर्थ्य और बुद्धि-सामर्थ्य से (दक्षस्य रथ्यम्) बलवान् रथीवत् नायक और (अन्धसा अपः वसानाम्) अन्न के बल पर आप्त प्रजाओं का पालन करने वाले (अण्वेषु) विद्वान् पुरुषों वा स्तुति-वचनों में (गो-साम्) भूमि आदि के दाता पुरुष को हम (सश्चिम) प्राप्त करें ।

अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥

भा०—(अनप्तम्) शत्रुओं से अप्राप्त, उनकी पहुँच से बाहर, अथवा (अनप्तम्) बन्धनरहित, (अप्सु दुस्तरं) अन्तरिक्षवत् अजेय पुरुष को (पवित्रे) पवित्र पद पर (आ सृज) स्थापित करो और उसको (इन्द्राय पातवे) राष्ट्र रक्षा के लिये (पुनीहि) अभिषिक्त करो ।

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति ।
क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥ ४ ॥

भा०—(पुनानस्य) अभिषेक करने वाले प्रजाजन के (चेतसा) चित्त के साथ २ (सोमः) अभिषेक योग्य विद्वान् पुरुष (पवित्रे) पवित्र करने के कार्य में (अर्षति) लग जाता है और वह उसी के (क्रत्वा) सामर्थ्य से (सधस्थम्) सभा भवन में (आसदत्) विराजे ।

प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत ।
महे भराय कारिणः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राष्ट्रपते ! (नमोभिः) विनयपूर्वक (कारिणः) शत्रु-हनन आदि कार्य में समर्थ (इन्दवः सोमाः) स्नेहयुक्त अभिषिक्त जन (त्वा) तुझे (महे भराय) भारी संग्राम के लिये, वा बहुतों के भरण पोषण के लिये, आदरपूर्वक प्राप्त होते हैं।

पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ ६ ॥

भा०—(गोषु शूरः न) भूमियों या वेगवान् अश्वों के अध्यक्ष पद पर वीर पुरुष के समान (विश्वाः श्रियः अभि अर्षन्) समस्त आश्रित प्रजाओं और लक्ष्मियों को प्राप्त करता हुआ (अव्यये रूपे) अक्षय रूप या सम्पत्तियुक्त पद पर (तिष्ठति) विराजता है।

दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः।
वृथा पवित्रे अर्षति ॥ ७ ॥

भा०—(दिवः धारा सानु न) आकाश की जल-धारा जैसे पर्वत के शिखर पर पड़ती है, वैसे ही (दिवः) तेजस्वी, (वेधसः) शासन करने वाले (पवित्रे सुतस्य) पवित्र पद पर अभिषिक्त पुरुष की (पिप्युषी धारा) पवित्र वाणी (सानु) आज्ञाकारी और वेतनभोगी समुदाय पर (वृथा) अनायास ही (अर्षति) जाती है।

त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु।
अव्यो वारं वि धावसि ॥ ८ ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! (त्वं) तू (आयुषु) मनुष्यों के ऊपर (तना) धन के द्वारा (विपश्चितम्) कर्मकुशल पुरुष को (पुनानः) अभिषिक्त करता हुआ (अव्यः) भूमि या राष्ट्र के रक्षक (वारं) वरण करने योग्य पद को (वि धावसि) विशेषरूप से प्राप्त होता है। इति षष्ठो वर्गः ॥

[१७]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—८ गायत्री । २ भुरिग्गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः ।
सोमा असृग्रमाशवः ॥ १ ॥

भा०—(निम्नेन इव सिन्धवः) नीचे स्थान से जैसे जल-प्रवाह वेग से जाते और (वृत्राणि घ्नन्तः) रोकों को तोड़ते हैं वैसे ही (सिन्धवः आशवः) वेग से जाने वाले सैन्यों के स्वामी (सोमाः) नायक जन, (भूर्णयः) क्षिप्रगामी होकर (वृत्राणि घ्नन्त) विघ्नकारी दुष्टों को नष्ट करते हुए (असृग्रम्) वेग से जाया करें।

अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव ।
इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥ २ ॥

भा०—(वृष्टयः पृथिवीम् इव) वृष्टियां जैसे भूमि को प्राप्त होती हैं और (इन्द्रम् अभि अक्षरन्) समुद्र की ओर बह जाती हैं वैसे ही (सुवानासः इन्दवः सोमासः) शासन करते हुए स्नेहार्द्र शासक, (इन्द्रम् अभि अक्षरन्) ऐश्वर्यवान् को लक्ष्य करके जाते हैं, उसका ही शासन मानते हैं। (२) इसी प्रकार (सुवानासः सोमाः) उत्पन्न होते हुए प्राणी प्रभु की शरण जाते हैं।

अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ ३ ॥

भा०—(अति-ऊर्मिः) अति उत्साहित होकर, (मत्सरः) अति हर्षित होकर (मदः) सबको आनन्द देता हुआ, (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त (देव-युः) दिव्य गुणों की कामना करता हुआ और (रक्षांसि विघ्नम्) विघ्नों का नाश करता हुआ, (पवित्रे अर्षति) पवित्र पद पर विराजता है।

आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते ।
उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (कलशेषु धावति) अभिषेक योग्य पुरुष जल से पूर्ण कुम्भों के बीच में अपने को शुद्ध करता (पवित्रे परि सिच्यते) और अन्य जन पवित्र शासन कार्य के लिये उसका अभिषेक करते हैं वैसे ही यह जीव (कलशेषु) चेतनायुक्त देहों में (आ धावति) जाता और अपने कर्मों को भोग कर स्वच्छ होता है और (पवित्रे) पावन ब्रह्म में जो अधिक (परि सिच्यते) शुद्ध होता है वह (उक्थैः यज्ञेषु वर्धते) यज्ञों में वेद-वचनों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है।

अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवम्।

इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ॥ ५ ॥

भा०—(रोहन् न दिवम्) उदित होता हुआ सूर्य जैसे अन्तरिक्ष को दीप्त करता है, वैसे ही हे (सोम) योगिन्! तू (त्रि रोचना अति) अग्नि, चन्द्र और सूर्य तीनों को अतिक्रमण करके (दिवम् भ्राजसे) ज्ञान को प्राप्त कर प्रकाशित होता है और (इष्णन्) आगे बढ़ता हुआ (सूर्यं न) प्रभु या प्रेरक बल जैसे सूर्य को प्रेरित करता है वैसे ही तू भी (सूर्यं चोदयः) देह में विद्यमान दक्षिण प्राण को प्रेरित करता है।

अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः।

दधानाश्चक्षसि प्रियम् ॥ ६ ॥

भा०—(यज्ञस्य मूर्धन्) यज्ञ के शिर के समान सर्वोपरि विद्यमान (चक्षसि) चक्षुर्वत् सर्वद्रष्टा प्रभु में (प्रियम् दधानाः) अपने प्रीतियुक्त भाव को रखते हुए, (कारवः) कर्मनिष्ठ (विप्राः) विद्वान् जन (अभि अनूषत) उसी प्रभु की साक्षात् स्तुति करते हैं।

तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः।

मृजन्ति देवतातये ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो! (तम् उ त्वा वाजिनं) उस तुझ परमैश्वर्यवान् प्रभु को (विप्राः नरः) बुद्धिमान्, ज्ञानी पुरुष (अवस्यवः) ज्ञान और रक्षा

चाहते हुए (देव-तातये) शुभ गुणों को प्राप्त करने के लिये (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों द्वारा (मृजन्ति) अपने हृदय में प्रकाशित करते हैं।

मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः।

चारुर्ऋताय पीतये ॥ ८ ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर! तू (तीव्रः) तेजस्वी होकर (ऋताय पीतये) ज्ञान के पालन कराने के लिये (चारुः) सर्वव्यापक होकर और (सधस्थम्) इस संसार में (आसदः) व्याप्त होकर, उसमें विराजता है, वह तू (मधोः धाराम्) आनन्द की धारा के समान ज्ञान की धारा को (अनु क्षर) प्रवाहित कर। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१८]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृद् गायत्री। २ ककुम्मती गायत्री। ३, ५, ६ गायत्री। ७ विराड् गायत्री ॥

सप्तर्चं सूक्तम् ॥

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः।

मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर! तू (सोमः) सर्वैश्वर्यवान् है। तू (सुवानः) जगत् को उत्पन्न करता हुआ (गिरिष्ठाः) सबकी स्तुतियों में विराजमान रहता और (पवित्रे) पवित्र हृदय में (परि अक्षाः) आनन्द रूप से प्रवाहित होता है। (मदेषु) स्तुतिकर्त्ता जनों में तू (सर्वधाः असि) सब पदार्थों का धारक है।

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्रजातमन्धसः। मदेषु सर्वधा असि ॥२॥

भा०—हे परमेश्वर (त्वं विप्रः) तू पूर्ण करने हारा है। (त्वं कविः) तू क्रान्तदर्शी है। तू (अन्धसः प्रजातम् मधु) अन्न से उत्पन्न होने वाला आनन्ददायक रस है। तू (मदेषु) आनन्द के आश्रय पर (सर्वधाः असि) समस्त प्राणियों का धारक है।

तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर! (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् लोग (सजोषसः) प्रेमयुक्त होकर (तव पीतिं) तेरे सुखद रस का (आशत) उपभोग करते हैं। तू (मदेषु सर्वधाः असि) रसों और अन्नों में व्यापक होकर सबका धारक है।

आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (हस्तयोः) अपने हाथों में, अपने वश में (विश्वानि वार्या दधे) समस्त ऐश्वर्यों को रक्खे हुए है। वही तू (मदेषु सर्वधाः असि) सुखों और ऐश्वर्यों में सबको धारण करता है।

य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते। मदेषु सर्वधा असि ॥५॥

भा०—(मातरा इव) जैसे एक ही पुत्र माता पिता दोनों को (दोहते) सुख प्रदान करता, या दोनों की गोद भरता है, वैसे ही (यः) जो परमेश्वर (इमे मही रोदसी दोहते) इन दोनों आकाश और भूमि को रसों और जलों से पूर्ण करता है, वही तू प्रभु (मदेषु) अन्नों और जलों के ऊपर (सर्वधाः असि) सब प्राणियों का धर्ता है।

परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (उभे रोदसी परि) दोनों लोकों में (वाजेभिः) नाना ऐश्वर्यों सहित (परि अर्षति) सर्वत्र व्याप्त है, हे प्रभो! वह तू (मदेषु) आनन्ददायक ऐश्वर्यों में (सर्वधाः) सबका धर्ता (असि) है।

स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत्।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ७ ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह (शुष्मी) बलवान् (कलशेषु) समस्त शरीरों में (पुनानः) पवित्र करता हुआ (आ अचिक्रदत्) जीव को उपदेश करता

है। वही (मदेषु) आनन्दों के रूप में (सर्वधाः असि) सबका धर्त्ता है।
इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१९]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री। २, ५, ७ निचृद् गायत्री। ३, ४ गायत्री। ६ भुरिग्गायत्री ॥

यत्सो॑म चि॒त्रमु॒क्थ्यं॑ दि॒व्यं पार्थि॑वं॒ वसु॑। तन्नः॑ पुना॒न आ भ॑र ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के उत्पादक! (यत्) जो (चित्रम्) संग्रह करने योग्य, अद्भुत (उक्थ्यम्) प्रवचन योग्य, (दिव्यं) कामना और व्यवहार योग्य (वसु) ऐश्वर्य (पार्थिवं) पृथ्वी पर का (वसु) धन है, उसे तू (पुनानः) हमें पवित्र करता हुआ, (नः आ भर) प्राप्त करा।

यु॒वं हि स्थः स्व॑र्पती॒ इन्द्र॑श्च सोम॒ गोप॑ती।
ईशा॒ना पि॑प्यतं॒ धियः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के उत्पादक और (इन्द्रः च) हे जीवात्मन्! (युवं हि) तुम दोनों (स्वःपती) सुख के पालक और (गो-पती स्थः) इन्द्रियों और सूर्यादि के रक्षक हो। तुम दोनों (ईशाना) देह और विश्व के स्वामी होकर (धियः पिप्यतम्) कर्मों को करते हो।

वृषा॑ पुना॒न आ॒युषु॑ स्त॒नय॒न्नधि॑ ब॒र्हिषि॑।
हरिः॒ सन्योनि॒मास॑दत् ॥ ३ ॥

भा०—(वृषा) वह सुखों का वर्षक, जगत् का प्रबन्धक, महान्, (हरिः) दुःखों का हर्ता प्रभु, (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ, (बर्हिषि अधि) समस्त जगत् पर (आयुषु) मनुष्यों में (स्तनयन्) बरसते मेघ के समान ज्ञानोपदेश करता हुआ और (स्तनयन्) मातृवत् सबको अन्न देकर पालता हुआ (योनिम्) जगत् के मूलकारण प्रकृति और इस विश्व पर (आ सदत्) अध्यक्षवत् विराजता है।

अवा॑वशन्त धी॒तयो॑ वृष॒भस्याधि॒ रेत॑सि।
सू॒नोर्व॒त्सस्य॑ मा॒तरः॑ ॥ ४ ॥

४ छ.

भा०—(रेतसि) जल के निमित्त जैसे (धीतयः) जलपान करने वाली भूमियां (वृषभस्य अधि अवावशन्त) वर्षणशील मेघ की अधिक अपेक्षा करती हैं वैसे ही (रेतसि) जगत् के उत्पादक सर्वबीज के निमित्त (धीतयः) आधान योग्य समस्त भूमियां (वृषभस्य) बलशाली उत्पादक तत्त्व की (अधि वावशन्त) अधिक कामना करती हैं और जैसे (वत्सस्य सूनोः मातरः) बच्चे की माताएं बच्चों को चाहती हैं वैसे ही (वत्सस्य मातरः) वत्सवत् जगत् की निर्मातृ-शक्तियां भी (सूनोः अधि वावशन्त) अपने ऊपर महान् सञ्चालक की अपेक्षा करती हैं।

कुविद्वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत्।
याः शुक्रं दुहते पयः ॥ ५ ॥

भा०—जैसे (पुनानः) पवित्रकारक या तेजस्वी सूर्य (वृषण्यन्तीभ्यः) मेघ की कामना करने वाली भूमियों के लिये (कुविद् गर्भम्) महान् अन्तरिक्ष में (आदधत्) जल को धारण करता है। (याः) जो अनन्तर (पयः शुक्रम् दुहते) शुद्ध जल का दोहन करती हैं वैसे ही (पुनानः) सर्वपावन प्रभु (वृषण्यन्तीभ्यः) सञ्चालक की अपेक्षा करने वाली प्रकृति के परमाणुओं के बीच (पुनानः) व्याप कर (कुवित्) बहुत प्रकार से (गर्भम् आदधत्) जगत् को गर्भित करता है और प्रकृति के परमाणु वा 'आपः' (शुक्रं) कान्तियुक्त (पयः) महत् जगत् को मातृदुग्धवत् दोहन करते हैं।

उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु।
पवमान विदा रयिम् ॥ ६ ॥

भा०—(अप तस्थुषः) अपने से अलग विद्यमान जीवों को तू हे प्रभो! (उप शिक्ष) समीप रख और (शत्रुषु) शत्रुओं में (भियसम् आ धेहि) भय डाल। हे (पवमान) पावन! तू हमें (रयिम् विद) धन दे।

नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर।
दूरे वा सतो अन्ति वा ॥ ७ ॥ ९ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (दूरे सतः वा, अन्ति सतः वा) दूर वा पास रहते हुए (शत्रोः वृष्ण्यं नि तिर) शत्रु के बल का नाश कर (शुष्मं नि तिर) शोषक अत्याचार को दूर कर, (वयः नि तिर) उसके आयु का नाश कर। इति नवमो वर्गः ॥

[२०]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४—७ निचृद् गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र क॒विर्दे॒ववी॑तये॒ऽव्यो॒ वारे॑भिरर्षति ।

सा॒ह्वान्विश्वा॑ अ॒भि स्पृधः॑ ॥ १ ॥

भा०—(कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (देव-वीतये) सूर्यवत् कान्ति प्राप्त करने के लिये (अव्यः) रक्षक होकर (विश्वाः स्पृधः अभि साह्वान्) समस्त स्पर्धालु सेनाओं को पराजित करने वाला होकर (वारेभिः) दुष्टों के वारक सैन्यों सहित (प्र अर्षति) उत्तम पद को पाता है।

स हि ष्मा॑ जरि॒तृभ्य॒ आ वाजं॒ गोम॑न्त॒मिन्व॑ति ।

पव॑मानः सह॒स्रिण॑म् ॥ २ ॥

भा०—(सः हि) वह (पवमानः) वायु तुल्य वेग से आक्रमण करने वाला सूर्यवत् राष्ट्र का शोधक (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ताओं को (सहस्रिणं गोमन्तं वाजं) हजारों गौ आदि वाला ऐश्वर्य (आ इन्वति स्म) प्रदान करता है।

परि॒ विश्वा॑नि॒ चेत॑सा मृ॒शसे॒ पव॑से म॒ती ।

स नः॑ सोम॒ श्रवो॑ विदः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (चेतसा) चित्त से (विश्वानि) सब कार्यों को (परि मृशसे) विचार करता, (मती) बुद्धि से (पवसे) प्रकाश करता है। (सः) वह तू (नः) हमें (श्रवः) वेद का ज्ञान, (विदः) प्राप्त करा।

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥

भा०—तू (मघवद्भ्यः) धनवानों को (बृहत् यशः) महान् यश और (ध्रुवं रयिम्) स्थिर ऐश्वर्य (अभि अर्ष) प्रदान कर। (स्तोतृभ्यः) विद्वान् जनों के लिये (इषं आ भर) अन्न प्रदान कर।

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे (अद्भुत) आश्चर्यकारक! हे (वह्ने) कार्य-भार को कन्धों पर लेने हारे! (त्वं पुनानः) अभिषिक्त होकर (राजा इव सुव्रतः) राजा के समान उत्तम कर्म करता हुआ (गिरः विवेशिथ) आज्ञाएं प्रदान कर।

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (वह्निः) कार्य भार को वहन करने वाला, (दुस्तरः) शत्रुओं से अपराजित (गभस्त्योः) हाथों के पराक्रम से (अप्सु मृज्यमानः) जलवत् प्रजाओं के बीच शुद्ध होकर (चमूषु) समस्त सेनाओं पर (सीदति) अध्यक्ष बनता है।

क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ १० ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (मंहयुः) दानवान् (क्रीडुः) क्रीड़ाकारी बालक के समान (मखः) यज्ञवत् पवित्र होकर (स्तोत्रे) स्तुतिकारी प्रजाजन के लिये (सुवीर्यं दधत्) उत्तम बल धारण करता हुआ (पवित्रे) पवित्र पद को (गच्छसि) प्राप्त करता है। इति दशमो वर्गः ॥

[२१]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराड् गायत्री । २, ७ गायत्री । ४—६ निचृद् गायत्री सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः।
मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (इन्दवः) प्रभु की भक्ति से आर्द्र हृदय (सोमाः) विद्वान् (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (घृष्वयः) विघ्नों के साथ संघर्ष करके (धावन्ति) आगे बढ़ते हैं। वे (मत्सरासः) आत्मतृप्त जन (स्वविदः) प्रकाश-स्वरूप प्रभु का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः।
स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥ २ ॥

भा०—(प्र-वृण्वन्तः) उत्तम सेवा करने वाले, (अभि-युजः) आक्रामक वीरों के तुल्य लक्ष्य पर मनोयोग देने वाले, (सु-स्वये) उत्तम प्रेरक को (वरिवः-विदः) धनादि देने वाले और (स्वयं) स्वयं (स्तोत्रे) विद्वान् के लिये (वयस्कृतः) अन्न आदि के दाता हैं।

वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित्।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त होकर (वृथा क्रीडन्तः) अनायास युद्ध क्रीड़ा करते हुए वीर पुरुष (एकम् इत् सधस्थम्) एकमात्र सहयोगी प्रभु के प्रति (सिन्धोः ऊर्मा) सिन्धुतरङ्गवत् विशाल प्रभु के उच्च पद पर (वि अक्षरन्) विविध मार्गों से जाते हैं।

एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत।
हिता न सप्तयो रथे ॥ ४ ॥

भा०—(रथे हिताः सप्तयः न) रथ में लगे अश्वों के समान (एते) ये (पवमानासः) वायुवत् आगे बढ़ने वाले पवित्र साधक जन (विश्वानि वार्या) समस्त ऐश्वर्यों को (आशत) प्राप्त करते हैं।

आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे।
यो अस्मभ्यमरावा ॥ ५ ॥

भा०—(यः) जो (अस्मभ्यम्) हमें (अरावा) नहीं देता है (इन्दवः) वीर जनो! (अस्मिन् आदिशे) उसके ऊपर शासन करने के लिये हमें (वेनम्) कान्तिमान् (पिशङ्गम्) सुवर्ण आदि ऐश्वर्य (अस्मभ्यम् आ दधात्) प्रदान करो।

ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे।

शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥ ६ ॥

भा०—(ऋभुः रथ्यं न) धनसम्पन्न पुरुष जैसे (आदिशे) अश्वसञ्चालनार्थ सारथि को रखता है, वैसे ही हे विद्वान् जनो! आप (आदिशे) आगे के लिये (नवं केतं दधात) नया ज्ञान प्राप्त करो और (शुक्राः अर्णसा पवध्वम्) शुद्ध होकर जलवत् ज्ञान से अपने को पवित्र करो।

एत उ त्ये अवीवशन् काष्ठां वाजिनो अक्रत।

सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥ ७ ॥ ११ ॥

भा०—(एते उ त्ये वाजिनः) ये वे सब ज्ञानवान् पुरुष अश्वों के समान बढ़ते हुए (काष्ठम् अवीवशन्) सुखमयी ब्रह्मस्थिति को प्राप्त करें। तथा (सतः) परमेश्वर के (मतिम्) ज्ञान को (प्र असाविषुः) प्राप्त करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[२२]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री। ३ विराड् गायत्री। ४—७ निचृद् गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिनः।

सर्गाः सृष्टा अहेषत ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (सोमासः) जीवगण और कार्य में नियुक्त वीरजन (रथाः इव) रथों के समान (आशवः) शीघ्रगामी और (वाजिनः) प्राणों के समान बलवान्, ज्ञानवान् होकर (सृष्टाः) छोड़े जाकर (सर्गाः) जल धारा के समान (प्र अहेषत) ध्वनि करते वा वेग से जाते हैं।

एते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः ।
अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥ २ ॥

भा०—(एते) ये (वाता इव उरवः) महावायुओं के समान बलशाली और (पर्जन्यस्य वृष्टयः इव) मेघ की वृष्टियों के समान उदार और (अग्नेः भ्रमाः इव) अग्नि की मोड़दार लपटों के समान (वृथा) अनायास तेजस्वी हों ।

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
विपा व्यानशुर्धियः ॥ ३ ॥

भा०—(एते) वे (पूताः) पवित्र (विपश्चितः) ज्ञानवान्, (सोमासः) विद्या-स्नात जन (दध्याशिरः) धारणा बल से युक्त (विपा) ज्ञानसहित (धियः) कर्मों को (वि आनशुः) विविध प्रकार से करते हैं ।

एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः ।
इयक्षन्तः पथो रजः ॥ ४ ॥

भा०—(एते) वे ज्ञानवान् (मृष्टाः) शुद्ध, (अमर्त्याः) मरणरहित, साधारण देहियों से भिन्न, (ससृवांसः) निरन्तर भ्रमण करते हुए और (रजः पथः इयक्षन्त) नाना लोकों को प्राप्त होना चाहते हुए (न शश्रमुः) नहीं थकते ।

एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः ।
उतेदमुत्तमं रजः ॥ ५ ॥

भा०—(एते) वे (रोदसो पृष्ठानि) आकाश और भूमि के स्थानों को (वि-प्रयन्तः) प्राप्त करके (उत) और (इदम् उत्तमं रजः) उस उत्तम लोक को (वि आनशुः) विशेष रूप से प्राप्त होते हैं । ज्ञानी जन आकाश और पृथ्वी के बीच भोग्य लोकों के अतिरिक्त ब्रह्म लोक को भी प्राप्त होते हैं ।

तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत ।
उतेदमुत्तमाय्यम् ॥ ६ ॥

भा०—वे (तन्वानं) विस्तृत (तन्तुं) यज्ञ के समान विस्तृत वंश-क्रमानुसार (प्रवतः उत्तमम्) नीची योनि से उत्तम जन्म तक (आशत्) प्राप्त करते हैं। (उत इदम् उत्तमाय्यम्) और वे ही इस उत्तम जनों से प्राप्य मोक्ष पद को (आशत) प्राप्त होते हैं।

त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः।

ततं तन्तुमचिक्रदः ॥ ७ ॥ १२ ॥

भा०—हे (सोम) जगद्-उत्पादक ! (त्वं) तू (पणिभ्यः) इन जीवों के लिये (गव्यानि वसु आ धारयः) इन्द्रियों से उपभोग्य समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है और तू ही (ततं तन्तुम्) तन्तु तुल्य फैले इस जगत् को (अचिक्रदः) संचालित करता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

[२३]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—४, ६ निचृद् गायत्री । ५ गायत्री ७ विराड् गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया ।

अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

भा०—(विश्वानि काव्या) विद्वानों के द्वारा उपदिष्ट ज्ञानों का (अभि) साक्षात् ज्ञान करके (मधोः मदस्य धारया) तृप्तिकारक, हर्षजनक अन्न और जल की पोषक शक्ति के समान सुखदायक ज्ञान की धारा से (सोमाः आशवः) क्षिप्रकारी वीर, विद्वान् (असृग्रम्) उत्पन्न होते हैं।

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।

रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ २ ॥

भा०—(प्रत्नासः) अति पुरातन, (आयवः) पुनः २ जन्म लेने वाले जीवों के समान मनुष्य भी (नवीयः) नये से नये (पदं) स्थान और पद को (अक्रमुः) प्राप्त होते हैं। वे (रुचे) दीप्ति के लिये (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को भी (जनन्त) उत्पन्न करते हैं।

आ पवमान नो भरार्यो अदाशुषो गयम् ।
कृधि प्रजावतीरिषः ॥ ३ ॥

भा०—हे (पवमान) परम पावन स्वामिन् ! तू (अर्यः) स्वामी होकर (नः) हममें से (अदाशुषः गयम् आ भर) अदानशील को भी धनादि प्रदान कर और तू ही (प्रजावतीः इषः कृधि) अन्न सम्पदाओं को प्रजाओं से युक्त कर ।

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥

भा०—(सोमासः) उत्तम शासक वा उपासक (आयवः) मनुष्य (मद्यम्) हर्षजनक और (मदम्) तृप्तिकारक लोक वा पद को (अभि पवन्ते) प्राप्त होते हैं । वे ही (मधुश्चुतं) आनन्दप्रद (कोशम्) कोश के समान परमेश्वर को (अभि पवन्ते) लक्ष्य करके जाते हैं ।

सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम् ।
सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥ ५ ॥

भा०—(सोमः) जगत् का उत्पादक और सञ्चालक (धर्णसिः) धारक परमेश्वर ही (इन्द्रियं) परम ऐश्वर्य और (रसं) आनन्द को (दधानः) धारण करता और प्रदान करता है । वही (सु-वीरः) सर्वोत्तम बलशाली, (अभिशस्तिपाः) सब दुःखों से बचाने वाला है ।

इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः ।
इन्दो वाजं सिषाससि ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (देवेभ्यः) नाना कामना युक्त जीवों के लिये (इन्द्राय पवसे) और महान् जगत् के सञ्चालन के लिये इसमें व्यापता और इसे चलाता है । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू ही (सध-माद्यः) उसे आनन्द (वाजं सिषासषि) और ऐश्वर्य देता है ।

अस्य पीत्वा मदानामिन्द्रो वृत्राण्यप्रति ।
जघान जघनच्च नु ॥ ७ ॥ १३ ॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर के (मदानां) आनन्ददायक गुणों का (पात्वा) सेवन करके (इन्द्रः) यह जीव (अप्रति) अपराजित होकर (वृत्राणि) समस्त विघ्नों को (जघान) नष्ट करता है (जघनत् च नु) और आगे भी नष्ट करता रहे। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[२४]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री। ३, ५, ७ निचृद् गायत्री। ४, ६ विराड् गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः।
श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ १ ॥

भा०—(सोमासः) उत्पन्न होने वाले जीव (इन्दवः) ज्ञान से युक्त, (इन्दवः = ईं द्रवन्ति) उस प्रभु की ओर जाने वाले भक्ति रसार्द्र होकर (पवमानासः) निरन्तर पवित्र हुए (प्र अधन्विषुः) आगे बढ़ते हैं। (अप्सु श्रीणानाः) आप्त पुरुषों के अधीन तप करते हुए (अप्सु) सूक्ष्म शरीरों में (मृञ्जत) शुद्ध हो जाते हैं।

अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥

भा०—(प्रवता यतीः आपः न इन्द्रम् आशत) जैसे नीचे की ओर जाती जलधाराएं समुद्र तक वैसे ही पहुँच जाती हैं (प्रवता यतीः) उत्तम पद से जाने वाले (आपः) आप्त जन (गावः) गति करते हुए (अभि अधन्विषुः) आगे बढ़ते जाते हैं और (पुनानाः) अपने को पवित्र करते हुए (इन्द्रम् आशत) प्रभु को प्राप्त होते हैं।

प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे। नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३॥

भा०—हे (पवमान सोम) पवित्र अन्तःकरण वाले जीव! तू (पातवे) अपने पालन के लिये (इन्द्राय) परमेश्वर की ओर (प्र धन्वसि) बढ़ रहा है (यतः) जहां से तू (नृभिः) इन्द्रियों द्वारा (वि नीयसे) जगत् के भोग्य पदार्थों की ओर बलात् ले जाया जाता है।

त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे। सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥४॥

भा०—हे (सोम) जीव! (त्वं) तू (नृ-मादनः) अपने इन्द्रिय गण को तृप्त करने और उनसे तृप्त होने वाला है। तू (चर्षणीसहे) मनुष्यों को वश करने वाले प्रभु को प्राप्त करने के लिये (पवस्व) आगे बढ़। (यः सस्निः) जो पवित्र और (अनुमाद्यः) सदा हर्ष देने वाला है।

इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्दो) भक्ति-रसादि से आर्द्र जीव! तू (यत्) जब (अद्रिभिः सुतः) समाधियों द्वारा परिष्कृत होकर (पवित्रं) पावन प्रभु को लक्ष्य करके (परि धावसि) संसार से दूर हटता है, तब तू (इन्द्रस्य धाम्ने) उस परमेश्वर के तेज को प्राप्त करने के (अरम्) योग्य होता है।

पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः।
शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) विघ्नविनाशक प्रभो! तू (उक्थेभिः अनुमाद्यः) स्तुति वचनों द्वारा निरन्तर आनन्द ग्रहण करने योग्य है। तू (शुचिः) पवित्र और (पावकः) सबको पवित्र करने वाला और (अद्भुतः) अद्भुत है। तू हमें (पवस्व) पवित्र कर।

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः।
देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥ १४ ॥ १ ॥

भा०—(सोमः) परमेश्वर (सुतस्य) ऐश्वर्ययुक्त (मध्वः) ज्ञान के कारण (शुचिः) शुद्ध (पावकः) पवित्रकर्त्ता और (देवावीः) जीवों का रक्षक, (अघ-शंसहा) पाप करने वाले को दण्ड देने वाला है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[२५]

दृढच्युतः आगस्त्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ गायत्री। २, ४ निचृद गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥

भा०—हे (हरे) दुःखों के हरने वाले ! तू (दक्ष-साधनः) बल से जगत् को वश में करने वाला और (मदः) आनन्द दाता है। तू (देवेभ्यः) सूर्यादि वा ज्ञानवान् पुरुषों और (मरुद्भ्यः) प्राणधारी, (वायवे) ज्ञानवान् वा प्राणवान् आत्मा के (पीतये) पालन करने के लिये (पवस्व) प्राप्त हो।

पवमान धिया हितो३भि योनिं कनिक्रदत्।
धर्मणा वायुमा विश ॥ २ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र जीवात्मन् ! तू (धिया हितः) कर्म वा कामना द्वारा बद्ध होकर (योनिम् अभि कनिक्रदत्) देह को प्राप्त होता है और (धर्मणा) अपने सामर्थ्य से (वायुम् आ विश) प्राण तक में प्रविष्ट है।

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः।
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

भा०—वह (कविः) क्रान्तदर्शी (प्रियः) अपने को बहुत प्रिय (वृषा) बलवान्, आत्मा (योनौ अधि) देह पर शासक होकर (देवैः) इन्द्रियों सहित (शोभते) शोभा देता है। वह (वृत्रहा) अज्ञानादि का नाश करता और (देव-वीतमः) देवों में सर्वश्रेष्ठ है।

विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः।
यत्रामृतास आसते ॥ ४ ॥

भा०—वह आत्मा (विश्वा रूपाणि) समस्त देहों में (आविशन्) प्रवेश करता हुआ (हर्यतः) कान्तिमान् (पुनानः) अपने को स्वच्छ करता हुआ वहां (याति) चला जाता है (यत्र अमृतासः) जहां मुक्तात्मा (आसते) विराजते हैं।

अरुषो जनयन्गिरः सोमः पवत आयुषक्।
इन्द्रं गच्छन्कविक्रतुः ॥ ५ ॥

भा०—(अरुषः) तेजःस्वरूप (सोमः) जीव (आयुषक्) जीवन को प्राप्त होकर (गिरः जनयन्) वाणियों को प्रकट करता हुआ (कवि-क्रतुः) क्रान्तदर्शी होकर (इन्द्रम् गच्छन्) प्रभु को प्राप्त करके (पवते) पवित्र हो जाता है।

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥ १५ ॥

भा०—हे (मदन्तिम) आनन्द देने वाले आत्मन् ! (कवे) हे क्रान्तदर्शिन् विद्वन् ! तू (धारया) वाणी द्वारा (पवित्रं) पवित्र प्रभु को (आ पवस्व) प्राप्त हो और (अर्कस्य योनिम्) अर्चना योग्य परमेश्वर के आश्रय को (आसदम्) प्राप्त करने के लिये स्तुति कर। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[२६]

इध्मवाहो दार्ढच्युत ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—५ निचृद् गायत्री। २, ६ गायत्री ॥ षडृर्चं सूक्तम् ॥

तममृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि।
विप्रासो अण्व्या धिया ॥ १ ॥

भा०—(विप्रासः) विद्वान् लोग (आदितेः उपस्थे अधि) अखण्ड परमेश्वर की गोद में (तम्) उस (वाजिनम्) ज्ञानी आत्मा को (अण्व्या धिया) सूक्ष्म बुद्धि से (अमृक्षन्त) पवित्र करते हैं।

तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम्।
इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥ २ ॥

भा०—(दिवः) सूर्यादि लोकों को (आ धर्तारम्) धारण करने वाले, (सहस्र-धारम्) सहस्र वाणियों वाले, वा सहस्रों लोकों के धारक, (अक्षितम्) अक्षय (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान् (तम्) उस प्रभु की ही (गावः अभि अनूषत) समस्त वाणियां स्तुति करती हैं।

तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि।
धर्णसिं भूरिधायसम् ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस (वेधाम्) विधाता, (धवि अधि पवमानम्) तेजोयुक्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त (धर्णसिं) सबके आश्रय, (भूरि-धायसम्) अनेक जीवों और लोकों के पोषक प्रभु को लोग (मेधया) बुद्धि से (अह्वन्) प्राप्त करते हैं।

तम॑ह्वन्भु॒रिजो॑र्धि॒या सं॒वसा॑नं वि॒वस्व॑तः ।
पतिं॑ वा॒चो अदा॑भ्यम् ॥ ४ ॥

भा०—और (विवस्वतः) विविध लोकों के स्वामी प्रभु के (भुरिजोः) बाहुओं में (संवसानम्) सुख से रहने वाले, (अदाभ्यम्) अविनाशी (वाचः पतिम्) वाणी के पालक (तं) आत्मा को भी विद्वान् लोग (धियाः अह्वन्) बुद्धि द्वारा ही प्राप्त करते हैं।

तं सान॒वधि॑ जा॒मयो॒ हरिं॑ हिन्व॒न्त्यद्रि॑भिः ।
ह॒र्य॒तं भूरि॑चक्षसम् ॥ ५ ॥

भा०—(सानौ अधि हरिं) उच्च पद पर विराजमान सूर्य के समान तेजस्वी, (हरिं) सर्व-दुःखहारी (सानौ अधि) सर्वोच्च पद पर विराजमान, (हर्यतं) कान्तिमान्, (भूरिचक्षसं) जीवों के कर्मफलादि को देखने वाले परमेश्वर को (जामयः) भक्त जन (अद्रिभिः) आनन्द रसवर्धक समाधियों द्वारा (हिन्वन्ति) पहुंचते और उसकी स्तुति करते हैं।

तं त्वा॑ हिन्वन्ति वे॒धसः॒ पव॑मान गिरा॒वृध॑म् ।
इन्द॒विन्द्रा॑य मत्स॒रम् ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे (पवमान) पावन! (इन्द्राय) जीव को (मत्सरम्) आनन्द से तृप्त करने वाले (गिरावृधम्) वाणी से स्तुति करने योग्य (तं त्वा) उस तेरी (वेधसः) विद्वान् लोग (हिन्वन्ति) स्तुति करते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

[२७]

नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृद् गायत्री । २—५ गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥ १ ॥

भा०—(एषः) यह (कविः) विद्वान् (अभि-स्तुतः) स्तुति के योग्य है जो (पवित्रे अधि) पवित्र कार्य में (पुनानः) नियुक्त होकर (स्रिधः अप घ्नन्) बाधक कारणों को नष्ट करता हुआ (तोशते) विपक्ष का नाश करता है ।

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते ।
पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥

भा०—(एषः) यह (दक्ष-साधनः) बल से शत्रुओं को वश करने वाला, (स्वर्जित्) विजेता पुरुष, (इन्द्राय) ऐश्वर्य के बढ़ाने और (वायवे) वायुवत् प्रबल होकर प्रजा को जीवन देने वाले पद के लिये (पवित्रे) शुद्ध स्थान पर (परि सिच्यते) अभिषिक्त किया जाता है ।

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥

भा०—(एषः सोमः) वह उत्तम शासनकुशल, (विश्ववित्) सबका ज्ञाता, (वृषा) प्रजा पर सुखों की वृष्टि करने वाला, (दिवः मूर्धा) इस भूमि पर शिर के तुल्य उन्नत होकर (नृभिः) उत्तम पुरुषों से (वनेषु) समस्त ऐश्वर्यों पर (सुतः) अभिषिक्त करके (वि नीयते) प्राप्त किया जाता है ।

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः ।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥

भा०—(एषः) वह (गव्युः) जितेन्द्रिय विद्वान्, (हिरण्ययुः) धन का स्वामी, (इन्दुः) दयार्द्र-स्वभाव, (अस्तृतः) अहिंसक (सत्राजित्) सत्य जीतने वाला, (पवमानः) पवित्र करता हुआ (अचिक्रदत्) शासन करे ।

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि ।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥

भा०—(एषः) वह (मत्सरः) हर्ष देने वाला, (मदः) हृष्ट पुष्ट, स्तुति योग्य, (पवमानः) अन्यों को पवित्र करता हुआ (पवित्रे द्यवि) पवित्र ज्ञान में (अधि) अधिष्ठित होकर (सूर्येण) सूर्य के समान (आसते इ) विराजता है।

एष शुष्म्यसिष्यदद्न्तरिक्षे वृषा हरिः।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ६ ॥ १७ ॥

भा०—(एषः) वह (शुष्मी) वायुवत् बलशाली (वृषा) मेघवत् सुखों का वर्षक, (इन्दुः) चन्द्र के समान कान्तिमान् (हरिः) दुःखहर्ता (अन्तरिक्षे) सबके अन्तःकरण में (पुनानः) अभिषिक्त होकर (इन्द्रम् आ असिष्यदत्) ऐश्वर्ययुक्त पद को प्राप्त करता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[२८]

प्रियमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ गायत्री । २, ३, ६ विराड् गायत्री ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः।
अव्यो वारं वि धावति ॥ १ ॥

भा०—(एषः) वह (वाजी) बलवान् (विश्व-वित्) सर्वज्ञ (मनसः पतिः) सबके चित्तों का पालक (नृभिः) नायकों द्वारा (हितः) स्थापित किया जाय। वह (अव्यः) रक्षक सेना के (वारं) वरण योग्य मुख्य पद को (वि धावति) विशेष रूप से प्राप्त करता है।

एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः।
विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥

भा०—(एषः) वह (सोमः) शासक (देवेभ्यः) विजयेच्छुक पुरुषों के लिये (पवित्रे) पवित्र पद पर (सुतः) अभिषिक्त होकर (विश्वा धामानि) समस्त तेजों को (आविशन्) प्राप्त करके (अक्षरत्) आवे।

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः।
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

भा०—(एषः देवः) वह दानशील, (अमर्त्यः) दीर्घजीवी मनुष्य (वृत्रहा) शत्रुओं का नाश करने वाला, (देववीतमः) विद्वानों में अति श्रेष्ठ (योनौ अधि शुभायते) उत्तम पद पर शोभा देता है।

एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः ।
अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

भा०—(एषः) वह (वृषा) सुखों का वर्षक (दशभिः जामभिः) दश-दिग्वासिनी प्रजाओं से (यतः) सम्बद्ध होकर (द्रोणानि) अभिषेक योग्य कलशों की ओर (अभि धावति) जाता और उनसे स्नान करता है। (२) अध्यात्म में—धर्ममेघयुक्त आत्मा दश प्राणों से बन्धुवत् बद्ध होकर (द्रोणानि) भीतरी कोशों, लोकों वा द्रुतगति वाले प्राणों की ओर जाता है।

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो विचर्षणिः ।
विश्वा धामानि विश्ववित् ॥ ५ ॥

भा०—(एषः) वह (विश्ववित्) सर्वज्ञ प्रभु (पवमानः) सब में व्यापक (विश्वा धामानि विचर्षणिः) समस्त लोकों का द्रष्टा (सूर्यम् अरोचयत्) सूर्य को भी प्रकाशित करता है।

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥ १८ ॥

भा०—(एषः) यह (शुष्मी) बलवान्, (अदाभ्यः) अविनाशी (सोमः) ऐश्वर्यवान् (पुनानः) पवित्र करता हुआ, (देवावीः) विद्वान् उत्तम गुणों की रक्षा करता हुआ (अघ-शंसहा) पापी को दण्ड देता हुआ (अर्षति) हमें प्राप्त हो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[२९]

नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २—४, ६ निचृद् गायत्री । ५ गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा ।
देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥

भा०—(देवान् प्रभूषतः अनु) उत्तम विद्वानों और वीरों के प्रतिदिन (ओजसा) पराक्रम से (सुतस्य अस्य वृष्णः धाराः) अभिषिक्त हुए इस बलवान् पुरुष की (धाराः) वाणियां (प्र अक्षरन्) सबके सुख के लिये निकलें।

सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥

भा०—(वेधसः) विद्वान् (गृणन्तः) उपदेश करते हुए (कारवः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता, (सप्तिं) सातों प्राणों के स्वामी आत्मा को (गिरा) वेद वाणी से (मृजन्ति) पवित्र करते हैं और उसी को (उक्थम्) स्तुत्य (जज्ञानं ज्योतिः) प्रकट होने वाली ज्योति जानते हैं।

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! (पुनानाय ते) राष्ट्र को परिशोधन करने वाले राजा के समान, नाना योगसाधनों से प्रकट होने वाले (ते) तेरे (तानि) वे नाना (सु-सहा) सुख से सबको वश करने वाले साधन हैं। हे (प्रभु-वसो) प्रचुर ऐश्वर्यवन्! तू (उक्थ्यम्) स्तुति योग्य (समुद्रम्) प्रभु की (वर्ध) महिमा फैला।

विश्वा वसूनि सञ्जयन्पवस्व सोम धारया।
इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥ ४ ॥

भा०—(विश्वा) सब (वसूनि) लोकों को (सं-जयन्) अच्छी प्रकार जीतता हुआ, हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (धारया) अपनी धारणा शक्ति से (पवस्व) पवित्र हो और (सध्र्यक्) साथ ही (द्वेषांसि अनु) सब द्वेषों को नष्ट कर।

रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित्।
निदो यत्र मुमुच्महे ॥ ५ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! राजन् ! (समस्य कस्य चित्) समस्त जिस किसी भी (अररुषः) क्रोधी, कठोर और (निदः) निन्दक से (नः सुरक्ष) हमारी रक्षा कर (यत्र) जिससे हम (मुमुच्महे) मुक्त हो जावें।

एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया।
द्युमन्तं शुष्ममा भर॥ ६॥ १९॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (पार्थिवं) पृथिवी के और (दिव्यं) सूर्यादि के (रयिं) ऐश्वर्य को (धारया) वाणी द्वारा (पवस्व) दे वा सञ्चालित कर। तू (द्युमन्तं शुष्मम्) तेजोयुक्त बल प्रदान कर। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[३०]

विन्दुर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, २, ६ गायत्री। ३—५ निचृद् गायत्री॥

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन्।
पुनानो वाचमिष्यति॥ १॥

भा०—(अस्य शुष्मिणः) इस बलवान् पुरुष की (धाराः) वाणियां (पवित्रे) दस्यु आदि से स्वच्छ करने के साधन रूप सैन्य के निमित्त (वृथा) अनायास ही (अक्षरन्) प्रकट हों। वह (पुनानः) राष्ट्र को पवित्र करता हुआ (वाचम् इष्यति) अपनी आज्ञा प्रचारित करे।

इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत्।
इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम्॥ २॥

भा०—वह (स्तोतृभिः हियानः) अभिषेक करने वालों द्वारा समृद्ध और (मृज्यमानः) पवित्र किया जाकर (कनिक्रदत्) शासन करे। (वग्नुम् इन्द्रियम् इयर्ति) वह वचन बोलने वाली वाणी का उचित प्रयोग करे।

आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम्।
पवस्व सोम धारया॥ ३॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (धारया) अपने आज्ञा बल से (नः) हमें (नृ-साह्यं) सब मनुष्यों के वशकारी (वीरवन्तं पुरु-स्पृहं) वीरों वाले, (शुष्मं) बल को (पवस्व) प्राप्त करा।

प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ ४ ॥

भा०—(सोमः) उत्तम शासक जल के समान है, वह (पवमानः) वेग से जाता हुआ, (धारया अति प्र असिष्यदत्) वाणी वा सैन्य परंपरा सहित आगे बढ़े और (द्रोणानि) नाना स्थानों पर (आसदम्) अधिकार करे।

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (अप्सु) प्रजाओं में (मधुमत्तमं) अति मधुर वचन बोलने वाले, (हरिं) प्रजादुःखहारी, (त्वा) तुझको (अद्रिभिः) शस्त्र बलों द्वारा (इन्द्राय पीतये) बड़े ऐश्वर्य की रक्षा के लिये (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं।

सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषों ! (वज्रिणे) बलशाली (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त (शर्धाय) शस्त्र से धारण करने योग्य पद या राज्य के लिये (मधुमत्तमं) अति मधुर भाषी (चारुम्) विचारवान्, (मत्सरम्) हर्षप्रद (सोमम्) शासक का (सुनोत) अभिषेक करो। इति विंशो वर्गः ॥

[३१]

गोतम ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २ यवमध्या गायत्री । ३, ५ गायत्री । ४, ६ निचृद् गायत्री ॥

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः ।
रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥ १ ॥

भा०—(सोमासः) देह को प्रेरणा देने वाले (पवमानासः) उसको गति देने वाले (स्वाध्यः) ज्ञान और कर्म को धारण करने वाले प्राण गण (प्र अक्रमुः) देह में सञ्चार करते हैं, वे (रयिं) देह को चेतन (कृण्वन्ति) करते हैं उसी प्रकार वीर विद्वान् जन प्रज्ञावान् होकर (प्र अक्रमुः) एक से एक आगे उत्तम पद बढ़ाते और (रयिं) ऐश्वर्य और (चेतनं) ज्ञान का (कृण्वन्ति) सम्पादन करते हैं।

दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो द्युम्नवर्धनः।
भवा वाजानां पतिः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (दिवः पृथिव्याः) आकाश और भूमि पर (अधि भव) शासक हो। तू (द्युम्न-वर्धनः) ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला (भव) हो और (वाजानां पतिः भव) बलों का पालक हो।

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः।
सोम वर्धन्ति ते महः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) सबको सुख देने हारे! (वाताः) वायुवत् बलशाली पदार्थ (तुभ्यं अभि-प्रियः) तुझे पूर्ण पुष्टि करने वाले हों और (सिन्धवः) वेगवान् अश्वादि और देहगत नाड़ियें (तुभ्यम् अर्षन्ति) तेरे लिये गति करते हैं। हे (सोम) ऐश्वर्यवन्, वे (ते महः वर्धन्ति) तेरे तेज को बढ़ाते हैं।

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक! तू (आ प्यायस्व) सब प्रकार से बढ़। (ते वृष्ण्यम् विश्वतः सम् एतु) तुझे सब ओर से बल प्राप्त हो। तू (वाजस्य संगथे भव) ऐश्वर्य प्राप्त करने में सफल हो।

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम्।
वर्सिष्ठे अधि सानवि ॥ ५ ॥

भा०—हे (बभ्रो) प्रजा पालक! (गावः) गौएं (तुभ्यं) तेरे लिये (अक्षितं) नाश न होने वाला (घृतं पयः दुदुह्रे) घी और दूध प्रदान करें

और (तुभ्यं गावः) तेरी भूमियां (वर्षिष्ठे सानवि अधि) वर्षणयुक्त उच्च स्थल पर (अक्षितम्) अन्न (दुदुह्रे) उत्पन्न करें।

स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम्।

इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हे (स्वायुधस्य) शस्त्र अस्त्रादि बल के और (सतः भुवनस्य पते) श्रेष्ठ लोक के पालक ! (वयम्) हम लोग (ते सखित्वम् उश्मसि) तेरी मित्रता की कामना करते हैं। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[३२]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, निचृद् गायत्री। ३—६ गायत्री ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः।

सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

भा०—(सोमासः) वीर्यवान् ब्रह्मचारी गण (मद-च्युतः) हर्षप्रद और (सुताः) विद्याव्रत में निःष्णात होकर (नः मघोनः) हम धन वालों के पास (श्रवसे) अन्नादि प्राप्त करने के लिये (विदथे) यज्ञों में (प्र अक्रमुः) आवें।

आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

भा०—(आत्) और (ईम् हरिम्) इस ज्ञानोपार्जक (इन्दुम्) स्नेहार्द्र शुश्रूषु को (त्रितस्य) विद्यासमुद्र के पारंगत विद्वान् की (योषणः) प्रेमपूर्वक कही वाणियां (अद्रिभिः) मेघवत् उदार वचनों से (इन्द्राय पीतये) आचार्य के ज्ञानरस पान के लिये (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं।

आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम्।

अत्यो न गोभिरज्यते ॥ ३ ॥

भा०—(आत्) और वह (यथा हंसः) हंस तुल्य विवेकी जन (गणं) जन समूह को और (विश्वस्य मतिम्) सबकी ज्ञान-वृद्धि को

(अवीवशत्) चाहता है। वह (अत्यः न) अश्व के समान (गोभिः) जल-धाराओं से (अज्यते) अलंकृत होता है। (२) वह परमेश्वर सर्वव्यापक होने से 'हंस' है, वह विश्व के ज्ञान को अपने वश में करता और वेद-वाणियों से प्रकट किया जाता है।

उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन् तू (ऋतस्य योनिम् आ सीदन्) ज्ञान के आश्रय आचार्य को प्राप्त होता हुआ, (मृगः न तक्तः) सिंह के समान तेजस्वी होकर (उभे अव चाकशत्) धर्म, अधर्म, इह और पर दोनों लोकों को देखता हुआ (अर्षसि) आगे बढ़।

अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम् ।
अगन्नाजिं यथा हितम् ॥ ५ ॥

भा०—(योषा प्रियम् जारम् इव) स्त्री जैसे प्रिय पति की स्तुति करती है वैसे ही (गावः) वाणियां और प्रजाएं उसकी ही (अभि अनूषत) स्तुति करती हैं और वह (हितम्) हितकारी पदार्थ को (आजिम् यथा) संग्रामवत् उत्साह से (अगन्) प्राप्त हो।

अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च ।
सनिं मेधामुत श्रवः ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वन्! (अस्मे) हमें तू (द्युमत् यशः) कान्तियुक्त अन्न (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवानों को और (मह्यं च) मुझे (सनिम् मेधाम्) सेवन करने योग्य उत्तम बुद्धि (श्रवः उत) और ज्ञान (धेहि) प्रदान कर। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[२३]

असित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ५ गायत्री । ३, ६ निचृद् गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

प्र सोमा॑सो विप॒श्चितो॒ऽपां न य॑न्त्यू॒र्मय॑: ।
वना॑नि महि॒षा इ॑व ॥ १ ॥

भा०—(महिषाः इव वनानि) भैंसे जैसे वनों में जाते और (अपां ऊर्मयः न) तरंगें जैसे (अपां यन्ति) जलों में जाती हैं वैसे ही (विपश्चितः) विद्वान् (सोमासः) शासक जन (अपां) आप्त प्रजाओं के बीच (प्र यन्ति) आगे बढ़ते हैं।

अ॒भि द्रोणा॑नि ब॒भ्रव॑: शु॒क्रा ऋ॒तस्य॒ धार॑या ।
वाज॒ं गोम॑न्तमक्षरन् ॥ २ ॥

भा०—जैसे (बभ्रवः) पालक जन (गोमन्तं वाजं) दूध से मिले अन्न को (ऋतस्य धारया) अन्न रस की धारा से (द्रोणानि अभि) पात्रों में (अक्षरन्) डालते हैं वैसे ही (बभ्रवः) बभ्रु अर्थात् काषाय वस्त्रधारी ज्ञानी, सन्यासी और (बभ्रवः) शिष्यों के पालक गुरु जन, (शुक्राः) कान्ति से युक्त होकर (ऋतस्य धारया) वेद की वाणी से (गोमन्तं वाजं) वाणियों से युक्त ज्ञान को (द्रोणानि अभि) सत्पात्रों के प्रति (अक्षरन्) प्रवाहित करते हैं।

सु॒ता इन्द्रा॑य वा॒यवे॒ वरु॑णाय म॒रुद्भ्य॑: ।
सोमा॑ अर्षन्ति॒ विष्ण॑वे ॥ ३ ॥

भा०—(सुताः) दीक्षित जन (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त पद और आचार्य से ज्ञानोपार्जन के लिये, (वायवे) बल प्राप्ति के लिये, (वरुणाय) सबसे वरण करने योग्य पद के लिये, (मरुद्भ्यः) वीर बनने के लिये और (विष्णवे) व्यापक शासनकारी पद के लिये (सोमाः) उत्तम २ शासक, ज्ञानी, बलशाली व्यक्ति बनकर प्राप्त होते हैं।

ति॒स्रो वाच॒ उदी॑रते॒ गावो॑ मिमन्ति धे॒नव॑: ।
हरि॑रेति॒ कनि॑क्रदत् ॥ ४ ॥

भा०—(तिस्रः वाचः) तीनों वाणियां (उत् ईरते) उच्चरित होती हैं। (गावः धेनवः इव मिमन्ति) विद्वानों की वाणियां और वीरों के धनुष

की डोरियां ध्वनि करती हैं और (हरिः) मनोहर ज्ञानी (कनिक्रदत् एति) ज्ञानोपदेश करता हुआ आता है।

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः।
मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥ ५ ॥

भा०—(मातरः शिशुम् मर्मृज्यन्ते) माताएं जैसे छोटे बच्चे को स्वच्छ करती हैं वैसे ही (ऋतस्य मातरः) वेद ज्ञाता विद्वान् (दिवः शिशुम्) ज्ञान के योग्य शिष्य का (मर्मृज्यन्ते) परिष्कार करें और वे उसे (यह्वीः) महान् (ब्रह्मीः) ब्रह्म का प्रतिपादक वेद की वाणियों का भी (अभि अनूषत) उपदेश करें।

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू (विश्वतः) सब प्रकार से (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सहस्रिणः) अनन्त सुखों के देने वाले (रायः) धन की प्राप्ति के लिये (चतुरः समुद्रान् आ पवस्व) चारों समुद्रों को प्राप्त हो सब ओर गति कर। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[३४]

त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृद् गायत्री। ३, ५, ६ गायत्री ॥

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति।
रुजद्दृळ्हा व्योजसा ॥ १ ॥

भा०—(इन्दुः) तेजस्वी वीर जन (ओजसा) पराक्रम से (दृढ़ा) दृढ़ दुर्गों को (रुजत्) तोड़ता फोड़ता हुआ जैसे (धारया सुवानः) वाणी द्वारा सैन्य सञ्चालित करता हुआ (तना प्र अर्षति) धनों को प्राप्त होता है वैसे ही (धारया सुवानः) एक रस रूप ज्ञान-धारा से युक्त योगी (तना हिन्वानः) व्यापक बलों को बढ़ाता हुआ ब्रह्म को प्राप्त होता है।

सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २ ॥

भा०—(सुतः) अभिषिक्त (सोमः) ज्ञानी पुरुष (इन्द्राय वायवे वरुणाय विष्णवे) परमैश्वर्यवान्, प्राणों के प्राण, सर्वश्रेष्ठ सर्वव्यापक प्रभु की प्राप्ति के लिये और (मरुद्भ्यः) प्राणों को वश करने के लिये (अर्षति) आगे बढ़ता है ।

वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ।
दुहन्ति शक्मना पयः ॥ ३ ॥

भा०—(वृषभिः यतम्) वीर पुरुषों से युक्त, (वृषाणम् सोमम्) ऐश्वर्यवान् शासक का (अद्रिभिः) नाना भोग साधनों से (सुन्वन्ति) सत्कार करते हैं और (शक्मना) शक्ति से उसके (पयः) बल को (दुहन्ति) बढ़ाते हैं ।

भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः ।
सं रूपैरज्यते हरिः ॥ ४ ॥

भा०—(त्रितस्य) सर्वोत्तम शासक के (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त पद के लिये (मत्सरः) सबको सुख देने वाला पुरुष ही (मर्ज्यः भुवत्) अभिषेक योग्य होता है । वह (हरिः) दुःखहारी पुरुष (रूपैः समज्यते) अनेक पदार्थों से सुशोभित किया जाता है ।

अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः ।
चारु प्रियतमं हविः ॥ ५ ॥

भा०—(पृश्नि-मातरः) जैसे मेघ (ऋतस्य वि-तपं) सूर्य से भी (चारु प्रियतमं हविः दुहते) मानो उत्तम अन्न प्राप्त करते हैं वैसे ही (पृश्नि-मातरः) विद्वान् राजनिर्माता जन (ऋतस्य वि-तपं जनं) सत्य ज्ञान के लिये तपस्वी जनों से (चारु प्रियतमं हविः) उत्तम ज्ञान प्राप्त करें ।

समेनमहुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः ।
धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥ ६ ॥ २४ ॥

भा०—(एनम्) जिज्ञासु को (इमाः गिरः) ये वेद वाणियां (सस्रुतः) समान वेग से प्रवाहित होकर (अह्रुताः) सरल रूप से (सम्-अर्षन्ति) प्राप्त होती हैं। वह (वाश्रः) उत्तम स्वरवान् होकर उन (धेनूः अवीवशत्) वाणियों को अपने वश में करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[३५]

प्रभूवसुर्ऋषिः पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४—६ गायत्री । ३ विराड् गायत्री ॥

आ नः॑ पवस्व॒ धार॑या॒ पव॑मान र॒यिं पृ॒थुम् ।
यया॒ ज्योति॑र्वि॒दासि॑ नः ॥ १ ॥

भा०—हे (पवमान) ऐश्वर्यदाता ! तू (यया धारया) जिस वाणी से (नः ज्योतिः) हमें प्रकाश (विदासि) देता है उसी (धारया) वाणी से (नः पृथुम् रयिम् आ पवस्व) हमें अधिक धन प्राप्त करा।

इन्दो॑ समुद्रमीङ्खय॒ पव॑स्व विश्वमेजय ।
रा॒यो ध॒र्ता न॒ ओज॑सा ॥ २ ॥

भा०—हे (समुद्रम् ईङ्खयः) समुद्र तुल्य अपार सैन्य-सञ्चालक स्वामिन् ! हे (विश्वम्-एजय) विश्वसञ्चालक प्रभो ! तू (धर्त्ता) सबका धारक है। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः ओजसा) हमें पराक्रम से (रायः पवस्व) नाना ऐश्वर्य प्रदान कर।

त्वया॑ वी॒रेण॑ वीरवो॒ऽभि ष्या॑म पृतन्य॒तः ।
क्षरा॑ णो अ॒भि वार्य॑म् ॥ ३ ॥

भा०—(त्वया वीरेण) तुझ वीर से हे (वीरवः) वीरों के स्वामिन् ! हम (पृतन्यतः) संग्राम करने वाले शत्रुओं को (अभि स्याम) पराजित करें। तू (नः वार्यं अभि क्षर) हमें श्रेष्ठ धन प्राप्त करा।

प्र वाज॒मिन्दु॑रिष्यति॒ सिषा॑सन्वाज॒सा ऋषि॑ः ।
व्र॒ता वि॑दा॒न आयु॑धा ॥ ४ ॥

भा०—(इन्दुः) दयार्द्र, (ऋषिः) द्रष्टा (वाजसाः) ज्ञान और धनादि का देने वाला, (व्रता आयुधा) व्रतों और कर्मों को (विद्वान्) जानता हुआ और (वाजं सिषासन्) ऐश्वर्य का विभाग करता हुआ (प्र हृष्यति) सबको सन्मार्ग में चलावे।

तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि ।

सोमं जनस्य गोपतिम् ॥ ५ ॥

भा०—हम (वाचम्-ईङ्खयम्) वाणी को देने वाले (जनस्य गोपतिम्) मनुष्यों के रक्षक, भूमिपति, (पुनानं) सबको पवित्र करने वाले (तं) उस (सोमं) शास्ता पुरुष को (गीर्भिः वासयामसि) वाणियों से आच्छादित करें। वाणियों द्वारा उसका सत्कार करें।

विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः ।

पुनानस्य प्रभूवसोः ॥ ६ ॥ २५ ॥

भा०—(यस्य धर्मणः पते) जिस धर्मरक्षक (पुनानस्य) पवित्रकारक, (प्रभू-वसोः) प्रचुर धनशाली स्वामी के (व्रते) नियमों में (विश्वः जनः) समस्त जन (दाधार) अपने को सुरक्षित रखते हैं, हम (तं वासयामसि) उसकी रक्षा करें। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[३६]

प्रभूवसुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री ॥ २, ६ गायत्री । ३—५ निचृद् गायत्री ॥

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।

कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥ १ ॥

भा०—(रथ्यः) रथ के अश्व के समान दृढ़ांग (सुतः) राज्याभिषिक्त पुरुष (पवित्रे) पवित्र पद पर (चम्वोः) आजू बाजू दोनों सेनाओं के ऊपर (असर्जि) नियत किया जाय। वह (वाजी) वीर (कार्ष्मन्) शत्रुपीड़न कार्य में (नि अक्रमीत्) प्रयाण करे।

स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति।
अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह तू (वह्निः) कार्य करने में समर्थ, (जागृविः) सदा जागृत, (देव-वीः) सूर्यवत् कान्तिमान्, विद्वानों का प्रिय होकर हे (सोम) शान्तः ! (सः) वह तू (मधुश्चुतम् कोशं) सुखदायी इस राष्ट्र कोश को (अति अभि पवस्व) आगे बढ़कर प्राप्त कर।

स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूर्व्यः) सबसे प्रथम पूज्य ! हे (पवमान) पवित्रकारक ! (सः) वह तू (नः) हमें (ज्योतींषि) ज्योतियों द्वारा (वि रोचय) प्रकाशित कर और (नः) हमें (क्रत्वे दक्षाय) ज्ञान और बल सम्पादन के लिये (हिनु) प्रेरित कर।

शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः।
पवते वारे अव्यये ॥ ४ ॥

भा०—(ऋतायुभिः) सत्य की कामना करने वाले वीर पुरुषों द्वारा (गभस्त्योः) उनकी बाहुओं के (अव्यये वारे) अक्षय आश्रय पर (मृज्यमानः) अभिषिक्त और (शुम्भमानः) सुशोभित होकर वह (पवते) विराजता है।

स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा।
पवतामान्तरिक्ष्या ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह (दाशुषे) दाता जन के लिये (दिव्यानि पार्थिवा आन्तरिक्ष्या) आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष लोकों में उत्पन्न (विश्वा वसु पवताम्) समस्त धनों और बसने योग्य साधनों को स्वच्छ करे, प्राप्त करे और सुखदायी बनावे।

आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि।
वीरयुः शवसस्पते ॥ ६ ॥ २६

भा०—हे (सोम) शासक ! हे (शवसः पते) बल के स्वामिन् ! तू (अश्वयुः गव्ययुः वीरयुः) अश्वों, गौवों और वीरों का स्वामी होकर (दिवः पृष्ठम् आ रोहसि) भूमि रक्षक के पद पर आकाश में सूर्यवत् प्रकाशित होता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[३७]

रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३ गायत्री । ४—६ निचृद् गायत्री ॥

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह (वृषा) सुखों का वर्षक (सोमः) उत्पादक प्रभु (सुतः) उपासित होकर (पवित्रे) शुद्ध हृदय में (अर्षति) प्रकट होता है। वह (देवयुः) उपासकों का स्वामी (रक्षांसि) सब विघ्नों का (विघ्नन्) विनाशक वाला है।

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (विचक्षणः) विशेष द्रष्टा (हरिः) सर्वदुःखहारी, (योनिम् अभि कनिक्रदत्) विश्वरूप गृह को व्यापता हुआ (धर्णसिः) धारण करने वाला (पवित्रे अर्षति) शुद्ध हृदय में प्रकाशित होता है।

स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (वाजी) सब ऐश्वर्यों का स्वामी, (दिवः रोचना) सूर्यों को प्रकाशित करने वाला (पवमानः) सर्वव्यापक होकर (रक्षोहा) विघ्नों का नाश करने वाला (अव्ययम् वारम् वि धावति) अविनाशी, वरण करने योग्य जीव को पवित्र करता है।

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥

भा०—(सः पवमानः) वह सर्वव्यापक (जामिभिः सह) जीवों के सहित, (त्रितस्य सानवि सूर्यम् अधि) तीनों लोकों के ऊपर स्थित सूर्य को अतिक्रमण करके (अधि अरोचयत्) उससे भी अधिक प्रकाशमान है ।

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवो विददाभ्यः ।
सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

भा०—(सः वृत्रहा) वह विघ्नों का नाशक, (वृषा) सुखों का वर्षक स्वयं (सुतः) सबसे उपासित होकर (अदाभ्यः) अविनाशी, (वरिवोविद्) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने वाला, (सोमः) सर्वोत्पादक प्रभु (वाजम् इव असरत्) वेग का सञ्चार करता है ।

स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति ।
इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥ ६ ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह (देवः) सबको देने वाला, (कविना इषितः) क्रान्तदर्शी भक्तों से चाहा जाकर (द्रोणानि अभि) पात्रों के समान सत्पात्रों को ही (अभि धावति) प्राप्त होता है । वह (इन्दुः) रस-सागर (इन्द्राय) इस जीव के लिये (मंहना) महान् है । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[३८]

रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—२ ,४, ६ निचृद् गायत्री । ३ गायत्री । ५ ककुम्मती गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति ।
गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

भा०—(एषः उ स्यः वृषाः) यह भी बलवान्, रसवर्षी मेघवत् और (रथः) रमणीय होकर (अव्यः) अविनाशी (वारेभिः) वरण करने योग्य रूपों से (अर्षति = वर्षति) परमानन्द की वर्षा करता है और (सहस्रिणं वाजं गच्छन्) सहस्रों ज्ञानों एवं ऐश्वर्यों को प्राप्त होता है ।

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

भा०—(त्रितस्य योषणः) तीनों तापों से पार इस साधक की (योषणः) स्नेहमयी भावनाएं (एतं हरिम्) उस दुःखहारी (इन्दुम्) स्नेह रस से भरे प्रभु को (इन्द्राय पीतय) आत्मा के रक्षणार्थ पिपासा की तृप्ति के लिये (अद्रिभिः) सुखप्रद उपायों से (हिन्वन्ति) प्राप्त होती हैं।

एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः।
याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ३ ॥

भा०—(एतं त्यं) उस प्रसिद्ध परमेश्वर को (दश हरितः) ये दशों दिशाएं (अपस्युवः) कर्म प्रेरणा चाहती हुई (मर्मृज्यन्ते) अलंकृत करती हैं। (याभिः) जिनसे वह (मदाय शुम्भते) आनन्द-प्राप्ति के लिये शोभित होता है।

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति।
गच्छञ्जारो न योषितम् ॥ ४ ॥

भा०—(योषितं गच्छन् जारः न) स्त्री के पास जाते हुए प्रिय पुरुष के समान और (विक्षु मानुषीषु) मनुष्य प्रजाओं में (श्येनः न) उत्तम पुरुष के समान (एषः स्यः) वह प्रभु भी (श्येनः) उत्तम ज्ञानी, (योषितं गच्छन् जारः) प्रकृति में व्यापक उसकी समावस्था को जीर्ण करने वाला (विक्षु) विकृत लोकों में (सीदति) विराजता है।

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः।
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ५ ॥

भा०—(यः) जो (इन्दुः) संसार में रसवत् व्यापक होकर (वारम्) आवरण करने वाले जगत् के भीतर (आविशत्) प्रवेश किये है (एषः स्यः) वह प्रभु (मद्यः) आनन्दमय, (रसः) रस स्वरूप होकर (दिवः शिशुः) सब सूर्यादि में व्याप्त (अव चष्टे) सबको देखता है।

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः।
क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—(एषः स्यः) वह प्रभु (पीतये सुतः) पालन या रक्षा के निमित्त उपासित (हरिः) पापहारी (धर्णसिः) जगत् का धारक (प्रियम् योनिम् अभि) प्रिय स्थान, विश्व में (क्रन्दन् अर्षति) व्याप्त हो रहा है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[३९]

बृहन्मतिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६ निचृद् गायत्री । २, ३, ५ गायत्री ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
यत्र देवा इति ब्रवन् ॥ १ ॥

भा०—हे (बृहन्मते) महान् ज्ञान वाले ! (प्रियेण धाम्ना) प्रिय तेज से तू (आशुः) शीघ्रगामी होकर (यत्र देवाः) जहां विद्वान् जन (इति ब्रवन्) इस प्रकार सत्य २ उपदेश करते हैं वहां ही (परि अर्ष) जा पहुँच।

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।
वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (अनिष्कृतं) अस्वच्छ अन्तःकरण को (परिष्कृण्वन्) शुद्ध करके, (जनाय) जन्म लेने वाले प्राणी के हितार्थ (इषः) उत्तम इच्छाओं को (यातयन्) प्रेरित करता हुआ (दिवः वृष्टिम्) आकाश से वृष्टि के समान (परि स्रवः) सुख की वर्षा कर।

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।
विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ३ ॥

भा०—(ओजसा) पराक्रम से (त्विषिं आ दधानः) कान्ति को धारण करता हुआ, (विचक्षाणः) विविध ज्ञानों का द्रष्टा (सुतः) परिष्कृत होकर (विरोचयन्) दीप्ति से चमकता हुआ, (पवित्रे) पवित्र धाम को (एति) प्राप्त होता है।

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ।

सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ४ ॥

भा०—(अयं सः) यह वह परम तत्व है (यः) जो (दिवः परि) कामनाओं से ऊपर (रघुयामा) प्रशस्त यमनियों के विधाता (सिन्धोः ऊर्मा) समुद्रतरंगों के समान (पवित्रे) पावन प्रभु में (वि अक्षरत्) बह रहा है और निरन्तर उसी में मग्न होता जा रहा है।

आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः।

इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥

भा०—यह (सुतः) उपासित होकर (परावतः अथो अर्वावतः) दूर और पास के स्थानों से (आविवासन्) प्रकट होता हुआ (इन्द्राय) जीव के लिये (मधु सिच्यते) आनन्द रस बहा रहा है।

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।

योनावृतस्य सीदत ॥ ६ ॥ २९ ॥

भा०—(समीचीनाः) समदर्शी पुरुष (हरिः) भवभय-नाशक प्रभु की (अनूषत) स्तुति करते हैं और वे (अद्रिभिः हरिं हिन्वन्ति) शिला खण्डों से ओषधि रस के सूक्ष्म गुण के समान (अद्रिभिः) विद्वानों द्वारा (हिन्वन्ति) उसको बढ़ाते हैं। आप लोग (ऋतस्य योनिम् आ सीदत) सत्य के विचारार्थ एक साथ बैठें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[४०]

बृहन्मतिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३—६ निचृद् गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः।

शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

भा०—(विचर्षणिः) लोकों का द्रष्टा (पुनानः) पवित्रकारक वह (विश्वाः मृधः) सब बाधक वृत्तियों का (अभि अक्रमीत्) आगे बढ़कर

साम्मुख्य करता है। सब लोग उसी (विप्रं) ज्ञानी पुरुष को (धीतिभिः शुम्भन्ति) उत्तम स्तुतियों द्वारा सुशोभित करते हैं।

आ योनिमरुणो रुहद् गमदिन्द्रं वृषा सुतः।
ध्रुवे सदसि सीदति ॥ २ ॥

भा०—(अरुणः) तेजोमय (वृषा) बलवान्, (सुतः) अति पवित्र स्वच्छ जीव (योनिम्) आश्रय रूप (इन्द्रम् आ रुहत्) प्रभु को प्राप्त हो और (सदसि) राजसभा में सभापति के समान उस (ध्रुवे) ध्रुव, (सदसि) शरण योग्य परमेश्वर में (सीदति) स्थिति प्राप्त करे।

नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) रसस्वरूप ! (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (नू) तू शीघ्र ही (विश्वतः) सब ओर से (महान्) महान् (सहस्रिणं) हजारों के स्वामी (रयिम्) ऐश्वर्यवान् को (नः आ पवस्व) हमें प्राप्त करा।

विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीन्दवा भर।
विदाः सहस्रिणीरिषः ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान सोम) पवित्र सर्वशक्तिमन् ! तू (विश्वा द्युम्नानि) समस्त ऐश्वर्य (नः आ भर) हमें प्राप्त करा और हमारी (सहस्रिणीः इषः विदाः) सहस्रों इच्छाओं को पूर्ण कर।

स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम्।
जरितुर्वर्धया गिरः ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह तू (पुनानः) हमें पवित्र करता हुआ (नः रयिं आ भर) ऐश्वर्य प्राप्त करा और (स्तोत्रे सुवीर्यम् आ भर) स्तुतिकर्त्ता को बल दे। (जरितुः गिरः वर्धय) स्तोता की वाणियों को बढ़ा।

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम्।
वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ॥ ६ ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हे (सोम) जगत्-सञ्चालक ! तू (नः) हमें (द्वि-बर्हसम्) दोनों लोकों में बढ़ने वाला (रयिम्) ऐश्वर्य प्रदान कर। हे (वृषन्) बलवन् ! तू (नः) हमें (उक्थ्यम्) उत्तम ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त करा। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[४१]

मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३, ४, ५ गायत्री। २ ककुम्मती गायत्री। ६ निचृद् गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (गावः) देह में इन्द्रिय और सूर्य में किरणों के समान (भूर्णयः) क्षिप्रगामी (त्वेषाः) कान्तिमान् और (कृष्णाम् त्वचम् अप घ्नन्तः) काली त्वचा के समान घोर अज्ञान-अन्धकार को दूर करते हुए (अयासः) गमनशील, परिव्राजक हैं वे (अयासः) अनथक होकर (प्र अक्रमुः) आगे बढ़ें।

सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् ।
साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥

भा०—हम (अव्रतम् दस्युम्) नियमादि से रहित दुष्ट को (साह्वांसः) पराजित करते हुए (सुवितस्य) सुखजनक कार्य के (सेतुम्) सेतुवत् पार करने वाले (दुराव्यम्) उस रक्षक की (अति मनामहे) पूजा करते हैं। अथवा—(सुवितस्य सेतुम्) शुभ फल के प्रतिबन्धक, (दुराव्यम्) दुःखदायी, (अव्रतम् दस्युम् साह्वांसः) कर्महीन दुष्ट जन को पराजित करते हुए हम (अति मनामहे) उसका खूब स्तम्भव करें।

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥

भा०—(दिवि विद्युतः चरन्ति) आकाश में बजुलियां चलती हैं और उस समय (वृष्टेः इवः स्वनः) वृष्टि के शब्द के समान (पवमानस्य शुष्मिणः) बली पापशोधक उसका (स्वनः) शब्द (शृण्वे) सुन पड़ता है।

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत्।
अश्वावद्वाजवत्सुतः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (सुतः) उपासित और अभिषिक्त होकर, (गोमत् अश्ववत् हिरण्यवत् महीम् इषं) गौ, अश्व, सुवर्ण से युक्त बड़े भारी अन्न और भूमि को (आ पवस्व) प्रदान कर।

स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण।
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

भा०—(उषाः रश्मिभिः सूर्यः न) दिन में रश्मियों से सूर्य के समान तू (मही रोदसी) आकाश और भूमि दोनों को (आ पृण) पूर्ण कर और हे (विचर्षणे) विश्व के द्रष्टः! तू (सः आ पवस्व) वह हमें प्राप्त हो।

परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः।
सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥ ३१ ॥

भा०—(रसा इव विष्टपम्) मेघ जैसे इस लोक को जल से व्यापता है वैसे ही हे (सोम) ऐश्वर्यदाता! तू (नः) हमें (शर्मयन्त्या धारया) सुख का वाणी और सम्पदा से (विश्वतः) सब ओर से (सर) प्राप्त हो। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[४२]

मेध्यातिथिर्ऋषिः पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद् गायत्री। ३, ४, ६ गायत्री। ५ ककुम्मती गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

जनयन्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम्।
वसानो गा अपो हरिः ॥ १ ॥

भा०—(हरिः) सञ्चालक प्रभु (दिवः रोचना जनयन्) आकाश के तुल्य तेजोयुक्त पदार्थों को उत्पन्न करता है। वह (सूर्यम्) सूर्य को

(अप्सु) अन्तरिक्ष में (जनयन्) उत्पन्न करता है। वह (हरिः) दुःखहारी प्रभु (गाः अपः वसानः) भूमियों को जल से आच्छादित करता है।

एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि।

धारया पवते सुतः ॥ २ ॥

भा०—(एषः सुतः) जगत् का उत्पादक प्रभु (देवः) सुखों का दाता (प्रत्नेन) अनादि (मन्मना) ज्ञानमय वेद से (देवेभ्यः) जिज्ञासुओं के लिये (धारया परि पवते) वेदवाणी से ज्ञान प्रदान करता है।

वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये।

सोमाः सहस्रपाजसः ॥ ३ ॥

भा०—(सहस्र-पाजसः) सहस्र बलों वाले (सोमाः) ऐश्वर्यवान् राजागण (वाज-सातये) संग्राम के लिये और (वावृधानाय तूर्वये) बढ़ते और वेगवान् संग्राम के लिये (पवन्ते) जाते हैं।

दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते।

क्रन्दन्देवाँ अजीजनत् ॥ ४ ॥

भा०—(प्रत्नम् पयः) सर्वश्रेष्ठ बल वीर्य युक्त पुरुष (दुहानः) राष्ट्र को सुख से भरता हुआ (पवित्रे परि षिच्यते) राष्ट्र शोधन में अभिषिक्त होता है। वैसे ही यह साधक भी 'प्रत्न' परम रस को परब्रह्म में प्राप्त करता हुआ परिष्कृत होता है। वह (क्रन्दन्) स्तुति वा उपदेश करता हुआ (देवान् अजीजनत्) शुभ गुणों को उत्पन्न करता है।

अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः।

सोमः पुनानो अर्षति ॥ ५ ॥

भा०—(ऋतावृधः) सत्य से बढ़ने वाले (देवान्) ज्ञानाभिलाषी जनों के प्रति और (विश्वानि वार्या अभि) समस्त वरण करने योग्य पदों के प्रति (पुनानः सोमः) आदरपूर्वक अभिषिक्त होता हुआ विद्वान् पुरुष (अभि अर्षति) प्राप्त होता है।

गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः ।
पवस्व बृहतीरिषः ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (नः बृहती: इषः) बहुत अन्न और सुख हमें (पवस्व) प्रदान कर और (नः) हमें (गोमत् वीरवत् अश्ववत् वाजवत्) गौओं, वीरों, अश्वों, बलों और ऐश्वर्यों से युक्त राष्ट्र को (सुतः) स्वयं अभिषिक्त होकर प्राप्त करा। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[४३]

मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ गायत्री । ३, ६ निचृद् गायत्री ॥

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः ।
तं गीर्भिर्वासयामसि ॥ १ ॥

भा०—(अत्यः इव गोभिः) जैसे अश्व उत्तम चाल से शोभित होता है वैसे ही (यः) जो प्रभु (मदाय) आनन्द के लिये (हर्यतः) कान्तिमान् होकर (गोभिः) वाणियों द्वारा (मृज्यते) परिष्कृत होता है (तं) उसको हम (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (वासयामसि) अलंकृत करें ।

तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

भा०—(इन्द्राय पीतये) महान् ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (नः) हमारी (अवस्युवः) प्रीतियुक्त (गिरः) स्तुतियां (तं) उस (इन्दुम्) ऐश्वर्ययुक्त प्रभु को (पूर्वथा) पूर्ववत् (शुम्भन्ति) शोभित करती हैं ।

पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः ।
विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥ ३ ॥

भा०—(मेध्यातिथेः) पवित्र अतिथिवत् पूज्य (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष की (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (परिष्कृतः) उपदिष्ट (हर्यतः) प्रकाशमान (सोमः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुनानः याति) हमें पव करता हुआ प्राप्त हो

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् ।
इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान) पावन ! (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्मभ्यम्) हमें (सुश्रियं रयिम् विद) उत्तम कान्तियुक्त ऐश्वर्य प्राप्त करा । हे (सोम) सर्वप्रेरक ! तू (सहस्र-वर्चसम् रयिम् विद) सहस्र तेजों वाला ऐश्वर्य हमें दे ।

इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रन्ति पवित्र आ ।
यदक्षारति देवयुः ॥ ५ ॥

भा०—(वाजसृत् अत्यः) संग्राम में जाने वाले अश्व के तुल्य (देवयुः) विद्वानों को चाहने वाला, (यत्) जब तू (पवित्रे) पवित्र पद पर (इन्दुः) अति प्रसन्न होकर (कनिक्रन्तिः) शासन करता है तब (अति अक्षाः) सबसे बढ़ जाता है ।

पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे ।
सोम रास्व सुवीर्यम् ॥ ६ ॥ ३३ ॥ ८ ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (गृणतः विप्रस्य) स्तुति करने वाले विद्वान् जन को (वाज-सातये) ऐश्वर्य देने और उसकी (वृधे) वृद्धि के लिये (पवस्व) प्राप्त हो और (सु-वीर्यम् रास्व) उत्तम बल दे । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति षष्ठोऽष्टकः समाप्तः

सप्तमोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

(नवमे मण्डले द्वितीयेऽनुवाके)

[४४]

अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री ॥
२—६ गायत्री ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

प्र णं इन्दो महे तनं ऊर्मिं न बिभ्रंदर्षसि ।
अभि देवाँ अयास्यंः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अयास्यः) प्राण रूप होकर (महे तने) महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (ऊर्मिं न) तरंग के समान उत्साह को धारण करता हुआ, (नः देवान् अभि अर्षसि) तुझे चाहने वाले हमें प्राप्त हों।

मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति ।
विप्रस्य धारया कविः ॥ २ ॥

भा०—वह (मती जुष्टः) उत्तम बुद्धि द्वारा प्रेम से सेवित और (धिया हितः) कर्म से धारित, (कविः सोमः) क्रान्तदर्शी सबका उत्पादक (परावति) दूर रह कर भी (विप्रस्य धारया) बुद्धिमान् पुरुष की वाणी द्वारा (हिन्वे) स्तुति किया जाता है ।

अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ ।
सोमो याति विचर्षणिः ॥ ३ ॥

भा०—(अयं) यह (देवेषु) विद्वानों में (जागृविः) जागरणशील (पवित्रे आ एति) पवित्र हृदय में प्रकट होता है, वह (विचर्षणिः) विशेष द्रष्टा (सोमः) शास्ता होकर (याति) सर्वत्र जाता है ।

स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम् ।
बर्हिष्माँ आ विवासति ॥ ४ ॥

भा०—जो तू (वाजयुः) ऐश्वर्य और बल को चाहता हुआ, (चारुम् अध्वरं चक्राणः) उत्तम यज्ञ को करता हुआ (बर्हिष्मान्) इस लोक का स्वामी होकर (आ विवासति) सर्वत्र व्याप्त है (सः) वह तू (नः पवस्व) हमें प्राप्त हो ।

स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः ।
सोमो देवेष्वा यमत् ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह (विप्र-वीरः) विद्वान् मेधावी जनों में वीर्यवान् (सोमः) शासक जन (देवेषु) प्राणों या इन्द्रियों में मुख्य प्राण वा आत्मा के तुल्य (सदावृधः) सदा बढ़ाने वाला होकर (नः) हमें (वायवे) वायुवत् बल और (भगाय) ऐश्वर्य के लिये (आ यमत्) व्यवस्था में बांधे ।

स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद् गातुवित्तमः ।
वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह तू (क्रतुवित) कर्म को प्राप्त करने वाला और स्वयं (गातुवित्-तमः) ज्ञान का सबसे उत्तम ज्ञाता और मार्ग का उत्तम उपदेष्टा (नः अद्य) हमें आज (बृहत् श्रवः वाजं) महान् श्रवणीय ज्ञान, भोग्य धन (जेषि) जीत कर प्रदान कर । इति प्रथमो वर्गः ॥

[४५]

अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता छन्दः—१, ३—५ गायत्री । २ विराड् गायत्री । ६ निचृद् गायत्री ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (सः) वह तू (नृचक्षाः) मनुष्यों का द्रष्टा है । तू (देव-वीतये) दानशील पुरुषों को प्राप्त करने के लिये और

(इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये एवं (मदाय) आनन्द प्राप्त करने के लिये (कं पवस्व) प्रजा पर सुख की वृष्टि कर।

स नो॑ अर्षाभि दू॒त्यं१ त्वमिन्द्रा॑य तोशसे।
दे॒वान्त्सखि॑भ्य आ वर॑म् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह तू (नः) हमारे (दूत्यं) दूत भाव अर्थात् ज्ञान-संदेश लाने के कार्य को (अभि अर्ष) कर। (त्वम् नः) तू हम (सखिभ्यः) मित्रों के लाभार्थ और (इन्द्राय तोशसे) ऐश्वर्य प्राप्त कराने के लिये हमें (देवान्) विद्वान् पुरुषों तक (वरं तोशसे) उत्तम रीति से पहुँचा।

उ॒त त्वाम॑रु॒णं व॒यं गोभि॑रञ्ज्मो॒ मदा॑य॒ कम्।
वि नो॑ रा॒ये दुरो॑ वृधि ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और (वयं) हम (त्वाम् अरुणं) तुझ तेजस्वी को (कम् मदाय) हर्ष के लिये (गोभिः अञ्ज्मः) वाणियों द्वारा प्रकाशित करते हैं। तू (नः) हमारे (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के (दुरः) द्वार (वि वृधि) खोल।

अत्यू॑ प॒वित्र॑मक्रमीद्वा॒जी धुरं॒ न याम॑नि।
इन्दु॑र्दे॒वेषु॑ पत्यते ॥ ४ ॥

भा०—(इन्दुः) वह ऐश्वर्यवान् (देवेषु) इन्द्रियों में आत्मा के समान समस्त विद्वानों में स्वामिवत् रहता है। वह (वाजी) बलवान्, (यामनि) मार्ग चलने में (धुरम्) धुरों में अश्व के समान (पवित्रम्) परमात्मा की ओर (अति अक्रमीत्) पहुँच जाता है।

सम॒ी सखा॑यो अस्वर॒न्वने॒ क्रीळ॑न्त॒मत्य॑विम्।
इन्दुं॑ ना॒वा अ॑नूषत ॥ ५ ॥

भा०—(वने) प्राकृत जगत् में (क्रीडन्तं) अनायास संसार का सञ्चालन करते हुए (इन्दुम्) उस ऐश्वर्यवान् की (सखायः) मित्र जन (नावा) वाणी द्वारा (सम् अस्वरन्) स्तुति गावें और उस (अति अविम्) परम रक्षक की वाणी द्वारा (अनूषत) सदा स्तुति करें।

तया॑ पवस्व॒ धार॑या॒ यया॑ पी॒तो वि॒चक्ष॑से।
इन्दो॑ स्तो॒त्रे सु॒वीर्य॑म् ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) दयालो ! (यया पीतः) तू जिससे प्रसन्न होकर (विचक्षसे स्तोत्रे) ज्ञानवान् स्तुतिकर्त्ता को (सुवीर्यं) उत्तम बल देता है, तू (तया धारया) उस वाणी से (पवस्व) हमें भी ज्ञान-बल दे। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[४६]

अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ६ निचृद् गायत्री । ३, ५ गायत्री ॥ षड्डृचं सूक्तम् ॥

असृ॑ग्रन्दे॒ववी॑तये॒ऽत्यासः॒ कृत्व्या॑ इव । क्षर॑न्तः पर्वता॒वृधः॑ ॥१॥

भा०—वे (कृत्व्याः इव अत्यासः) कर्म कुशल अश्वों के समान (क्षरन्तः पर्वताः) झरते हुए मेघों और भूमियों को सेंचते हुए पर्वतों के समान (वृधः) प्रजाओं की वृद्धि करने वाले जन (देव-वीतये) प्रजाजनों की रक्षार्थ (असृग्रन्) तैयार किये जावें ।

परि॑ष्कृतास॒ इन्द॑वो॒ योषे॑व॒ पित्र्या॑वती । वा॒युं सोमा॑ असृक्षत ॥२॥

भा०—(पित्र्यावती योषा इव) पिता वाली कन्या जैसे (सोमा) वीर्यवती होकर (वायुम्) बलवान् वर के पास (परिष्कृता असृक्षत) अलंकृत होकर जाती है वैसे ही (इन्दवः) निष्णात (सोमाः) ब्रह्मचारी गण (परिष्कृतासः) अलंकृत, नव वस्त्र क्षौर आदि से पवित्र होकर (वायुम् असृक्षत) ज्ञानी गुरु को प्राप्त होते हैं ।

ए॒ते सोमा॑स॒ इन्द॑वः॒ प्रय॑स्वन्तश्च॒मू सु॒ताः ।
इन्द्रं॑ वर्धन्ति॒ कर्म॑भिः ॥ ३ ॥

भा०—(एते) ये (सोमासः) बल-वीर्य से युक्त, (इन्दवः) तेजस्वी (सुताः) अभिषिक्त, (प्रयस्वन्तः) विशेष यत्नशील जन, (चमू) सेना में नियुक्त होकर (कर्मभिः) अपने २ कर्मों से (इन्द्रं वर्धन्ति) सेनापति को बढ़ाते हैं ।

आ धा॑वता सुहस्त्यः शुक्रा गृ॑भ्णीत म॒न्थिना॑।
गोभि॑ः श्रीणीत मत्स॒रम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुहस्त्यः) सिद्धहस्त जनों! आप लोग (आ धावत) आगे बढ़ो और (मन्थिना) शत्रुओं वा विघ्नों को नष्ट करने वाले गुरु वा सेनापति के साथ मिलकर (शुक्रा गृभ्णीत) बलों तथा ऐश्वर्यों को ग्रहण करो और (गोभिः मत्सरम् श्रीणीत) दुग्ध में तृप्तिकारक अन्न मिला कर सेवन करो।

स प॑वस्व धनञ्जय प्रय॒न्ता राध॑सो म॒हः।
अ॒स्मभ्य॑ं सोम गातु॒वित् ॥ ५ ॥

भा०—हे (धनञ्जय) ऐश्वर्य का विजय करने वाले! हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! (सः) वह तू (अस्मभ्यम्) हमें (महः राधसः प्रयन्ता) महान् धन का दाता और (गातुवित्) मार्ग का बतलाने वाला होकर (पवस्व) हम पर कृपा कर।

ए॒तं मृ॑जन्ति॒ मर्ज्य॑ं पव॑मानं॒ दश॒ क्षिप॑ः।
इन्द्रा॑य मत्स॒रं मद॑म् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—(दश क्षिपः) दश दिशाओं के शत्रुओं को उखाड़ देने वाली सेनाएं, विवेकशील दश अमात्य-प्रकृतिएं (एतं) इस (मर्ज्यं) अभिषेक योग्य (पवमानं) राज्यकण्टक शोधक (मदं) आनन्दकारक, (मत्सरं) प्रजा हर्षक पुरुष को (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त पद के लिये (मृजन्ति) अभिषिक्त करती हैं। इति तृतीयो वर्गः ॥

[४७]

कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता। छन्दः—१, ३, ४ गायत्री। २ निचृद् गायत्री। ५ विराड् गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अ॒या सोम॑ः सुकृ॒त्यया॑ म॒हश्चि॑द॒भ्य॑वर्धत। म॒न्दा॒न उद्वृ॑षायते ॥ १ ॥

भा०—(अया सुकृत्यया) इस शुभ कर्म-प्रणाली वा प्रजा से (सोमः) वह विद्वान् पुरुष, (महः चित्) बहुत अधिक (अभि अवर्धत) बढ़ जाता

है और (मन्दानः) अति हर्षयुक्त, (इत् वृषायते) उत्तम पद पर होकर अधिक बलशाली हो जाता है।

कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा। ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥२॥

भा०—(अस्य) इसके (दस्यु-तर्हणा) दुष्ट नाशक (कर्त्वा) कर्त्तव्य और (कृतानि इत्) किये कार्य भी (चेतन्ते) सबको विदित हो जाते हैं और वह (धृष्णु) शत्रुधर्षक वीर (ऋणा च चयते) धनों का संग्रह भी कर लेता है।

आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत्।
उक्थं यदस्य जायते ॥ ३ ॥

भा०—(यत् अस्य) जब उसका (उक्थं जायते) वचन होता है (आत्) अनन्तर ही (अस्य) उसका (सोमः) सर्वशासक (इन्द्रियः) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्य पद के योग्य (रसः) बल और (वज्रः) वीर्य (सहस्रसाः) सहस्रों का देने वाला (भुवत्) प्रकट होता है।

स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति।
यदी मर्मृज्यते धियः ॥ ४ ॥

भा०—(यदी) जब वह (धियः) उत्तम बुद्धियों द्वारा (मर्मृज्यते) शुद्ध हो जाता है, तब वह (स्वयं) अपने आप (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (वि-धर्त्तरि) विशेष धारक पद पर विराज कर (विप्राय) गुरु जन के लिये (रत्नम् इच्छति) उत्तम धन देना चाहता है।

सिषासतू रयीणां वाजेष्वर्वतामिव। भरेषु जिग्युषामसि ॥५॥४॥

भा०—(भरेषु) भरण करने योग्य (जिग्युषाम्) विजयशील (वाजेषु) संग्रामों में (अर्वताम् इव) घोड़ों के लिये घास के समान जान देने वालों के लिये तू (रयीणाम् सिषासतुः असि) ऐश्वर्यों का देने वाला है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[५१]

उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३—५ निचृद् गायत्री ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) विद्वन् ! तू (अद्रिभिः) शस्त्र बलों वा मेघ समान कलशों से (सुतं) अभिषिक्त (सोमं) शासक को (पवित्रे आ सृज) पवित्र पद पर नियुक्त कर और उसे (इन्द्राय पातवे) ऐश्वर्य पद के उपभोग के लिये (पुनीहि) अभिषिक्त कर ।

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ २ ॥

भा०—(वज्रिणे इन्द्राय) समस्त शक्ति के स्वामी राज्य पद के लिये (दिवः पीयूषम्) आकाश की शोभा बढ़ाने वाले सूर्य वा चन्द्र के तुल्य तेजस्वी, प्रजाजन की वृद्धि करने वाले (सोमम्) ऐश्वर्ययुक्त, (मधुमत्तमम्) मधुर-स्वभाव पुरुष को (सुनोत) अभिषिक्त करो ।

तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नुते ।
पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (पवमानस्य मरुतः) जलवर्षी वायु के समान सुखों के वर्षक (तव) तेरे (अन्धसः) अन्न और (मधोः) जल को (देवाः) सब मनुष्य (वि अश्नुते) प्राप्त करते और उपभोग करते हैं ।

त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये ।
वृषन्त्स्तोतारमूतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे (वृषन्) बलशालिन् ! (त्वं हि) तू (सुतः) अभिषिक्त एवं ऐश्वर्य का स्वामी होकर (स्तोतारम्) तेरे गुणों की स्तुति करने वाले (मदाय) सुख, (भूर्णये) पालन और (ऊतये) रक्षा के लिये उसे (वर्धयन्) बढ़ाता रह । और—

अभ्यर्षं विचक्षण पवित्रं धारया सुतः ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—हे (विचक्षण) विवेकशील ! तू (सुतः) अभिषिक्त होकर (धारया) वाणी और शक्ति द्वारा (पवित्रं) न्यायासन के पवित्र पद को, (उत वाजं श्रवः) और ऐश्वर्य बल एवं प्रसिद्ध को भी (अभि अर्ष) प्राप्त हो । इति अष्टमो वर्गः ॥

[५२]

उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिग्गायत्री । २ गायत्री । २ गायत्री । ३, ५ निचृद गायत्री । ४ विराड् गायत्री ॥

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अन्धसा ।
सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥ १ ॥

भा०—(द्युक्षः) तेजस्वी, (सनद्-रयिः) ऐश्वर्य का दाता उदार पुरुष ही (नः) हमें (अन्धसा) अन्न के साथ २ (वाजं परि भरत) ऐश्वर्य और बल प्रदान करे । हे शासक ! तू (पवित्रे) पवित्र पद पर (सुवानः) शासन करता हुआ (आ अर्ष) आदरपूर्वक आ ।

तव प्रत्नेभिरध्वभिरव्यो वारे परि प्रियः ।
सहस्रधारो यात्तना ॥ २ ॥

भा०—हे (शास्तः) राष्ट्रजन ! (तव) तेरा (प्रियः) प्यारा, (अव्यः) रक्षा कुशल जन (प्रत्नेभिः अध्वभिः) पुरातन से चले आये मार्गों से (वारे) श्रेष्ठ पद पर (सहस्र-धारः) सहस्र खड्ग-धाराओं का स्वामी होकर (तना) नाना ऐश्वर्य (यात्) प्राप्त करे ।

चरुर्न यस्तमीङ्खयेन्दो न दानमीङ्खय । वधैर्वधस्नवीङ्खय ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (यः चरुः न) जो अन्न के समान सुखदायक है तू (तम् ईङ्खय) उसे हमें दे और तू (दानं न) दानशील को भी (ईङ्खय) प्रेरित कर और हे (वधस्नो) शत्रुवध के अनन्तर स्नान करने वाले ! तू (वधैः) नाना दण्डों के बल पर (ईखय) राष्ट्र को सञ्चालित कर ।

नि शुष्ममिन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् ।
यो अस्माँ आदिदेशति ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (अस्मान् आदिदेशति) हम पर अधिकार चलाता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! वह तू हे (पुरुहूत) बहुतों से स्वीकृत ! (एषां जनानाम् शुष्मम्) इन वस्तुओं के बल को (नि इंश्चय) अपने अधीन रख ।

शतं न इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् ।
पवस्व मंहयद्रयिः ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (मंहयद्-रयिः) ऐश्वर्यों का देने वाला होकर (ऊतिभिः) अपनी रक्षाओं से (शुचीनां शतं सहस्रं वा नः पवस्व) सौ वा सहस्र शुद्ध व्यवहारों को प्रवृत्त करा । इति नवमो वर्गः ॥

[५३]

प्रवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् गायत्री । २, ४ गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) सैन्यों के स्वामिन् ! (ते शुष्मासः) तेरे बल (रक्षः भिन्दन्तः) दुष्टों को छिन्न-भिन्न करते हुए (उत् अस्थुः) उन्नत हों और (याः) जो (परि-स्पृधः) स्पर्धा करने वाले शत्रु हों उन्हें (नुदस्व) दूर कर ।

अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते ।
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥

भा०—हे स्वामिन् ! (रथ-सङ्गे) रथों वा रमणीय पदार्थों के और (हिते धने) हितकारी धन के निमित्त मैं (अया ओजसा) इस पराक्रम से (निजघ्निः) शत्रुओं का नाश करने और आगे बढ़ने वाला होकर (अबिभ्युषा हृदा) भयरहित चित्त से (स्तवै) तेरी स्तुति करता हूँ ।

अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।
रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (पवमानस्य) राष्ट्र को निष्कण्टक करके अभिषिक्त होने वाले शासक के (व्रतानि) कार्य (दूढ्या) दुष्ट चित्त जन से कभी (न दाधृषे) तिरस्कृत न हों। (यः त्वा पृतन्यति) जो तुझसे सेना लेकर युद्ध करता है तू उसे पीड़ित कर।

तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् ।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥ १० ॥

भा०—(इन्द्राय) राज्य के लिये (मत्सरम्) हर्षयुक्त (इन्दुम्) अभिषेक योग्य, (हरिं) दुःखहारी (वाजिनं) बलवान्, (मदच्युतं) हर्षप्रद (तं) उस पुरुष को (नदीषु) नदियों के समान समृद्ध प्रजाओं में (हिन्वन्ति) बढ़ावें। इति दशमो वर्गः ॥

[५४]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ गायत्री । ३ निचृद् गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥

भा०—(अस्य) इस शास्ता की (प्रत्नाम् द्युतम् अनु) सनातन से चली आई ज्ञान-दीप्ति का अनुकरण करके (अह्रयः) विवेचक लोग (सहस्रसाम् ऋषिम्) सहस्रों मन्त्रों का ज्ञान देने वाले (ऋषिम्) मन्त्रद्रष्टा से (शुक्रं पयः दुदुह्रे) शुद्ध दुग्धवत् ज्ञान को प्राप्त करें।

अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति ।
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥

भा०—(सूर्यः इव) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अयं) यह (उपदृग्) सूक्ष्मदर्शी हो। (सरांसि) जल जैसे तालों में रहता है और जैसे चन्द्र या सोम ओषधि अपर पक्ष के दिन रात्रियों में लुप्त हो जाता

है वैसे ही (अयं) वह (सरांसि) उत्तम ज्ञानों और बलों को (धावति) प्राप्त हो और (दिवम् आ) तेज को प्राप्त होकर सूर्यवत् ही तू (सप्त स्रवतः) सातों प्रकृतियों को भी प्राप्त हो। सात प्रकृति, सात अमात्य।

अ॒यं विश्वा॑नि तिष्ठति पुना॒नो भुव॑नो॒परि॑।
सोमो॑ दे॒वो न सूर्यः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(देवः सूर्यः न) तेजस्वी सूर्य के समान, (अयं सोमः) यह ईश्वर (विश्वानि भुवना पुनानः) समस्त लोकों को पवित्र करता हुआ, सबके (उपरि तिष्ठति) ऊपर विराजता है।

परि॑ णो दे॒ववी॑तये॒ वाजाँ॑ अर्षसि॒ गोम॑तः।
पु॒ना॒न इ॑न्द॒विन्द्र॒युः ॥ ४ ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (इन्द्रयुः) ऐश्वर्य को चाहता हुआ (पुनानः) अभिषिक्त होकर (देव-वीतये) उत्तम मनुष्यों की रक्षा के लिये (गोमतः वाजान् नः परि अर्षसि) गो, भूमि आदि से युक्त ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा। इत्येकादशो वर्गः ॥

[५५]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री। ३, ४ निचृद् गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यवं॑यवं नो॒ अन्ध॑सा पु॒ष्टम्पु॑ष्टं॒ परि॑ स्रव।
सोम॒ विश्वा॑ च॒ सौभ॑गा ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (अन्धसा) अन्न से (पुष्टम्-पुष्टम्) खूब पुष्टि और (यवं-यवं) यव आदि अन्न और (विश्वा च सौभगा) सब उत्तम ऐश्वर्य (परिस्रव) प्रदान कर।

इन्दो॒ यथा॒ तव॒ स्तवो॒ यथा॑ ते जा॒तमन्ध॑सः।
नि ब॒र्हिषि॑ प्रि॒ये सदः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (अन्धसः) प्राणधारक (तव) तेरी जैसी (स्तवः) स्तुति है और (यथा ते जातम्) जैसा तेरा स्वभाव है, वैसा ही तू (प्रिये बर्हिषि) प्रिय आसन पर प्रतिष्ठित परस्पर (नि सदः) विराज ।

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा ।

मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (मक्षूतमेभिः अहभिः) अति शीघ्र दिनों में ही तू (नः गोवित् अश्ववित्) गौओं और अश्वों का देने वाला हो । तू (अन्धसा पवस्व) अन्न से हम पर कृपा कर ।

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।

स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ १२ ॥

भा०—(यः जिनाति) जो शत्रुओं का नाश करता है और (शत्रुम् अभीत्य) शत्रु पर आक्रमण करके (न जीयते) स्वयं नष्ट नहीं होता (सः) वह तू (सहस्रजित्) अपरिमित धनों का जेता (पवस्व) हमें भी धन प्रदान कर । इति द्वादशो वर्गः ॥

[५६]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३ गायत्री । ४ यवमध्या गायत्री ॥

परि सोम ऋतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति ।

विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

भा०—(रक्षांसि विघ्नन्) दुष्टों को नष्ट करता हुआ (देवयुः) विद्वानों को चाहता हुआ (सोमः) शासक पुरुष (आशुः) कार्य कुशल होकर (पवित्रे) पवित्र पद पर स्थित होकर (ऋतं बृहत्) बहुत अन्न, धन (परि अर्षति) प्राप्त करता है ।

यत्सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः ।

इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जब (शतं) सौ, अनेक आत्मा (अपस्युवः) कर्म-कुशल (धाराः) वाणियां (इन्द्रस्य) आत्मा के (सख्यम् आविशन्) मित्र भाव को प्राप्त होती हैं तब उनमें (सोमः वाजम् अर्षति) ईश्वर बल और शक्ति करता है।

अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत ।
मृज्यसे सोम सातये ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) अभिषेक योग्य ! (जारं न) स्तुति योग्य पुरुष को जैसे (कन्या) कन्या की स्तुति करती है वैसे ही (दश योषणः) दश प्रीतियुक्त प्रजाएं (जारं) शत्रुनाशक तुझको लक्ष्य कर (अनूषत) स्तुति करती हैं। तू (सातये) धन लाभ और न्याय के लिये (मृज्यसे) अभिषिक्त किया जाता है।

त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव ।
नॄन्त्स्तोतॄन्पाह्यंहसः ॥ ४ ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् और (विष्णवे) शक्तिशाली पद के लिये (स्वादुः) उत्तम भोक्ता के तुल्य (परिस्रव) प्राप्त हो और (स्तोतॄन् नॄन्) स्तोता मनुष्यों को (अंहसः पाहि) पाप से बचा। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[५७]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ गायत्री । २ निचृद् गायत्री । ४ ककुम्मती गायत्री ॥

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

भा०—हे शासक ! (दिवः वृष्टयः न) आकाश से जैसे वृष्टियां (वाजं प्र यन्ति) अन्न को प्राप्त होती हैं वैसे ही (असश्चतः ते) संगरहित तेरी (धाराः) वाणियां और शक्तियां (सहस्रिणं वाजं अच्छ प्र यन्ति) सहस्रों ऐश्वर्य प्राप्त करती या प्रदान करती हैं।

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥

भा०—(हरिः) दुःखहर्ता (आयुधा) शस्त्रों को (तुञ्जानः) शत्रुओं पर चलाता हुआ, (विश्वा काव्या) सब प्रकार के विद्वानों के कार्यों को (चक्षाणः) देखता हुआ (प्रियाणि अभि अर्षति) सब प्रिय पदार्थों को प्राप्त करता है ।

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।
श्येनो न वंसु षीदति ॥ ३ ॥

भा०—(इभः राजा इव) राजा के समान निर्भय होकर (सु-व्रतः) उत्तम कर्मकर्त्ता, (आयुभिः) मनुष्यों द्वारा (मर्मृजानः) अभिषिक्त (श्येनः न) सूर्यवत् होकर (वंसु सीदति) ऐश्वर्यों में विराजता है ।

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।
पुनान इन्दवा भर ॥ ४ ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (दिवः उतो पृथिव्याः अधि) अन्तरिक्ष और पृथिवी के (विश्वा वसु) सब ऐश्वर्यों को (नः) हमें (सः) वह तू (पुनानः) पवित्र करता हुआ (आ भर) प्रदान कर । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[५८]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् गायत्री ॥ २ विराड् गायत्री । ४ गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥

भा०—(सुतस्य) जल से अभिषिक्त वा वाणी से स्तुत (अन्धसः) अन्नवत् पोषाक स्वामी की (धारा) वाणी से (मन्दी) स्तुति करने वाला पुरुष (तरत्) सब पाप तर जाता है और (सः) वह (धावति) उत्तम गति को प्राप्त होता है । (सः मन्दी) वह हर्ष युक्त होकर (तरत्) दुःखों से पार हो जाता है, (धावति) अपने को शुद्ध कर लेता है ।

उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः।

तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥

भा०—उस (अवसः) रक्षाकारी पुरुष की (उस्रा) उन्नत (देवा) सुख देने वाली वाणी (मर्त्तस्य) मनुष्य को (वसूनां वेद) नाना धन प्राप्त कराती है। (मन्दी) स्तुतिशील (सः) वह (तरत्) सब दुःखों को पार करता और (धावति) अपने को शुद्ध करता है।

ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे।

तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥

भा०—(ध्वस्रयोः) दुःखनाशक और (पुरुषन्त्योः) ऐश्वर्य दाता परमात्मा के हम (सहस्राणि) अनेक ऐश्वर्य (आ दद्महे) प्राप्त करें। (सः मन्दी तरत् धावति) वह स्तुतिकर्त्ता दुःखों से तर जाता है।

आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे।

तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ १५ ॥

भा०—(ययोः) जिन दोनों आत्मा और परमात्मा के (त्रिंशतं सहस्राणि तना आ दद्महे) ३० सहस्र ऐश्वर्य हम प्राप्त करते हैं। (सः मन्दी तरत्) वह स्तुति कर्त्ता पापों से मुक्त हो जाता है और (धावति) पवित्र हो जाता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[५९]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २ आर्ची स्वराड् गायत्री । ३, ४ निचृद् गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित्सोम रण्यजित्।

प्रजावद्रत्नमा भर ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (गोजित् अश्वजित् विश्वजित्) गौ, अश्वों और विश्व का विजेता और (रण्य-जित्) रण से प्राप्त ऐश्वर्य का विजेता होकर हमें (प्रजावत् रत्नम् आभर) प्रजा युक्त ऐश्वर्य दे।

पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः पवस्वौषधीभ्यः ।

पवस्व धिषणाभ्यः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू (अदाभ्यः) पीड़ित न होकर (अद्भ्यः) जलों से, (ओषधीभ्यः) औषधियों से और (धिषणाभ्यः) बुद्धियों से हमें (पवस्व) पवित्र कर ।

त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर ।

कविः सीद नि बर्हिषि ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः ! (त्वं पवमानः) स्वयं पवित्र होकर (विश्वानि दुरिता) समस्त पापों को (तर) पार कर । तू (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (बर्हिषि) उत्तमासन पर (नि सीद) विराज ।

पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान् ।

इन्दो विश्वाँ अभीदसि ॥ ४ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) अभिषिक्त ! तू (जायमानः महान् अभवः) प्रकट होकर ही बड़ा हो जाता है । हे (पवमान) तू (विश्वान् अभि इत् असि) सबको अपने वश में करने वाला हो । इति षोडशो वर्गः ॥

[६०]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ गायत्री । ३ निचृदुष्णिक् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षणिम् ।

इन्दुं सहस्रचक्षसम् ॥ १ ॥

भा०—(पवमानं) सबको पवित्र करने वाले (सहस्रचक्षसम्) सहस्रों आंखों वाले, (वि चर्षणिम्) विशेष द्रष्टा (इन्दुं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (गायत्रेण) गायत्री छन्द से (प्र गायत) खूब स्तुति करो ।

तं त्वा सहस्रचक्षसमथो सहस्रभर्णसम् ।

अति वारमपाविषुः ॥ २ ॥

भा०—(तं) इस (सहस्र-चक्षसम्) हजारों चक्षुओं वाले और (सहस्रभर्णसम्) सहस्रों के पालक (वारम् अति) आवरण के पार विराजमान (त्वा) तुझको (अपाविषुः) परिष्कृत करते हैं।

अति वारान्पवमानो असिष्यदत्कलशाँ अभि धावति।
इन्द्रस्य हार्द्याविशन् ॥ ३ ॥

भा०—(वारान्) आवरण रूप बाधक कारणों को पार करके (पवमानः) राष्ट्र को पवित्र करता हुआ स्वयं भी (कलशान् अभि धावति) अभिषेच्य जल से पूर्ण कलशों को प्राप्त करता है। वह (इन्द्रस्य हार्दि) राष्ट्र के हृदय में भीतर (आविशन्) प्रवेश करता है।

इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे।
प्रजावद्रेत आ भर ॥ ४ ॥ १७ ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः! हे (विचर्षणे) विश्व के द्रष्टा! (इन्द्रस्य राधसे) प्रजा के ऐश्वर्य के लिये (शं पवस्व) शान्त स्थापित कर और (प्रजावत् रेतः) प्रजा को बढ़ाने वाले बल को (आ भर) धारण कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[६१]

अमहीयुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ८, १०, १२, १५, १८, २२—२४, २९, ३० निचृद् गायत्री। २, ३, ६, ७, ९, १३, १४, १६, १७, २०, २१, २६—२८ गायत्री। ११, १९ विराड् गायत्री। २४ ककुम्मती गायत्री ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा। अवाहन्नवतीर्नव ॥१॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (अया वीती) इस नीति से, (परि स्रव) आगे बढ़ जिससे कि (ते यः) तेरा कोई भी साथी (मदेषु) संग्रामों में (नवतीः नव अवाहन्) ९०+९ अथवा ९०×९=८१० अर्थात् ९९ या ८१० शत्रु-नगरों का नाश कर सके।

पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥

भा०—(इत्था-धिये) निश्चित बुद्धि और सत्य कर्म वाले (दिवः दासाय) तेजस्वी पुरुष के सेवक प्रजा जन के हितार्थ (सद्यः) शीघ्र ही (शम्बरम्) शान्ति के नाशक (अध) और (त्य तुर्वशं यदुम्) हिंसाशील एवं यत्नवान् मनुष्य को वश में ला और (सद्यः) शीघ्र ही (पुरः) उसकी नगरियों को छिन्न भिन्न कर ।

परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्वविद्) अश्वों के विज्ञान के ज्ञाता, हे (इन्दो) कुशल विद्वन् ! तू (नः) हमें (अश्वम् परि क्षर) बल दे और तू (गोमत् हिरण्यवत) पशु सुवर्णादि से युक्त धन प्राप्त करा । तू (सहस्रणीः इषः नः परि क्षर) सहस्र अन्नसम्पदाओं और सत्इच्छाओं को दे ।

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥४॥

भा०—(पवमानस्य) अभिषेक को प्राप्त होते हुए, (पवित्रम् अभि) पवित्र पद को लक्ष्य करके (उन्दतः) जल क्लिन्न होते हुए वा (पवित्रम् अभि) राष्ट्रकण्टक के शोधन के लिये (अभि उन्दतः) प्रजा के प्रति दयार्द्र हुए (ते सखित्वम् आ वृणीमहे) तेरे मित्रभाव को हम चाहते हैं ।

ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया ।
तेभिर्नः सोम मृळय ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः ! (ये) जो (ते ऊर्मयः) तेरे उत्साहसम्पन्न जन (ते) तेरी (धारया) राष्ट्रधारक वाणी से प्रेरित होकर (अभि क्षरन्ति) सब ओर जाते हैं (तेभिः) उनसे (नः मृडय) हमें सुखी कर । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।
ईशानः सोम विश्वतः ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (विश्वतः ईशानः) सब जगत् का स्वामी है। (सः) वह तू (पुनानः) सुखों की वर्षा करता हुआ, (नः) हमें (वीरवतीम् इषम्) वीरों से युक्त अन्न, वृष्टि एवं (रयिम्) ऐश्वर्य (आ भर) दे।

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम्।
समादित्येभिरख्यत ॥ ७ ॥

भा०—(एतत् उ त्यं) उस (सिन्धु-मातरम्) नदियों के उत्पन्न मेघ के समान उदार पुरुष का (दश क्षिपः) दशों प्रजाएं (मृजन्ति) अभिषेक करती हैं। वह (आदित्येभिः) १२ मासों के सूर्य के समान (सम् अख्यत) दिखाई देता है।

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ।
सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ८ ॥

भा०—(पवित्रे सुतः) पवित्र राज्यपद पर अभिषिक्त युवराज, (इन्द्रेण, वायुना, सूर्यस्य रश्मिभिः सम् सम् आ एति) अग्नि या सूर्यवत् तेजस्वी, वायु के समान बलवान् और सूर्यकिरणों के समान दीप्त हो जाता है।

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्।
चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह तू (नः) हमारे (भगाय) ऐश्वर्य के लिये (वायवे) वायुवत् प्राणदाता और (पूष्णे) पोषणकारक, अन्नदाता के समान पद के लिये (मधुमान्) अन्न, बल और हर्षयुक्त होकर (पवस्व) अभिषिक्त हो और तू ही (मित्रे वरुणे च) स्नेही, रक्षकवत् सुखप्रद पद पर (चारुः) उत्तम रूप से प्राप्त हो।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे।
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—जैसे (दिवि सत् अन्धसः जातम्) आकाश में विद्यमान अन्न के जलमय रूप को (भूमिः) पृथिवी, (उग्रं शर्म) प्रबल शान्तिदायक (महि श्रवः) भारी अन्न सम्पदा के रूप में (आ ददे) प्राप्त करती है वैसे ही हे (सोम) वीर्यवन् ! (अन्धसः ते दिवि उच्चा जातम्) प्राणधारक तेरे राजसभा आदि के सर्वोपरि प्रकट रूप को (भूमिः) यह भूमि (उग्रं शर्म) प्रबल शरण और (श्रवः) यशोरूप में (आ ददे) प्राप्त करती है।

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।
परिसिषासन्तो वनामहे ॥ ११ ॥

११ भा०—(अर्यः) अपने स्वामी के हम (एना विश्वानि मानुषाणां द्युम्नानि) इन समस्त मनुष्यों के धन को (सिषासन्तः) विभक्त करते हुए (वनामहे) भोग करें अर्थात् सब राष्ट्रवासी समान रूप से रहें।

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवोवित्परि स्रव ॥१२॥

भा०—(सः) वह तू (नः) हमारे (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त पद के लिये (यज्यवे) हमें संगति में मिलाने वाला, एवं (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ होने के लिये (मरुद्भ्यः) और वीर पुरुषों के लिये (वरिवः वित्) ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाला होकर (परि स्रव) प्राप्त हो।

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १३ ॥

भा०—(जातम्) गुणों से अलंकृत, (अप्तुरम्) प्रजासञ्चालक, (भगं) शत्रुनाशक, (गोभिः परिष्कृतम्) वाणियों से अलंकृत (इन्दुं) अभिषिक्त पुरुष को (देवाः) सुख के अभिलाषी और व्यवहारों में कुशल जन (उपो सु अयासिषुः) सुखपूर्वक उसकी शरण में प्राप्त होते हैं।

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव।
य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रस्य) राज्य पद के (हृदंसनिः) मर्मस्थल में व्यापने वाला है (तम् इत्) उसको ही (नः गिरः) हमारी वाणियां

(संशिश्वरीः इव वत्सं) दुधार गौवें जैसे बच्छे को बढ़ाती हैं वैसे ही (वर्धन्तु) बढ़ावें।

अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—हे (सोम) शासक! तू (नः गवे शम् अर्ष) हमारी गौ, वाणी, इन्द्रिय एवं भूमि के लिये शान्ति दे। तू (नः) हमें (पिप्युषीम् इषम्) बढ़ाने वाली अन्न-सम्पद् (धुक्षस्व) दे। (उक्थ्यम् समुद्रम्) प्रशंसा योग्य समुद्रवत् गुण रत्नों से युक्त पुरुष को (वर्ध) बढ़ा। इति विंशो वर्गः ॥

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम्।
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १६ ॥

भा०—(पवमानः) पवित्रकारक प्रभु जैसे (दिवः) आकाश में (वैश्वानरं तन्यतुम् बृहत् ज्योतिः अजीजनत्) सबके सञ्चालक महान् सूर्य को उत्पन्न करता है वैसे ही राष्ट्र में यह (पवमानः) प्रजा के प्रति ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाला इस जन (दिवः) इस भूमि पर (चित्रं) आश्चर्यजनक, (न) और (तन्यतुम्) विस्तृत और (बृहत्) महान् (वैश्वानरं) मनुष्यों को आश्रय लेने योग्य (ज्योतिः) तेज को (अजीजनत्) प्रकट करता है।

पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः।
वि वारमव्यमर्षति ॥ १७ ॥

भा०—(पवमानस्य) प्रजा के प्रति दया आदि से दान करते हुए (ते रसः) तेरा बल (अदुच्छुनः) प्रजा को दुःखी न करने वाला तेरा (मदः) हर्ष, (अव्यं) अक्षय वा रक्षक तेरे (वारम्) शत्रुनिवारक रूप को (वि अर्षति) प्राप्त करता है।

पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान्।
ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ १८ ॥

भा०—हे (पवमान) राष्ट्र को पवित्र करने हारे ! (तव द्युमान् दक्षः) तेरा यह तेजोमय (दक्षः) ज्ञान है (तव रसः) तेरा यह बल ही (वि राजति) चमकता है और तेरी ही यह (विश्वं ज्योतिः) समस्त ज्योति है, जो (स्वः-दृशे) सुख का दर्शन कराने के लिये है ।

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥१९॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (देवा-वीः) प्रजा का रक्षक (अघ-शंसहा) पापी को दण्ड देने वाला है । (यः ते) जो तेरा (मदः) सबको तृप्त करने वाला (वरेण्यः) सर्वश्रेष्ठ सामर्थ्य है तू (तेन) उस (अन्धसा) अन्न के समान बल से (पवस्व) हमें प्राप्त हो ।

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे ।
गोषा उ अश्वसा असि ॥ २० ॥ २१ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (अमित्रियं) शत्रु के (वृत्रं) बल का (जघ्निः) नाशक (वाजं) ऐश्वर्य को (दिवे दिवे सस्निः) दिन प्रतिदिन शुद्ध करने वाला और (गोः-सा उ) भूमि आदि का दाता और (अश्व-साः असि) अश्वों का दाता है । इत्येकविंशो वर्गः ॥

सम्मिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ २१ ॥

भा०—हे शासक ! तू (श्येनः न) उत्तम पुरुष के तुल्य (योनिम् आ सीदन्) अपने पद को प्राप्त कर (सु-उपस्थाभिः धेनुभिः) सुख से उपस्थित होने वाली गोतुल्य भूमियों और वाणियों से (सं-मिश्लः) युक्त और (अरुषः) रोषरहित (भव) हो ।

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥२२॥

भा०—(यः) जो तू (अपः वव्रिवांसं) जलों को रोकने वाले मेघ को सूर्य के समान (वृत्राय हन्तवे) शत्रु-नाश के लिये (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और सैन्य को (आविथ) रखता है (सः) वह तू (पवस्व) अभिषिक्त होकर सुख की वर्षा कर ।

सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः ।
पुनानो वर्ध नो गिरः ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! हे (मीढ्वः) वीर्यशालिन् ! (वयं सु-वीरासः) हम सब उत्तम बलवान् होकर (धना जयेम) धनों को जीतें । तू (नः गिरः वर्ध) हमारी वाणियों को बढ़ा ।

त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः ।
सोम व्रतेषु जागृहि ॥ २४ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (त्वा-ऊतासः) तुझसे सुरक्षित होकर (तव अवसा) तेरे रक्षा-बल से हम (आमुरः) चारों ओर से मारने वाले शत्रुओं का (वन्वन्तः) विनाश करते हुए (स्याम) रहें । (व्रतेषु) हमारे उत्तम कामों में (जागृहि) सचेत हो ।

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ २५ ॥ २२ ॥

भा०—(सोमः) शासक पुरुष (इन्द्रस्य निष्कृतम् गच्छन्) दुष्टवध करने के अधिकार को प्राप्त करता हुआ और (अराव्णः) अनधिकृत हुआ (पवते) राष्ट्र को दुष्टों से रहित करता है । इति द्वितीय त्रिंशो वर्गः ॥

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः ।
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २६ ॥

भा०—हे (इन्दो) अभिषेक से आर्द्र ! तू (नः) हमें (महः रायः आ भर) बहुत सा ऐश्वर्य दे । हे (पवमान) राष्ट्र को पवित्र करने वाले ! तू (मृधः जहि) हिंसकों का विनाश कर । तू (वीरवत् यशः रास्व) वीरों से युक्त यश हमें प्रदान कर ।

न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् ।
यत्पुनानो मखस्यसे ॥ २७ ॥

भा०—(यत्) क्योंकि तू (पुनानः) राष्ट्र को स्वच्छ करता हुआ (मखस्यसे) यज्ञ करता है। अतः (शतं चन ह्रुतः) सैकड़ों कुटिल पुरुष भी

(राधः दित्सन्तं चन त्वा) धन देना चाहते हुए तुझे (मा मिनत्) नष्ट न करें।

पर्वस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ २८ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (सुतः) अभिषिक्त होकर तू (पवस्व) पवित्र हो। तू (जने नः यशसः कृधि) मनुष्यों में हमें यशस्वी बना और (विश्वाः द्विषः अप जहि) सब शत्रुओं को मार भगा।

अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (अस्य तव) इस तेरे (सख्ये) मित्र भाव में रहकर (ते वयम्) हम लोग (उत्तमे द्युम्ने) उत्तम यश और धनादि प्राप्त करने के लिये (पृतन्यतः सासह्याम) संग्रामकारियों को वश में करें।

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे।
रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३० ॥ २३ ॥

भा०—(या) जो (ते) तेरे (भीमानि) भीषण (तिग्मानि आयुधानि) तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र (धुर्वणे सन्ति) शत्रुनाश के लिये हैं उनसे (नः समस्य) हमारे सर्वस्व की (निदः रक्ष) निन्दकजन से रक्षा करो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[६२]

जमदग्निर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७, ९, १०, २३, २५, २८, २९ निचृद् गायत्री। २, ५, ११—१९, २१—२४, २७, ३० गायत्री। ३ ककुम्मती गायत्री। ४ पिपीलिकामध्या गायत्री। ८, २०, २६ विराड् गायत्री ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः।
विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (आशवः) शीघ्रगामी (इन्दवः) वीर पुरुष (विश्वानि सौभगा अभि) समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिये (पवित्रं तिरः) राष्ट्र के उत्तम पद पर (अभि असृग्रम्) प्राप्त कराये जावें।

विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
तना कृण्वन्तो अर्वते ॥ २ ॥

भा०—वे (दुरिता विघ्नन्तः) दुष्टाचरणों का नाश करते हुए (वाजिनः) ज्ञान-बल-सम्पन्न, (अर्वते) अश्वसदृश बलवान् नायक और (तोकाय) शत्रुहिंसक पुरुष के लिये (पुरु) बहुत से (सुगा) सुखजनक (तना) धनों को (कृण्वन्तः) उपार्जन करते हुए—

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
इळामस्मभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥

भा०—(गवे) भूमि के लिये (वरिवः कृण्वन्तः) सेवा करते हुए (अस्मभ्यं) हमारे लिये (इलाम्) भूमि का (सं-यतम् कृण्वन्तः) सुप्रबन्ध करते हुए (सु-स्तुतिम् अभि अर्षन्ति) उत्तम स्तुति प्राप्त करते हैं।

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ४ ॥

भा०—(अंशु गिरिष्ठाः अप्सु असावि) जैसे पर्वत में स्थित सोम लता जलों के आश्रय पर उत्पन्न होती है वा जलों से सिक्त सोम (मदाय) आनन्दप्रद होता है वैसे ही (अंशुः) तेजस्वी (दक्षः) शत्रु को दग्ध करने वाला (गिरिष्ठाः) आज्ञा देने वाला पुरुष भी (मदाय) प्रजा के हर्ष के लिये (असावि) शासक पद पर अभिषिक्त होता है। वह (अप्सु) प्रजाओं में (अप्सु श्येनः न) अन्तरिक्ष में बाज के समान (श्येनः) प्रशंसा-योग्य होकर (योनिम् आसदत्) अधिकारी पद पर विराजे।

शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः ।
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—(शुभ्रम् अन्धः) शुद्ध अन्न (देववातम्) सूर्यकिरणों से स्वच्छ होता है, जैसे (गावः) गौएं (पयोभिः) अपने दुग्ध से (शुभ्रम्) श्वेत हुए (देववातम्) विद्वानों से प्राप्त अन्न को (स्वदन्ति) स्वादयुक्त कर देती हैं वैसे ही (अप्सु धूतः) जलों में परिष्कृत और (नृभिः सुतः) पुरुषों से अभिषिक्त पुरुष भी सबको (गावः) अपने (पयोभिः) अभिषेक जल से रुचिकर बनावें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

आदीमश्वं न हेतारोऽशूशुभन्नमृताय।
मध्वो रसं सधमादे ॥ ६ ॥

भा०—(आत्) और (हेतारः अश्वं न) जैसे सारथी अश्व को (अशूशुभन्) शोभित करते हैं (अमृताय) वैसे ही (अमृताय) मृत्यु को दूर करने और (सध-मादे) मिलकर आनन्दलाभ के लिये (मध्वः रसं) ज्ञानरस के समान ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष को (अशूशुभन्) मान-आदर से सुशोभित करते हैं।

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये।
ताभिः पवित्रमासदः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (ऊतये) प्रजा की रक्षा के लिये (याः) जो (ते) तेरी वाणियां (मधुश्चुतः) सुख देने वाली (असृग्रम्) होती हैं (ताभिः) उनसे तू (पवित्रम्) पवित्र पद पर (आ असदः) विराज।

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया।
सीदन्योना वनेष्वा ॥ ८ ॥

भा०—(वनेषु) ऐश्वर्यों में (योना सीदन्) आसन पर विराज कर (अव्यया रोमाणि) रोमों के समान उच्छेद्य शत्रुओं का (तिरः) तिरस्कार करके (इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्य पद की रक्षा के लिये (सः त्वं) वह तू (अर्ष) आगे बढ़।

त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः।
वरिवोविद् घृतं पयः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (अंगिरोभ्यः) विद्वानों के लिये (स्वादिष्टः) सुखदायक, (वरिवोवित्) धन-दाता होकर उनको (घृतं पयः) घी दुग्ध आदि (परि स्रव) प्रदान कर।

अ॒यं विच॑र्षणिर्हि॒तः पव॑मानः॒ स चे॑तति।

हि॒न्वा॒न आप्यं॑ बृ॒हत् ॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—(अयं) यह (विचर्षणिः) विशेष द्रष्टा, (हितः) स्थापित और (पवमानः) अभिषिक्त होकर (बृहत् आप्यं हिन्वानः) बहुत बड़े भारी 'आप्य' अर्थात् बन्धुभाव को बढ़ाता हुआ, (स चेतति) वह सबसे जाना जाय।

ए॒ष वृषा॒ वृष॑व्रतः॒ पव॑मानो अशस्ति॒हा।

कर॒द्वसू॑नि दा॒शुषे॑ ॥ ११ ॥

भा०—(एषः) वह (वृषा) बलवान्, (वृष-व्रतः) प्रबन्ध में नियुक्त, (पवमानः) राष्ट्र-पद को सुशोभित करता हुआ (अशस्तिहा) राज्य के लिये शत्रुओं का नाशक (दाशुषे) करदाता के लिये (वसूनि करत्) ऐश्वर्य प्रदान करे।

आ प॑वस्व सह॒स्रिणं॑ र॒यिं गोम॑न्तम॒श्विन॑म्।

पु॒रु॒श्च॒न्द्रं पु॑रु॒स्पृह॑म् ॥ १२ ॥

भा०—हे शासक ! तू (सहस्रिणं) अपरिमित, (गोमन्तं अश्विनम्) गौ, अश्वों से युक्त (पुरु चन्द्रम् पुरु-स्पृहम्) बहुतों को आह्लाद देने वाले, बहुतों के चाहने योग्य (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ पवस्व) प्रदान कर।

ए॒ष स्य परि॑ षिच्यते मर्मृ॒ज्यमा॑न आ॒युभिः॑।

उ॒रु॒गा॒यः क॒विक्र॑तुः ॥ १३ ॥

भा०—(उरुगायः) विशाल वाणी वाले, (कवि-क्रतुः) प्रज्ञा और कर्म में कुशल, (एषः स्यः) वह यह (आयुभिः) मनुष्यों द्वारा (मर्मृज्यमानः) भूषित होकर (परि षिच्यते) अभिषिक्त हो।

सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः।

इन्द्राय पवते मदः ॥ १४ ॥

भा०—(सहस्रोतिः) सहस्र रक्षा-साधनों से युक्त, (शत-मघः) सैकड़ों ऐश्वर्यों वाला, (रजसः वि-मानः) लोकों का निर्माता वा ज्ञाता (कविः) क्रान्तदर्शी (मदः) आनन्दजनक प्रभु (इन्द्राय पवते) जीव के लिये आनन्द वर्षाता है।

गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते।

विर्योना वसताविव ॥ १५ ॥ २६ ॥

भा०—(वसतौ इव विः) पक्षी जैसे घोंसले में आता है वैसे ही (गिरा जातः स्तुतः) वाणी द्वारा 'प्रस्तुत' (इह जातः इन्दुः) अधिकारी रूप से प्रकट हुआ (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (इन्द्राय योनौ धीतये) ऐश्वर्य पूर्ण राज्यपद पर स्थापित किया जाता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत्।

चमूषु शक्मनासदम् ॥ १६ ॥

भा०—(नृभिः सुतः) पुरुषों द्वारा अभिषिक्त (पवमानः) राष्ट्रस्वच्छकारी (सोमः) तेजस्वी अधिपति, (चमूषु) सेनाओं पर (शक्मना) शक्ति से (आ-सदम्) स्थिर रहने के लिये (वाजं इव) बल की मूर्त्ति के समान (असरत्) विचरे अथवा (वाजमिव असरत्) योद्धा के समान जावे।

तं त्रिपृष्ठे त्रिबन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे।

ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥ १७ ॥

भा०—(ऋषीणां सप्त) मन्त्र द्रष्टा सात विद्वान् (धीतिभिः) स्तुतियों और कर्मों से (तं) उस शासक को (रथे) रथ में (यातवे) जाने के लिये अश्व के समान (यातवे) प्रजापीड़क के दमन के लिये (तं) उसको (त्रिपृष्ठे) तीन पीठों वाले और (त्रि-बन्धुरे) तीन बन्धनों से युक्त (रथे) राज्य पद पर (युञ्जन्ति) नियुक्त करते हैं। राज्य के 'तीनपृष्ठ' अर्थात् व्यवस्थापरिषत्,

तीन सदस्य, 'त्रि-बन्धुर'—धन, बल, नीति वा प्रभु शक्ति, दण्डशक्ति और मन्त्रशक्ति। अध्यात्म में—'ऋषीणां सप्त' सात ऋषि सात प्राण, उसमें तीन पृष्ठ, तीन धातु-वात, पित्त, कफ, तीन बन्धन-शिर, कण्ठ वा नाभि।

तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे।

हरिं हिनोत वाजिनम्॥ १८॥

भा०—हे (सोतारः) अभिषेक करने वाले जनों! आप (वाजिनं) ज्ञानवान्, (धन-स्पृतम्) धन से पूर्ण, (आशुं) कर्मकुशल, (हरिं) पुरुष को (आशुं हरिं वाजिनं) वेगवान्, बलवान् अश्व के समान (वाजाय यातवे) संग्राम में जाने के लिये और (यातवे) प्रजापीड़क को दण्डित करने के लिये (हिनोत) बढ़ाओ।

आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः।

शूरो न गोषु तिष्ठति॥ १९॥

भा०—(कलशं आ विशन्) ज्ञान-जलों से पूर्ण घट के तुल्य प्रजाओं से पूर्ण राष्ट्र में (आ विशन्) प्रवेश करता हुआ (सुतः) अभिषिक्त राजा, (विश्वाः श्रियः अभि अर्षन्) समस्त राज्य-लक्ष्मियों को प्राप्त होकर (शूरः न) वीर पुरुष के समान (गोषु) भूमियों के ऊपर (तिष्ठति) विराजता है।

आ त इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः।

देवा देवेभ्यो मधु॥ २०॥ २७॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (मदाय) आनन्द के लिये (आ आयवः देवाः) शीघ्र कर्मकुशल जन, (ते पयः) तेरे बल को (दुहन्ति) पूर्ण करते हैं और वे (देवेभ्यः) विद्वानों से (मधु दुहन्ति) तेरे लिये बल और ज्ञान का दोहन करें। इति सप्तविंशो वर्गः॥

आ नः सोम पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम्।

देवेभ्यो देवश्रुत्तमम्॥ २१॥

भा०—हे लोगो ! (देवेभ्यः) तत्व ज्ञानी विद्वानों से जिन्होंने (देव-श्रुत् तमम्) वेदवाणी का श्रवण किया हो और (मधुमत्-तमम्) जो मधुर वचन वाले हों उन्हें (सोमं) उत्तम शासक रूप से (पवित्रे आ सृजत) राज्य के पवित्र पद पर नियुक्त करो।

एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे ।
मदिन्तमस्य धारया ॥ २२ ॥

भा०—(मदिन्तमस्य धारया) सर्वोपरि शासक राजा की (धारया) वाणी या आज्ञा से (महे श्रवसे) भारी यश के लिये (एते गृणानाः) ये स्तुतियोग्य (सोमाः) अन्य गौण शासक भी (असृक्षत) बनाये जावें।

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।
सनद्वाजः परि स्रव ॥ २३ ॥

भा०—हे शासक ! तू (पुनानः) अभिषिक्त होकर (वीतये) तेजबुद्धि और उपभोग के लिये (गव्यानि नृम्णा) भूमि से उत्पन्न धनैश्वर्यों को (अभि अर्षसि) प्राप्त कर। तू (सनद्-वाजः) ऐश्वर्य प्राप्त करके (परि स्रव) आगे बढ़।

उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।
गृणानो जमदग्निना ॥ २४ ॥

भा०—तू (जमदग्निना गृणानः) 'जमदग्नि' (जमत् = अग्नि) प्रज्वलित अग्नि रूप से स्तुत वा (जमद्-अग्निना) जो अग्रणी नेताओं को प्रदीप्त करे उन्हें ज्ञान शौर्यादि गुणों से अलंकृत करे वा अग्नि को वेगवान् करने में समर्थ हों ऐसे शिल्पज्ञ, तेजस्वी पुरुष से (गृणानः) उपदेश प्राप्त करके हे राजन् ! तू (नः) हमारी (गोमतीः इषः) अन्न-सम्पदाओं या (गोमतीः इषः) वाणियों से युक्त इच्छा और (विश्वाः परिष्टुभः) समस्त स्तुतियों और शक्तियों को (अर्ष) प्राप्त कर।

पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।
अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! तू (अग्रियः) अग्रासन के योग्य होकर (चित्राभिः कृतिभिः) विचित्र ज्ञानों और विचारों से (वाचः पवस्व) वाणियों को स्वच्छ कर और (विश्वानि) समस्त ज्ञानों और उपदेशों को (पवस्व) प्राप्त कर । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

त्वं स॑मुद्रिया॑ अ॒पो॑ऽग्रि॒यो वाच॑ ई॒रय॑न् ।
पव॑स्व विश्वमेजय ॥ २६ ॥

भा०—हे (विश्वम्-एजय) संसार चालक प्रभो ! राजन् ! मेघ वा सूर्य जैसे (समुद्रियाः अपः) समुद्रजलों को वायु द्वारा आकाश में उठाता और लोकों में बरसाता है वैसे ही मेघस्थ जलधाराओं के तुल्य तू (वाचः ईरयन्) वाणियों को देता हुआ (पवस्व) प्रजा पर सुखों की वर्षा कर ।

तुभ्ये॒मा भुव॑ना कवे महि॒म्ने सो॑म तस्थिरे ।
तुभ्य॑मर्षन्ति॒ सिन्ध॑वः ॥ २७ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन् ! (तुभ्य महिम्ने) तेरे सामर्थ्य को दर्शाने के लिये हे (सोम) सर्वशासक ! (इमा भुवना तस्थिरे) ये समस्त लोक स्थिर हैं । (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (सिन्धवः) नदीवत् वेग से जाने वाले सूर्यादि (अर्षन्ति) नियम से चल रहे हैं ।

प्र ते॑ दि॒वो न वृ॒ष्टयो॒ धारा॒ यन्त्यस॒श्चतः॑ ।
अ॒भि शु॒क्रामु॑प॒स्तिर॑म् ॥ २८ ॥

भा०—(दिवः वृष्टयः न) आकाश से जल-वृष्टियां जैसे (शुक्राम् उप-स्तिरन्) नदी को प्राप्त होती हैं वैसे ही (ते दिवः) तुझ तेजस्वी और (असश्चतः) निःस्वार्थ पुरुष की (धाराः) वाणियां (शुक्राम्) बलशालिनी, (उप-स्तिरम्) समीप में विद्यमान प्रजा वा सेना को प्राप्त हों ।

इन्द्रा॒येन्दुं॑ पुनीतनो॒ग्रं दक्षा॑य॒ साध॑नम् ।
ई॒शा॒नं वी॒तिरा॑धसम् ॥ २९ ॥

भा०—हे विद्वान् जनों ! आप (इन्दुम्) ऐश्वर्ययुक्त (उग्रं) वेगवान् (वीति-राधसम्) शक्ति के धनी (साधनम्) शत्रु के वशकारी, (इन्दुं) पुरुष को (इन्द्राय) 'इन्द्र' पद के लिये (पुनीतन) अभिषिक्त करो ।

पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत् ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३० ॥ २९ ॥

भा०—(पवमानः) अभिषिक्त होता हुआ (ऋतः) तेजस्वी (कविः) सर्वोत्तम (सोमः) शासक (स्तोत्रे) स्तुतिकर्त्ता वा उपदेष्टा विद्वान् प्रजा के लिये अपने (सु-वीर्यम्) बल को (दधत्) धारण करता हुआ (पवित्रम् आ असदत्) राज्य के पवित्र पद पर विराजे । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[६३]

निध्रुविः काश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, १२, १७, २०, २२, २३, २५, २७, २८, ३० निचृद् गायत्री । ३, ७—११, १६, १८, १९, २१, २४, २६ गायत्री । ५, १३, १५ विराड् गायत्री । ६, १४, २९ ककुम्मती गायत्री ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् ।
अस्मे श्रवांसि धारय ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्मे) हमें (सहस्रिणं) अपरिमित (सु-वीर्यम्) उत्तम वीर्ययुक्त (रयिं) ऐश्वर्य को (आ पवस्व) प्रदान कर और (अस्मे श्रवांसि) हममें ज्ञान, यश और धन (धारय) धारण करा ।

इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः ।
चमूष्वा नि षीदसि ॥ २ ॥

भा०—तू (मत्सरिन्तमः) प्रजा को अन्न, बल, धनादि से तृप्त करने वाला होकर (इन्द्राय) समृद्ध वा भूमिकर्षक प्रजा के हितार्थ (इषम् ऊर्जं च) अन्न, बल और सैन्य को (पिन्वसे) बढ़ा । तू (चमूषु) सेनाओं पर (आ निषीदसि) अध्यक्षवत् विराज ।

सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् ।
मधुमाँ अस्तु वायवे ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्राय विष्णवे वायवे) ऐश्वर्ययुक्त व्यापक सामर्थ्य और (वायवे) बलवान् सेनापति-पद के लिये (सुतः सोमः) अभिषिक्त होकर शासक (कलशे अक्षरत्) राष्ट्र में विचरे ।

एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः ।
सोमा ऋतस्य धारया ॥ ४ ॥

भा०—(एते बभ्रवः) ये प्रजा को भरण पोषण करने में समर्थ, (सोमाः) वीर्यवान्, (ऋतस्य धारया) ज्ञान-ऐश्वर्य की धारा से (ह्वरांसि) कुटिल भावों को (अति) पार करके (आशवः) वेगवान् अश्वों के समान (असृग्रम्) आगे बढ़ते हैं ।

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—वे (अप्तुरः) प्रजा को सन्मार्ग में प्रेरित करते हुए कुशल जन (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राज्य पद की (वर्धन्तः) वृद्धि करते हुए (विश्वम् आर्यम् कृण्वन्तः) विश्व को आर्य बनाते हुए और (अराव्णः) अदानशील, शत्रु जनों को (अप-घ्नन्तः) मार कर भगाते हुए (अभि अर्षन्ति) आगे बढ़ते हैं । इति त्रिंशो वर्गः ॥

सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः ।
इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः ॥ ६ ॥

भा०—वे (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त, (बभ्रवः) प्रजा के पोषण में समर्थ (सुताः) अभिषिक्त, विद्या-व्रतादि में निष्णात होकर (इन्द्रम् गच्छन्तः) राजपादि पद को प्राप्त होते हुए, (स्वम् रजः अनु) अपने धन और स्थान के अनुसार (अभि अर्षन्ति) आगे बढ़ें ।

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (वृषा) बलवान् और ऐश्वर्यों का वर्षक तथा (द्युमान् असि) तेजस्वी है। हे (देव) देव! तू (वृषा) वर्षणशील होकर (वृष-व्रतः) मेघ के समान कार्य करने में समर्थ हो। तू (वृषा) बलवान् होकर (धर्माणि दधिषे) सब धर्मों को धारण करने में समर्थ है।

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः।
सत्यं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥

भा०—(ते वृष्ण्यः) सुखों के वर्षक तेरा (शवः वृष्ण्यं) ज्ञान और बल भी सुखों का वर्षक है। (वनं वृषा) तेरा तेज और दान भी सुखप्रद है। (मदः वृषा) तेरा आनन्द भी प्रबल है। हे (वृषन्) बलशालिन्, (सत्यं वृषा इत् असि) तू सचमुच सुखों का वर्ष होने से 'वृषा' ही है।

अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः।
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (अश्वः न चक्रदः) अश्व जैसे चक्र धारण करता और राष्ट्र चक्र की रक्षा करता है, वैसे ही तू भी (चक्रदः) हमें उपदेश कर। तू (वृषा) बलवान् होकर (गाः सं चक्रदः) वेद वाणियों का उपदेश कर। (अर्वतः सं चक्रदः) और विद्वानों पर शासन कर। (नः राये दुरः वि वृधि) हमारे लिये धन के द्वार खोल।

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ४ ॥

भा०—(वाजिनः) बलवान् पुरुषों को (गव्या) गौ, वाणी को प्राप्त करने और अन्यों को देने के लिये (प्र असृक्षत) प्रमुख बनाया जावे। (सोमासः अश्वया) धनवान् पुरुषों को (अश्वया) राष्ट्र के प्राप्त करने के लिये (प्र असृक्षत) प्रमुख बनाया जावे। पृथिवी पर ओषधि के समान,

और (वीरया) वीर पुत्रों के लिये (शुक्रासः) वीर्यवान् पुरुषों को तैयार किया जावे।

शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः।
पवन्ते वारे अव्यये ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—(ऋतायुभिः शुम्भमानाः) सत्य ज्ञान को चाहने वाले वा विद्वान् पुरुषों से शोभित होकर और (गभस्त्योः मृज्यमानाः) बाहु बल से परीक्षित होकर (अव्यये) स्थायी (वारे) वरणीय अधिकार पर (पवन्ते) प्राप्त हों। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा।
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ६ ॥

भा०—(ते सोमाः) वे विद्वान् (विश्वा) सब प्रकार के (दिव्यानि पार्थिवा आन्तरिक्ष्या) पार्थिव और अन्तरिक्ष के (वसु) ऐश्वर्यों को (दाशुषे पवन्ताम्) गुरु के लिये प्रदान करें।

पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्ववित्) विद्वन्! (पवमानस्य) ज्ञान प्रसार करते हुए तेरी (सर्गाः) ये शिष्यादि सृष्टियां (सूर्यस्य रश्मयः इव न) सूर्य-किरणों के समान (प्र असृक्षत) दूर २ तक फैले।

केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि।
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ ८ ॥

भा०—(दिवः परि केतुं कृण्वन्) दूर आकाश से जैसे प्रकाश करता हुआ (रूपा अभि अर्षति) रूपवान् पदार्थों को प्रकट करता है, वैसे ही तू भी (केतुं कृण्वन्) उपदेश करता हुआ, (दिवः परि) द्यौ, अर्थात् चतुर्थ आश्रम से सबके प्रति (रूपा अभि अर्षसि) ज्ञानों को प्राप्त हो। हे (सोम) विद्वन्! तू (समुद्रः) समुद्र के समान अगाध होकर (पिन्वसे) सबको तृप्त कर।

हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
अक्रान्देवो न सूर्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र कारक विद्वन् ! तू (विधर्मणि) विविध धर्मों वाले जन-समूह में (हिन्वानः) प्रार्थना किया जाकर (त्वम् इष्यसि) ज्ञान को प्रकट कर और तू (देवः सूर्यः न) तेजोमय सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अक्रान्) देश देशान्तर का भ्रमण कर ।

इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती ।
सृजदश्वं रथीरिव ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—(इन्दुः) तेजस्वी, (चेतनः) ज्ञानवान्, चेतन आत्मा के समान, (कवीनां प्रियः) विद्वानों का प्रिय, (पविष्ट) देश भर को पवित्र करता है और (रथीः अश्वम् इव) अश्व को रथी के समान (मती) बुद्धि से (अश्वम् सृजत्) भोक्ता इन्द्रियगण को सञ्चालित करे । इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत् ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (यः) जो (ते) तेरा (ऊर्मिः) तरंग-समान ऊपर उठने वाला उपदेश (देवावीः) ज्ञान की कामना करने वाले जनों को प्राप्त होता है और (पवित्रे) सत्यासत्य विवेक के निमित्त (परि अक्षरत्) जल-धारा के समान चलता है, उसको तू (ऋतस्य योनिम् सीदन्) सत्य, न्याय और ज्ञान के स्थान पर विराजता हुआ (अश्वं रथीः इव प्र असृजः) अश्व को रथी के समान प्रस्तुत कर ।

स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो तू (मदः) हर्षजनक (देववीतमः) सर्वप्रिय है (सः) वह तू (नः पवित्रे अर्ष) हमारे बीच में सत्यासत्य विवेक करने के पद पर (इन्द्राय) शत्रु वा दुष्टों और दोषों के दूर करने और (पीतये) शिष्यादि रक्षा के लिये (अर्ष) आ ।

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।

इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) हे अभिषिक्त जन ! तू (मनीषिभिः मृज्यमानः) विद्वान् पुरुषों द्वारा (धारया) वेदवाणी पवित्र होकर (रुचा) कान्ति और रुचि से (गाः अभि इहि) उत्तम वेदवाणियों, स्तुतियों और भूमियों को प्राप्त कर ।

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।

हरे सृजान आशिरम् ॥ १४ ॥

भा०—हे (हरे) दुःख आदि के हर्त्ता ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुतियोग्य ! तू (पुनानः) सत्यासत्य का विवेक करता हुआ छाज के समान (वरिवः ऊर्जं) अति श्रेष्ठ अन्न-धनवत् श्रेष्ठ निर्णय और बल का (जनाय कृधि) प्रजा के हितार्थ कर और इसी प्रकार (आशिरम्) दुष्टों को दण्ड देकर (वरिवः ऊर्जं कृधि) उत्तम धन और बल उत्पन्न कर ।

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।

द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (पुनानः) सत्यासत्यविवेक करता हुआ (द्युतानः) तेजस्वी और (वाजिभिः यतः) बलवान् पुरुषों से बद्ध होकर (देव-वीतये) मनुष्य-रक्षा के लिये (इन्द्रस्य निष्कृतम् याहि) ऐश्वर्यवान् राजा के पद को प्राप्त हो । इति अष्टत्रिंशो वर्गः ॥

प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः ।

धिया जूता असृक्षत ॥ १६ ॥

भा०—(इन्दवः) अभिषिक्त जन, (आशवः) अप्रमादी (हिन्वानासः) प्रेरित होकर और (धिया जूताः) सत्कर्म से सेवित होकर (समुद्रम्) समुद्र के समान गम्भीर ज्ञानप्रद गुरु वा प्रभु को (प्र असृक्षत) प्राप्त हों ।

मर्मृज्ञानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः ।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १७ ॥

भा०—(मर्मृजानासः) स्वयं को पवित्र करते हुए (इन्दवः आयवः) तेजस्वी जन (ऋतस्य योनिम्) तेज और न्याय के स्थान, (समुद्रम्) ऐश्वर्य के सागर प्रभु को (वृथा आ अग्मन्) अनायास ही प्राप्त होते हैं ॥

परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा ।
पाहि नः शर्म वीरवत् ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन्! (अस्मयुः) हमें चाहता हुआ, (ओजसा) बल द्वारा (नः) हमारे (विश्वा वसूनि) समस्त ऐश्वर्यों को तू (परि पाहि) प्राप्त कर और (नः) हमारी (शर्मवत् परि पाहि) गृह के समान रक्षा कर ।

मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः ।
प्र यत्समुद्र आहितः ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (एतशः) ज्योतिर्मय (वह्निः) कार्यभारवाहक, (ऋकभिः) स्तुतिकर्त्ता पुरुषों द्वारा (यत् समुद्रे प्र आहितः) जब समुद्र-वत् अगाध प्रभु में स्थित होता है तब तू (पदं युजानः) एकाग्र-चित्त से ध्यान करता हुआ उसे (मिमाति) जान लेता है ।

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति ।
जहात्यप्रचेतसः ॥ २० ॥ ३९ ॥

भा०—और (यत्) जब वह ज्ञानी (आशुः) अप्रमादी होकर (हिरण्ययम्) परम रमणीय (ऋतस्य योनिम् आ सीदति) सुख के आश्रय प्रभु को प्राप्त करता है, तब वह (अप्रचेतसः) काम, क्रोध, मोह आदि को (जहाति) छोड़ देता है । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः ।
मज्जन्त्यविचेतसः ॥ २१ ॥

भा०—(वेनाः अभि अनूषत) रक्षक पुरुष उसकी स्तुति करते हैं। (प्र-चेतसः) उत्तम चित्त वाले (इयक्षन्ति) उसकी पूजा करते हैं। (अविचेतसः) मिथ्या बुद्धि वाले जन डूब जाते हैं।

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्दो) लक्ष्य की ओर जाने वाले! तू (ऋतस्य योनिम्) सत्य के आश्रय की (आसदम्) प्राप्ति के लिये स्वयं (मधुमत्-तमः) उत्तम ज्ञानी होकर (मरुत्वते इन्द्राय) शिष्यों के स्वामी आचार्य, वायु आदि शक्तियों के स्वामी प्रभु और वीरों के स्वामी सेनापति की प्राप्ति के लिये (पवस्व) आगे बढ़।

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः।
सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २३ ॥

भा०—(वचः-विदः विप्राः) वेद-वचनों के ज्ञाता (वेधसः) विद्वान् (तं त्वा परि-कृण्वन्तु) उस तुझको अलंकृत करें। (आयवः त्वा सं मृजन्ति) मनुष्य तुझको अभिषिक्त करें।

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे।
पवमानस्य मरुतः ॥ २४ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन्! (पवमानस्य) ज्ञानोपदेष्टा (मरुतः) बलवान् (ते रसं) तेरे आज्ञावचन को (मित्रः) स्नेही (अर्यमा) न्यायकारी और (वरुणः) दुष्टों का वारक ये जन (पिबन्ति) रसवत् पान करते, उसका पालन करते हैं।

त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि।
इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥ २५ ॥ ४० ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक! हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (पुनानः) सत्यासत्य का विवेक करता हुआ, (सहस्र-भर्णसम्) सहस्रों

का पोषण करने वाली, (विपश्चितं) ज्ञान से परिष्कृत (वाचम् इष्यसि) वाणी का प्रयोग कर। इति चत्वारिंशो वर्गः॥

उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम्।

पुनान इन्दवा भर॥ २६॥

भा०—हे (सोम इन्दो) ऐश्वर्यवान् शासक! तू (पुनानः) राष्ट्र को दुष्ट जनों से रहित करता हुआ (सहस्र-भर्णसं) हजारों ज्ञानों और मन्त्रों की पालिका (मखस्युवम्) यज्ञ के योग्य (वाचम् आ भर) वाणी का प्रयोग कर।

पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम्।

प्रियः समुद्रमा विश॥ २७॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रार्थित! (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (पुनानः) पवित्र होता हुआ (एषां जनानां प्रियः) इन सब मनुष्यों का प्रिय होकर (समुद्रम् आ विश) समुद्रवत् राष्ट्र के हृदय में प्रवेश कर।

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा।

सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥ २८॥

भा०—(दविद्युतत्या रुचा) चमचमाती कान्ति से (परिस्तोभन्त्या कृपा) सबको थामने वाली शक्ति से (सोमाः) शासक जन (शुक्राः) तेजस्वी (गवाशिरः) वाणी द्वारा स्तुति के योग्य होता है।

हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत्।

सीदन्तो वनुषो यथा॥ २९॥

भा०—(हेतृभिः) शासक जनों से (हिन्वानः) शासित और (यतः) नियमबद्ध होकर (वाजी) बलवान् पुरुष अश्व के समान (वाजं आ अक्रमीत्) संग्राम में जावे और (यथा) जैसे (वनुषः) सैनिक (सीदन्तः) बैठते और रहते हैं वैसे वह भी सबद्ध रहे।

ऋधक्सोम स्वस्तये सञ्जग्मानो दिवः कविः ।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३० ॥ ४१ ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (स्वस्तये) कल्याण के लिये (ऋधक्) ज्ञान से सम्पन्न और असंग होकर एवं (दिवः संजग्मानः) वानप्रस्थ से आगे बढ़कर संन्यास में जाता हुआ (सूर्यः) सूर्य के समान (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (दृशे) विवेकपूर्वक दर्शन के लिये (पवस्व) कदम बढ़ा। इत्येकचत्वारिंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः

[६५]

भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ९, १०, १२, १३, १६, १८, २१, २२, २४—२६ गायत्री। २, ११, १४, १५, २९, ३० विराड् गायत्री। ३, ६—८, १९, २०, २७, २८ निचृद् गायत्री। ४, ५ पादनिचृद् गायत्री । १७, २३ ककुम्मती गायत्री ॥

त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।
महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥

भा०—(उस्रयः) एकत्र निवास करने वाली (स्वसारः) बहनों के समान (जामयः) सन्तान उत्पन्न करने योग्य कन्याएं (महीयुवः) आदर चाहती हुईं, (महाम्) गुणों में महान् (इन्दुम्) प्रेम युक्त पुरुष को (पतिम्) पति रूप से (हिन्वन्ति) प्राप्त किया करें ।

पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि ।
विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥

भा०—हे (पवमान) आगे बढ़ने वाले ! विद्वन् ! तू (देवः) दानशील होकर और (देवेभ्यः परि) अन्य मनुष्यों से ऊपर होकर (रुचारुचा) तेज से (विश्वा वसूनि) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (आ विश) प्राप्त कर ।

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (पवमान) अभिषेक प्राप्त ! तू (सुस्तुतिं आ पवस्व) उत्तम स्तुति प्राप्त कर और (देवेभ्यः) विद्वानों का (दुवः) आदरसत्कार कर और (इषे) मनोकामना पूर्ण करने के लिये (संयतम्) संयत जीवन (आ पवस्व) व्यतीत कर ।

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
पवमान स्वाध्यः ॥ ४ ॥

भा०—तू (भानुना) तेज से (वृषा हि) मेघ के समान वीर्य सेचन में समर्थ (असि) हो । (द्युमन्तं त्वा) धन के स्वामी तुझको हम हे (पवमान) पवित्र आचारवान् ! (स्वाध्यः) सत्कार करते हुए (हवामहे) बुलाते हैं ।

आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) वीर्यवन् ! हे (सु-आयुध) उत्तम वज्र से शोभित ! तू (मन्दमानः) हर्षयुक्त होकर (सु-वीर्यम् आ पवस्व) उत्तम तेज प्रदान कर और (इह आ गहि) इस आश्रम में आ । इति प्रथमो वर्गः ॥

यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः ।
द्रुणा सधस्थमश्नुषे ॥ ६ ॥

भा०—हे स्नातक ! तू (यत्) जो (अद्भिः) आप्त जनों या जलों से (परि सिच्यसे) स्नान कराया जाता है और (गभस्त्योः मृज्यमानः) बाहुओं द्वारा मल २ कर स्वच्छ किया जाता है, वह तू (द्रुणा) काष्ठ से बने रथ से गृह को प्राप्त हो या आसन द्वारा (सधस्थम् अश्नुषे) एक साथ समीप आ ।

प्र सोमाय व्यश्ववत्पवमानाय गायत ।
महे सहस्रचक्षसे ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषों ! (पवमानाय) सत्यासत्य का विवेक करने वाले (सहस्रचक्षसे) अनेक ज्ञानों के दर्शक (महे) महान् (सोमाय) विद्वान्, वधू के अभिलाषी की (त्रि-अश्ववत्) विविध अश्वों वाले राजा के तुल्य (प्र गायत) स्तुति करो।

यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ८ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (इन्दुम्) तेजस्वी, (मधुश्चुतम्) मधुर, (हरिम्) दुःखहारी, (वर्णं) शत्रुवारक सैन्य बल को (अद्रिभिः) नाना शस्त्रों से (इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के लिये बढ़ाते हैं—

तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥ ९ ॥

भा०—(तस्य वाजिनः) उस बलशाली (विश्वा धनानि जिग्युषः) समस्त धनों के विजेता, (ते) तेरे हम (सखित्वम् आ वृणीमहे) मित्र भाव को स्वीकार करते हैं।

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
विश्वा दधान ओजसा ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) हे बलशालिन् ! (मत्सरः) हर्षदाता और (ओजसा) बल से देह में वीर्य धातुवत् (विश्वा दधानः) राष्ट्र के अंगों का धारण करता हुआ, (मरुत्वते) प्राणवत् बलवान् विद्वान् पुरुषों के स्वामी, राजा के कार्य के लिये (धारया पवस्व) उसकी आज्ञा से कार्य में प्रवृत्त हो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

तं त्वा धर्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् ।
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ ११ ॥

भा०—(ओण्योः धर्त्तारम्) सूर्य और पृथिवी के धारक (स्वः-दृशम्) प्रकाश को दिखाने वाले या सर्वद्रष्टा, (वाजिनम्) ऐश्वर्यवान्,

ज्ञानी (तं त्वा) उस तुझको (वाजेषु) संग्रामों और ऐश्वर्यों के सम्पादन के लिये हे (पवमान) अभिषेक योग्य ! (हिन्वे) प्रेरित करता हूँ ।

अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।
युजं वाजेषु चोदय ॥ १२ ॥

भा०—(अया) इस (विपा) बुद्धि से (चित्तः) ज्ञानवान् और (हरिः) दुःखों का नाशक होकर (अया धारया) इस वाणीशक्ति से (वाजेषु) ऐश्वर्य और संग्रामादि के अवसर पर (युजं) नियुक्त पुरुष को भी अश्ववत् (चोदय) चला ।

आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः ।
अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (विश्वदर्शतः) सर्वद्रष्टा (महीम् इषं पवस्व) बड़ी भारी सेना वा शक्ति को प्राप्त कर ।

आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा ।
एन्द्रस्य पीतये विश ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (कलशाः) राष्ट्र के नाना भागों के प्रतिनिधि रूप जलपूर्ण कलश (आ अनूषत) सम्मुख ही स्तुति किये जाते हैं, तू उनकी (धाराभिः) धाराओं, शक्तियों से और (ओजसा) अपने बल से (इन्द्रस्य पीतये) इस राष्ट्र-ऐश्वर्य उपभोग के लिये (आ विश) आसन पर विराज ।

यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः ।
स पवस्वाभिमातिहा ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (मद्यं) अति हर्षकारी (तीव्रं) वेगवान् (रसं) बल को लोग (अद्रिभिः दुहन्ति) मेघों से वृष्टि-जल के समान शत्रुओं से अभेद्य सैन्यों द्वारा प्राप्त करते हैं (सः) वह तू (अभि-मातिहा) शत्रुओं का नाशक होकर (पवस्व) सत्यासत्य का विवेक करे । इति तृतीयो वर्गः ॥

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १६ ॥

भा०—(मनौ अधि पवमानः) मनुष्य समूह के ऊपर सेनापति-पद पर आता हुआ (राजा) तेजस्वी पुरुष (मेधाभिः) पवित्र यज्ञ, सत्संग आदि क्रियाओं और उत्तम बुद्धियों सहित (ईयते) आगे बढ़ता और (अन्तरिक्षेण यातवे) सूर्य के समान सर्वोपरि मार्ग से जाने के लिये समर्थ होता है ।

आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् ।
वहा भगत्तिमूतये ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (शतग्विनम्) सौ सौ गौओं या भूमियों के स्वामी, (गवां पोषम्) गौओं, बैलों और भूमियों के पुष्टिकर्त्ता (स्वश्व्यम्) उत्तम अश्वों के स्वामी को या धन को (आ वह) स्वयं धारण कर और हमें प्राप्त करा और (भगत्तिम्) ऐश्वर्य को (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (आ वह) दे ।

आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।
सुष्वाणो देववीतये ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (देव-वीतये) मनुष्य के पालन के लिये (सुस्वानः) अभिषिक्त होकर (नः) हमारे (सहः) बल और (जुवः) वेग को एवं (रूपं) धन को (वर्चसे) तेजोवृद्धि के लिये (आ भर) धारण कर ।

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ १९ ॥

भा०—(श्येनः न) गरुड़ के समान तू (योनिम् आ सीदन्) स्थिर पद पर विराजता हुआ, हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (द्युमत्-तमः) सबसे अधिक तेजस्वी होकर (आ रोरुवत्) सब ओर आज्ञाएं देता हुआ (द्रोणानि) राष्ट्र के मार्गों को (अर्ष) प्राप्त कर ।

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २० ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राय) शत्रुहन्ता, (वरुणाय) दुष्टों के निवारक, (मरुद्भ्यः) वायुवत् बलवान् पुरुषों और (विष्णवे) व्यापक शक्ति के लाभार्थ (अप्साः) प्रजाओं और आप्त पुरुषों का सेवक (सोमः) उत्तम शासक (अर्षति) उद्योग करे। इति चतुर्थो वर्गः ॥

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ २१ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लाभ के लिये और (नः तोकाय) हमारे पुत्रादि के लिये (विश्वतः) सब ओर से (इषं दधत्) अन्न आदि को (दधत्) धारण करता हुआ (सहस्रिणं) सहस्रों सुखों से युक्त राष्ट्र धन को (आ पवस्व) प्राप्त कर।

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
ये वादः शर्यणावति ॥ २२ ॥

भा०—(ये सोमासः) जो विद्वान्, शास्त्रज्ञ जन, (अर्वावति सुन्विरे) समीप देश में अभिषिक्त होते हैं और (ये परावति सुन्विरे) जो दूर अभिषिक्त होते हैं और (ये वा) जो (शर्यणावति) शस्त्रधारिणी सेना से युक्त स्थान या सेनापति आदि के पदों पर अभिषिक्त होते हैं—

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २३ ॥

भा०—(ये) जो (आर्जीकेषु) सरल धार्मिक पुरुषों के बीच अभिषिक्त होते हैं, (ये कृत्वसु) जो कर्म करने वालों में अभिषिक्त होते हैं (ये पस्त्यानाम् मध्ये) जो प्रजाओं के बीच (वा पञ्चसु जनेषु) और पांचों प्रकार के जनों में अभिषिक्त होते हैं—

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।
सुवाना देवास इन्दवः ॥ २४ ॥

भा०—(ते) वे (देवासः) तेजस्वी (इन्दवः) दयालु पुरुष (सुवानासः) अभिषिक्त होते हुए (दिवः परि) आकाश से (वृष्टिम्) वृष्टि के समान दुःखनाशिका शक्ति (पवन्ताम्) प्राप्त करें और (नः सुवीर्यम् परि पवन्ताम्) हमें उत्तम बल प्रदान करें ।

पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना ।

हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—(गोः त्वचि अधि) भूमि की पीठ पर अध्यक्ष रूप से (हिन्वानः) स्थापित, (हर्यतः) तेजस्वी (जमदग्निना गृणानः) तेजस्वी पुरुषों को ज्ञान से उज्ज्वल करने वाले विद्वान् पुरुषों द्वारा आदेश पाता हुआ (पवते) काम करता है । इति पञ्चमो वर्गः ॥

प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः ।

श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ २६ ॥

भा०—(शुक्रासः) कान्तिमान् तेजस्वी पुरुष (सप्तयः न हिन्वानासः) अश्वों के समान प्रेरित और (श्रीणानाः) प्रतिष्ठित होते हुए (अप्सु) अन्तरिक्ष में तेजोमय पिण्ड के समान (प्र मृञ्जत) अभिषिक्त हो ।

तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये ।

स पवस्वानया रुचा ॥ २७ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! (तं त्वा) उस तुझको (आभुवः) चारों ओर विराजने वाले जन (देव-तातये) मनुष्यों के कल्याण के लिये (सुतेषु) अभिषिक्त जनों के बीच में (हिन्विरे) तेरी प्रतिष्ठा करते हैं । (सः) वह तू (अनया रुचा) इस अनुरूप शोभा से (पवस्व) युक्त हो ।

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २८ ॥

भा०—हे शासक ! हम लोग (ते) तेरे (दक्षं) शत्रुओं को भस्म करने वाले, (वह्निम्) कार्य-भार को उठाने वाले, (पुरु-स्पृहम्) प्रजाओं

को प्रेम करने वाले (पान्तम्) पालन करने में समर्थ पुरुष का (आ वृणीमहे) वरण करते हैं ।

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २९ ॥
आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ३० ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग इसी प्रकार (पुरु-स्पृहम्) बहुसम्मत, (पान्तम्) सर्वपालक, (मन्द्रम्) हर्षदाता, (वरेण्यं) वरणीय, (मनीषिणम्) बुद्धिमान् (आ आ) पुरुष को वरण करें और ऐसे ही सर्वप्रिय, बहुसम्मत, (रयिम्) ऐश्वर्यवान्, (सुचेतुनम्) उत्तम ज्ञानी पुरुष को हे (सुक्रतो) उत्तम प्रज्ञावन् ! (तनूषु) राष्ट्र कार्य के लिये (आ आ आ आ आवृणीमहे) वरण किया करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[६६]

शतं वैखानसा ऋषयः ॥ १—१८, २२—३० पवमानः सोमः । १९—२१ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २, ३, ५—८, १०, ११, १३, १५—१७, १९, २०, २३, २४, २५, २६, ३० गायत्री । ४, १४, २२, २७ विराड् गायत्री । ९,१२,२१,२८,२९ निचृद् गायत्री । १८ पादनिचृदनुष्टुप् ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

पवस्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वानि काव्या ।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ १ ॥

भा०—परमेश्वर का वर्णन करते हैं—हे (विश्वचर्षणे) विश्वद्रष्टा प्रभो ! तू (विश्वानि काव्यानि अभि पवस्व) समस्त कर्मों और ज्ञानों को (अभि पवस्व) प्राप्त करा । तू (सखिभ्यः सखा) मित्रों का प्रिय मित्र और (ईड्यः) स्तुति करने योग्य है ।

ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी ।
प्रतीची सोम तस्थतुः ॥ २ ॥

भा०—हे (पवमान) सर्वप्रकाशक ! (ये) जो (धामनी) दोनों विश्वों को धारण करने वाले, आकाश और पृथिवी वा उत्तर और दक्षिण अयनों के तुल्य इह और पर (प्रतीची) परस्पर सुसम्बद्ध दोनों लोक (तस्थतुः) खड़े हैं (ताभ्यां) उनसे तू (विश्वस्य राजसि) समस्त जगत् में प्रकाश करता है।

परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः।

पवमान ऋतुभिः कवे ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) तेजस्विन् ! (यानि) जो (ते) तेरे (धामानि) तेज (परि) चारों ओर फैले हैं उनसे हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! हे (पवमान) पवित्र ! तू (ऋतुभिः) सत्य सामर्थ्यों से सूर्यवत् (विश्वतः असि) सर्वत्र सामर्थ्यवान् है।

पवस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्या।

सखा सखिभ्य ऊतये ॥ ४ ॥

भा०—तू (सखा) परम मित्र, (सखिभ्यः ऊतये) अपने मित्रों की रक्षा के लिये (विश्वानि) सब प्रकार के (वार्या) श्रेष्ठ धनों को (जनयन्) पैदा करता हुआ (इषः पवस्व) उत्तम अन्न, सुख सम्पदाएं तथा शक्तियां (पवस्व) प्रदान कर।

तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते।

पवित्रं सोम धामभिः ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) प्रभो ! (तव) तेरी (शुक्रासः) कान्तिमान् (अर्चयः) ज्वालाएं (दिवः पृष्ठे) सूर्य और भूमि के पृष्ठ पर अपने (धामभिः) तेजों से (पवित्रं वितन्वते) पवित्र प्रकाश करती हैं। इति सप्तमो वर्गः ॥

तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते।

तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ६ ॥

भा०—(इमे सप्त सिन्धवः) ये वेगवान् नद नदी वा देह में प्राण गण, हे (सोम) सर्वशासक ! (तव प्रशिषं) तेरे उत्कृष्ट शासन को पाकर

(सिस्रते) गति करते हैं और (तुभ्यं धेनवः) तेरे ही लिये ये वाणियां (धावन्ति) वेग से निकलती हैं।

प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः।
दधानो अक्षिति श्रवः ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः! (धारया) वाणी द्वारा (सुतः) उपासित होकर तू (इन्द्राय प्र याहि) इन्द्रियों के स्वामी जीव के उपकार के लिये प्राप्त हो। तू ही (अक्षितिः श्रवः) अक्षय अन्नवत् परम ज्ञान का (दधानः) धारक और (मत्सरः) आनन्ददाता है।

समु त्वा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः।
विप्रमाजा विवस्वतः ॥ ८ ॥

भा०—(विवस्वतः) विशेष रूप से तेरे सेवक और साधक की (सप्त) सातों (जामयः) छन्दोमयी बाणियां (धीभिः) यज्ञादि सहित (त्वा हिन्वन्ती) तेरी महिमा को बढ़ाती हुई (आजा) यज्ञ में (त्वा विप्रम्) तुझ विद्वान् के ही (सम् अस्वरन्) गुण वर्णन करती हैं।

मृजन्ति त्वा समग्रुवोऽव्ये जीरावधि ष्वणि।
रेभो यदज्यसे वने ॥ ९ ॥

भा०—हे शास्तः! तू (रेभः) उपदेष्टा होकर (यत्) जब (वने) वानप्रस्थ आश्रम में (अज्यसे) जाता है, तब (अग्रुवः) अग्रगामी श्रेष्ठ जन (अव्ये) भेड़ के बालों के बने आसन पर (जीरौ) उपदेशप्रद (स्वनि) वेदों के (अधि) अधीन (त्वा सं मृजन्ति) तुझे सुशोभित करें।

पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन्! हे (वाजिन्) ज्ञानवन्! (पवमानस्य ते) पवित्र करने वाले तेरे (श्रवस्यवः) श्रवण करने योग्य ज्ञान के इच्छुक

जन (ते सर्गाः) तेरी सृष्टि के रूप में (असृक्षत) उत्पन्न होते हैं। वे (अर्वन्तः न) अश्वों के समान आगे बढ़ें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृंग्रं वारे अव्यये।
अवावशन्त धीतयः ॥ ११ ॥

भा०—(धीतयः) राष्ट्र के धारक जन (अव्यये वारे) अविनाशी, वरणीय पद पर (मधुश्चुतम्) अन्न के देने वाले, (कोशम्) धनादि से पूर्ण कोश को (अच्छ) प्राप्त कर (सोमं असृग्रम्) शासक पुरुष को नियुक्त करें और उसी को (अवावशन्त) चाहें।

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १२ ॥

भा०—(गावः धेनवः अस्तं न) गौवें जैसे अपने घर को लौट आती हैं, वैसे ही (इन्दवः) उपासना करने वाले, शिष्य जन गुरु के प्रति स्वयं आकर (ऋतस्य योनिम्) सत्य ज्ञान के आश्रय, (समुद्रम् अच्छ) ज्ञान रस के सागर एवं वाणी के उपदेष्टा को (आ अग्मन्) प्राप्त हों।

प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः।
यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) प्रभु के उपासक शिष्य! (यत् गोभिः वासयिष्यसे) जब तू वाणियों द्वारा आच्छादित होगा तब (सिन्धवः) तुझे नियमों में बांधने वाले (नः) हम में से (आपः) आप्त जन (महे रणे) उपदेश के निमित्त (अर्षन्ति) अच्छी प्रकार प्राप्त हों और ज्ञान प्रदान करें।

अस्य ते सख्ये वयमियक्षन्तस्त्वोतयः।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (वयम्) हम (त्वा ऊतयः) तेरी रक्षा, प्रेम से युक्त होकर, (ते सख्ये) तेरे मित्रभाव में रहते हुए और (इयक्षन्तः) ईश्वर की उपासना करते हुए, (ते सखित्वम्) तेरे ही मित्र-भाव को (उश्मसि) चाहें।

आ पवस्व गाविष्टये महे सोम नृचक्षसे।
एन्द्रस्य जठरे विश ॥ १५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (गो-इष्टये) भूमि या वाणी के लिये (महे नृचक्षसे आ पवस्व) मनुष्यों को देखने और उपदेश करने वाले, महान् कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिये प्राप्त हो और (इन्द्रस्य जठरे) शत्रु-नाशक राष्ट्र के मध्य में प्रवेश कर। इति नवमो वर्गः ॥

महाँ असि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिन्द ओजिष्ठः।
युध्वा सञ्छश्वज्जिगेथ ॥ १६ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (महान् असि) शक्ति में महान् है। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (उग्राणां) उग्र शक्तिशाली भय दिलाने वालों में (ज्येष्ठः) महान् योग्य और (ओजिष्ठः) बली है। तू (शश्वत्) सदा ही (युध्वा सन्) शत्रुओं पर प्रहार करके (जिगेथ) विजय प्राप्त कर।

य उग्रेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः।
भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥ १७ ॥

भा०—(यः) जो तू (उग्रेभ्यः) शत्रुओं को भय देने वालों से भी (ओजीयान् चित्) कहीं अधिक पराक्रमी और (शूरेभ्यः चित् शूरतरः) शूरवीरों से भी कहीं अधिक शूर है, वह तू (भूरि दाभ्यः चित्) बहुदानियों से भी कहीं अधिक (महीयान्) दानी है।

त्वं सोम सूर एषस्तोकस्य साता तनूनाम्।
वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! हे प्रभो ! (त्वं) तू (सूरः) सबका उत्पादक है। तू (तोकस्य तनूनाम्) पुत्र और पौत्रों का (साता) देने वाला है। तुझे हम (सख्याय वृणीमहे) मित्रभाव के लिये वरते हैं और (युज्याय वृणीमहे) साथी रूप से वरते हैं।

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (नः आयूंषि) हमारे आयुओं की (पवस्व) रक्षा कर। (नः) हमें (ऊर्जम् इषं च आसुव) बल और अन्न प्रदान कर।

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयम् ॥ २० ॥ १० ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अन्यों को प्रकाश देने वाला, (ऋषिः) मन्त्रार्थों का द्रष्टा, (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला, (पाञ्चजन्यः) पांचों जनों का हितकारक, (पुरोहितः) सबके समक्ष साक्षिवत् स्थापित है। (तम् महा-गयम्) उस महाप्राण को हम (ईमहे) प्राप्त हों। इति दशमो वर्गः ॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्।
दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ २१ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (सु-अपाः) उत्तम कर्म करने वाला ! (स्वः-पाः) स्वयं वा ऐश्वर्यों का पालक होकर (अस्मे वर्चः) हमें तेज और (सुवीर्यं) वीर्य प्रदान कर और तू (मयि रयिम् पोषम् दधत्) मुझमें धन और शरीर की पुष्टि को धारण करा।

पवमानो अति स्रिधोऽभ्यर्षति सुष्टुतिम्।
सूरो न विश्वदर्शतः ॥ २२ ॥

भा०—(विश्व-दर्शतः सूरः न) सूर्यसमान सबका द्रष्टा, विद्वान्, तेजस्वी (स्रिधः अति पवमानः) हिंसाकारी दुष्टों को अतिक्रमण करके तू (सु-स्तुतिम् अभि अर्ष) उत्तम स्तुति प्राप्त कर।

स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान्प्रयसे हितः।
इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥ २३ ॥

भा०—(सः) वह (आयुभिः मर्मृजानः) मनुष्यों द्वारा अभिषिक्त होता हुआ (प्रयस्वान्) प्रयत्नवान् (प्रयसे हितः) सबकी रक्षा में स्थापित किया जाय। वह (इन्दुः) शत्रुओं पर आक्रमण करने वाला, सेवनीय,

(अत्यः) अश्ववत् सबका रक्षक, सबसे अधिक और (विचक्षणः) तत्वज्ञान का द्रष्टा हो।

पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत्।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥ २४ ॥

भा०—(पवमानः) सबका पवित्रकर्त्ता, (बृहत्) बड़ा (शुक्रम्) शुद्ध (ऋतम्) ज्ञानमय (ज्योतिः) प्रकाश को (अजीजनत्) प्रकट करता है। वही (कृष्णा तमांसि) काले अज्ञान-अन्धकारों को (जंघनत्) विनष्ट करे।

पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत।
जीरा अजिरशोचिषः ॥ २५ ॥ ११ ॥

भा०—(पवमानस्य) राष्ट्र के शोधक और (जंघ्नतः) दुष्टों के नाशक (अजिर-शोचिषः) तेजस्वी (हरेः) सूर्यवत् दुःखों के हटाने वाले तुझ नरोत्तम से (जीराः) सबको जीवन देने वाले (चन्द्राः) सर्वाह्लादकारी गुण (असृक्षत) प्रकट होते हैं। इत्येकादशो वर्गः ॥

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २६ ॥

भा०—(पवमानः) वेग से युद्ध में जाता हुआ (रथीतमः) महारथी, (शुभ्रशः-तमः) अधिक शोभावान्, (शुभ्रेभिः) शोभायुक्त गुणों से ही (मरुद्गणः) मनुष्य समूह का स्वामी और (हरि-चन्द्रः) सबको आह्लाद देने वाला हो जाता है।

पवमानो व्यश्नवद्रश्मिभिर्वाजसातमः।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ २७ ॥

भा०—(पवमानः) अभिषेक को प्राप्त होने वाला, (वाज-सातमः) धन का दाता, आदाता और विभक्ता पुरुष (रश्मिभिः) रश्मियों से (वि अश्नवत्) विशेष रूप से व्यापे और वह (स्तोत्रे) उपदेशादि करने वाले के हितार्थ (सुवीर्यं दधत्) उत्तम वीर्य को धारण करे।

प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् ।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ २८ ॥

भा०—(इन्दुः) ऐश्वर्यवान् वह (सुवानः) अभिषेक को प्राप्त होता हुआ (पवित्रम्) पवित्र (अव्ययम्) नाश को न प्राप्त होने वाले पद को (अति अक्षाः) सर्वोपरि प्राप्त हो (पुनानः) अन्यों को भी पवित्र करता हुआ वह (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् होकर (इन्द्रम् आ अक्षाः) ऐश्वर्ययुक्त पद को प्राप्त हो ।

एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः ।
इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥ २९ ॥

भा०—(एषः सोमः) यह जीव (गवां त्वचि अधि) इन्द्रियों के आवरणकारी देह के ऊपर अध्यक्ष रूप से (अद्रिभिः क्रीडति) शक्तियों वा प्राणों से खेलता है, नाना सुख प्राप्त करता है और (मदाय) सुख के लिये (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (जोहुवत्) पुकारता है ।

यस्य ते द्युम्नवत्पयः पवमानाभृतं दिवः ।
तेन नो मृळ जीवसे ॥ ३० ॥ १२ ॥

भा०—हे (पवमान) रक्षक प्रभो ! (यस्य ते दिवः) जिस तुझ तेजस्वी का (पयः द्युम्नवत्) तेज, वीर्य और पोषक अन्नादि धन (आ-भृतम्) सर्वत्र धारित है (तेन नः जीवसे) उससे हमें तू जीवन दे (मृड) दया कर । इति द्वादशो वर्गः ॥

[६७]

ऋषिः—१—३ भरद्वाजः । ४—६ कश्यपः । ७—९ गोतमः । १०—१२ अत्रिः । १३—१५ विश्वामित्रः । १६—१८ जमदग्निः । १९—२१ वसिष्ठः । २२—३२ पवित्रो वासिष्ठो वोभौ वा ॥ देवताः—१—९, १३—२२, २८—३० पवमानः सोमः । १०—१२ पवमानः सोमः पूषा वा । २३, २४ अग्निः १२५ अग्निः सविता वा । २६ अग्निरग्निर्वा सविता च । २७ अग्निर्विश्वेदेवा वा । ३१, ३२ पावमान्यध्येतृस्तुतिः ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ११—१३,

२५, १९, २३, २५ निचृद् गायत्री ३, ८ विराड् गायत्री । १० यवमध्या गायत्री । १६—१८ भुरिगार्ची विराड् गायत्री । ६, ७, ९, १४, २०—२२, २४, २६, २८, २९ गायत्री । २७ अनुष्टुप् । ३१, ३२ निचृदनुष्टुप् । ३० पुरउष्णिक् ॥ द्वात्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

त्वं सो॑मासि धार॒युर्म॒न्द्र ओजि॑ष्ठो अध्व॒रे ।
पव॑स्व मंह॒यद्र॑यिः ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (धारयुः) राष्ट्र को धारण करने वाली शक्ति का स्वामी (असि) है। तू (मन्द्रः) आनन्दप्रद, (ओजिष्ठः) अधिक बलवान्, पराक्रमी है। तू (मंहयद्-रयिः) ऐश्वर्य देता हुआ (अध्वरे पवस्व) यज्ञ वा राष्ट्र में (पवस्व) प्राप्त हो।

त्वं सु॒तो नृ॒माद॑नो दध॒न्वान्म॑त्स॒रिन्त॑मः ।
इन्द्रा॑य सू॒रिरन्ध॑सा ॥ २ ॥

भा०—हे वीर ! (त्वम्) तू (सुतः) अभिषिक्त होकर (नृ-मादनः) मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला, (दधन्वान्) सबका पोषण करने वाला, (मत्सरिन्-तमः) स्वयं सबसे अधिक प्रसन्न, (सूरिः) विद्वान् होकर (अन्धसा) अन्न से (इन्द्राय) ऐश्वर्य वा परमाधिकारी की सेवा कर।

त्वं सु॒ष्वा॒णो अद्रि॑भिर॒भ्य॑र्ष॒ कनि॑क्रदत् ।
द्यु॒मन्तं॒ शुष्म॑मुत्त॒मम् ॥ ३ ॥

भा०—(त्वं) तू (अद्रिभिः सुष्वाणः) सुख वर्षक पुरुषों द्वारा अभिषिक्त होता हुआ (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, (द्युमन्तं) तेज से युक्त (उत्तमम् शुष्मम्) उत्तम शत्रु शोषक बल को (अभि अर्ष) प्राप्त कर।

इन्दु॑र्हिन्वा॒नो अ॑र्षति ति॒रो वारा॑ण्य॒व्यया॑ ।
हरि॒र्वाज॑मचिक्रदत् ॥ ४ ॥

भा०—(हिन्वानः इन्दुः) वृद्धि प्राप्त करता हुआ, ऐश्वर्ययुक्त तेजस्वी पुरुष (अव्यया वाराणि) स्नेहादि के बने वरणीय, लुभाने वाले प्रलोभनों

को भी (अति अर्षति) पार कर जाता है। वह (हरिः) अज्ञान दूर करने वाला होकर (वाजाम् अचिक्रदत्) ज्ञान का उपदेश करता है।

इन्द्रो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा।
वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्रो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अव्यम्) भूमि के धन को (वि अर्षसि) प्राप्त कर। (श्रवांसि वि) अन्न और कीर्त्तियां प्राप्त कर। (सौभगा वि अर्षसि) सौभाग्य प्राप्त कर। हे (सोम) उत्तम शासक ! तू (गोमतः वाजान् वि अर्षसि) वाणीसम्पन्न विद्वान् से ज्ञानों और भूमि के स्वामी से अन्नों को प्राप्त कर। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम्।
भरा सोम सहस्रिणम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (शतग्विनं) सैकड़ों गौओं से युक्त, (गोमन्तं) वाणियों से युक्त (अश्विनम्) अश्वों से सम्पन्न (सहस्रिणं) संख्या में सहस्रों वा सहस्रों सुखों से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त करा।

पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः।
इन्द्रं यामेभिराशत ॥ ७ ॥

भा०—(पवमानासः) वेग से प्रयाण करते हुए, (इन्दवः) शत्रु को सन्तप्त करने में कुशल, (आशवः) वीर जन (यामेभिः) अपनी नियम व्यवस्थाओं द्वारा (पवित्रम् तिरः) कण्टक शोधनकार्य को पूर्ण करके (इन्द्रं) ऐश्वर्य को (आशत) प्राप्त करते हैं।

ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः।
आयुः पवत आयवे ॥ ८ ॥

भा०—(ककुहः) सर्वश्रेष्ठ, (सोम्यः) प्रशास्ता पद के योग्य (रसः) बलवान् (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (पूर्व्यः) पूर्व विद्वान् एवं शक्ति से पूर्ण जनों से

सत्कार पाकर (इन्द्राय पवते) ऐश्वर्ययुक्त पद के लिये आगे बढ़ता है और वह स्वयं (आयुः) श्रेष्ठ होकर (आयवे) सब के उपकार के लिये हो।

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम्।

अभि गिरा समस्वरन्॥ ९॥

भा०—(पवमानम्) अभिषेक योग्य एवं वीर्य, शौर्य और ज्ञान से राष्ट्र को पवित्रकर्त्ता (मधु-श्चुतम्) जल, मधुर वचन और अन्न के दाता, (सूरम्) सूर्य-समान तेजस्वी पुरुष को (उस्रयः) राष्ट्र में बसने वाले जन किरणों के तुल्य (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं और उसे (गिरा) उपदेश द्वारा (अभि सम् अस्वरन्) सब ओर से शिक्षित करें।

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि।

आ भक्षत्कन्यासु नः॥ १०॥ १४॥

भा०—(पूषा) पोषक, (अविता) रक्षक, (अजाश्वः) अश्वों से युक्त विद्वान् (यामनियानि) प्रत्येक यम नियम में अभ्यस्त वा उत्तम विवाह-कृत्य में (नः कन्यासु) हमारी कन्याओं के पाणिग्रहण करने के लिये (नः आ भक्षत्) हमें प्राप्त हो। इति चतुर्दशो वर्गः॥

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु।

आ भक्षत्कन्यासु नः॥ ११॥

भा०—(अयं) यह (सोमः) उत्तम विद्वान्, वधू की कामना करने वाला, (कपर्दिने) उत्तम मुकुट से सजे राजा के योग्य (मधु घृतं न पवते) आनन्ददायक खाद्य पदार्थ, मधुपर्क और जल, अर्घ्य पाद्य आदि प्राप्त करता है वह (नः कन्यासु आभक्षयत्) हमारी कन्याओं के लिये हमें प्राप्त हो।

अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि।

आ भक्षत्कन्यासु नः॥ १२॥

भा०—हे (आघृणे) तेजस्विन्! जो (नः कन्यासु आ भक्षत्) हमें कन्याओं के निमित्त प्राप्त हो (अयं) यह (ते) तेरे (शुचि) शुद्ध (घृतं न)

प्रकाशवत् (ते सुतः) तेरा अभिषिक्त पुत्रवत् निष्णात ज्ञान के प्रकाश को (पवते) प्राप्त हो।

वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया।
देवेषु रत्नधा असि॥ १३॥

भा०—हे (सोम) विद्वन्! तू (देवेषु रत्नधाः असि) कामनावान् जनों में रमणीय ज्ञान और धन देने वाला है। तू (कवीनां वाचः जन्तुः) विद्वानों की वाणी का प्रकाशक है। तू (धारया पवस्व) वाणी से सबको पवित्र कर।

आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते।
अभि द्रोणा कनिक्रदत्॥ १४॥

भा०—(श्येनः) उत्तम चरित्रवान् पुरुष (कलशेषु) जल से पूर्ण कलशों द्वारा (आ धावति) अपने को शुद्ध करे। (वर्म) सुन्दर वस्त्रों वा (वर्म) उत्तम गृह [गृहस्थ आश्रम] में (विगाहते) प्रवेश करे। वह (द्रोणानि) गृहोचित कर्त्तव्यों वा धनों को (अभि कनिक्रदत्) प्राप्त करे।

परि प्र सोम ते रसोऽसर्जि कलशे सुतः।
श्येनो न तक्तो अर्षति॥ १५॥ १५॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरे लिये (सुतः) संस्कारयुक्त (रसः) जल जैसे (कलशे) कलश में और (रसः) बल (कलशे) राष्ट्र में (परि असर्जि, प्र असर्जि) चारों ओर हो और अच्छी प्रकार तैयार किया जावे। वह (श्येनः न) बाज के समान (तक्तः) गति करता हुआ (अर्षति) विचरता है। इति पञ्चदशो वर्गः॥

पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः॥ १६॥

भा०—तू (मधुमत्-तमः) मधुर स्वभाव वा जल, अन्न और बल का स्वामी होकर, हे (सोम) शासक! तू (मन्दयन्) सबको प्रसन्न करता हुआ (इन्द्राय पवस्व) ऐश्वर्ययुक्त पद के लिये आगे बढ़।

असृग्रन्देववीतये वाजयन्तो रथा इव॥ १७॥
ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत॥ १८॥

भा०—(ते) वे (सुतासः) अभिषिक्त जन (मदिन्तमाः) हर्ष उत्पन्न करने वाले (शुक्राः) जल के समान शुद्ध होकर (वायुम् असृक्षत) वायुवत् प्रबल पद को निर्माण करते हैं और वे (वाजयन्तः रथाः इव) संग्राम करने वाले रथों के समान, (देव-वीतये) मनुष्यों की रक्षा के लिये (असृग्रन्) तैयार होते हैं।

ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ १९ ॥

भा०—(स्तोत्रे) स्तुतिकर्त्ता प्रजाजन के लिये (सुवीर्यं दधत्) बल को धारण करता हुआ, हे (सोम) विद्वन् ! तू (ग्राव्णा तुन्नः) उपदेष्टा द्वारा प्रेरित होकर और (अभि-स्तुतः) प्रशंसित एवं उपदिष्ट होकर (पवित्रं गच्छसि) शत्रु को दूर करने के पद को प्राप्त होता है।

एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ २० ॥ १६ ॥

भा०—(एषः) यह (तुन्नः) विद्वानों द्वारा शासित और (अभि स्तुतः) प्रशंसित (रक्षोहा) विघ्नों का नाशक होकर (अव्ययम्) रक्षक पद के योग्य (वारम्) वरणीय और शत्रुओं के वारक (पवित्रं) शत्रुरूप कण्टक-शोधन के कार्य को (अति गाहते) सर्वोपरि प्राप्त करता है।

यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह ।
पवमान वि तज्जहि ॥ २१ ॥

भा०—हे (पवमान) शत्रुकण्टकशोधक ! (यद् भयम् अन्ति) जो भय समीप या (दूरके) दूर देश में भी (माम्) मुझे (इह विन्दति) यहां प्राप्त होता है, तू (तत् वि जहि) उसे विनष्ट कर।

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु नः ॥ २२ ॥

भा०—(सः) वह (विचर्षणिः) विशेष अध्यक्ष, (पवमानः) दुष्टों को दूर करता हुआ (पवित्रेण) शस्त्र बल से युक्त होकर (नः) हममें (यः पोता) जो पवित्रकर्त्ता है (सः नः पुनातु) वह हमें पवित्र करे।

यत्ते॑ प॒वित्र॑म॒र्चिष्यग्ने॒ वित॑तम॒न्तरा।
ब्रह्म॒ तेन॑ पुनीहि नः॥ २३॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रभो! (यत्) जो (ते) तेरा (पवित्रम्) पवित्रकर्त्ता (ब्रह्म) महान् तेज (अर्चिषि) तेजोमय सूर्यादि के और (अन्तरा विततम्) जगत् के बीच व्याप्त है (तेन नः पुनीहि) उससे हमें पवित्र कर।

यत्ते॑ प॒वित्र॑म॒र्चिव॒दग्ने॒ तेन॑ पुनीहि नः।
ब्र॒ह्म॒स॒वैः पु॑नीहि नः॥ २४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! (यत्) जो (ते) तेरा (अर्चिवत्) तेजोयुक्त (पवित्रम् ब्रह्म) पवित्र ज्ञान है (तेन नः पुनीहि) उससे तू हमें पवित्र कर। (सः) वह तू (नः पुनीहि) हमें पवित्र करता रह।

उ॒भाभ्यां॑ देव सवितः प॒वित्रे॑ण स॒वेन॑ च।
मां पु॑नीहि वि॒श्वतः॑॥ २५॥ १७॥

भा०—हे (देव) ज्ञानप्रकाशक! हे (सवितः) उत्तम शासक! तू अपने (पवित्रेण) पवित्र करने वाले ज्ञान और (सवेन च) शासन (उभाभ्यां) दोनों से (आ विश्वतः पुनीहि) हमें सब ओर से पवित्र कर। इति सप्तदशो वर्गः॥

त्रि॒भिष्ट्वं दे॑व सवित॒र्वर्षि॑ष्ठैः सोम॒ धाम॑भिः।
अग्ने॒ दक्षैः॑ पुनीहि नः॥ २६॥

भा०—हे (देव सवितः) तेजस्विन्, प्रभो! हे (सोम) सर्वाध्यक्ष! हे (अग्ने) सर्वाग्रणी, तू (त्रिभिः दक्षैः वर्षिष्ठैः धामभिः) पापों को भस्म करने वाले, सब सुखों के देने वाले, तीनों तेजों से (नः पुनीहि) हमें पवित्र कर।

पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥ २७ ॥

भा०—(देव-जनाः) शुभ गुणों के प्रकाशक जन (मां पुनन्तु) मुझे पवित्र करें। (वसवः) प्राणों के तुल्य आश्रमों में बसने वाले जन (धिया) ज्ञान और कर्म द्वारा (मां पुनन्तु) मुझे पवित्र करें (विश्वे देवाः) हे समस्त विद्वान् जनों! (मां पुनीत) मुझे पवित्र करो। (जातवेदः मां पुनीहि) हे ज्ञानवन्! तू मुझे पवित्र कर।

प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः।
देवेभ्य उत्तमं हविः ॥ २८ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन्! तू (विश्वेभिः अंशुभिः) समस्त उपायों से (देवेभ्यः) मनुष्यों के लिये (उत्तमं हविः प्र प्यायस्व) सूर्यवत् उत्तम जल-अन्न की वृद्धि कर और (प्र स्यन्दस्व) दुग्धादि की धार बहाया कर।

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम्।
अगन्म बिभ्रतो नमः ॥ २९ ॥

भा०—हम (नमः बिभ्रतः) उत्तम अन्न और आदरयुक्त वचन धारण करके (प्रियं) प्रिय (पनिप्नतम्) उपदेष्टा (युवानम्) युवा (आहुति-वृधम्) दानादि से वृद्धि को प्राप्त गुरु को (उप अगन्म) शिष्यवत् प्राप्त हों।

अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम।
आखुं चिदेव देव सोम ॥ ३० ॥

भा०—(अलाय्यस्य = अराय्यस्य) धन और हमारे अधिकार न देने वाले शत्रु का (परशुः) शस्त्र (तम् ननाश) उसी को नष्ट करे। हे (सोम) शासक! तू (आ पवस्व) दुष्टों का नाश कर। हे (देव सोम) तेजस्विन्! तू (आखुं चित्) मूषक तुल्य पृथ्वी से धन प्राप्त करने वाले कृषक, श्रमी को (चित्) भी आदरपूर्वक (आ पवस्व) कार्य में लगा।

यः पा॑वमा॒नीर॒ध्येत्यृषि॑भि॒ः सम्भृ॑तं॒ रस॑म् ।
सर्वं॒ स पू॒तम॑श्नाति स्वदि॒तं मा॑त॒रिश्व॑ना ॥ ३१ ॥

भा०—(यः) जो (पवमानीः) पवित्र करने और अभिषेक किये जाने वाले के सम्बन्ध की पवमान देवताक ऋचाओं को और (ऋषिभिः) वेदमन्त्रार्थ द्रष्टा विद्वानों द्वारा (संभृतम्) संगृहीत (रसम्) ज्ञान का (अध्येति) अध्ययन, अर्थ ज्ञान और मनन करता है (सः) वह (मातरिश्वना) प्रभु या आचार्य के अधीन जीवन धारण करने वाले शिष्यगण द्वारा (स्वदितं) सुख से ग्रहण करने योग्य (सर्वं) समस्त (पूतं) पवित्र ज्ञान को अन्न के समान (अश्नाति) ग्रहण करता है और उसका उपभोग करता है।

पा॒व॒मा॒नीर्यो अ॒ध्येत्यृषि॑भि॒ः सम्भृ॑तं॒ रस॑म् ।
तस्मै॒ सर॑स्वती दुहे क्षी॒रं स॒र्पिर्मधू॑द॒कम् ॥ ३२ ॥ १८ ॥ ३ ॥

भा०—(यः ऋषिभिः संभृतं रसं पावमानीः अध्येति) जो ऋषियों द्वारा आप्त ज्ञानमयी "पावमानी", अन्तःकरण को पवित्र करने वाली ऋचाओं का अध्ययन करता है, (सरस्वती) वेदवाणी और प्रभु (तस्मै क्षीरं सर्पिः मधु उदकम् दुहे) उसको दूध, घी, मधु, जल के तुल्य ऐश्वर्य, बल, आनन्द और अभ्युदय प्रदान करता है। इत्यष्टादशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[६८]

वत्सप्रिर्भालन्दनः ऋषिः। पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृज्जगती। २, ४, ५, ९ जगती। ८ विराड् जगती। १० त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र दे॒वमच्छा॒ मधु॑मन्त॒ इन्द॒वोऽसि॑ष्यदन्त॒ गाव॒ आ न धे॒नवः॑ ।
ब॒र्हि॒षदो॑ वच॒नाव॑न्त॒ ऊध॑भिः परि॒स्रुत॑मु॒स्रिया॑ नि॒र्णिजं॑ धिरे ॥१॥

भा०—(धेनवः गावः न) जैसे दुधार गौवें (देवं प्र असिष्यदन्त) नाना गुणयुक्त दुग्ध को प्रस्रवित करती हैं वैसे ही (मधुमन्तः इन्दवः)

ज्ञानवान् सज्जन (देवं) जिज्ञासु के प्रति (प्र असिष्यदन्त) ज्ञान-रस को प्रवाहित करते हैं। जैसे (उस्रियाः ऊधभिः) गौवें थनों द्वारा (परिस्रुतम्) बहने वाले (निर्णिजं) शुद्ध दूध को (धिरे) धारण करतीं और देती हैं वैसे ही (बर्हि-षदः) प्रजा का अध्यक्ष होकर विराजने वाले और (वचना-वन्तः) उत्तम वाग्मी जन, (परि-श्रुतं = परि-स्रुतं) दूर तक श्रवण करने योग्य, घोषणा, प्रवचनादि द्वारा फैलने वाले (निः-निजं) विशुद्ध ज्ञान को (धिरे) धारण करें और अन्यों को प्रदान करें।

स रोरुवद॒भि पूर्वा॑ अचिक्रददु॒पारुहः॑ श्र॒थय॑न्त्स्वादते॒ हरिः॑ ।
ति॒रः प॒वित्रं॑ परि॒यन्नु॒रु ज्रयो॒ नि शर्या॑णि दधते दे॒व आ वर॑म् ॥२॥

भा०—(सः) वह ज्ञानी वा अध्यक्ष (पूर्वाः) ज्ञान से पूर्ण वाणियों को (अभि रोरुवत्) सर्वत्र प्रचारित करे। वह (हरिः) ज्ञान को दूर २ तक ले जाने वाला, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (उपारुहः) समीप आने वालों को (श्रथयन्) सन्मार्ग में प्रयत्नशील करता और दुःखों से छुड़ाता हुआ (स्वादते) स्वयं भी आनन्द लाभ करता है। वह (उरु-ज्रयः) महान् पराक्रमी होकर (तिरः) सर्वोत्तम (पवित्रम्) पवित्र पद को (परियन्) प्राप्त करता हुआ (देवः) सूर्यवत् तेजस्वी होकर (शर्याणि नि दधते) विनाशयोग्य अन्तः और बाह्य शत्रुओं को नष्ट करता और (वरम् आ दधते) वरण करने योग्य ज्ञानमय पद को प्राप्त करता और औरों को देता है।

वि यो म॒मे य॒म्या॑ सं॒य॒ती मदः॑ साकं॒वृधा॒ पय॑सा पिन्वद॒क्षिता॑ ।
म॒ही अ॑पा॒रे रज॑सी वि॒वेवि॑दद॒भिव्र॒जन्नक्षि॑तं॒ पाज॒ आ द॑दे ॥३॥

भा०—(यः) जो (मदः) हर्षयुक्त होकर (यम्या) यम नियम में बद्ध, (संयती) परस्पर साथ प्रयत्नशील (साकं वृधा) साथ बढ़ने वाले, (अक्षिता) क्षीण न होने वाले, (मही) महान् शक्ति से युक्त, (अपारे) अपार (रजसी) सूर्य पृथिवीवत् स्त्री पुरुषों, सभा, सभापति, एवं शास्य शासक वर्गों को (पयसा पिंवत्) अन्नवत् बल वीर्य से पूर्ण करता है। वह (अभि

व्रजत्) उनको सब ओर से सुख, ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त कराता और (अक्षितं पाजः आददे) अक्षय बल स्वयं भी धारण करता व देता है।

स मातरा विचरन्वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम्। अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः॥४॥

भा०—(मेधिरः) बुद्धिमान् पुरुष (सः) वह (मातरौ विचरन्) माता पिता, ज्ञानी पुरुषों की सेवा करता हुआ और (अपः वाजयन्) कर्म को सफल करता हुआ, (स्वधया) अपनी शक्ति से (पदम्) पद या ज्ञान को (पिन्वते) समृद्ध करता है। वह (अंशुः) भोक्ता होकर (नृभिः यतः) पुरुषों द्वारा नियम में बद्ध रह कर (यवेन पिपिशे) अन्न द्वारा रूपवान् और हृष्ट पुष्ट हो। (जामिभिः सं नसते) बन्धु जनों से मिलकर रहे और (शिरः रक्षते) शिर के समान पद की रक्षा करे।

सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः। यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम्॥५॥१९॥

भा०—(कविः) विद्वान् पुरुष (दक्षेण मनसा) शक्तियुक्त चित्त वा ज्ञान से (सं जायते) अच्छी प्रकार प्रकट होता है। वह (ऋतस्य) सत्य ज्ञान और बल को (गर्भः) अपने भीतर ग्रहण करने वाला (परः) सर्वोत्कृष्ट होकर (यमा निहितः) यम-संयम द्वारा स्थिर होता है। (यूना ह सन्ता) ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी दोनों युवा और युवती होकर (प्रथमम्) पहले (जनिम) जन्म को (गुहा) बुद्धि, वेद वाणी के गर्भ में (वि जज्ञतुः) प्राप्त करते हैं और (नेमम्) शेष जन्म को वे (उद्यतम्) उत्तम होकर प्राप्त होते हैं। इत्येकोनविंशति वर्गः॥

मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत्परावतः। तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम्॥६॥

भा०—(यत्) जो वीर पुरुष (श्येनः) बाज के समान वेगवान् उत्तम आचरणवान् होकर (परावतः) दूर देश से वा गुरुगृह से (अन्धः)

ज्ञान को ग्रहण करता है उस (मन्द्रस्य) सबके हर्षकारी पुरुष को (रूपं) रूप को (मनीषिणः) विद्वान् लोग (विविदुः) जानें। (ऋग्मियं) स्तुतियुक्त, वाणियों से स्तुतियोग्य (परियन्तं) सर्वोपरि पद को प्राप्त (अंशुं) तेजस्वी, (उशन्तं) ऐश्वर्य को चाहने वाले, (सुवृधं) सुख बढ़ाने वाले (तं) उसको (नदीषु) स्तुतिपरक प्रजाओं के बीच (मर्जयन्त) अभिषिक्त करें।

त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम्। अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) सबके सञ्चालक! (ऋषिभिः) ज्ञानद्रष्टा (मतिभिः) मननशील पुरुषों द्वारा (धीतिभिः) ध्यान-धारणा आदि क्रियाओं से (हितम्) हृदय में धारित, (सुतं) उपासित (त्वां) तुझको ही (दश योषणः) दसों चित्त-वृत्तियां (अव्यः) तुझसे प्रेम करने वाले आत्मा के (वारेभिः) वरणीय गुणों (उत) और (देव-हूतिभिः) देने वाले तुझ स्वामी की स्तुतियों सहित और (नृभिः) देहसञ्चालक प्राणों सहित (त्वा मृजन्ति) तेरा परिशोधन करती हैं और तू (यतः) ध्यान, धारणा, समाधि से संयमित होकर (सातये) भजन करने वाले उपासक को (वाजम् आदर्षि) बल और ऐश्वर्य प्रदान करता है।

परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः। यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥८॥

भा०—(मनीषाः स्तुभः) मन के सन्मार्ग में प्रेरक वीर एवं विद्वान् जन उस (वय्यं) सर्वरक्षक, (सु-सं-सदं) सुप्रतिष्ठित (परि प्रयन्तं) सर्वत्र गतिमान् (सोमं) प्रभु की (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं। (यः) जो (धारया) धारणाशक्ति द्वारा (मधुमान्) ज्ञान युक्त और बलवान् होकर (ऊर्मिणा) सर्वोपरि शक्ति से (रयि-षाड्) बल को विजय करता हुआ, (अमर्त्यः) अविनाशी (दिवः वाचं इयर्त्ति) ज्ञान-प्रकाश से युक्त वाणी को गुरुवत् प्रेरित करता है।

अयं दिव ईयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत्प्रियम् ९

भा०—(दिवः रजः) आकाश से जैसे मेघ जल देता है वैसे ही (पुनानः सोमः) जगत् को चलाने वाला प्रभु (दिवः) ज्ञान-स्वरूप वेद से, सूर्य से तेज के समान (विश्वम् रजः आ इयर्ति) समस्त प्रकाश प्रदान करता है। वह (कलशेषु) समस्त कलशों के बीच (सीदति) विराजता है। वह (अद्भिः गोभिः) प्राणों और इन्द्रियों से, (अद्भिः) आप्त पुरुषों और (गोभिः) वेद-वाणियों से (मृज्यते) शुद्ध रूप में जाना जाता है। वह (अद्रिभिः सुतः) जीवों से उपासित (पुनानः इन्दुः) सर्वपावन प्रभु (प्रियम् वरिवः) प्रिय वरणीय सुख (विदत्) प्राप्त करावे।

एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१०॥२०॥

भा०—हे (सोम) जगत्शासक! तू (परि-सिच्यमानः) परिषिक्त होकर, स्तुति किया जाकर (चित्रतमं वयः दधत्) अद्भुत बल-वीर्य धारण करके (पवस्व) हमें प्राप्त हो। हम (द्यावा-पृथिवी) आकाश और भूमि के तुल्य माता पिताओं को (हुवेम) प्राप्त करें, उनका आदर करें। हे (देवाः) विद्वान् जनों! (अस्मे सुवीरं रयिम् धत्त) हमें उत्तम पुत्र और ऐश्वर्य प्रदान करो। इति विंशो वर्गः॥

[६९]

हिरण्यस्तूप ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ५ पादनिचृज्जगती। २—४, ६ जगती। ७, ८ निचृज्जगती। ९ निचृत्त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप्॥
दशर्चं सूक्तम्॥

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥ १ ॥

भा०—(धन्वन् इषुः न) धनुष पर बाण के समान (धन्वन्) ऐश्वर्यशाली प्रभु में (इषुः मतिः) इच्छा-तुल्य बुद्धि को भी (प्रति धीयते) दुःखों को दूर करने के लिये रक्खा जाता है। (मातुः ऊधनि वत्सः न) माता के स्तन पर बालक के समान (वत्सः) स्तुतिशील जन (मातुः ऊधनि) जगन्निर्माता के धारक स्वरूप में (उप सर्जि) लग जाता है। (अग्रे आयती) आगे बढ़ती हुई (उरु धारा इव) विशाल जल-धारा जैसे आग के समान निम्नस्थलों को (दुहे) पूर्ण कर देती है वैसे ही (अग्रे आयती) सबके समक्ष प्रकट होती हुई (उरु-धारा) अनेक अर्थ धारण करने वाली वेदवाणी (दुहे) ज्ञान से पूर्ण करती है। (अस्य) इस महान् प्रभु के (व्रतेषु आपे) समस्त उत्तम कर्मों में भी (सोमः इष्यते) यज्ञों में सोम के समान ओषधि वर्ग का उपयोग ही अपेक्षित है।

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि। पवमानः सन्तनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२॥

भा०—(मतिः उपो पृच्यते) उस प्रभु के प्रति बुद्धि या मति को ध्यान द्वारा लगाया जाता है। (मधु) आदरार्थ अतिथि के प्रति जलतुल्य हर्षकारीवचन का (सिच्यते) प्रयोग किया जाय। उस समय (आसनि अन्तः) मुख के बीच में (मन्द्राजनी) हर्षोत्पादिका वाणी (चोदते) शब्दों का उच्चारण करती है। जैसे (प्र घ्नताम् इव) प्रहार करने वालों में (संतनिः द्रप्सः) कार्यकुशल वेगवान् पुरुष वा बाण (वारम् परि अर्षति) वारण करने योग्य शत्रु तक पहुँचता है वैसे ही (प्रघ्नताम्) उत्तम मार्ग एवं उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाले पुरुषों में भी (पवमानः) आत्मा को पवित्र करने वाला (संतनिः) उत्तम कर्मकारी मनुष्य (मधुमान्) हर्षयुक्त और (द्रप्सः) द्रुत गति होकर (वारम्) वरणीय प्रभु की ओर (परि अर्षति) चला जाता है।

अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते। हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ३

भा०—जैसे (वधूयुः अव्ये त्वोर (अस्मे) हमारे (वाजाः) अन्न और ऊन से बने आसन पर विराजता है, वह पक ! (तिष्ठन्तु) स्थिर रहें, को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वह (अदित. को प्राप्त करता है। वैसे ही (वधूयुः) जगत्धारिका पृथीयम्। परमेश्वर (अव्ये) सर्वव्यापक (त्वचि) सबको ढकने वाले, तम यस्कृतः ८: तत्व' प्रकृति पर (परि पवते) शक्तिशाली होता है। (नप्तीः) अपन के तुल्य प्रेम से बंधे जीवों को (श्रथ्नीते) मुक्त कर देता है। तब वह ज (अदितेः ऋतम्) परमेश्वर के ज्ञानमय स्वरूप को (यते) प्राप्त होता है। (यजतः हरिः) सबसे उपासना प्रभु और उपासक भक्त (हरिः) दुःखों का हर्ता, (संयतः) यत्नशील और (मदः) हर्षयुक्त होकर (अक्रान्) सबको पार कर जाता है। वह (महिषः न) महान् पुरुष के समान (नृम्णा) बड़े २ ऐश्वर्यों को (शिशीते) शक्तिशाली करता हुआ (शोभते) शोभा को प्राप्त होता है।

उ॒क्षा मि॑माति॒ प्रति॑ यन्ति धे॒नवो॑ दे॒वस्य॑ दे॒वीरुप॑ यन्ति निष्कृ॒तम्।
अत्य॑क्रमी॒दर्जु॑नं॒ वार॑म॒व्यय॒मत्कं॒ न नि॒क्तं परि॒ सोमो॑ अव्यत ॥४॥

भा०—जैसे (उक्षा मिमाति) वीर्य सेचन में समर्थ बिजार शब्द करता है और (धेनवः प्रति यन्ति) गौएं स्वयं उसके पास जाती हैं। वैसे ही जब (उक्षा) कार्य-भार को कन्धों पर उठाने में समर्थ प्रभु वा राजा (मिमाति) आज्ञा देता, शासन करता है, तब (धेनवः देवीः) ज्ञान-रस का पान करने वाली, नाना कामनाओं से युक्त प्रजाएं (देवस्य) तेजस्वी प्रभु के (निष्कृतम् उप यन्ति) स्थान को प्राप्त होती हैं। वह (सोमः) जगत्शासक प्रभु (अर्जुनः) दुष्टों के नाशकारी (अव्ययम्) प्रजा के रक्षक वा अविनाशी, (वारम्) दुःखों के वारण करने वाले बल को (अति अक्रमीत्) सर्वाधिक होकर प्राप्त करता है और वह (निक्तं अत्कं न) शुद्ध कवच के समान (अत्कं) शुद्ध रूप को (परि अव्यत) धारण करता है।

...र्मर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।

भा०—(धन्वन् इषः कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥५॥२१॥
ऐश्वर्यशाली प्रभु में (इर्त्यः) अविनाशी, (निः-निजानः) शुद्ध स्वरूप और
दुःखों को दूर है । वह (रुशता) कान्तिमय, (अमृक्तेन) शुद्ध, (वाससा)
माता के रूप से (परि व्यत) सर्वत्र व्याप्त है । वह (बर्हणा) महान् (दिवः
ऊधः) सूर्य के पृष्ठ को और (चम्बोः) आकाश और भूमि के (नभस्म-
यम्) मेघमय (उप-स्तरणम्) आवरण को (निः-निजे कृत) शुद्ध करने
के लिये बनाता है ।

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ६

भा०—(सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्यरश्मियों के सदृश (द्रावयित्नवः)
द्रुत-गति से जाने वाले, (मत्सरासः) सबको हर्ष देने वाले, (प्र-सुपः)
शत्रु को भूमि पर सुलाने वाले सुखप्रद (आशवः) वेगवान् (सर्गासः)
जगत्-स्रष्टा जलों के समान (ततं तन्तुं) इस विस्तृत जगन्मय पट को
(साकम्) एक साथ (ईरते) सञ्चालित करते हैं । (इन्द्रात् ऋते) प्रभु के
सिवाय (किम् चन धाम न पवते) कोई भी लोक गति नहीं कर सकता ॥

सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत ।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ७

भा०—(निम्ने प्रवणे) निम्न प्रदेश में जैसे (सिन्धोः) प्रवाह के,
(वृष-च्युताः) मेघ से गिरे हुए, (आशवः) वेगवान् जलसमूह (गातुम्
आशत) स्वयं मार्ग को प्राप्त कर लेते हैं वैसे ही (वृष-च्युताः) बलवान्
प्रबन्धक पुरुष से प्रेरित होकर (आशवः) वेगवान् (मदासः) हर्षयुक्त जन
(निम्ने प्रवणे) उसके नीचे पद पर रहकर भी उस (सिन्धोः इव) समुद्र
के समान गंभीर प्रभु की (गातुम्) आज्ञा को प्राप्त करते हैं । (निः
निवेशे) हमारे स्थान में (अस्मे द्विपदे चतुष्पदे) हमारे दोपायों और

चौपायों को (शं) सुख प्राप्त हो और (अस्मे) हमारे (वाजाः) अन्न और (कृष्टयः) खेतियां, हे (सोम) उत्तम शासक! (तिष्ठन्तु) स्थिर रहें, विनष्ट न हों।

आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद्गोमद्यवमत्सुवीर्यम्।
यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ८॥

भा०—हे (सोम) जगदुत्पादक प्रभो! तू (नः) हमें (वसुमत्) बसने योग्य भूमियों और नाना ऐश्वर्यादि से युक्त, (हिरण्यवत्) सुवर्णादि पदार्थों से सम्पन्न (अश्ववत्) अश्वों से सम्पन्न, (गोमत्) गवादि से युक्त, (यवमत्) अन्नों से समृद्ध, (सुवीर्यम्) उत्तम सम्पदा (आपवस्व) प्राप्त करा। हे (सोम) हे शासक! हे (पितरः) पालक सेनापतियों! (यूयं) आप लोग ही (मम) मेरे पालक और (दिवः मूर्धानः स्थन) आकाश के मूर्धावत् चमकते सूर्यतुल्य सबके पालक एवं (दिवः मूर्धानः) भूमि के मूर्धा तुल्य और (प्रस्थिताः) उत्तम पद पर स्थित, (वयः-कृतः स्थन) बल, अन्न आदि के रक्षक बनो।

एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ॥ ९॥

भा०—(एते) ये (पवमानासः) आगे बढ़ते हुए (सोमाः) विद्यादि से अभिषेक करते हुए (रथा इव यतिम्) महारथी लोग जैसे युद्ध में जाते हैं वैसे ही (सातिम् इन्द्रं अच्छ प्रययुः) सेवा और भक्ति योग्य प्रभु को प्राप्त होते हैं। वे (सुताः) पवित्र होकर (पवित्रम्) पवित्र (अव्यं) ज्ञान को (अति यन्ति) प्राप्त करते हैं और (हरितः वव्रिं हित्वी वृष्टिम्) जैसे सूर्य की किरणें आवरण को दूर कर वृष्टि प्राप्त करती हैं वैसे ही वे भी (हरितः) ज्ञान धारण करते हुए (वव्रिं हित्वी) अज्ञान के आवरण और देह के बन्धन को दूर करके (अच्छ वृष्टिं यन्ति) भली प्रकार सुखों की वृष्टि को प्राप्त होते हैं, मुक्त हो जाते हैं।

इन्दुविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः ।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१०॥२२॥

भा०—हे (इन्दो) सोम ! आचार्य की शरण में आने वाले ! तू (सुमृडीकः) सुख देने हारा और (अनवद्यः) अनिन्दनीय, (रिशादाः) दुर्गुणों का नाशक होकर (बृहते इन्द्राय पवस्व) महान् ऐश्वर्यवान् प्रभु की ओर बढ़ । तू (गृणते) उपदेष्टा के लिये (चन्द्राणि वसूनि) नाना ऐश्वर्य प्राप्त करा । हे (द्यावा पृथिवी) माता पिता, गुरु राजा आदि जनों ! आप लोग भी (देवैः) उत्तम गुणों सहित (नः प्र अवतं) हमारी रक्षा करो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[७०]

रेणुर्वैश्वामित्रः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २, ६, ९, १० निचृज्जगती । ४, ५, ७ जगती । ८ विराड् जगती । दशर्चं सूक्तम् ॥

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥

भा०—(पूर्व्ये व्योमनि) पूर्व विद्यमान, विद्या-बलपूर्ण गुरु-आश्रम में (अस्मै) इस ब्रह्मचारी के लिये (सप्त धेनवः) सात-छन्दोमयी वाणियां (सत्याम् आशिरं दुदुह्रे) सत्य-युक्त ज्ञान-रस का दोहन करती हैं । (यत्) जो (ऋतैः) सत्य ज्ञान वा यज्ञों से (अवर्धत) बढ़ता बढ़ाता है, वह (अन्या चत्वारि) अन्य चार (चारूणि भुवनानि) उत्तम जलों के समान शान्तिदायक साधनों को भी (निर्णिजे चक्रे) स्वशोधन के लिये अनुष्ठान करे ।

स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः २

भा०—(सः) वह ब्रह्मचारी एवं संन्यासी (चारुणः) अन्न की (भिक्षमाणः) भिक्षा करता हुआ, (काव्येन) विद्वानों से उपदिष्ट ज्ञान से (उभे द्यावा) स्त्री-पुरुषों को (वि शश्रये) विविध मार्गों में प्रेरित करता रहे। वह (मंहना) महान् सामर्थ्य से (तेजिष्ठाः अपः परि व्यत) अति तेजो-युक्त वीर्यों को सुरक्षित रक्खे। (यदि) जब (श्रवसा) अन्न सहित वा ज्ञानसहित (देवस्य सदः) दाता, वा भिक्षाभिलाषी के (सदः) स्थान को लोग (विदुः) प्राप्त हों।

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥

भा०—(उभे जनुषी अनु) स्थावर और जंगम दोनों के प्रति (अस्य) इसके (ते) वे नाना (केतवः) ज्ञान (अमृत्यवः) मृत्यु से रहित, (अदाभ्यासः) अविनाशी (सन्ति) हों। (येभिः) जिनसे वह (देव्या च नृम्णा च) विद्वान् मनुष्यों के धनों को (पुनते) प्राप्त कराता है। (आत् इत्) और तो भी (मनना) मनुष्य उसको (राजानं) अपने राजवत् तेजस्वी रूप से (अगृभ्णत) स्वीकार करते हैं।

स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ४

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (दशभिः सुकर्मभिः) दशों धर्म के लक्षण-धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध अथवा पांच यम-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और पांच नियम-शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान इन दस (सुकर्मभिः) शुभ कर्मों द्वारा (मृज्यमानः) पवित्र होता हुआ, (मध्यमासु) बीच की (मातृषु) मातृतुल्य व्यक्तियों, गुरु जनों के बीच (प्र-मे) ज्ञान प्राप्त करने के लिये (प्र सचा) स्थिरता से रहे; वह (व्रतानि पानः) व्रतों को पालन करता हुआ, (नृ-चक्षाः) मनुष्यों को देखता हुआ (विशौ उभे

अनु) स्थावर, जंगम दोनों के बीच में (अमृतस्य चारुणः) अविनाशी भोक्ता आत्मा का (पश्यते) साक्षात् करता है।

स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः।
वृषा शुष्मेण बाधते विदुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ५।२३

भा०—(सः) वह (धायसे) सबका धारक (इन्द्रियाय) परमेश्वर वा आत्मा को प्रिय लगने वाले परमैश्वर्ययुक्त शासन वा मोक्ष आदि पद को प्राप्त करने के लिये (मर्मृजानः) शुद्ध होकर (रोदसी अन्तः) आकाश और भूमि के बीच सूर्य के तुल्य शासक और शास्य के बीच राजा के तुल्य (रोदसी उभे अन्तः) माता पिता के तुल्य पूज्य जनों के बीच वा दोनों को (हितः) स्थापित वा नियमबद्ध होकर (आ हर्षते) स्वयं हर्षित होता और उनको भी हर्षित करता है। (शुरुधः शर्यहा इव) शत्रु-सेनाओं को जैसे बाणों द्वारा मारने वाला धनुर्धर मारता है वैसे ही वह (आदेदिशानः) ज्ञानोपदेश करता हुआ, (वृषा) बलवान्, मेघतुल्य उदार होकर (शुष्मेण) अपने बल से (दुर्मती वि बाधते) दुष्ट विचारों और दुष्ट पुरुषों को पीड़ित कर नष्ट करता है। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानदर्देति मरुतामिव स्वनः।
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः॥ ६॥

भा०—(यत्) जो वह स्वयं (सु-क्रतुः) उत्तम कर्मवान् होकर (प्रशस्तये) स्तुति के लिये (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ (स्वः-नरम्) सुखस्वरूप प्रभु को ही (कम्) सुखमय जानकर (अवृणीत) वरण करता है। तब (सः) वह (उस्रियः) उत्तम मार्ग में ले जाने वालों को (मातरा) माता के समान (ददृशानः) देखता हुआ, (मरुताम् इव स्वनः) वायुओं के गर्जते ध्वनि के तुल्य स्वयं भी (स्वनः) उपदेशकर्त्ता होकर (प्रथमम्) सर्वोत्तम (ऋतं) वेद-ज्ञान को (जानन्) जानता हुआ और (नानदद् एति) उपदेश करता हुआ आता है।

रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥ ७ ॥

भा०—वह सोम, मुमुक्षु पुरुष (भीमः वृषभः) शत्रुओं और पापकारियों के प्रति भयंकर, बलवान्, सब पुरुषों में श्रेष्ठ, (विचक्षणः) विशेष ज्ञान का दर्शक होकर, (हरिणी) दुःखों को हरण करने वाले (शृङ्गे) दुष्टनाशक दो सींगों के तुल्य, ज्ञान और कर्म वा वाक् और चित्त दोनों शक्तियों को (शिशानः) प्रबल करता हुआ (तविष्यया) शक्ति प्राप्ति के लिये (रुवति) गर्जता है। वह आदृत होकर (सुकृतं योनिम्) अपने सुकर्मों से बने लोक में (आ नि सीदति) विराजता है। उस समय उसका (त्वग्) आवरण वा रूप (निः-निग्) शुद्ध (अव्ययी) ऊन के बने कम्बल वा (गव्ययी) गोचर्म के तुल्य (अव्ययी) अविनाशिनी और (गव्ययी) वाणी के ज्ञान से बना होता है।

शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥८॥

भा०—(हरिः) दुःखों का हर्ता (शुचिः) शुद्ध (तन्वम्) शरीर को (अरेपसम्) निष्पाप एवं (पुनानः) स्वच्छ करता हुआ (अव्ये) रक्षक वा ज्ञानी के योग्य (सानौ) उच्च पद पर (नि अधाविष्ट) निश्चित रूप से अभिषिक्त किया जाय। वह (मित्राय) स्नेह करने वाले, (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ और (वायवे) वायुवद् बलवान् प्रभु का (जुष्टः) प्रिय-भक्त हो। उसके लिये (सु-कर्मभिः) उत्तम कर्मवान् पुरुषों द्वारा (त्रिधातु मधु क्रियते) मन, वाणी और कर्म द्वारा तीन प्रकारों से धारण करने योग्य मधुपर्कवत् मधुर ज्ञान का उपदेश किया जाय।

पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश।
पुरा नो बाधाद्दुरिताति पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ९

भा०—हे (सोम) विद्वान् पुरुष ! तू (वृषा) बलवान् होकर (देव-वीतये) मनुष्यों की रक्षा के लिये (इन्द्रस्य) शासक या गुरु के (हार्दि) हृदयानुकूल, (सोम-धानम् आविश) उत्तम शिष्य के समान दीक्षा ले। (बाधात् पुरा) कष्ट होने के पूर्व ही (नः) हमें (दुरिता अति पारय) दुःखों से पार कर। तू (क्षेत्रवित् हि) क्योंकि गणित शास्त्रज्ञ के तुल्य ज्ञानी है। तू ही (विपृच्छते) विशिष्ट जिज्ञासु को (दिशः आह) ठीक २ दिशाएं उत्तम २ उपदेश (आह) बतला।

हितो न सप्तिर॒भि वाज॑म॒र्षेन्द्र॑स्येन्दो ज॒ठर॒मा प॑वस्व। ना॒वा न सिन्धु॒मति॑ पर्षि वि॒द्वाञ्छूरो॒ न युध्य॒न्नव॑ नो नि॒दः स्पः॑ ॥१०॥२४॥

भा०—तू (सप्तिः न) सूर्य तुल्य (हितः) दीक्षित होकर हे शास्तः ! (वाजम् अभि अर्ष) बल को प्राप्त कर। हे (इन्दो) ज्ञान से चमकने वाले ! तू (इन्द्रस्य) आचार्य के गर्भ में शिष्यवत् (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के (जाठरम् आ पवस्व) मध्यभाग में आ। तू (विद्वान्) ज्ञानमय होकर (नावा सिन्धुम् न) नौका से सिन्धु के तुल्य (अति पर्षि) हमें पार कर और (युध्यन् शूरः न) युद्धरत वीर के समान (नः निदः अव स्पः) हमारे निन्दकों का नाश कर। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[७१]

ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराड् जगती। २ जगती। ३, ५, ८ निचृज्जगती। ६ पादनिचृज्जगती। ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आ दक्षि॑णा सृज्यते शु॒ष्म्या॒३सदं॒ वेति॑ द्रु॒हो र॒क्षसः॑ पाति॒ जागृ॑विः। हरि॑रोप॒शं कृ॑णुते॒ नभ॒स्पय॑ उप॒स्तिरे॑ च॒म्वो॒३र्ब्रह्म॑ नि॒र्णिजे॑ ॥ १ ॥

भा०—(दक्षिणा आ सृज्यते) उत्साह को उत्पन्न करने वाली प्रबल शक्ति वा दान, वेतनादि की व्यवस्था सर्वत्र बनाई जानी उचित है। क्योंकि उसी द्वारा (शुष्मी) बलवान् शासक भी (आसदम् वेति) राज्य

सिंहासन वा राजसभा की रक्षा करता है। वह (जागृविः हरिः) अप्रमादी, दुष्टों का संहारक (द्रुहः रक्षसः पाति) द्रोहकारी राक्षसों, विघ्नकारियों से राष्ट्र को बचाता है। वह (नभः) उत्तम प्रबन्ध को सूर्य के तुल्य (ओपशं) प्रकाशित (कृणुते) कर देता है। वह (चम्वोः) सेना और प्रजा दोनों के (ब्रह्म पयः) महान् बल को (निः-निजे) राष्ट्र शुद्धि के लिये (उपस्तिरे) विस्तृत करता है।

प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं१ वर्णं नि रिणीते अस्य तम्।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना॥ २॥

भा०—विद्वान् पुरुष (कृष्टिहा इव शूरः) दुष्ट मनुष्यों के नाशक वीर के समान स्वयं भी (शूरः) वेग से जाना वाला (कृष्टिहा) सब मनुष्यों तक पहुँच कर (रोरुवत् एति) उपदेश करता हुआ उनको प्राप्त होता है और वह (अस्य) इस प्रजाजन के (तम्) उस, चिरकाल से विद्यमान (अ-सुर्यं वर्णम्) अज्ञानमय आवरण को (नि रिणीते) दूर कर देता है। वह स्वयं (वव्रिं) अपने अज्ञान को (जहाति) त्याग देता है और (पितुः निष्कृतम् एति) पिता के पद को प्राप्त करता है और अपने (तना) विस्तृत (निर्-निजं) शुद्ध ज्ञान को (उपप्रुतं कृणुते) प्राप्त कराता है।

अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि॥३॥

भा०—वह (अद्रिभिः सुतः) मेघतुल्य दयालु गुरुजनों से (सुतः) उत्पादित और विद्या-व्रत आदि में स्नात होकर (गभस्त्योः) बाहु-बल से (पवते) राष्ट्र को पवित्र करता है और (मती वेपते) बुद्धिबल से शत्रुओं को कंपाता है। (सः मोदते) वह प्रसन्न होता है, (नसते) सर्वप्रिय हो जाता है। (गिरा साधते) वाणीमात्र से कार्य को सिद्ध करता है। (गिरा नेनिक्ते) दूसरों को वाणी से पवित्र करता है और (अप्सु परीमणि यजते) प्रजाओं में श्रेष्ठ पद पर पूजित होता है।

परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम्।
आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ४

भा०—(सहसः) शत्रुओं को पराजित करने वाले, (मध्वः) हृष्ट पुष्ट वीर जन (द्युक्षम्) तेज-ऐश्वर्यवान् (पर्वतवृधम्) पर्वत के समान प्रजा को बढ़ाने वाले (हर्म्यस्य सक्षणिम्) राजभवन में रहने योग्य पुरुष को (परि सिञ्चन्ति) प्रधान पद देते हैं। (यस्मिन्) जिसके अधीन रह कर (गावः) गौओं के तुल्य (सुहुत-अदः प्रजाः) यज्ञशेष खाने वाली प्रजाएं (ऊधनि पयः) स्तनों में दूध के तुल्य (वरीमभिः) श्रेष्ठ वचनों और कर्मों द्वारा (मूर्धन्) सर्वोच्च पद पर (अग्रियम्) अग्रपद के योग्य उसकी ही (श्रीणन्ति) सेवा करती हैं।

समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ५।२५

भा०—(भुरिजोः दश स्वसारः रथं न) दोनों बाहुओं की दसों अंगुलियां बहनों के समान रथ को प्रेरित करतीं, सन्मार्ग पर चलाती हैं। वैसे ही, (भुरिजोः) बाहुतुल्य राष्ट्र का भरण पोषण करने वाले राजवर्ग में से (दश) दस (सु-असारः) उत्तम मार्ग बताने में समर्थ विद्वान् प्रकृतियां, अमात्यजन, (रथं) उस बलवान् पुरुष को (सन् अहेषत) एक साथ सम्यक् मार्ग में ले जावें। वह (अदितेः उपस्थे) भूमि के ऊपर (आजिगात्) चारों ओर जावे। वह (अदितेः) सर्वोपरि राजसभा के (उपस्थे) समीप (आजिगात्) आवे और (मतुथा) मननशील पुरुष (अस्य) इस शासक के (यत् पदं अजीजनन्) जिस अधिकार को प्रकट करें, वह (गोः अपीच्यं पदं) वाणी के उसी श्रेष्ठ पद को (उप ज्रयति) प्राप्त करे। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति।
प्र रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥६॥

भा०—(श्येनः योनिं न) बाज जैसे घोसले की ओर आता है वैसे ही (श्येनः) गतिमान् पुरुष (धिया कृतम्) बुद्धि से बनाये, विद्वानों से निर्मित (हिरण्ययम्) प्रजाहितकारी, (सदनं) सभाभवन और (आसदम्) बैठने योग्य आसन को वह (देवः) तेजस्वी पुरुष (आ ईयति) प्राप्त होता है और विद्वान् जन (ईम्) उस (प्रियम्) प्रिय जन को (गिरा) वाणी से (बर्हिषि) प्रजा के अध्यक्ष योग्य आसन पर (आ रिणन्ति) बैठाते हैं और वह (अश्वः) अश्व तुल्य बलवान्, (यज्ञियः) पूजायोग्य होकर (यज्ञियः अश्वः न) अश्वमेध यज्ञोपयोगी अश्वतुल्य (देवान् अपि-एति) विद्वान् पुरुष को प्राप्त करे।

परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥ ७ ॥

भा०—वह जगत् का शासक (अरुषः) तेजस्वी, (कविः) क्रान्तदर्शी, (दिवः) आकाश में सूर्य के तुल्य (परा) दूर २ तक (वि-अक्तः) तेजों से प्रकाशित होने वाला, (त्रि-पृष्ठः) तीनों लोकों का पोषक, (वृषा) सुखों की वर्षा करने वाला, (गाः अभि अनविष्ट) आज्ञाएं देता है। वह (सहस्र-नीतिः) सहस्रों नेत्रों वाला, (यतिः) यत्नवान्, (परायतिः) सबका प्राप्य स्थान है। वह (रेभः न) उपदेष्टा के समान (पूर्वीः उषसः) उषा कालों में भी सूर्यवत् (विराजति) प्रकाशित है।

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्त्रिधः।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ८

भा०—(वर्णः) इसको वरण करने वाला (अस्य रूपं) इसके रूप को (त्वेषं) प्रकाशित (कृणुते) करता है और (सः यत्र अशयत्) वह प्रभु वा विद्वान् जहां रहता है वहां (समृता) संग्राम में वा उस उत्तम (सम्-ऋता) भूमि में (स्त्रिधः सेधति) शत्रु सेनाओं का नाश करता है। वह (अप्साः) मेघ के समान (दैव्यं जनं) विद्वानों के प्रिय जनपद को (स्वधया)

अपनी धारक-पोषक शक्ति से (याति) प्राप्त होता है और वह (गो-अग्रया सुस्तुती) दधि, दुग्धादि मुख्य पदार्थ से युक्त मधुपर्क द्वारा सत्कार को (सं नसते) प्राप्त होता है।

उ॒क्षेव॑ यू॒था प॑रि॒यन्न॑रावी॒दधि॒ त्विषी॑रधित॒ सूर्य॑स्य ।
दि॒व्यः सु॑प॒र्णोऽव॑ चक्षत॒ क्षां सोमः॒ परि॒ क्रतु॑ना पश्यते॒ जाः ९।२६

भा०—(यूथा परियन्) गो-यूथों को प्राप्त होता हुआ (उक्षा इव) जैसे सांड हर्ष ध्वनि करता है वैसे ही (यूथा परियन्) सैन्यसमूह वा प्रजासमूह को प्राप्त होकर वह भी (रावीत्) उपदेश आदि देता है और (यूथा अधि) उन सैन्य व प्रजासमूह पर अध्यक्ष होकर (सूर्यस्य त्विषीः) सूर्य की कान्तियों को (अधित) धारण करता है। वह (दिव्यः) तेजस्वी, (सुपर्णः) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न होकर (क्षाम् अव चक्षते) भूमि पर देखता और उनका अनुशासन करता है। वह (सोमः) विद्वान् (क्रतुना) सामर्थ्य और ज्ञान से (जाः परि पश्यते) प्रजाओं को देखता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[७२]

हरिमन्त ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३, ६, ७ निचृज्जगती । ४, ८ जगती । ५ विराड् जगती । ९ पादनिचृज्जगती ॥
नवर्चं सूक्तम् ॥

हरिं॑ मृजन्त्यरु॒षो न यु॑ज्यते॒ सं धे॒नुभिः॑ क॒लशे॒ सोमो॑ अज्यते ।
उद्वाच॒मीरय॑ति हि॒न्वते॑ म॒ती पु॑रुष्टु॒तस्य॒ कति॑ चित्परि॒प्रियः॑ ॥१॥

भा०—प्रजाजन (हरिम्) सबके दुःखहर्ता का (मृजन्ति) अभिषेक करते हैं। वह (अरुषः न) वेगवान् अश्व वा सूर्य के समान (धेनुभिः) प्रसन्नकारिणी वाणियों द्वारा (सं युज्यते) राष्ट्रकार्य में (सं युज्यते) नियुक्त किया जाता है और वह (सोमः) अभिषेकयोग्य शास्ता जन, (कलशे) राष्ट्र में (अज्यते) प्रकाशित होता है, वह (हिन्वते) प्रजाजन के हितार्थ

(वाचम् उत् ईरयति) उत्तम वाणी का उपदेश करता है। वह (पुरु) स्तुतस्य) बहुप्रशंसित जन की (मती) बुद्धि द्वारा (कतिचित्) कितने ही (परिप्रियः) सबके प्रिय कार्य करता है।

साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः। यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥२॥

भा०—(यदि) जब (सुगभस्तयः नरः) तेजस्वी नेता पुरुष (सनीडाभिः) एक देश में रहने वाली (दशभिः) दशों दिशाओं की प्रजाओं सहित (सोमं मृजन्ति) उत्तम शासक का अभिषेक करते हैं और (इन्द्रस्य जठरे) उस शत्रुनाशक के पेट में (काम्यं मधु दुदुहुः) कामनायोग्य मधुपर्क प्रदान करते हैं तब (बहवः मनीषिणः) बहुत से मननशील पुरुष (साकं वदन्ति) एक साथ भाषण करते हैं, उसकी स्तुति करते हैं।

अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम्। अन्वस्मै जोषमभरद्विनङ्गृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥ ३ ॥

भा०—वह उत्तम शास्ता, (अरममाणः) कहीं भी सुख न पाता हुआ, (गाः अति एति) समस्त भूमि को अति क्रमण करता है। उनका (तिरः) तिरस्कार करके (सूर्यस्य दुहितुः) सूर्य को तेज से पूर्ण करने वाला, उसकी पुत्री के समान उषा के तुल्य कान्तियुक्त स्त्रीवत् (सूर्यस्य प्रियं दुहितुः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के प्रिय मनोरथ की पूरक प्रजा के (रवम् अभि एति) लोकमत के प्रति ध्यान देता है। और वह (विनंगृसः) बाहु के समान विविध पदार्थों का वीर (अस्मै जोषम् अनु अभरत्) राष्ट्रहित को लक्ष्य करके उसका भरण पोषण करता है और (द्वयीभिः स्वसृभिः जामिभिः) दोनों प्रकार की, स्वयं उस तक पहुँचने वाला धनी और निर्धन प्रजाओं सहित वह (सं क्षेति) एक ही राष्ट्र में निवास करता है।

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरन्धिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे हितार्थ (शुचिः) हृदय में शुद्ध (सोमः) शासक (धिया) बुद्धि से परीक्षित करके (पवते) तुझे प्राप्त हो। वह (नृ-धृतः) उत्तम पुरुषों से अभिषिक्त और (अद्रि-सुतः) मेघ वा पर्वतवत् दृढ़ पुरुषों से प्रेरित, (प्रियः) प्रजाओं को प्रिय, (प्रदिवः) उत्तम ज्ञान और तेज से सम्पन्न (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (ऋत्वियः) अनुकूल कर्म करने वाला, (बर्हिषि) भूलोक पर स्थित (गवां पतिः) भूमियों राजाज्ञाओं, कानूनों का रक्षक (पुरन्धिवान्) नगर को धारण करने वाली सभाओं का स्वामी, (मनुषः) मनुष्यों के (यज्ञ साधनः) यज्ञों, सत्संगों को सिद्ध करता है।

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वोरासदद्धरिः ५।२७

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरा (सोमः) बल-वीर्य (नृ-बाहुभ्याम्) वीर पुरुषों की बाहुओं से (चोदितः) प्रेरित और (अनु-स्वधम्) भरण-पोषण वा वेतन अनुसार (धारया) वेदवाणी द्वारा (सुतः) अनुशासित होकर (ते पवते) तेरे लिये कार्य करता है। तू (क्रतून् आ अपाः) कर्मों को पूर्ण कर। और (अध्वरे) हिंसारहित प्रजापालन के कार्य में (मतीः) बुद्धियों को (सम् अजैः) सम्यक् प्रकार से विजय कर। (द्रुसत् वेः न) वृक्ष पर बैठे पक्षी के समान तू भी (हरिः) सर्वप्रिय, वा सूर्यवत् होकर (चम्वोः आसदत्) दोनों सेनाओं के ऊपर अध्यक्ष होकर रह। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ६

भा०—(मनीषिणः कवयः) बुद्धिमान्, दूरदर्शी, (अपसः) कर्मकुशल पुरुष उसके (अंशुम्) सर्वव्यापक (स्तनयन्तम्) माता के स्तनवत् अन्न

देने वाले, गुरुवत् उपदेशप्रद (अक्षितं) अविनाशी, (कविं) क्रान्तदर्शी पुरुष को प्राप्त कर उससे (ऋतस्य अक्षितं) वेद का अक्षय कोष (दुहन्ति) प्राप्त करते हैं और (मतयः) विचारवान् पुरुष (गावः) आत्मा के प्रति इन्द्रियों के तुल्य (संयतः) यत्नशील होकर (ऋतस्य योना) सत्य के आश्रय में (पुनर्भुवः) पुनः २ प्रकट होने वाले (यन्ति) प्राप्त होते हैं।

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ७

भा०—सोम का स्वरूप। (पृथिव्याः नाभा) पृथिवी की नाभि में स्थित बल जो (धरुणः) उसको धारण कर रहा है और (महः दिवः नाभा धरुणः) बड़े भारी आकाश के केन्द्र में स्थित बल जो उसको धारण कर रहा है और वह बल जो (अपाम् ऊर्मौ) लोकों के बीच तरंगवत् विद्यमान उनको धारण करता है और जो बल (सिन्धुषु अन्तः) समुद्रों में है वह (सोमः) सबका शासक बल (इन्द्रस्य वज्रः) उस महान् प्रभु का बल है जो (वृषभः) सुखों की वर्षा करने वाला, (विभु-वसुः) बड़े २ लोकों में व्यापक, (मत्सरः) सबको सुखी, प्रसन्न करने वाला, (हृदे) सबके हृदय में (चारु पवते) उत्तम रीति से गति करता है।

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ८

भा०—हे (सुक्रतो) उत्तम-प्रज्ञ! (स्तोत्रे) स्तुति करने वाले और (आधून्वते च) अपने चित्त को साफ करने वाले को (शिक्षन्) ज्ञान देता हुआ (सः) वह (पार्थिवं स्वः) रजोरूप पार्थिव लोक या देह को भी (परि पवस्व) सूर्य-प्रकाशवत् प्राप्त हो। (नः) हमें (सादन-स्पृशः) घर में आये (वसुनः) ऐश्वर्य से (मा निर्भाक्) पृथक् मत कर और हम (बहुलम्) बहुत सा (पिशंगम् रयिम् वसीमहि) पीत ऐश्वर्य, सुवर्णादि धारण करें।

आ तू न॑ इन्दो श॒तदा॑त्वश्व्यं॑ स॒हस्र॑दातु पशु॒मद्धिर॑ण्यवत् ।
उप॑मास्व बृह॒ती रे॒वती॒रिषोऽधि॑ स्तो॒त्रस्य॑ पवमान नो गहि ९।२८

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (शतदातु सहस्रदातु) सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में सुखादि देने वाला (अश्व्यं पशुमत् हिरण्यवत्) अश्व, पशु और सुवर्णादि से युक्त ऐश्वर्य (आ) प्रदान कर । तू हमारे लिये (बृहतीः रेवतीः इषः) बहुत बड़ी सुखदायी अन्न समृद्धियां (उपमास्व) उत्पन्न कर । हे (पवमान) सर्वव्यापक ! (नः स्तोत्रस्य अधि-गहि) तू हमारी स्तुतियों को स्वीकार कर । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[७३]

पवित्रः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ जगती । २—७ निचृज्जगती । ८, ९ विराड् जगती ॥

स्रक्वे॑ द्र॒प्सस्य॒ धम॑तः॒ सम॑स्वरन्नृ॒तस्य॒ योना॒ सम॑रन्त॒ नाभ॑यः ।
त्रीन्त्स मू॒र्ध्नो असु॑रश्चक्र आ॒रभे॑ स॒त्यस्य॒ नाव॑ः सु॒कृत॑मपीपरन् ॥१॥

भा०—(स्रक्वे) सर्जन करने योग्य विराट् जगत् में (धमतः द्रप्सस्य) रसस्वरूप प्रभु के जगत् का निर्माण करते हुए, (ऋतस्य योना) तेज और ज्ञान के आश्रय उस प्रभु में (योना नाभयः) गृह में तन्तुओं के तुल्य ही समस्त (नाभयः) बद्ध जीव (सम् अस्वरन्) एक साथ स्तुति करते और (सम् अरन्त) संगत होते हैं । (सः असुरः) जीवों को प्राणों के देने वाले उस प्रभु ने (आरभे) कार्य करने के लिये (मूर्ध्नः) सिर के भी (त्रीन् चक्रे) तीन प्रमुख भाग बनाये । ये (सत्यस्य नावः) ये सत्य की नौकाएं (सुकृतम्) शुभ कर्मकारी को (अपीपरन्) पार कर देती हैं ।

स॒म्यक् स॒म्यञ्चो॑ महि॒षा अ॑हेषत॒ सिन्धो॑रू॒र्मावधि॑ वे॒ना अ॑वीविपन् । मधो॒र्धारा॑भिर्ज॒नय॑न्तो अ॒र्कमित्प्रि॒यामिन्द्र॑स्य त॒न्व॑मवीवृधन् ॥ २ ॥

भा०—(सम्यञ्चः) एक साथ संगत (महिषाः) गुणों में महान् जन (सम्यक् अह्वेषत) प्रभु की अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं और वे (वेनाः) तेजस्वी सूर्य के तुल्य ऐश्वर्यों के इच्छुक जन, (सिन्धोः ऊर्मौ अधि) समुद्र या महानद के तुल्य प्रभु के आनन्द तरंग में (अधि) पहुँच कर (अवीविपन्) उसकी स्तुति करते हैं। वे (मधोः धाराभिः) ज्ञानयुक्त ऋग्वेद की वाणियों द्वारा (अर्कं जनयन्तः) स्तुति करते हुए (इन्द्रस्य) प्रभु की ही (प्रिया) प्रिय (तन्वम्) विस्तृत स्तुति को ही (अवीवृधन्) बढ़ाते हैं।

पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम्।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥३॥

भा०—(पवित्रवन्तः वाचम् परि आसते) जैसे पवित्र शिष्य वक्ता गुरु के चारों ओर ज्ञान-शिक्षा के लिये विराजते हैं वैसे ही (पवित्रवन्तः) पवित्र आचारवान् जन (वाचम् परि आसते) वेद के उपदेशक प्रभु की उपासना करते हैं। वह (एषाम् प्रत्नः पिता) उन जीवों एवं लोकों का अनादि पालक प्रभु (एषां व्रतम् अभि रक्षति) इनके ज्ञान अन्नादि की आचार्यवत् ही रक्षा करता है। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ प्रभु (महः समुद्रं) महान् समुद्रतुल्य ज्ञानसागर को (तिरः दधे) अपने भीतर धारण करता है। (धीराः) ध्याननिष्ठ पुरुष (धरुणेषु) अपने धारणशील हृदयों में उसको (आरभं शेकुः) प्राप्त कर सकते हैं।

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ४

भा०—जैसे (सहस्र-धारे नाके) सहस्र लोकों के धर्ता आकाश में (दिवः) सूर्यादिलोक वा किरणें एक साथ (सम् अस्वरन्) गति करते हैं और वे (असश्चतः) आसक्त न रह कर (मधुजिह्वाः) जल ग्रहण करने वाले होते हैं वैसे ही (दिवः) तेजोयुक्त ज्ञानी पुरुष (असश्चतः) निःसंग और (मधु-जिह्वाः) मधुर वाणियों के वक्ता वेदवक्ता लोग (सहस्र-धारे)

सहस्रों वाणियों और शक्तियों के धारक (नाके) मोक्ष रूप प्रभु में विराजते हुए (अम् अस्वरन्) मिलकर उसकी स्तुति करते हैं। (अस्य भूर्णयः) इसके प्रजापालक जन सूर्यादि के तुल्य ही (स्पशः) दूतों के तुल्य यथार्थ वक्ता (न निमिषन्ति) कभी निमेष को प्राप्त नहीं होते, वे (पदे-पदे) पद पद पर (पाशिनः) आकर्षण शक्ति से युक्त सूर्यादि के तुल्य ही (पाशिनः) दुष्टों के संयम साधनों से सम्पन्न होकर (सेतवः सन्ति) दुष्टों को बांधने वाले, जलबंधों के समान मर्यादा की स्थापना करते हैं।

पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः सन्दहन्तो अव्रतान्। इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥५।२९॥

भा०—जैसे रश्मियां (पितुः मातुः अधि सम् अस्वरन्) पालक सूर्य से उत्पन्न होकर माता पृथिवी के ऊपर अधिक तेज से चमकती हैं, वे (ऋचा शोचन्तः संदहन्तः) तेज से चमकते और संतप्त करते हुए, (इन्द्र-द्विष्टाम् असिक्नीं त्वचम् अप धमन्ति) सूर्य की विरोधिनी काली रात्रि को दूर करती हैं वैसे ही (ये) जो सच्चरित्र हैं वे (पितुः मातुः अधि) पिता माता से वा पिता माता के तुल्य गुरु जन से (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार ज्ञानोपार्जन करते हैं। वे (ऋचा शोचन्तः) ऋग्वेद के ज्ञान से तेजोमय होकर (अव्रतान्) कुकर्मियों को (सं-दहन्तः) पीड़ित करते हुए (इन्द्रद्विष्टाम्) प्रभु और राजादि से असेवित, उनके अप्रीति भाजन (असिक्नीम् त्वचम्) अज्ञानमय आवरण को (अप धमन्ति) दूर करते हैं। वे ही (भूमनः) भूमा स्वरूप उस महान् (दिवः) तेजोमय परमेश्वर से (परि) परम सुख को प्राप्त करते हैं। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः। अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥६॥

भा०—(ये) जो विद्वान् जन (प्रत्नात् मानात्) अति प्राचीन ज्ञानमय प्रभु से (अधि) उसके अधीन रहकर (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार

ज्ञान प्राप्त करते हैं वे (श्लोक-यन्त्रासः) वेदमय ज्ञान से अपने को व्यवस्थित करते हुए (रभसस्य मन्तवः) सर्वकर्त्ता प्रभु को भली प्रकार जानते हैं और (बधिराः) जो गुरुवचनों के प्रति बहरे बहुश्रुत और (अनक्षासः) बिना आंख के, अविवेकी होते हैं वे (ऋतस्य) वेद वा यज्ञ के (पन्थाम्) सत् मार्ग को (अप अहासत) दूर ही त्याग देते हैं। वे (दुःकृतः) दुष्ट-कर्मा जन (न तरन्ति) पार नहीं जाते।

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ७

भा०—(वितते सहस्र-धारे) विस्तृत, दश सहस्र वाणी वा ऋचाओं से युक्त ऋग्वेदमय (पवित्रे) पवित्र ज्ञानसागर में वा सहस्रों शक्तियों से युक्त ज्ञानमय प्रभु में (मनीषिणः) मननशील (कवयः) तत्वज्ञानी लोग (वाचम् आ पुनन्ति) वाणी का प्रयोग कर उसको पवित्र कर लेते हैं। (एषाम्) इनमें से जो (रुद्रासः) प्रजाओं को मर्यादा में रोकने वाले (इषिरासः) अन्यों को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाले जन हैं वे (अद्रुहः) किसी से द्रोह न करने वाले (सु-अञ्चः) उत्तम पूजा योग्य (सु-दृशः) सौम्य नयन और (नृ-चक्षसः) मनुष्यों के हिताहित को देखने वाले हों।

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्य१न्तरा दधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ८

भा०—वह (ऋतस्य गोपाः) सत्य और यज्ञ का रक्षक, (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म से सम्पन्न प्रभु (न दभाय) किसी को पीड़ा वा छलने के लिये नहीं हो। (सः) वह (त्री पवित्रा) मन, वाणी और कर्म तीनों को पवित्र, रूप में वा तीनों वेदों को (हृदि अन्तः) हृदय के बीच (आ दधे) धारण करे। (सः विद्वान्) वह ज्ञानी (विश्वा भुवना अभि पश्यति) समस्त लोकों को प्रभुवत् देखे और (अजुष्टान्) उनके द्वेषी (अव्रतान्) व्रत रहित दुष्ट पुरुषों को (कर्त्ते) दण्ड-व्यवस्था में रख कर (अव विध्यति) उनको शरीर के छेदन-भेदन का दण्ड दे।

ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया।
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥९॥३०॥

भा०—(वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ प्रभु की (जिह्वायाः) वाणी के (पवित्रे) पवित्र (अग्रे) अग्रभाग पर (ऋतस्य तन्तुः विततः) न्याय, धर्म का तन्तु, यज्ञ, विस्तृत है। (धीराः चित्) बुद्धिमान् पुरुष (मायया) बुद्धि के बल से (तत् सम् इनक्षन्तः) उनको प्राप्त करते और (आशत) सम्यक् उपयोग करते हैं। (अत्र) इस लोक में (अप्रभुः) जो शासक वा असमर्थ है वह (कर्त्तम् अवपदाति) गढ़े में गिरता है। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[७४]

कक्षीवानृषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ पादनिचृज्जगती ॥ २, ६ विराड् जगती। ४, ७ जगती। ५, ९ निचृज्जगती। ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्वर्यद्वाज्यरुषः सिषासति।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥१॥

भा०—(यत्) जब (वाजी) बलवान् सूर्य (अरुषः) खूब प्रकाशमान होकर (वने) अन्तरिक्ष में (जातः शिशुः न) नव बालक के तुल्य कान्तिमान् होकर (अव चक्रदत्) गान काम करता है और (स्वः सिषासति) प्रखर ताप प्रदान करता है। तब वह (पयः-वृधा रेतसा) प्राणियों के पोषक अन्नवर्धक जल से (सचते) युक्त हो जाता है। तब (तम्) उस प्रभु से हम (सुमती) स्तुति द्वारा (सप्रथः) विस्तृत (शर्म) शरण योग्य घर की (ईमहे) याचना करते हैं।

दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर जगत् का उत्पादक (धरुणः) संसार का धर्ता और (स्कम्भः) विश्व को स्तम्भवत् थामने वाला है, वह (सु-आततः)

सर्वत्र फैला है। वह (आपूर्णः) सब ओर से पूर्ण है, वह (अंशुः) सर्वव्यापक है। वह ही (इमे मही रोदसी परि एति) इन दोनों विशाल आकाश और भूमि को सब ओर से व्याप रहा है। वह इन दोनों को (आवृता) पुनः २ आवर्त्तन करने वाले चक्र से (यक्षत्) शक्ति, अन्न, जल प्रदान करता है, वह (कविः) क्रान्तदर्शी है, इन (समीचीने) सुसम्बद्ध दोनों को (दाधार) धारण करता है, वह ही (इषः सम् दाधार, इषः-संयक्षत्) प्रेरक शक्तियों को धारण करता है वही वृष्टि और अन्न प्रदान करता है।

महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः॥३॥

भा०—(यः) जो (वृषा) वर्षा करने में समर्थ (उस्रियः) किरणों वाला, सूर्य (इतः) इस भूलोक से (अपां नेता) जलों को ले जाने वाला है, (यः इतः-ऊतिः) जो भूलोक की रक्षा करता है जो (ऋग्मियः) स्तुत्य है। (यः) जो (वृष्टेः ईशे) वृष्टि करने में समर्थ है (अदितेः ऋतं यते) भूमि से अन्न और अन्तरिक्ष से जल प्राप्त कराने वाले सूर्य के लिये (सुकृतं) उत्तम रीति से सूक्ष्म कणों द्वारा छिन्न भिन्न, (सोम्यं मधु) जगत् उत्पादन करने वाला जल ही (महि प्सरः) उसका भारी भोजन है और उस (अदितेः) सूर्य का यह आकाश ही (उर्वी गव्यूतिः) बड़ा मार्ग होता है।

आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः॥४॥

भा०—जब (नभः) आकाश या सूर्य से (आत्मन्-वत्) अपने ही तेज से युक्त और (घृतम्) तेजोयुक्त (पयः) वीर्य (दुह्यते) प्राप्त होता है तब (ऋतस्य नाभिः) अन्न का मूल कारण (अमृतम्) जल (वि जायते) उत्पन्न होता है (तम्) उसको (सम्-ईचीनाः) एक साथ

मिलकर पृथिवी तक आने वाले (सु-दानवः) उत्तम दान करने वाले (नरः) जलग्राही किरण (तम् प्रीणन्ति) उस जल को वायु में भर देते हैं और अनन्तर (पेरवः) जो रश्मियां जल को पान करती हैं वे ही (हितम्) वायु में रखे उस जल को (अव मेहन्ति) नीचे वर्षा रूप में गिराती हैं।

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं मनुषे पिन्वति त्वचम्।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ५।३१

भा०—वही (अंशुः) व्यापक तत्व (ऊर्मिणा) ऊपर स्थित वायु के साथ (सचमानः) मिलता हुआ (अरावीत्) मेघ बन गर्जता है। वही (मनुषे) मनुष्य की (देवाव्यम् त्वचम्) प्राणों इन्द्रियों के रक्षक देह को (पिन्वति) बढ़ाता है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

सहस्रधारेऽव ता असश्चतस्तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ॥६॥

भा०—(सहस्र-धारे) सहस्र धारा अर्थात् धारण शक्तियों से युक्त सूर्य में (ताः) वे शक्तियां (असश्चतः) पृथक् २ रहती हुईं (तृतीये रजसि) तीसरे लोक में (सन्तु) रहें। वे (प्रजावतीः) समस्त प्रजा की रक्षक (चतस्रः) चार (नाभः) आदित्य की विशेष दीप्तियां (दिवः अवः) तेजोमय सूर्य से नीचे (निहिताः) प्रेरित होकर (घृत-श्चुतः) जल बरसाने वाली होती हैं और वे ही (अमृतं हविः भरन्ति) अमृत अर्थात् जल और अन्न प्राप्त कराती हैं।

श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥७॥

भा०—(यत्) जब (सोमः) समस्त ओषधि, वनस्पति आदि का उत्पादक और (मीढ्वान्) जल वर्षक (असुरः) वायु वा सूर्य (श्वेतं) अति प्रदीप्त (रूपं) प्रकाश (कृणुते) करता है और (सिषासति) जलों को सूक्ष्म करता है तब वह (भूमनः वेद) बहुत से जलों को प्राप्त कर लेता

है। वह (धिया प्रवत् शमी सचते) अपनी धारणा-शक्ति से नाना कर्म करता है और (दिवः) तेज से अन्तरिक्ष में (उद्रिणं) जलयुक्त (कवन्धम्) मेघ को (अव दर्षत्) छिन्न भिन्न करता है।

अधं श्वेतं कलशं गोभिर्क्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत्ससवान्।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥८॥

भा०—(अध) और (वाजी) बलवान् (कार्ष्मन्) युद्ध या प्रतिस्पर्द्धा में जो (आ अक्रमीत्) सबको अतिक्रमण करता है वह जैसे पारितोषिक या मान-आदर सूचक (गोभिः अक्तं) उत्तम वाणियों से युक्त (श्वेतं कलशं) चांदी आदि धातु का बना कलश, पात्र [कप्] आदि (ससवान्) प्राप्त करता है। वैसे ही (कार्ष्मन्) सीमा पर विराजमान प्रभु (आ अक्रमीत्) सर्वत्र व्यापक है। वह (वाजी) ऐश्वर्य का स्वामी होकर (गोभिः अक्तं श्वेतं कलशं) किरणों से युक्त, देदीप्यमान (कलशं) कला २ से बने चन्द्र को सूर्यवत्, स्तुति वाणियों से सम्पन्न १६ कलाओं से युक्त आत्मा को (ससवान्) स्वीकार करता है। (मनसा देवयन्तः) मन से प्रभु की कामना करने वाले जन (शत-हिमाय) सौ वर्षों के जीवन धारण करने वाले (कक्षीवते) कक्ष्या अर्थात् रज्जुवत् वा बन्धनवत् देहरूप गृह या वाणी को धारण करने वाले इस मनुष्य के हितार्थ (गोनाम् आ हिन्विरे) वाणियों का प्रयोग करते हैं, वे भगवान् की स्तुति करते हैं।

अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वारं वि पवमान धावति।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तमः स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ९।३२

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवान्! हे (पवमान) पावन! (पपृचानस्य) निरन्तर प्रेम करने वाले (ते) तेरा जो (रसः) परमानन्द रूप (अव्यः वारम् विधावति) प्रेमी के वरणीय हृदय को प्राप्त होता और उसे पवित्र करता है, (सः) वह (कविभिः) तत्वदर्शी विद्वानों द्वारा (मृज्यमानः) विवेकपूर्वक दर्शन किया जाकर (मदिन्तमः) अत्यन्त हर्ष देने वाला है

हे (पवमान) पावन ! तू (पीतये) पान करने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्य के अभिलाषी के हितार्थ (स्वदस्व) सुख प्रदान कर। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[७५]

कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृज्जगती । २ पादनिचृज्जगती । ५ विराड् जगती ॥

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥

भा०—(चनः-हितः) उत्तम वचन से बद्ध और पूज्य पद पर प्रतिष्ठित यह्वः) महापुरुष (येषु अधि वर्धते) जिनके ऊपर अध्यक्ष रह कर वृद्धि को प्राप्त होता है, वह उन्हीं (नामानि) सबको नमाने वाले (प्रियाणि) सबको अच्छे लगने वाले बलों को अन्नवत् (अभि पवते) प्राप्त करे। वह (बृहत्) बढ़ता हुआ (विचक्षणः) चतुर पुरुष (बृहतः सूर्यस्य) महान् सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के योग्य (विश्वञ्चम् रथम्) सब ओर जाने में समर्थ रथ पर (अधि रुहत्) चढ़े।

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ २ ॥

भा०—(जिह्वा) वाणी (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (प्रियम् मधु) मधुर सुख को (पवते) प्रदान करती है। (वक्ता) वक्ता विद्वान् पुरुष ही (अस्या धियः) इस बुद्धि या वाणी का (अदाभ्यः) अखण्डनीय (पतिः) पालक होता है। जैसे (पुत्रः) पुत्र (पित्रोः अपीच्यं नाम दधाति) माता पिता के भीतर छिपे (तृतीयम्) दोनों से भिन्न तृतीय या श्रेष्ठ स्वरूप को धारण करता है, वैसे ही (पुत्रः) ज्ञानों का रक्षक पुरुष (दिवः रोचने अधि) प्रकाशित पद पर विराजता हुआ (पित्रोः) माता पिता के रूपों से भिन्न (अपीच्यं नाम) भीतर छुपे ज्ञानमय बल को (दधाति) धारण करता है।

अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये ।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ॥ ३ ॥

भा०—(नृभिः) सन्मार्गी जनों द्वारा (हिरण्यये कोशे) सुवर्णादि कोष के ऊपर (येमानः) नियन्त्रण करता हुआ (द्युतानः) तेजस्वी पुरुष (कलशान् अव अचिक्रदत्) कलशों को अभिषेकार्थ प्राप्त करता है। वैसे ही रमणीय ज्ञानविधि पर गुरुजनों द्वारा अधिकृत हो जाने पर वह विद्वान् स्नातक होने के लिये कलशों को प्राप्त करता है। (ऋतस्य दोहनाः) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने वाले अगले शिष्य और पिछले गुरु सभी (अभि ईम्) उसको लक्ष्य कर (ऋतस्य ईम् अभि अनूषत) ज्ञान का उपदेश करते हैं। वह (त्रि-पृष्ठः सन्) सूर्यवत् तीन प्रकार के वस्त्रों को धारण करता हुआ, वह तीनों वेदों वा तीनों ज्ञान, कर्म और वाणी का धारक (उषसः अधि) कान्ति युक्त उषाओं के तुल्य ज्ञान के इच्छुक शिष्यादि प्रजा वर्ग के ऊपर अध्यक्षवत् (विराजति) विराजता है।

अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन्रोदसी मातरा शुचिः।
रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ४॥

भा०—वह विद्वान्, (अद्रिभिः) भय न खाने वाले शस्त्रास्त्रधारी सैन्याध्यक्षों द्वारा (सुतः) अभिषिक्त, (मतिभिः) ज्ञानी पुरुषों द्वारा (चनः-हितः) पूज्य पद पर स्थित, (शुचिः) शुद्ध होकर (रोदसी प्ररोचयन्) भूमि और आकाश को खूब प्रकाशित करता हुआ सूर्य के तुल्य और (मातरा प्ररोचयन्) माता पिताओं को प्रसन्न करते हुए पुत्र के तुल्य राजा-प्रजा को अच्छा लगता है। वह (समया) सब ओर से (अव्या रोमाणि) ऊन के बने वस्त्रों को (वि धावति) धारण करता है और (दिवे दिवे) दिनों दिन उसकी (मधोः धारा) उत्तम वेदवाणी और शत्रुओं की संतापिका शक्ति (पिन्वमाना) बढ़ती रहती है।

परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वासयाशिरम्।
ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ॥ ५ ॥ ३३ ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम विद्वन्! तू (नृभिः पुनानः) नायकों, गुरुओं से (पुनानः) अभिषेकादि द्वारा पवित्र होकर (स्वस्तये) कल्याण के लिये (परि प्र धन्व) राष्ट्र में परिव्राजकवत् विचर और (आशिरम्) सेवन के योग्य ज्ञान को (अभि वासय) सर्वत्र फैला। (ये) जो (ते) तेरे (मदः) हर्षवर्धक वचनों से सम्पन्न और (आहनसः) सब ओर से तुझे पीड़ित करने वाले गुरुजन और दुष्टनाशक वीर पुरुष (विहायसः) आकाशवत् गुणों में महान् (तेभिः) उनके द्वारा शिक्षित होकर (दातवे) दान देने के लिये (इन्द्रं मघम्) ज्ञान धन को (चोदय) प्रेरित कर। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः समाप्तः॥

तृतीयोऽध्यायः

[७६]

कविर्ऋषिः। पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ विराड् जगती। ३, ५ निचृज्जगती। ४ पादनिचृज्जगती॥

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा॥१॥

भा०—(धर्ता दिवः) तेज का धारक (कृत्व्यः) कर्मों का कर्त्ता, (रसः) बल स्वरूप, (दक्षः) दुष्टों का संतापक (नृभिः अनुमाद्यः) मनुष्यों से प्रसन्न होने योग्य वह (हरिः) दुःखों का हर्त्ता (अत्यः न) गतिमान् आत्मा के तुल्य (नदीषु) रुधिरनाड़ियों में प्राणों के तुल्य, (नदीषु) नदीवत् प्रवाह से अनादि और प्रकृति-विकृतियों में (वृथा) अनायास ही (पाजांसि आ कृणुते) नाना बलों को प्रकट करता है। वही सर्वोत्पादक प्रभु सोम है।

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः २

भा०—(गभस्त्योः) बाहुओं में (शूरः न) वीर पुरुष के समान (आयुधा) नाना प्रहार के साधनों को (धत्त) धारण करता है। वह (गविष्टिषु रथिरः) भूमियों के प्राप्त कर लेने पर जैसे महारथी अपने सर्वस्व को अध्यक्षों में विभक्त करता है, वैसे ही वह प्रभु भी (रथिरः) आनन्दों का स्वामी, (गविष्टिषु) वाणी द्वारा यज्ञ करने वाले भक्तजनों में अपना (स्वः सिषासन्) आनन्द और ज्ञान विभक्त करता है। वह (इन्द्रस्य) सूर्य, वायु, मेघ और आत्मा के (शुष्मम्) बल को (ईरयन्) प्रेरित करता है। वह (अपस्युभिः मनीषिभिः) कर्मकारी बुद्धिमान् जनों द्वारा (गोभिः) वाणियों द्वारा (इन्दुः) दयालु रूप से (अज्यते) प्रकाशित होता है।

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश। प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के उत्पादक, तू (पवमानः) सबको व्यापता हुआ (ऊर्मिणा) अपने सर्वोच्च बल द्वारा (तविष्यमाणः) बलकार्य सम्पादन करता हुआ (जठरेषु) पेटों में अन्न-तुल्य लोकों में बलप्रद होकर (आ विश) प्रवेश कर। (विद्युत् अभ्रा-इव) जैसे बिजली मेघों का दोहन करती है, तू (नः) हमारे सुखार्थ (रोदसी प्र पिन्व) भूमि और आकाश दोनों से सुखद पदार्थ प्रदान कर। (न) और तू ही (धिया) अपनी बुद्धि से (शश्वतः वाजान्) नित्यों अन्नों व ऐश्वर्यों को (उप मासि) बनाता है।

विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृश ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत्। यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥ ४ ॥

भा०—जगत् का उत्पादक प्रभु (विश्वस्य राजा) जगत् का प्रकाशक, राजा के समान स्वामी, (स्वः-दृशः) सुखों के द्रष्टा (ऋतस्य) ज्ञान को (पवते) प्रदान करता है। वह (ऋषि-षाट्) इन्द्रियों को अभिभव करने वाले आत्मा वा सूर्य प्रकाश के तुल्य होकर (ऋतस्य धीतिम्) ज्ञानमय

वेद के ज्ञान और कर्म को (अवीवशत्) अपने अधीन करता है और (यः) जो (असमष्ट-काव्यः) विद्वानों द्वारा भी अप्राप्य वेदादि काव्यों को रचने वाला है वह (मतीनां पिता) मनुष्यों का पालक प्रभु (सूर्यस्य) सूर्य के (असिरेण) तमोनाशक प्रकाश के तुल्य, सूर्य अर्थात् दक्षिण प्राण के मल शोधक प्रणायामादि द्वारा (मृज्यते) स्वच्छ किया जाता है।

वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत्।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ५।१

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (वृषा इव) जैसे बलवान् पुरुष (यूथा) जन-समूहों को प्राप्त कर (कोशम् अर्षति) धन को प्राप्त करता है वैसे ही तू (कोशम्) अन्तःकरण आदि को (परि अर्षसि) सब प्रकार से व्याप ले। तू (अपां उपस्थे) समस्त लोकों के ऊपर भी (वृषभः) बलशाली होकर (कनिक्रदत्) व्याप्त है। (सः) वह तू (मत्सरिन्तमः) सन्तोष और आनन्ददायक होकर (इन्द्राय) प्रत्यक्षदर्शी के लिये (पवसे) प्रकट होता है। (यथा) जिससे हम जीव भी (समिथे) संग्रामों में (त्वा-ऊतयः) तुझसे रक्षित होकर (जेषाम) विजय लाभ करें। इति प्रथमो वर्गः ॥

[७७]

कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ जगती। २, ४, ५ निचृज्जगती। ३ पादनिचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ॥१॥

भा०—(एषः) यह (मधुमान्) आनन्ददायक होकर (कोशे) आनन्दमय कोश में (प्र अचिक्रदत्) अन्तर्नाद करता है। वह (इन्द्रस्य वज्रः) आत्मा का बलशाली साधन है। वह (वपुषः वपुस्तरः) बीजवपन करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है। (ईम् अभि) इसके प्रति ही (घृतश्चुतः) प्रकाश देने वाली और (ऋतस्य सु-दुघाः) ज्ञान के देने वाली (वाश्राः)

वाणियां भी (धेनवः पयसा इव) पुष्टिकारक रस से गौओं के तुल्य, उसी को (अभि अर्षन्ति) व्यापती हैं ।

स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।
स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥२॥

भा०—(सः) वह (पूर्व्यः) सबसे पूर्व विद्यमान (दिवः परि) सूर्यादि के भी (परि पवते) ऊपर व्यापक है । वह (श्येनः) अति बल वाला प्रभु (इषितः) प्रेरक होकर (रजः तिरः मथायद्) समस्त लोकों को दूर २ तक संचालित कर रहा है । (सः) वह (वेविजानः) सर्वत्र व्यापता हुआ (मध्वः आ युवते) आनन्द को देता है । वह (बिभ्युषा मनसा) डरने वाले मन से (कृशानोः अस्तुः) अल्प प्राणयुक्त जीव को भी सन्मार्ग में चलाने हारा हो ।

ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।
ईक्षेण्यासो अह्यो न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे (नः) हममें से (पूर्वासः) पूर्व ही लक्ष्य तक पहुँचे हुए, (उपरासः) सर्वोपरि विराजमान, (इन्दवः) ऐश्वर्यवान्, दयाशील एवं प्रभु की ओर जाने वाले होते हैं । वे (महे वाजाय) बड़े भारी (गोमते) ज्ञान-बल और ऐश्वर्य के लिये (धन्वन्तु) आगे बढ़ें । वे (ईक्षेण्यासः) तत्व को देखने वाले (अह्यः न चारवः) स्त्री-जनों के समान अनिन्दनीय हैं, (ये) जो (ब्रह्म-ब्रह्म हविः-हविः) सब प्रकार के ज्ञान और सब प्रकार के अन्न आदि का (जुजुषुः) सेवन करते हैं ।

अयं नो विद्वान्वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (इन्दुः) दयाशील (सत्राचा मनसा पुरु-स्तुतः) सत्य मन से बहुतों द्वारा स्तुति किया, (विद्वान्) प्रभु (वनुष्यतः वन-वद्) हिंसकों का नाश करता है । (यः) जो स्वामी (इनस्य सदने) हृदय

में स्थित होकर पति के समान योनियों में वा प्रकृतिरूप कारण में (गर्भम् आ दधे) सृष्टि-बीज को धारण कराता है और जो (उरुब्जम्) प्रभूत प्राणों वा प्रकृति के परमाणुओं में उत्पन्न (अजम्) विकृति समूहों और जीवों को (अभि अर्षति) प्राप्त होता है।

चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ५।२

भा०—वह प्रभु (दिवः चक्रिः) आकाश, सूर्य, आदि का रचयिता (कृत्व्यः) ज्ञान से साक्षात् करने योग्य, (महान्) गुणों में महान् (रसः) आनन्दस्वरूप (अदब्धः) अविनाशी, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, (यते) संयम करने वाले और यत्नशील पुरुष के लिये (दिवः पवते) प्रकाश को प्रदान करता है। वह (यज्ञियः) समस्त देवपूजन आदि यज्ञों का पात्र (मित्रः) सर्वस्नेही प्रभु (वृजनेषु) समस्त गमन योग्य लोकों में (असावि) ईश्वर रूप से विराजता है। वह (अत्यः नः यूथे) पदातिसमूह में अश्वारोही के समान (वृषयुः) सुखैश्वर्य का सेचक प्रभु (कनिक्रदत्) मेघ समान दिव्य वाणी से उपदेश करता है। इति द्वितीयो वर्गः॥

[७८]

कविर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ५, निचृज्जगती। २—४ जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यदद्पो वसानो अभि गा इयक्षति।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् १

भा०—(राजा) राजा (वाचं प्र जनयन्) वाणी को प्रकट करता हुआ, (असिष्यदत्) प्रवाह के समान गम्भीरता से बहे, वाणी के भावों का प्रकाश करे। वह (अपः वसानः) आप्त जनों को अपने पर वस्त्रादिवत् धारण करता हुआ, (गाः) प्रजा की वाणियों को (अभि इयक्षति) प्राप्त करता है। वह स्वयं (अविः) जगत् का रक्षक होकर (तान्वा) पटवत्

विस्तृत सामर्थ्य से (अस्य) इस जगत् वा सेवक जन के (रिप्रम्) पाप को (गृभ्णाति) रोक देता है। प्रत्युत स्वयं (शुद्धः) सब परीक्षाओं में निर्दोष होकर (देवानां) विद्वानों के (निष्कृतम् उप याति) स्थान को प्राप्त होता है।

इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥२॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (नृ-चक्षाः) सब मनुष्यों का द्रष्टा (ऊर्मिः) महान् तरंग के समान उन्नत, (कविः) क्रान्तदर्शी होकर ही (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्रपति पद के लिये (परि सिच्यसे) अभिषिक्त किया जाता है। हे राजन्! तू (वने) वन में अग्नि के समान (अज्यसे) प्रकाशित होता है। (ते यातवे) तेरे जाने के (पूर्वीः) पूर्वों के (स्रुतयः) नाना मार्ग (सन्ति) हैं और (ते यातवे) तेरे साथ प्रयाण करने के लिये, (हरयः) मनोहर (अश्वाः सहस्रं) हजारों घोड़े और (चमू-सदः) सेना के पदों पर स्थित अनेक पुरुष भी हैं।

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन्।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ३

भा०—(समुद्रियाः) जो महान् आकाश में विद्यमान (अप्सरसः) शक्तियां हैं वे (अन्तः आसीनाः) गुप्त रूप से विद्यमान रह कर भी (मनीषिणम्) मेधावी (सोमम्) शासनसमर्थ पुरुष को (अभि अक्षरन्) प्राप्त होती हैं। (ताः) वे शक्तियां भी (हर्म्यस्य) विश्व के (सक्षणिं) संचालक को ही (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं और (पवमानम्) उसी व्यापक से (अक्षितं सुम्नं याचन्ते) अक्षय सुख की याचना करती हैं।

गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित्।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥४॥

भा०—(नः) हमारा (ऋतं) आनन्ददायक, (स्वादिष्ठं) उत्तम सात्विक अन्न का ही भोक्ता, (द्रप्सं) बलवान्, (अरुणं) तेजस्वी (मयोभुवं) सुखप्रद, (यं) जिसको (देवासः) मनुष्य लोग भी (पीतये चक्रिरे) अपने उपयोग और पालन के लिये नियत करते हैं, शासक है। वह (सोमः) उत्तम शासक (गोजित्) इन्द्रियों पर वश करने वाला, (रथ-जित्) देहों पर वश करने वाला, (हिरण्य-जित्) धनों का जानने वाला, (स्वर्जित्) सुख और प्रकाश को वश में करने वाला (अप्-जित्) प्रजाओं पर वशी, (सहस्र-जित्) सहस्रों को जीतने वाला, सर्वजित्, है।

एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वीं गव्यूतिमभयञ्च नस्कृधि ५।३

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (अस्मयुः) हमारा स्वामी होकर (पवमानः) पवित्र (एतानि सत्यानि द्रविणानि) इन सच्चे धनों को प्राप्त करता हुआ, (अर्षसि) प्राप्त हो, (अन्तिके दूरके च यः, शत्रुं जहि) पास और दूर के शत्रु को भी नष्ट कर और (उर्वीं गव्यूतिं च) भूमि एवं उसके मार्ग को (नः अभयं कृधि) हमारे लिये भयरहित कर। इति तृतीयो वर्गः॥

[७९]

कविर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ३ पादनिचृज्जगती। २, ४, ५ निचृज्जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः।
वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः॥१॥

भा०—(अचोदसः) अन्यों से शासित न होने वाले, स्वतन्त्र (इन्दवः) विद्वान्, (बृहद्-दिवेषु) बड़े २ ज्ञानियों के बीच (सुवानासः) निष्णात (हरयः) दुःखहर्ता पुरुष (नः प्र धन्वन्तु) हमें प्राप्त हों और (नः इषः अरातयः च) हमें अन्नों को न देने वाले कृपण जन (वि नशन्) विनष्ट हों। (नः) हमें (धियः) उत्तम बुद्धियां (सनिषन्त) प्राप्त हों।

प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि।
तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि २

भा०—(मनच्युतः) सुख प्रदान कर सकने वाले (इन्दवः) शत्रु पर वेग से जाने वाले, वीर (नः प्र धन्वन्तु) हमें प्राप्त हों, ये (प्र धन्वन्तु) धनुष् का वीर कर्म करें। (येभिः) जिनके द्वारा हम (अर्वतः) शत्रु से भी (धना) नाना धन (जुनीमसि) प्राप्त करते हैं। हम (कस्य चित्) किसी भी (मर्त्तस्य) मनुष्य की (परिह्वृतिं) कुटिलता का (तिरः) तिरस्कार करते हुए, (विश्वधा) सब प्रकार के (धना भरामसि) धनों को धारण करें।

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ३

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (स्वस्याः अरात्याः) अपने शत्रु का (अरिः) शत्रु और उस तक निर्भय पहुँचने वाला है, (उत) और (सः अन्यस्याः अरात्याः) वह दूसरे शत्रु को भी (वृकः) कष्ट में डालने वाला है। वह (धन्वन् तृष्णा न) मरु भूमि में तृष्णा के समान (धन्वन्) पुरुष के आश्रय ही (सम अरीत) समर करने में समर्थ है। हे (सोम) बलवन्! हे (पवमान) पवित्र करने वाले! तू (तान्) उन (दुः-आध्यः) दुःख से वश करने योग्य शत्रुओं को भी (जहि) दण्डित कर।

दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः। अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

भा०—हे सोम! प्रभो! (यः) जो (परमः) उत्कृष्ट बल (दिवि नाभा) आकाश के केन्द्र में (आददे) सबको थामे है, वह (ते) तेरा ही है और (ते) तेरे ही (क्षिपः) नाना पदार्थों को इधर उधर चलाने वाली शक्तियां (पृथिव्याः सानवि) पृथिवी के उच्च भागों पर (रुरुहुः) प्रकट

होती हैं। (गोः त्वचि अधि) पृथिवी तल के ऊपर (अद्रयः) मेघ गण (त्वा) तुझे ही (बप्सति) अपने में लेते हैं और (मनीषिणः) बुद्धिमान् पुरुष (अप्सु) जलों में वा प्राणों के (हस्तैः) नाना साधनों से (त्वा दुदुहुः) तुझे ही प्राप्त करते हैं।

एवा त इन्द्रो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥५॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (ते एव) तेरे ही (सुभ्वम्) सुख-जनक (सुपेशसं) सुन्दर (रसं) बल को (प्रथमाः) सर्वश्रेष्ठ (अभिश्रियः) सेवकजन (तुञ्जन्ति) ग्रहण करते हैं। हे (पवमान) पावन! तू (निदं-निदं) प्रत्येक निन्दनीय कर्म को (नि तारिः) विनष्ट कर। (ते प्रियः) तेरा प्यारा, (शुष्मः) बल और (मदः) सुख (आविः भवतु) प्रकट हो। इति चतुर्थो वर्गः॥

[८०]

वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ जगती । २, ५ विराड् जगती । ३ निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि।
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः ॥१॥

भा०—(नृचक्षसः) मनुष्यों को सत्य मार्ग बताने वाले (सोमस्य) उपदेष्टा की (धारा पवते) वाणी प्रकट होती है। (दिवः देवान्) ज्ञान की कामना करने वाले जनों को (ऋतेन) ज्ञान और धर्म द्वारा (हवते) सुख प्रदान करती है। (बृहस्पतेः) ज्ञान और वेद के पालक गुरु के (रवथेन) उपदेश से जगत् (विदिद्युते) विशेष रूप से प्रकाशित होता है और तभी (समुद्रासः न) अवकाशों के समान वही उसके (सवनानि) शासन और ऐश्वर्य को (विव्यचुः) फैलाते हैं।

यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान्।
मघोनामायुः प्रतिरन्महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥२॥

भा०—हे (वाजिन्) बलवन् ! (त्वां) तुझको (अघ्न्याः) अविनाशिनी वेदवाणियां (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुति करती हैं और तू (द्युमान्) सूर्यवत् कान्तिमान् होकर (अयः-हतं योनिम्) सुवर्ण सिंहासन को राजा के तुल्य (अयः-हतम्) ज्ञान से व्याप्त (योनिम्) हृदय प्रदेश को (आरोहसि) प्राप्त होता है। (मघोनाम्) ज्ञानादि से सम्पन्न निष्पाप जीवों को (महि श्रवः) उत्तम ज्ञान, अन्न और (आयुः प्रतिरन्) आयु देता है और हे (सोम) प्रभो ! तू (वृषा) आनन्दों का बरसाने वाला और (मदः) हर्षप्रद, होकर (इन्द्राय) भूमि पर कृषि करने वाले जीवगण को (महि श्रवः) महान् अन्न और (इन्द्राय महि श्रवः) इस अध्यात्मदर्शी ज्ञानी को महान् ज्ञान (पवसे) प्रदान करता है।

एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः।
प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ॥३॥

भा०—वह प्रभु (मदिन्तमः) हर्ष देने वालों में श्रेष्ठ (श्रवसे) ज्ञान आदि प्रदान करने को स्वयं भी (ऊर्जं वसानः) बल रूप अन्न को धारण करता हुआ (सु-मंगलः) मंगलजनक होकर (इन्द्रस्य कुक्षा) आत्मा के कुक्षि वा अन्तःकरण में (आ पवते) व्यापता है। (सः) वह (विश्वा भुवना) समस्त लोकों को (प्रत्यङ् अभि पप्रथे) प्रत्यक्ष प्रकट करता और विस्तृत करता है और वह (हरिः) दुःखों को हरने वाला, (वृषा) बलवान् (क्रीड़न्) खेलता सा (अत्यः स्यन्दते) अश्वतुल्य दूर २ तक विस्तृत होता है।

तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः।
नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान्देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥ ४ ॥

भा०—(त्वां) तुझ (मधुमत्-तमं) महान् आनन्दसम्पन्न (सहस्र-धारं) सहस्रों वेदवाणियों के धारक प्रभु को (नरः) समस्त मनुष्य (दश क्षिपः) दशों हस्तांगुलिवत् (सहस्र-धारं) सहस्रधारा रूप में (दुहते) दोहन करते हैं, ज्ञान रस को प्राप्त करते हैं। हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (ग्रावभिः) धर्मोपदेष्टा पुरुषों और (नृभिः) नायक पुरुषों से (प्र-च्युतः) प्रकृष्ट पद को प्राप्त और (ग्रावभिः) विद्योपदेष्टा जनों से उत्तम मार्ग को ले जाया जाता है। इधर वह (सुतः) अभिषिक्त होकर (सहस्र-जित्) हजारों को हराने वाला (विश्वान् देवान् आपवस्व) समस्त विद्वानों को प्राप्त हो।

तं त्वा॑ ह॒स्तिनो॒ मधु॑मन्त॒मद्रि॑भिर्दु॒हन्त्य॒प्सु वृ॑ष॒भं दश॒ क्षिपः॑।
इन्द्रं॑ सोम मा॒दय॒न्दैव्यं॒ जनं॒ सिन्धो॑रिवो॒र्मिः पव॑मानो अर्षसि ॥५॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! (त्वा तम्) उस तुझ (वृषभम्) पूज्य को (हस्तिनः) नाना उपकरण वाले जन, (अद्रिभिः) मेघवत् कलशों द्वारा (दश क्षिपः) दशों दिशाओं की प्रजाएं और शत्रुनाशक वीर सेनाएं (अप्सु) अभिषेच्य जलों के बीच (दुहन्ति) ऐश्वर्यों से पूर्ण करते हैं। इसी प्रकार (हस्तिनः) कुशल जन (मधुमन्तं त्वां तम् वृषभम्) सुख वाले तुझ बलवान् आनन्दवर्षी को (दश क्षिपः) दशों प्राण (अद्रिभिः) भोग्य सामर्थ्यों से (अप्सु दुहन्ति) देहगत रसों में शक्ति भरते हैं। तू (दैव्यं जनम्) विद्वान् जन, प्राणगण और (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष और आत्मा को (मादयन्) प्रसन्न करता हुआ (सिन्धोः इव ऊर्मिः) समुद्रतरंग के समान (पवमानः) व्यापता हुआ (अर्षसि) प्राप्त होता है। इति पञ्चमो वर्गः॥

[८१]

वसुर्भारद्वाज ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१—३ निचृज्जगती। ४ जगती। ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥

प्र सोम॑स्य॒ पव॑मानस्यो॒र्मय॒ इन्द्र॑स्य यन्ति ज॒ठरं॑ सु॒पेश॑सः।
द॒ध्ना यदी॒मुन्नी॑ता य॒शसा॒ गवां॑ दा॒नाय॒ शूर॑मु॒दम॑न्दिषुः सु॒ताः ॥१॥

भा०—(पवमानस्य) पवित्रकर्ता (सोमस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (ऊर्मयः) आदेश एवं तरंग (सु-पेशसः) शुभरूप होकर (इन्द्रस्य जठरं यन्ति) आत्मा के हृदय तक पहुँचते हैं। (यत्) जो (दध्ना उन्नीताः) ध्यान धारणा से ऊपर आये हुए (सुताः) तरंग (गवां यशसा) वाणियों के बल से (शूरं) वीर पुरुष को (दानाय) आत्मसमर्पण के लिये (उत् अमन्दिषुः) प्रसन्न कर देते हैं।

अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यदत्त्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा । अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥ २ ॥

भा०—(सोमः) वह सर्वसंचालक वीर्य रूप सोम (कलशान् अच्छ असिष्यदत्) कलशवत् देहों को प्राप्त होता है, (वोढा अत्यः न) भारवाही अश्व के समान वह जगत् का धारणकर्ता (अत्यः) सर्वव्यापक प्रभु (रघुवर्त्तनिः) सूर्यादि लोकों को घुमाने में समर्थ (वृषा) बलशाली है। (अथ) और वह (देवानाम्) तेजोमय जीवों या प्राणों के बीच विद्वान् होकर (यत्) जो (अमुतः) परलोक से इस लोक में आने और (इतः च) इस लोक से उस लोक में जन्म लेने रूप दोनों जन्मों को (विद्वान्) जानता हुआ दोनों को (अश्नोति) व्यापता है। वह आत्मा ही 'सोम' है।

आ नः सोम पवमानः किरा वस्विन्दो भव मघवा राधसो महः । शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः ३

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे (इन्दो) तेजस्विन्! तू (पवमानः) हमें पवित्र करता हुआ, (नः वसु किर) हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर। तू (मघवा) ऐश्वर्यवान् होकर, (महः राधसः) भारी धनैश्वर्य का स्वामी (भव) हो और (चेतुना) ज्ञान द्वारा (वयः धाः) दीर्घ-जीवन का धारक होकर (वसवे) इस जीव को (शिक्ष) बल और ज्ञान प्रदान कर। (नः गयम्) हमारे कल्याण को (अस्मत् मा परा सिचः) हमसे दूर न कर।

आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ॥४॥

भा०—(पवमानः पूषा) परमपावन प्रभु (सु-रातयः) ऐश्वर्य दाता, (मित्रः) मृत्यु से बचाने वाला (वरुणः) दुःखों का वारक, (बृहस्पतिः) बड़े लोकों का पालक, (मरुतः) विद्वान् (वायुः) बलवान्, (त्वष्टा) जगत्कर्त्ता, (सविता) सर्वोत्पादक और (सु-यमा) उत्तम यम नियम युक्त (सरस्वती) वेदवाणी, विदुषी स्त्री आदि सब (स-जोषसः) प्रीति युक्त होकर (नः आगच्छन्तु) हमें प्राप्त हों।

उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता।
भगो नृशंस उर्वन्तरिक्षं विश्वे देवाः पवमानञ्जुषन्त ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—(उभे) दोनों (द्यावा-पृथिवी) सूर्य-भूमि वत् माता पिता, (विश्वमिन्वे) संसार के पालक और (अर्यमा देवः) न्यायकारी विद्वान् (अदितिः) शासनकर्त्ता, (विधाता) विविध प्रकार से धारक पोषक, (भगः) ऐश्वर्यवान् (नृ-शंसाः) मनुष्यों से स्तुत्य और (विश्वे देवाः) अखिल विद्वान् जन (पवमानं) उस सर्वव्यापक (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष के तुल्य, महान् प्रभु को (जुषन्त) सेवन करते हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

[८२]

वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराड् जगती॥ २ निचृज्जगती। ३ जगती। ५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्। पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम् ॥ १ ॥

भा०—(सोमः) राष्ट्रशासक पुरुष जो (अरुषः) दीप्तिमान्, प्रबन्धक और प्रजा पर सुख बरसाता हो वह (असावि) ऐश्वर्य को प्राप्त हो। वह

(राजा इव) सूर्य के समान (दस्मः) दर्शनीय, शत्रुदल का नाशक (गाः अभि अचिक्रदत्) भूमियों का शासन करे। वह (श्येनः) बाज के समान वेगवान् एवं (श्येनः) प्रयाणकारी होकर (घृतवन्तम्) तेजोयुक्त (योनिम्) राजभवन और शासक पद पर (आसदम्) विराजने के लिये (पुनानः) अभिषिक्त हुआ (अव्ययं वारं परि एति) ऊन के उत्तम शाल को धारण करे।

कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि।
अपसेधन्दुरिता सोम मृळय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम् २

भा०—हे (सोम) प्रभो! तू (कविः) ज्ञानवान्, होकर (वेधस्या) जगत्-निर्माण की इच्छा से (माहिनं) महान् सामर्थ्य को (परि एषि) दूर २ तक व्यापता है और (अत्यः मृष्टः न) तरोताजा घोड़े के समान तू (वाजम् अभि अर्षसि) ज्ञान-समृद्धि को साक्षात् करता है। तू (घृतं वसानः) अभिषेक काल में जल से स्वयं को आच्छादित करता हुआ और (घृतं वसानः) तेज को धारण करता हुआ, (दुरिता) सब अपराधों को (मृडय) दूर कर एवं (निः-निजं परियासि) शुद्ध रूप को प्राप्त कर।

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन्त्सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे ३

भा०—(पर्णिनः महिषस्य पिता पर्जन्यः पृथिव्याः नाभौ गिरिषु क्षयं दधे) जैसे पत्तों वाले महान्, वृक्ष का पालक, जलवर्षी रसवत् पिता के तुल्य मेघ पृथिवी की आकर्षण शक्ति से बंध कर पर्वतों में आश्रय पाता है, वैसे ही (महिषस्य) महान् (पर्णिनः) पालन, एवं दूर देश तक गमन-साधनों वाले पुरुष का (पिता) पालक पिता तुल्य, (पर्जन्यः) शत्रुओं का विजेता, पुरुष (पृथिव्याः नाभा) पृथिवी के बीच केन्द्र में और (गिरिषु) विद्वानों के आश्रय में अपने (क्षयं) निवास और ऐश्वर्य को धारण कराता है। जब शासक उच्चस्थल में रहे तब (आपः) जल स्वभाव की निम्न स्थल

में रहने वाली प्रजाएं (स्वसारः) वेग से जाने वाली जलधाराओं के तुल्य (उत गाः अभि असरन्) भूमियों की ओर चली जावें। वह राजा (अध्वरे वीते) शत्रुओं द्वारा नाश न होने वाले पुरुष के तेजस्वी हो जाने पर उसके अधीन ही, (ग्रावभिः) दृढ़ सैन्यों द्वारा (सं नसते) सन्मार्ग में जाते हैं।

जायेव पत्यावधि शेव मंहसे पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते।
अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ॥४॥

भा०—(पत्यौ अधि जाया इव शेव मंहसे) जैसे पति के अधीन स्त्री अधिक सुख प्रदान करती है वैसे ही हे (गर्भ) गर्भगत जीव ! हे (सोम) उत्पन्न होने हारे ! तू भी (पत्यौ) पालक परमेश्वर के अधीन रहकर (जाया इव) देह रूप से प्रकट होकर (पज्रायाः) प्रजा मात्र भूमि को (शेव मंहसे) सुख प्रदान करता है। हे (सोम) विद्वन्! (शृणुहि) तू श्रवण कर। (ते ब्रवीमि) मैं तुझे इस रहस्य का उपदेश करता हूँ। हे जीव ! तू (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (वाणीषु अन्तः) वेद वाणियों के बीच (सु प्रचर) अच्छी प्रकार विचरण कर और (अनिन्द्यः) श्रेष्ठ बन कर (वृजने) बल वीर्य को प्राप्त करने के मार्ग में (जागृहि) सदा सावधान होकर रह।

यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो।
एवा पवस्व सुवित्ताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥५।७॥

भा०—हे (इन्दो) प्रभो ! राजन् ! (यथा) जैसे तू (पूर्वेभ्यः) हमसे पूर्व पुरुषों को (शतसाः सहस्रसाः सन्) सैकड़ों और हजारों का दाता होकर ऐश्वर्य (परि अयाः) देता है और तू (अमृधः) अविनाशी है। (एव) वैसे ही (नव्यसे) नवीन, (सु-इताय) अभ्युदय कार्य के लिये (पवस्व) ऐश्वर्य प्रदान कर। (तव व्रतम् अनु) तेरे व्रत के अनुकूल जनसाधारण भी (आपः) जलोंवत् (सचन्ते) तेरे साथ मिलकर रहते हैं। इति सप्तमो वर्गः ॥

[८३]

पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, निचृज्जगती । २ ५ विराड् जगती । ३ जगती । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥ १ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणः पते) वेदज्ञान के स्वामिन् ! (ते) तेरा (पवित्रम्) ज्ञान और तेज (विततं) व्यापक है । तू (प्रभुः) शक्तिमान् होकर (विश्वतः) सब ओर (गात्राणि परि एषि) संसार के अवयवों को व्याप रहा है (अतप्त-तनूः) जिसने अपने को तपश्चर्या से तप्त नहीं किया वह (आमः) अपरिपक्व वीर्यवान् पुरुष (तत्) ब्रह्म को (न अश्नुते) नहीं प्राप्त होता और (शृतासः) जिन्होंने तप से अपने को तप्त किया है, वे (इत् वहन्तः) तप करते हुए, (तत् सम् आशत) उसको प्राप्त होते हैं ।

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥२॥

भा०—(तपोः) तपोमय प्रभु का (पवित्रं) शुद्ध स्वरूप (विततं) व्यापक है । (अस्य दिवः) उस तेजोमय प्रभु के (पदे) रूप में ही (शोचन्तः) चमकते हुए (तन्तवः) जीवन के विस्तारक जन (वि अस्थिरन्) अपने को स्थिर कर रहे हैं । वे (आशवः) वे कुशल पुरुष (अस्य पवितारम्) इसके परम सामर्थ्य को (अवन्ति) प्राप्त होते वा (अस्य पवितारं) इस परिशोधक की (अवन्ति) रक्षा करते हैं । वे (चेतसा) ज्ञानबल से (दिवः पृष्ठम्) तेजोमय प्रभु के पद को (अधि तिष्ठन्ति) प्राप्त करते हैं ।

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ३

भा०—(अग्रियः) सबसे प्रथम विद्यमान (पृश्निः) सबका उत्पादक, (उषसः अरूरुचत्) सूर्य जैसे उषाओं को प्रकाशित करता है वैसे ही वह

तेजोमय पिण्डों को प्रकाशित करता है। वह (उक्षा) संसार को वहन करने वाला (वाजयुः) बलों और ऐश्वर्यों का दाता (भुवनानि बिभर्त्ति) लोकों को धारण करता है। (मायाविनः) बुद्धिमान् जन (अस्य मायया ममिरे) इसकी बुद्धि से ज्ञान प्राप्त करते हैं और (नृचक्षसः) मनुष्यों को तत्वज्ञान का उपदेश करने वाले (पितरः) पितृ तुल्य विद्वान् जन ज्ञान प्रदान करने के लिये अपने (गर्भम् आ दधुः) अधीन गर्भ को मातृवत् धारण करते हैं।

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ४

भा०—(गन्धर्वः) जगत् को चलाने वाला प्रभु (इत्था) सत्य ही (अस्य पदम् रक्षति) प्रत्यक्ष संसार के 'पद' परम आश्रय की रक्षा करता करता है। वह (अद्भुतः) विचित्र, (देवानां) दिव्य पदार्थों के भी (जनिमानि) उत्पन्न रूपों, देहों और जन्मों की (पाति) रक्षा करता है। वह (निधा-पतिः) धारक शक्ति का स्वामी, (निधया) धारिका शक्ति से ही (रिपुं) कर्मलेप में लिप्त जीव-जगत् को (गृभ्णाति) वश में किये रहता है और (सुकृत्-तमाः) उत्तम पुण्यकारी जन (मधुनः) ज्ञानरूप मधु के आनन्द का (भक्षम् आशत) सुख प्राप्त करते हैं।

हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम्।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ५।८

भा०—(महि सद्म वसानः हविः परि अध्वरं याति) जैसे बड़े भारी गृह में रहने वाला महाशाल-सम्पन्न पुरुष अन्नों से यज्ञ करता है, वैसे ही हे (हविष्मः) अन्नों, ज्ञानों, बलों और साधनों के स्वामिन्! तू भी (हविः) भोग्य ऐश्वर्य को और (दिव्यं महि सद्म) गृहवत् महान् (अध्वरम्) अविनाशी संसार रूप यज्ञ मण्डप को (वसानः) आच्छादित करता हुआ (परि यासि) व्याप रहा है। (राजा पवित्र रथं वाजम्) जैसे वेगवान् रथ

का स्वामी राजा युद्धार्थ सैन्य-अध्यक्ष होकर रहता है और (सहस्र-भृष्टिः जयति) सहस्रों को युद्धादि में भून कर विजय प्राप्त करता है वैसे ही हे प्रभो ! तू भी (राजा) प्रकाशस्वरूप (पवित्र-रथः) परम पावन होकर (सहस्र-भृष्टिः) सहस्रों पापों को दग्ध करने वाला होकर (बृहत् श्रवः जयसि) महान् यश-ऐश्वर्य को प्राप्त करता है । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[८४]

प्रजापतिर्वाच्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराड् जगती । ४ जगती । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

पव॑स्व देव॒माद॑नो॒ विच॑र्षणिर॒प्सा इन्द्रा॑य॒ वरु॑णाय॒ वा॒यवे॑ ।
कृ॒धी नो॑ अ॒द्य वरि॑वः स्वस्ति॒मदु॑रुक्षि॒तौ गृ॑णीहि॒ दैव्यं॒ जन॑म् ॥१॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (देव-मादनः) मनुष्यों को सुप्रसन्न करने वाला (विचर्षणिः) विविध ज्ञानों का द्रष्टा, (अप्सः) मेघवत् प्राणों का दाता और भोक्ता है । हे जलद ! तू (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ, (वायवे) सब में व्यापक प्रभु को प्राप्त करने के लिये, (पवस्व) यत्न कर । (नः अद्य वरिवः कृणु) हमारे लिये आज उत्तम वरणीय ऐसा धन-ऐश्वर्य उत्पन्न कर जो (स्वस्तिमत्) सुख कल्याण से युक्त हो । (उरु-क्षितौ) इस विशाल भूमि में (दैव्यं जनम्) दिव्य पदार्थों के प्रेमी मनुष्य के लिये सत्ज्ञान का (गृणीहि) उपदेश कर ।

आ यस्त॒स्थौ भुव॑ना॒न्यम॑र्त्यो॒ विश्वा॑नि॒ सोम॒: परि॒ तान्य॑र्षति ।
कृ॒ण्वन्त्सं॒चृतं॑ वि॒चृत॑म॒भिष्ट॑य॒ इन्दु॑: सिषक्त्यु॒षसं॒ न सूर्य॑: ॥२॥

भा०—(यः) जो (सोमः) प्रभु (अमर्त्यः) नित्य होकर (विश्वानि भुवनानि आ तस्थौ) समस्त लोकों का अध्यक्ष है वह (तानि परि अर्षति) उनको सब ओर से व्यापता है । (सूर्यः उषसं न) सूर्य जैसे उषा को व्यापता है और (अभिष्टये संवृतं विवृतं कृणोति) चारों ओर व्यापने के

लिये जगत् को अन्धकार से वियुक्त करता है वैसे ही वह (इन्दुः) चन्द्र के समान आह्लादक (अभिष्टये) जीव की अभीष्ट सिद्धि के लिये (उषसं) प्रेम से चाहने वाले, उस (संवृतम्) बद्ध जीव को (विवृतं कुर्वन्) बन्धनों से मुक्त करता हुआ (सिषक्ति) उसे अपने साथ चिपटा लेता है।

आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनम्॥३॥

भा०—(यः) जो (उप-वसुः) समीप बसता हुआ (ओषधीषु) ओषधियों में (गोभिः) किरणों द्वारा (आ सृज्यते) रस के समान व्याप रहा है और जो (देवानां सुम्ने) विद्वानों और जल आदि के सुखमय व्यवहार में (इषयन्) प्रेरित करता हुआ, (सुतः) प्रकट होकर (विद्युता धारया) विशेष कान्तियुक्त वाणी वा शक्ति से (पवते) सबको पवित्र करता है वह (सोमः) प्रेरक प्रभु, (इन्द्रम्) स्वप्रकाश उस प्रभु के द्रष्टा आत्मा को (मादयन् पवते) आनन्दित करता हुआ प्राप्त होता है।

एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम्।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति॥४॥

भा०—(एषः) यह (स्यः) वह (सोमः) सबका सञ्चालक, (पवते) सबको व्याप रहा है, जो (सहस्रजित्) सहस्रों सूर्यादि लोकों को वश में करता है और (उषः-बुधम्) प्रातःकाल चेतने वाली, (इषिराम्) इच्छा योग्य (वाचम्) वाणी को (हिन्वानः) प्रदान करता है। वह (इन्दुः) संसार में व्यापक (समुद्रम्) आकाशस्थ जगत् के (उत्) ऊपर अध्यक्ष होकर उसे (वायुभिः) वायुओं के झकोरों से समुद्र के समान ही (इयर्त्ति) विक्षुब्ध कर देता है वह (इन्द्रस्य हार्दि) जीव को प्रिय लगता हुआ (कलशेषु आसीदति) अभिषेक-कलशों के बीच राजा के समान समस्त देहों के बीच विराजता है।

अभि त्यं गावः पर्यसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम्। धनञ्जयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—(त्यं सोमम्) उस सबके प्रेरक (स्वर्विदम्) सर्वज्ञ (पयोवृधं) जलादि के वर्धक प्रभु को (गावः) विद्वान् जन (मतिभिः) अपनी बुद्धियों से परिपक्व करते हैं, उसका अभ्यास करते हैं, वह (धनंजयः) धन का विजयी, (कृत्व्यः) जगत् का निर्माता (रसः) आनन्दमय, (विप्रः) विशेष रूप से पूर्ण, (कविः) क्रान्तदर्शी, (काव्येन) विद्वान् जनों के ज्ञान से (स्वः-चनाः) ज्ञान का दाता है। इति नवमो वर्गः ॥

[८५]

वेनो भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ९, १० विराड् जगती। २, ७ निचृज्जगती। ३ जगती। ४, ६ पादनिचृज्जगती। ८ आर्ची स्वराड् जगती। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। १२ त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥१

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (सु-सुतः) ओषधि के समान अच्छी प्रकार विद्यादि से सुपरिष्कृत (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त सृष्टि के लाभ के लिये (परि स्रव) चारों ओर जा। (अमीवा रक्षसा सह) रोग या पीड़ा दुष्टजनों के साथ ही (अप भवतु) दूर हो। (द्वयाविनः) सत्य और असत्य के सेवन करने वाले दुरंगे लोग (ते रसस्य मा मत्सत) तेरे बल से सुखी न हों। इस लोक में (इन्दवः) उस प्रभु के उपासक ही (द्रविण-स्वन्तः सन्तु) धनसम्पन्न हों।

अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥२॥

भा०—हे (पवमान) पवित्रकारक ! तू (देवानां दक्षः असि) तेजस्वी पुरुषों को उत्साह दिलाने वाला और (प्रियः मदः) आनन्द देने वाला प्रिय है। तू (समर्ये) संग्राम में (अस्मान् चोदयः) हमको सन्मार्ग में चला। (शत्रुम् जहि) शत्रुओं का नाश कर। (भन्दनायतः) अपना कल्याण चाहने वाले पुरुषों का (अभि आ पिब) सब प्रकार से पालन कर। हे (इन्द्र) सेनापते ! (नः मृधः अव जहि) हमारे हिंसाकारियों को मार गिरा और (सोमम् पिब) ऐश्वर्य का भोग कर।

अद॑ब्ध इन्दो पवसे म॒दिन्त॑म आ॒त्मेन्द्र॑स्य भवसि धा॒सिरु॑त्त॒मः।
अ॒भि स्व॑रन्ति ब॒हवो॑ मनी॒षिणो॒ राजा॑नम॒स्य भुव॑नस्य निं॑सते ॥३

भा०—हे (इन्दो) दयालो ! तू (अदब्धः) अविनाशी (मदिन्तमः) आनन्ददायक होकर (पवसे) सर्वत्र व्याप्त है। तू (इन्द्रस्य) प्रकाश से युक्त सूर्यादि लोकों का (उत्तमः धासिः) सर्वोत्तम धारक एवं (आत्मा भवसि) देह के तुल्य प्रिय अन्तरंग है। (अस्य भुवनस्य राजानम्) इस भुवन को प्रकाशित करने वाले तुझको (बहवः) बहुत से (मनीषिणः) बुद्धिमान् जन (अभि स्वरन्ति) सर्वत्र गान करते हैं और (निंसते) प्रेमी के समान उसको प्राप्त होते हैं।

स॒हस्र॑णीथः श॒तधा॑रो॒ अद्भु॑त इन्द्रा॒येन्दुः॑ पवते॒ काम्यं॒ मधु॑।
ज॒यन्क्षेत्र॑म॒भ्य॑र्षा॒ जय॑न्न॒प उ॒रुं नो॑ गा॒तुं कृ॑णु सोम मीढ्वः ॥४॥

भा०—(सहस्र-नीथः) सहस्रों वाणियों और उत्तम नायकों से युक्त (शत-धारः) सैंकड़ों धारा तुल्य शक्तियों और अधिकारों का स्वामी (अद्भुतः) विचित्र, स्वतःसिद्ध (इन्दुः) तेजस्वी, (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये प्राप्त हो। वह (क्षेत्रम्) रणक्षेत्र को जीत कर और (अपः जयन्) प्रजाओं को अपने वश कर (काम्यं मधु) चाहने योग्य मधुर फल, ऐश्वर्य को (पवते) प्राप्त करता और कराता है। हे (सोम) उत्तम शासक ! हे

(मीढ्वः) मेघवत् सुखों के वर्षक ! तू (नः) हमारे लिये (उरुं गातुं कृणु) जाने को उत्तम मार्ग का उपदेश कर।

कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्य१व्ययं समया वारमर्षसि।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥५॥

भा०—(कनिक्रदत्) शासक तू (कलशे) मङ्गल-कलश के नीचे (गोभिः) स्तुति वाणियों द्वारा (अज्यते) अभिषिक्त होता है और (अव्यय वारं वि अर्षसि) ऊन का श्रेष्ठ वस्त्र, पृथिवी के वरणीय धन एवं (वारं) दुष्टों के वारक और प्रजा के योग्य श्रेष्ठ कार्य को (अर्षसि) प्राप्त होता है। (मर्मृज्यमानः अत्यः न) सुभूषित अश्व के समान (सानसिः) राष्ट्र का सेवक होकर हे (सोम) शासक ! तू (इन्द्रस्य जठरे) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र और सैन्य के मध्य (सम्-अक्षरः) अच्छी प्रकार गति कर।

स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ६।१०

भा०—हे शासक ! तू (मधुमान्) मधुर स्वभाव से युक्त होकर (स्वादुः) ऐश्वर्यों का संग्रह करता हुआ, (दिव्याय जन्मने) दिव्य जन्म के लिये (पवस्व) आगे बढ़ और (इन्द्राय स्वादुः) इन्द्र पद के लिये अपने को समर्थ करता हुआ (सुहवीतु-नाम्ने) पुण्यशील (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ, (वायवे) वायुवत् बलशाली (बृहस्पतये) बड़े राष्ट्र के पालक पद के लिये (स्वादुः) सर्वप्रिय (अदाभ्यः) अजर अमरवत् (पवस्व) यत्न कर। इति दशमो वर्गः ॥

अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥७॥

भा०—(दश क्षिपः) दशों अध्यक्ष जन, (अत्यं) सर्वोपरि को (कलशे) मंगल कलश के समीप (मृजन्ति) सुशोभित करते हैं और (विप्राणां

मतयः) विद्वानों की बुद्धियां और (वाचः) वाणियां (प्र ईरते) स्तुति करती हैं। (पवमानासः इन्दवः) पवित्र होकर तेजस्वी लोग (सु-स्तुतिम् अभि अर्षन्ति) उत्तम स्तुति को प्राप्त करते हैं। वे (मदिरासः) हर्षदायक होकर (इन्द्रं विशन्ति) ऐश्वर्य वा राष्ट्र में प्रवेश करते हैं।

पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥८॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन्! (पवमानः) राष्ट्र को दुष्टों से रहित करता हुआ तू (सुवीर्यम् अभि अर्ष) उत्तम बल प्राप्त कर। (उर्वीम् गव्यूतिम्) बड़े भारी मार्ग और (गो-यूतिम्) वाणी की प्राप्ति को (महि शर्म) भवन और सुख को (अभि अर्ष) प्राप्त कर। (नः) हमारे (अस्य) इस शासक पर (परिसूतिः) कोई हिंसाकारी जन (माकिः परि-ईषत) अधिकार न कर ले। (त्वया धनं-धनं जयेम) तेरे द्वारा हम लोग ऐश्वर्यों का विजय करें।

अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥ ९ ॥

भा०—(वृषभः द्याम् अधि अस्थात्) सुखों की वर्षा करने वाला राजा राजसभा में विराजे। वह (विचक्षणः) विविध ज्ञानों का द्रष्टा और वक्ता (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (रोचना वि रुरुचत्) रुचिकर कर्मों को प्रकाशित करे। वह (राजा) स्वयं तेजस्वी (रोरुवत्) उपदेश करता हुआ (पवित्रम् अति एति) विवेक के न्याय पद को प्राप्त होता है। (नृचक्षसः) आत्मदर्शी के तुल्य द्रष्टा रहकर (दिवः पीयूषं दुहते) राज-सभा से राष्ट्र के दुष्टों के नाश का उपाय प्राप्त करते हैं।

दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥ १० ॥

भा०—(मधु-जिह्वाः) ज्ञान मधु को वाणी में धारण करने वाले (असश्चतः) निःसंग, (वेनाः) तेजस्वी जन (गिरिष्ठां) वाणी में विद्यमान, (उक्षणं) संसार को धारण करने वाले (द्रप्सं) शुक्रमय, (अप्सु ववृधानं) अन्तरिक्षों और लिङ्गदेहों में व्यापक (मधुमन्तं) आनन्दमय प्रभु को (सिन्धोः ऊर्मा) नदी तरंग के समान उठते हुए आत्मा के आवेश में (पवित्रे) पवित्र हृदय में, (दिवः नाके) एक मात्र सुखमय रूप में और (समुद्रे) सुखों के भण्डार अनन्त रूप में (आ आ) प्राप्त करते और (दुहन्ति) उससे अनेक फल पाते हैं।

नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ११

भा०—(वेनानाम्) विद्वान् जनों की (पूर्वीः) सनातन से विद्यमान (गिरः) वाणियों, (उपपप्तिवांसं) समीप में ऐश्वर्यमय रूप में विद्यमान (नाके) मोक्ष धाम में प्राप्त, (सुपर्णम्) उत्तम पालक साधनों एवं रूप तेजों से युक्त प्रभु की (अकृपन्त) स्तुति करते हैं। उस (हिरण्ययं) तेजोमय, (शकुनं) शक्तिमान् (क्षामणि स्थाम्) परमाश्रय में विद्यमान (पनिप्नतं) ज्ञान का उपदेश करने वाले, (शिशुं) प्रभु को (मतयः रिहन्ति) सब स्तुतियां स्पर्श करतीं हैं।

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य। भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः॥ १२॥ ११॥ ४॥

भा०—(ऊर्ध्वः) सबसे ऊंचा, (गन्धर्वः) शक्ति को धारण करने वाला, (नाके अधि अस्थात्) परम सुखमय रूप में संसार का अध्यक्ष होकर विराजता है। वह (अस्य) जगत् के (विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणः) समस्त रूपों को देखता रहता है। वह (शुक्रेण) दीप्त (शोचिषा) शुद्धकारी कान्ति से (वि अद्यौत्) चमकता है। वह (भानुः) कान्तिमान्, (शुचिः)

पवित्र (रोदसी) भूमिवत् जगत् को सीमा में रोकने वाले (मातरौ) जगत् की रचना करने वाले आत्मा और प्रकृति तत्वों को (प्र अरूरुचत्) चमकाता है। इत्येकादशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[८६]

ऋषिः—१—१० आकृष्टामाषाः। ११—२० सिकता निवावरी। २१—३० पृश्नयोऽजाः। ३१—४० त्रय ऋषिगणाः। ४१—४५ अत्रिः। ४६—४८ गृत्समदः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ६, २१, २६, ३३, ४० जगती। २, ७, ८, ११, १२, १७, २०, २३, ३०, ३१, ३४, ३५, ३६, ३८, ३९, ४२, ४४, ४७ विराड् जगती। ३—५, ९, १०, १३, १६, १८, १९, २२, २५, २७, ३२, ३७, ४१, ४६ निचृज्जगती। १४, १५, २८, २९, ४३, ४८, पादनिचृज्जगती। २४ आर्ची जगती। ४५ आर्ची स्वराड् जगती॥

प्र त॑ आ॒शवः॑ पवमान धी॒जवो॒ मदा॑ अर्षन्ति रघु॒जा इ॑व॒ त्मना॑।
दि॒व्याः सु॑प॒र्णा मधु॑मन्त॒ इन्द॑वो म॒दिन्त॑मास॒: परि॒ कोश॑मासते ॥१॥

भा०—हे (पवमान) हे परम पावन! (ते) तेरे (आशवः) व्यापनशील, (धीजवः) धीमान् पुरुष (मदाः) प्रसन्न होकर (रघुजाः इव) वेग में प्रसिद्ध अश्वों के तुल्य (त्मना प्र अर्षन्ति) स्वयं आगे बढ़ते हैं। वे (दिव्याः) तेज से युक्त (सुवर्चाः) ज्ञान से युक्त, (मधुमन्तः) ज्ञानोपदेश से युक्त (इन्दवः) तेजस्वी पुरुष (मदिन्तमासः) सुप्रसन्न और अन्यों को आनन्दित करने वाले होकर (कोशं परि आसते) आनन्दमय कोश का आश्रय करके विराजते हैं।

प्र ते॒ मदा॑सो मदि॒रास॑ आ॒शवोऽसृ॑क्षत॒ रथ्या॑सो॒ यथा॒ पृथ॑क्।
धे॒नुर्न व॒त्सं पय॑सा॒भि व॒ज्रिण॒मिन्द्र॒मिन्द॑वो॒ मधु॑मन्त ऊ॒र्मय॑: ॥२॥

भा०—हे प्रभो! (ते) तेरे (आशवः) शीघ्र कार्य करने में कुशल जन, (मदासः) प्रभु के आनन्द के तरंग (मदिरासः) अन्यों को प्रसन्न

करने वाले होकर (रथ्यासः यथा) रथ योग्य अश्वों के तुल्य (पृथक् प्र असृक्षत) पृथक् स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न होते हैं और (धेनुः वत्सं पयसा अभि) जैसे गौ अपने दूध से बछड़े को पुष्ट करती है, वैसे ही वे (मधुमन्तः) सुख और ज्ञान वाले (ऊर्मयः) उत्साही (इन्दवः) तेजस्वी पुरुष (वज्रिणम् इन्द्रम् अभि) बलशाली आत्मा को प्राप्त होते हैं।

अत्यो॒ न हि॑या॒नो अ॒भि वाज॑मर्ष स्व॒र्वित्कोश॑ं दि॒वो अद्रि॑मातरम्।
वृषा॑ प॒वित्रे॒ अधि॒ सानो॑ अ॒व्यये॒ सोम॑ः पुना॒न इ॑न्द्रि॒याय॒ धाय॑से ॥३॥

भा०—(हियानः अत्यः) प्रेरित हुआ अश्व जैसे (वाजम् अभि) संग्राम की ओर बढ़ता है, (स्वः-वित्) ज्ञान का लाभ लेने वाला, हे विद्वन्! तू (अद्रि-मातरम्) मेघ के उत्पादक (दिवः कोशम्) वैसे ही जल से पूर्ण वायुमण्डल के तुल्य (अद्रि-मातरम्) ज्ञानप्रद उदार पुरुषों को उत्पन्न करने वाले (दिवः कोशम्) ज्ञान के भण्डार उस प्रभु को (अभि अर्ष) प्राप्त हो। तू (वृषा) बलशाली होकर (पवित्रे) परम पवित्र, (अव्यये) अविनाशी, (सानौ अधि) ऐश्वर्यमय पद में (पुनानः) प्राप्त (सोमः) ऐश्वर्यवान् होकर (धायसे) सर्वपोषक (इन्द्रियाय) प्रभु की प्राप्ति के लिये (अभि-अर्ष) आगे बढ़।

प्र त॒ आश्वि॑नीः पवमान धी॒जुवो॑ दि॒व्या अ॑सृग्र॒न्पय॑सा॒ धरी॑मणि।
प्रान्तर्ऋष॑यः॒ स्थावि॑रीरसृक्षत॒ ये त्वा॑ मृ॒जन्त्यृ॑षिषाण वे॒धस॑ः ॥४॥

भा०—हे (पवमान) विद्वन्! (ते) तेरी (धीजुवः) ज्ञान और कर्म द्वारा वेग वाली, (दिव्याः) ज्ञान से युक्त, (अश्विनीः) वाणियां, शक्तियां (धरीमसि) सर्वधारक प्रभु के निमित्त (प्र असृग्रन्) उत्पन्न होती हैं। हे (ऋषिषाण) ऋषि जनों से सेवित आत्मन्! (ये) जो (वेधसः) विद्वान् जन (त्वा मृजन्ति) तुझे परिशोधन करते हैं वे (ऋषयः) ऋषि जन तेरी ज्ञानधाराओं को (अन्तः स्थाविरीः प्र असृक्षत) अपने भीतर स्थिर कर लेते हैं।

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः । व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ५ ॥ १२ ॥

भा०—हे (विश्व-चक्षः) संसार के द्रष्टा ! हे (सोम) जगत् के सञ्चालक ! (ऋभ्वसः) महान् ! (सतः) सत् स्वरूप (ते प्रभो) प्रभु के (केतवः) ज्ञान कराने वाले प्रकाश (विश्वा धामानि परि यन्ति) सब भुवनों में पहुँच रहे हैं । तू (व्यानशिः) विविध प्रकार से व्यापने वाला होकर (धर्मभिः पवसे) जगत् के धारक बलों से व्याप रहा है । तू (भुवनस्य विश्वस्य) समस्त जगत् का (पतिः राजसे) स्वामी होकर विराजता है । इति द्वादशो वर्गः ॥

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः । यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ६

भा०—(सतः ध्रुवस्य) सत्स्वरूप, अविनाशी, (पवमानस्य) सर्वव्यापक प्रभु के (केतवः) ज्ञानमय (रश्मयः) किरण (उभयतः परि यन्ति) दोनों लोकों में व्याप रहे हैं । (यदि) जब (हरिः) वह प्रभु (पवित्रे) परमपावन रूप में (अधिमृज्यते) परिशोधन किया जाता है, वह (योनौ सत्ता) योनि में बैठने वाले आत्मा के तुल्य इस विश्व में (सत्ता) विराज कर (कलशेषु) देहों के तुल्य भुवनों में (सीदति) विराजता है ।

यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् । सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥ ७ ॥

भा०—(सु-अध्वरः) हिंसारहित प्रजापालनरूप यज्ञ का सम्पादक (यज्ञस्य केतुः) यज्ञचक्र को प्रकाशित करने वाला, (सोमः) जगत् का उत्पादक प्रभु (देवानां निष्कृतम्) मनुष्यों और पृथिव्यादि लोकों के स्थान को (उप याति) प्राप्त है । वह (सहस्र-धारः) धारक शक्तियों का

स्वामी (वृषा) सुखों का वर्षक (कोशम् परि अर्षति) आनन्दमय कोश में प्रकट होता है। वही (रोरुवत्) नाद करता हुआ (पवित्रम् एति जाते) पवित्र हृदय को प्राप्त होता है।

राजा॑ समु॒द्रं न॒द्यो॒३॒॑ वि गा॑हते॒ऽपामू॒र्मिं स॑चते॒ सिन्धु॑षु श्रि॒तः।
अध्य॑स्थात्सानु॒ पव॑मानो अ॒व्ययं॒ नाभा॑ पृथि॒व्या ध॒रुणो॑ म॒हो दि॒वः॥८

भा०—(राजा) प्रकाशमान् प्रभु (नद्यः) स्तुति योग्य है। वह (समुद्र वि गाहते) कामनामय समुद्र को पार कर उसमें व्यापता है। वह (अपाम् ऊर्मिम्) प्राणियों के प्राणों की ऊर्ध्व शक्ति को (सचते) प्राप्त किये है। वह (सिन्धुषु श्रितः) आत्मा रक्तपूर्ण नाड़ियों में व्याप्त है, वह (पवमानः) सर्वप्रेरक प्रभु (अव्ययं) सर्वरक्षामय ऐश्वर्य को (अधि अस्थात्) अपने वश कर उस पर शासन करता है। (अयं) यह (पृथिव्याः नाभा) पृथिवी के केन्द्र में बैठा है वह (महः दिवः) बड़े भारी सूर्य का (धरुणः) धारण करने वाला है।

दि॒वो न सानु॑ स्त॒नय॑न्नचिक्रद॒द् द्यौश्च॒ यस्य॑ पृथि॒वी च॒ धर्म॑भिः।
इन्द्र॑स्य स॒ख्यं पव॑ते वि॒वेवि॑द॒त्सोमः॑ पुना॒नः क॒लशे॑षु सीदति॥९॥

भा०—(दिवः सानु न स्तनयन्) जैसे मेघ गर्जता हुआ ऊंचे स्थल को प्राप्त होता वैसे ही वह जीव भी (स्तनयन्) बालकवत् प्रभु माता के (स्तनयन्) वेदोपदेश की आकांक्षा करता हुआ (दिवः सानु) ज्ञान के सर्वोपरि सत्य को (अचिक्रदत्) प्राप्त करता है। (यस्य धर्मभिः) जिसके सामर्थ्यों से (द्यौः च पृथिवी च) सूर्य और पृथिवी स्थिर हैं उस (इन्द्रस्य सख्यं वेविदत् सोमः पवते) परमेश्वर के मित्र भाव को प्राप्त करता हुआ यह जीव आगे बढ़ता और (पुनानः) बराबर गति करता हुआ (कलशेषु सीदति) नाना देहों में विराजता है।

ज्योति॑र्य॒ज्ञस्य॑ पवते॒ मधु॑ प्रि॒यं पि॒ता दे॒वानां॑ जनि॒ता वि॒भूव॑सुः।
दधा॑ति॒ रत्नं॑ स्व॒धयो॑रपी॒च्यं॑ म॒दिन्त॑मो मत्स॒र इ॑न्द्रि॒यो रसः॑॥१०॥१३

भा०—(यज्ञस्य ज्योतिः) यज्ञवेदी में अग्नि के तुल्य, (प्रियम् मधु) अतिप्रिय, (देवानां पिता) सुखप्रद पितावत् उत्पादक, (जनिता) माता के समान उत्पन्न करने वाला, (जीव-स्वधयोः) अपने स्वशक्ति से धारण करने योग्य प्राणों के बल पर (रत्नं) रमण योग्य साधन इस देह को (अपीच्यं) स्वयं छुपे २ (दधाति) धारण करता है। वह (मदिन्तमः) आनन्दमय (मत्सरः) स्वतः तृप्त (इन्द्रियः) समस्त ऐश्वर्य का भोक्ता (रसः) रसरूप है।

अ॒भि॒क्रन्द॑न्क॒लशं॑ वा॒ज्य॑र्षति॒ पति॑र्दि॒वः श॒तधा॑रो विचक्ष॒णः।
हरि॑र्मि॒त्रस्य॒ सद॑नेषु सीदति मर्मृ॒जा॒नोऽवि॑भिः॒ सिन्धु॑भि॒र्वृषा॑॥११॥

भा०—वह (विचक्षणः) विद्वान्, (शत-धारः) सैकड़ों वाणियों, स्तुतियों को करने वाला, (दिवः पतिः) अपनी कामना का स्वामी (वाजी) ऐश्वर्य और ज्ञान से युक्त जीव (कलशं अभि) १६ कलायुक्त इस देह को प्राप्त होता हुआ (अर्षति) संसार में गति करता है। वह (हरिः) जीव, (विभिः) ज्ञानवान् पुरुषों, प्राणों और (सिन्धुभिः) जलप्रवाहों के समान स्वच्छ करने वाले आप्तजनों, प्राणों, इडा, पिंगला आदि नाड़ियों द्वारा (मर्मृजानः) पवित्र होता हुआ, (मित्रस्य) परमस्नेही प्रभु के (सदनेषु) लोकों में (सीदति) विराजता है।

अग्रे॒ सिन्धू॑नां॒ पव॑मानो अर्ष॒त्यग्रे॑ वा॒चो अ॑ग्रि॒यो गोषु॑ गच्छति।
अग्रे॒ वाज॑स्य भजते महाध॒नं स्वा॑यु॒धः सो॒तृभिः॑ पूयते॒ वृषा॑॥१२॥

भा०—वह (सिन्धूनाम् अग्रे) देह में बहने वाली रक्त धाराओं के भी पूर्व, उनमें (पवमानः) व्यापक होता हुआ, (अर्षति) विराजता है, वह (वाचः अग्रे) वाणी-शक्ति के भी पूर्व और (गोषु) इन्द्रियों में भी (अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ होकर (गच्छति) गमन करता है। वह (वाजस्य अग्रे) सेना के आगे नायक के तुल्य होकर (महाधनं भजते) बड़ा भारी ऐश्वर्य-प्रद संग्राम करता है। वह (स्वायुधः) सैनिक के समान (वृषा) बलवान् होकर (सोतृभिः) उपासकों द्वारा (पूयते) अभिषेक किया जाता है।

अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते १३

भा०—(अयं) यह (यथा शकुनः) एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जाने वाले पक्षी के तुल्य एक देह से दूसरे देह में जाने वाला जीव (मतवान्) ज्ञानवान् होकर (पवमानः) गति करता हुआ (उर्मिणा) ज्ञानोपदेश से (अव्ये) परम रक्षास्थान प्रभु के शासन में (हितः) स्थिर होकर गति करता है। हे (कवे) क्रान्तदर्शिन्! हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवन्! (अयं सोमः) यह जीव (रोदसी अन्तरा) इहलोक, परलोक के बीच में (तव क्रत्वा शुचिः) तेरे कर्मोपदेश से पवित्र होकर (धिया) बुद्धिपूर्वक (पवते) विचरण करता है।

द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥१४॥

भा०—वह (यजतः) सत्संगशील होकर (दिवि-स्पृशम् द्रापिं वसानः) प्रकाश का स्पर्श कराने वाले कवच के तुल्य रक्षक, गुरु के अधीन वास करता हुआ, (अन्तरिक्ष-प्राः) सूर्य के प्रकाश से अन्तरिक्ष को जैसे, वैसे गुरु के ज्ञान से अपने अन्तःकरण को पूर्ण करता हुआ (भुवनेषु) देहों में स्थित होता है। वह (स्वः जज्ञानः) प्रभु के ज्ञानोपदेश का लाभ करता हुआ (नभसा) आकाशमार्ग से सूर्य के समान असहाय मार्ग में निर्भय होकर (अभि अक्रमीत्) विचरता है और (अस्य प्रत्नं पितरम्) अपने पुराने पालक प्रभु की (आ विवासति) उपासना, स्तुति आदि करता है।

सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे।
पदं यदस्य परमे व्योमन्यतो विश्वा अभि सं याति संयतः १५।१४

भा०—(यः) जो मनुष्य या आत्मा (अस्य) इस प्रभु के (प्रथमं) सर्वोत्तम (धाम) तेजः सामर्थ्य को (वि आनशे) विशेष रूप से प्राप्त करता

है (सः) वह प्रभु ही (अस्य) इस आत्मा के (विशे) देह में प्रवेश करने के लिये (महि शर्म) बड़ा भारी सुख (यच्छति) प्रदान करता है। (अस्य) इस जीव आत्मा की (यत्) जब (परमे व्योमन् पदम्) परम प्रभु में प्राप्ति हो जाती है तभी उसे वह सामर्थ्य प्राप्त होता है (यतः) जिससे वह (विश्वा संयतः) समस्त संग्रामों का भी (अभि सं याति) मुकाबला कर लेता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम्। मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥ १६ ॥

भा०—उस प्रभु की सेवा करने वाला वह जीवात्मा (इन्द्रस्य) उसके (निष्कृतम्) परम पद को लक्ष्य करके (प्रो अयासीत्) आगे बढ़ता है। वह (सखा) उसका मित्र होकर (सख्युः) अपने मित्रों के समान नाम वाले परम-आत्मा की (संगिरम्) उत्तम वाणी को (न प्रमिनाति) नहीं भंग करता। वह (मर्यः इव युवतिभिः) स्त्रियों से पुरुष के समान (सोमः) जीवात्मा, (मर्यः) मरणधर्मा होकर भी (युवतिभिः) अपने साथ मिली कामनाओं से (शत-याम्ना पथा) सैकड़ों प्रकार से जाने योग्य इस संसार मार्ग से (कलशे सम्-अर्षति) इस षोडशकलायुक्त देह में प्राप्त होता है।

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः। सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः ॥१७॥

भा०—हे मनुष्यो! (वः) आप लोग (मन्द्रयुवः) आनन्दयुक्त, (पनस्युवः) स्तुति करना चाहते हुए (विपन्युवः) स्तोता (सं-वसनेषु अक्रमुः) एक साथ बैठने के स्थानों में विराजें और (मनीषाः) एकाग्रचित्त होकर (सोमं) सर्वशासक प्रभु की (अभि अनूषत) स्तुति करें। (पयसा धेनवः) दूध से जैसे गौवें अपने पालक की सेवा करती हैं वैसे ही (स्तुभः)

भगवान् की स्तुतियां भी अपने ज्ञान रस से उसी प्रभु की (अशिश्रयुः) सेवा करती हैं।

आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम्। या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥१८॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवान् प्रभो! हे (इन्दो) तेजोमय! (नः) हमें (संयन्तं) सम्यक् मार्ग में जाने वाली, (पिप्युषीम्) बढ़ती हुई (अस्रिधम्) नाश न करने वाली (ऊर्जं नः आपवस्व) सत् इच्छा को प्राप्त करा। (या) जो (असश्चुषी) विघ्नरहित होकर (अहन्) दिन में (त्रिः) तीन बार (क्षुमत्) उत्तम उपदेश युक्त, (वाजवत्) बलयुक्त, (मधुमत्) मधुर रस से युक्त (सु-वीर्यम्) उत्तम बल वीर्य (दोहते) प्रदान करे।

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः। क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशदिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः॥१९॥

भा०—(वृषा) सुखों का वर्षक, (मतीनां) वाणियों और बुद्धियों का (विचक्षणः) दर्शन करने वाला (सोमः) सर्वप्रेरक प्रभु (अहः उषसः प्रतरीता) उषाकाल के उत्पादक सूर्य के तुल्य (दिवः प्रतरीता) ज्ञान एवं कामना की वृद्धि करने वाला (सिन्धूनां क्राणा) प्रवाहशील जलों के तुल्य देह में रक्तनाड़ियों का बनाने वाला (कलशान् अवीवशत्) देह के समस्त कणों (cells) को भी वह वश करता है, वह (मनीषिभिः) ज्ञान-प्रेरक साधनों से भी (इन्द्रस्य हार्दि अविशत्) इस आत्मा के हृदय में प्रवेश करता है।

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत्। त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे॥२०॥१५॥

भा०—(पूर्व्यः कविः) पूर्व के विद्वानों से उपासित, सर्वोपदेष्टा अनादि प्रभु (यतः) नियमों में बद्ध, (परि कोशान् अचिक्रदत्) समस्त

कोशों और लोकों में व्याप्त है, वह (मनीषिभिः) बुद्धिमान् (नृभिः) मनुष्यों और प्राणों द्वारा (पवते) हमें प्राप्त होता है। वह (इन्द्रस्य) इस देह के भोक्ता आत्मा के (वायोः) प्राणवायु से (सख्याय कर्त्तवे) मैत्री के लिये (त्रितस्य) तीनों लोकों वा देह के तीनों भागों में व्याप्त आत्मा के (मधु) तृप्तिकारक और (क्षरत् नाम) द्रव रुधिर को भी (जनयन्) उत्पन्न करता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

अ॒यं पु॑ना॒न उ॒षसो॒ वि रो॑चयद॒यं सिन्धु॑भ्यो अभवदु लोक॒कृत् ।
अ॒यं त्रिः स॒प्त दु॑दुहा॒न आ॒शिरं॒ सोमो॑ हृ॒दे प॑वते॒ चारु॑ मत्स॒रः २१

भा०—(अयम्) यह सूर्य के समान (पुनानः) पवित्र और प्रकट होता हुआ (उषसः वि रोचयत्) अज्ञान और कर्म-बन्धनों को दग्ध करने वाली ज्ञान-ज्वालाओं को प्रकट करता है। (अयम्) यह (सिन्धुभ्यः) गतिमत् प्रकृति के अवयवों से (लोक-कृत्) लोकों को बनाता है, एवं वह रक्तवाहिनी नाड़ियों से ही (लोक-कृत्) इन्द्रियों की रचना करता है। (अयं) यह (आशिरं) रस को (त्रिःसप्त) २१ प्रकार से (दुदुहानः) प्रदान करता हुआ (सोमः) वीर्यमय सोम (मत्सरः) देह में हर्ष सञ्चार करने वाला होकर (हृदे) हृदय में (चारु पवते) अच्छी प्रकार व्यापता है।

पव॑स्व सोम दि॒व्येषु॒ धाम॑सु सृजा॒न इ॑न्दो क॒लशे॑ प॒वित्र॒ आ ।
सीद॒न्निन्द्र॑स्य ज॒ठरे॒ कनि॑क्रद॒न्नृभि॑र्य॒तः सूर्य॒मारो॑हयो दि॒वि ॥२२॥

भा०—हे (सोम) अभिषेक योग्य ! हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (पवित्रे कलशे) परम पवित्र, घट सदृश देह में (आ सृजानः) उत्पन्न होता हुआ ही, (दिव्येषु धामसु) उत्तम देहों, जन्मों में (पवस्व) जा। तू माता के गर्भ के सदृश उस (इन्द्रस्य जठरे) ऐश्वर्यवान् प्रभु के गर्भ में, (सीदन्) रहता और उन्नति की ओर जाता हुआ और (कनिक्रदत्) प्रभु की स्तुति करता, (नृभिः) अपने प्राणों द्वारा (यतः) नियमबद्ध रहकर ही

(दिवि सूर्यम्) आकाश में स्थित सूर्य के सदृश कान्तिमान् (दिवि) आनन्दप्रद क्षेत्र में (सूर्यम्) सबके प्रकाशक प्रभु का (आ रोहयः) आश्रय लें, उसी को प्राप्त हो।

अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन्।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप २३

भा०—हे (सोम) अभिषेक योग्य विद्वन्! शिष्य! उपासक! हे (इन्दो) उपासक! तू (अद्रिभिः) मेघ तुल्य उदार ज्ञानवर्षी गुरुजनों से (सुतः) दीक्षित होकर (पवित्रे) पवित्र ज्ञानमय पद में (पवसे) प्राप्त हो और (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् गुरु, प्रभु के (जठरे) गर्भ में (आविशन्) प्रवेश करता हुआ हे (विचक्षण) विद्वन्! (त्वम्) तू (नृचक्षाः अभवः) मनुष्यों में तत्वों का द्रष्टा हो और (अङ्गिरोभ्यः) अंग में प्राणों के समान ज्ञानी जनों के लिये (गोत्रम्) वेदमय कोष को (अप अवृणोः) खोल कर रख।

त्वां सोम पवमान स्वाध्योऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः।
त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् २४

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक! प्रभो! (स्वाध्यः) उत्तम कर्म वाले (विप्रासः) विद्वान्, (अवस्यवः) रक्षा और वृद्धि चाहने वाले जन (पवमानं त्वां) हृदय को पवित्र करने वाले तेरी ही (अनु अमदन्) स्तुति किया करते हैं। हे (इन्दो) तेजस्विन्! (विश्वाभिः मतिभिः) समस्त बुद्धियों और स्तुतियों से (परि-कृतम्) सुशोभित (त्वां) तुझको (सुपर्णः) उत्तम पालनशक्ति वाला पुरुष (दिवः परि) समस्त कामनाओं को प्राप्त करने के लिये (दिवः परिः) हृदयाकाश में (त्वां आभरद्) तुझको धारण करता है।

अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः।
अपामुपस्थे अध्यायवः कविमृतस्य योना महिषा अहेषत २५।१६

भा०—(अव्ये वारे) ज्ञानमय आवरण में (ऊर्मिणा) उत्साह से (पुनानं) बढ़ते हुए (हरिम्) ज्ञानधारक शिष्य को (सप्त धेनवः अभि-नवन्ते) वेद की सात छन्दों की वाणियां प्राप्त होती हैं। (अपाम् उपस्थे) जलों के समीप विद्यमान (कविम्) क्रान्तदर्शी विद्वान् को प्राप्त होकर (आयवः) मनुष्य (महिषाः) ज्ञान और बल प्राप्त करके (ऋतस्य योनौ अधि) सत्य के आश्रय में (अहेषते) शास्त्र का अभ्यास करें। इति षोडशो वर्गः ॥

इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्त्सुपथानि यज्यवे। गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति ॥ २६ ॥

भा०—(पुनानः) अभिषेक को प्राप्त होता हुआ (इन्दुः) तेजस्वी पुरुष, (मृधः अति गाहते) शत्रु-सेनाओं और विनाशक प्रवृत्तियों को पार करता है ! वह (यज्यवे) दानशील प्रजाजन के लिये (सुपथानि कृण्वन्) श्रेष्ठ मार्ग बनाता है। वह (हर्यतः) कान्तिमान् होकर (कविः) विद्वान् पुरुष (गाः कृण्वानः) स्तुतियों का पुनः २ अभ्यास करता हुआ (क्रीडन् अत्यः न) बलवान् अश्व के तुल्य अनायास जाता हुआ (निर्णिजं) शुद्ध (वारम्) वरण करने योग्य ऐश्वर्य पद को (परि अर्षति) प्राप्त होता है।

असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः। क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः॥२७

भा०—(हरिं) दुःखहारी रक्षक को (अभि-श्रियः) उसका आश्रय लेने वाली (असश्चतः) परस्पर असम्बद्ध, (शत-धाराः) सैकड़ों धाराओं के तुल्य प्रजाएं स्तुतियां करती हुई (उदन्युवः) जल लिये हुए, आदरार्थ (नवन्ते) विनयपूर्वक प्राप्त हों। (दिवः) भूमि या राजसभा के (रोचने) सर्वप्रिय, (तृतीये पृष्ठे) सर्वोत्तम पद पर (गोभिः आवृतम्) वेद-वाणियों

से परिष्कृत जल-धाराओं से अभिषिक्त उसको (क्षिपः) शत्रु को उखाड़ने वाली सेनाएं भी (परि मृजन्ति) अभिषिक्त करती हैं।

तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि २८

भा०—हे (पवमान) व्यापक प्रभो! (दिव्यस्य रेतसः) तेजोमय वीर्य से उत्पन्न (तव इमाः प्रजाः) ये तेरी प्रजाएं हैं। (त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि) तू समस्त जगत् का राजा है। (अथ) और (इदं विश्वं ते वशे) यह समस्त विश्व तेरे वश में है। हे (इन्दो त्वम् प्रथमः) तेजस्विन्! तू ही सर्वश्रेष्ठ है और (धाम-धाः) लोकों को धारण और पोषण करने वाला (असि) है।

त्वं समुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः २९

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन्! (त्वं समुद्रः असि) तू समुद्र समान अपार और गम्भीर है। तू (विश्व-वित्) जगत् का ज्ञाता है। (तव विधर्मणि) तेरे शासन में (इमाः पञ्च प्र-दिशः) ये पांचों दिशाएं आत्मा के अधीन पांच इन्द्रियों और राजा के अधीन पांचों प्रजाओं के तुल्य हैं। तू (द्यां च पृथिवीं च) आकाश और भूमि को (अति) पार करता और पालता है, हे (पवमान) प्रभो! (सूर्यः तव ज्योतींषि) यह सूर्य तेरी ज्योति है।

त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे ३०।१७

भा०—हे (पवमान सोम) सर्वव्यापक प्रभो! (त्वं) तू (देवेभ्यः) समस्त देवों के लिये (रजसः) समस्त लोकों के (पवित्रे) सर्वप्रेरक, (विधर्मणि) धारक पद पर (पूयसे) अभिषिक्त होता है। (प्रथमाः उशिजः)

सर्वं प्रथम तुझे चाहने वाले प्रेमी जन (त्वाम् अगृभ्णत) तेरा आश्रय ग्रहण करते हैं, (इमा विश्वा भुवनानि) ये समस्त लोक (तुभ्य येमिरे) तेरे ही बल से बद्ध हैं। इति सप्तदशो वर्गः ॥

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्ववं चक्रदुद्धरिः।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ३१

भा०—(रेभः) उपदेष्टा होकर (अव्ययं वारम् अति) सर्वरक्षक वरणीय पद को (अति प्र एति) प्राप्त होता है। (वृषा) सर्वसुखवर्धक होकर (हरिः) दुःखहारी प्रभु (वनेषु) सूर्य के तुल्य समस्त ऐश्वर्यों में (अवचक्रदत्) व्यापता है। (धीतयः) कर्म करने वाले जन (वावशानाः) उस प्रभु की कामना करते हुए (सम् अनूषत) उस प्रभु की स्तुति करते हैं (मतयः) समस्त स्तुतियां (शिशुम्) बालकवत् समान भाव से सर्वप्रिय, निर्मल में (पनिप्नतं) उपदेश देते हुए बालक को (रिहन्ति) माता के समान चूमती हैं।

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ३२

भा०—(सः) वह गुरु (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों के समान शिष्यों से (परि व्यत) आवृत हो जाता है। वह (त्रिवृतं तन्तुं तन्वानः) उनका तिहरा बटा यज्ञोपवीत (तन्वानः) करता हुआ (यथा विदे) शिष्यों को यथारीति प्राप्त करने और उन्हें यथावत् ज्ञान कराने के लिये (ऋतस्य) सत्य ज्ञान और तेज की (नवीयसीः) अति उत्तम २ (प्रशिषः) आज्ञाओं, को (नयत्) प्राप्त कराता हुआ (पतिः) पालक होकर (जनीनां) पुत्रोत्पादक माताओं के (निष्कृतं उपयाति) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करता है। अथवा (जनीनां) प्रकट हुई ज्ञानजनक वाणियों के लिये (निष्कृतम्) उत्तम पात्र प्राप्त करता है।

राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत्।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ३३

भा०—(सिन्धूनां राजा) वेगवान् अश्वों के स्वामी के तुल्य वह (सिन्धूनां राजा) कुमार्ग में जाने वाले शिष्य जनों का स्वामी, (दिवः पतिः) ज्ञान का पालक होकर (ऋतस्य पथिभिः) सत्य और न्याय के मार्ग से (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ गमन करता है। वह (सहस्र-धारः हरिः) सहस्र धारा वाले मेघ के तुल्य, सहस्रों वाणियों का आश्रय और (उप-वसु) वसु ब्रह्मचारियों से सेवित होकर (वाचं जनयन्) ज्ञान का उपदेश करता हुआ एवं (पुनानः) पवित्र करता हुआ स्वयं भी (परि सिच्यते) पवित्र होता है।

पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ३४

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने वाले! तू (महि अर्णः) अभिषेक काल में जलों के तुल्य (महि अर्णः) महान् ज्ञान को (वि धावसि) प्राप्त करता है। (सूरः न) सूर्य के समान (चित्रः) ज्ञान का विचित्र पुञ्ज होकर (अव्ययानि पव्यया) ऊन के पवित्र दुशालों के समान (अव्ययानि पव्यया) परम पवित्र ज्ञान तत्वों को प्राप्त करता है, (गभस्तिपूतः) सूर्यकिरणों से पवित्र होकर (नृभिः अद्रिभिः सुतः) उदार जनों से अभिषिक्त होकर (धन्याय) धन-ऐश्वर्य के योग्य (महे वाजाय) महान् ज्ञान को (धन्वसि) प्राप्त करता है।

इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ३५।१८

भा०—हे (पवमान) पवित्र! तू (श्येनः न) उत्तम चरित्र वाला होकर (इषम् ऊर्जम् अभि अर्षसि) अन्न, बल, उत्तम इच्छा और पराक्रम

को प्राप्त करता है और (वसु कलशेषु सीदसि) सेवन योग्य अभिषेक घटों के बीच विराजता है। (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पद के लिये (मद्वा) हर्षकारक, (मदः) स्वयं भी आनन्द प्रसन्न, (सुतः) निष्णात, (दिवः विष्टंभः) प्रकाश-स्तम्भ के सदृश, (उपमः) सर्वोपमायोग्य, (विचक्षणः) विविध उपदेष्टा है। इत्यष्टादशो वर्गः॥

सप्त स्वसा॑रो अ॒भि मा॒तरः॒ शिशुं॒ नवं॑ जज्ञा॒नं जेन्यं॑ विप॒श्चित॑म्।
अ॒पां ग॑न्ध॒र्वं दि॒व्यं नृ॒चक्ष॑सं॒ सोमं॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य रा॒जसे॑॥३६॥

भा०—(स्वसारः मातरः नवं जज्ञानं शिशुम्) बहनें और माताएं जैसे नवजात बालक को प्राप्त करती हैं वैसे ही (सप्त) चलने वाली, वा गणना में सात (स्वसारः) ऐश्वर्य को लक्ष्य कर शत्रु पर आक्रमण करने वाली, (मातरः) शत्रु का हिंसन करने वाली वा गर्जने वाला सेनाएं (जेन्यं) विजिगीषु (सोमं) शासक को प्राप्त करती हैं, वैसे ही (स्वसारः) स्वयं आने वाले (मातरः) विद्याभ्यास करने वाले (विपश्चितं) विद्वान् (अपां गन्धर्वं) प्रजाओं में ज्ञान को धारण करने वाले, (दिव्यं) तेजस्वी (नृ-चक्षसम्) मनुष्यों को देखने और सन्मार्ग का उपदेश करने में समर्थ (सोमम्) उत्तम शासक को (विश्वस्य भुवनस्य राजसेः) समस्त संसार को प्रकाशित करने के लिये सूर्यतुल्य ही (अभि) प्राप्त होते हैं।

ई॒शा॒न इ॒मा भुव॑नानि॒ वीय॑से युजा॒न इ॑न्दो ह॒रितः॑ सुप॒र्ण्यः॑।
तास्ते॑ क्षरन्तु॒ मधु॑मद्घृ॒तं पय॒स्तव॑ व्र॒ते सो॑म तिष्ठन्तु कृ॒ष्टयः॑ ३७

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे (इन्दो) तेजस्विन्! तू (हरितः सुपर्ण्यः) अज्ञान दूर करने वाली वाणियों को (युजानः) प्राप्त करता हुआ (इमा भुवनानि) इन लोकों को (वि ईयसे) प्राप्त हो (ताः) वे उत्तम वाणियां (ते) तेरे (मधुमत्) मधुर वचनयुक्त (घृतं) सारवत्, (पयः) दूधवत् पोषक ज्ञान को (क्षरन्तु) प्रदान करें और (कृष्टयः) समस्त मनुष्य (तव व्रते तिष्ठन्तु) तेरे शासन में रहें।

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥३८॥

भा०—हे (सोम) शासक प्रभो ! (त्वं) तू (नृ-चक्षाः असि) मनुष्यों का द्रष्टा (असि) है । हे (पवमान) पवित्र करने वाले ! हे (वृषभ) सुखों की वर्षा करने वाले ! तू (ता) उन समस्त लोकों को (विश्वतः वि धावसि) सब प्रकार से प्राप्त होता और पवित्र कर रहा है । (सः) वह तू (नः) हमें (वसुमत्) ऐश्वर्यों से युक्त, (हिरण्यवत्) धनैश्वर्यों से युक्त, (हिरण्यवत्) धनैश्वर्यों से सम्पन्न सुख (पवस्व) वर्षा । जिससे (वयम्) हम (भुवनेषु) लोकों में (जीवसे स्याम) दीर्घ जीवन धारण करने में समर्थ हों ।

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ३९

भा०—हे (सोम) जगत् के शासक ! हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू हमें (गो-वित्) उत्तम वाणियों को गुरु के तुल्य प्राप्त कराने वाला है । तू (वसुवित्) ऐश्वर्यों का दाता, तू (हिरण्यवित्) सुवर्णादि का देने वाला है । तू (नः पवस्व) हमें भी ये पदार्थ दे । तू (भुवनेषु) लोकों में (रेतः-धाः) वीर्यों और जलों का धारक (अर्पितः) सर्वत्र विराजता है । तू (विश्व-वित्) विश्वज्ञाता और (सु-वीरः असि) वीर्यवान् है । (तं त्वा) उस तेरी (इमे विप्राः) ये विद्वान् (गिरा उप आसते) वेद-वाणी द्वारा उपासना करते हैं ।

उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ४०।१९

भा०—(मध्वः ऊर्मिः वनना: उत् अतिष्ठिपत्) जल की तरंग जैसे काष्ठ आदि को ऊपर उठाती है, वैसे ही (मध्वः ऊर्मिः) ज्ञानमधु का

उपदेष्टा पुरुष भी (वनना:) ज्ञान के याचक जनों को (उत् अतिष्ठिपत्) ऊंचा उठाता है। वह (अप: वसान: महिष:) जलों के धारण करने वाले, मेघ के तुल्य स्वयं भी (अप: वसान:) शिष्यजनों को वस्त्रवत् आच्छादित करता हुआ (महिष:) महान् होकर (वि गाहते) विविध देशों में विचरता है। वह (राजा) तेजस्वी सूर्यवत् (पवित्र-रथ:) पावन उपदेश वाला होकर (वाजम् आरुहत्) संग्राम को महारथी के तुल्य (वाजम्) आदर को प्राप्त करता है। वह (सहस्र-भृष्टि:) सहस्रों को भून देने वाले सेनापति के तुल्य स्वयं भी (सहस्र भृष्टि:) सहस्रों तेजों को धारण करने और सहस्रों को भरण पोषण देने में समर्थ होकर (बृहत् श्रव:) बड़ा भारी यश (जयन्ति) प्राप्त करता है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि ।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ॥४१

भा०—(स:) वह आप (विश्वायु:) सब मनुष्यों के स्वामी हो। आप (अहर्दिवि) दिन रात (सु-भरा:) सुख प्राप्त कराने वाली, (प्रजावती:) उत्तम प्रजाओं से युक्त (भन्दना:) कल्याणकारिणी वाणियों को (उत् इयर्त्ति) प्रकट करते हैं। हे (इन्दो) तेजस्विन् ! आप (इन्द्रम्) उस प्रभु के प्रति (अस्मभ्यम्) हमारे कल्याण के लिये (प्रजावत्) उत्तम सन्तान से युक्त, (ब्रह्म) बड़ा भारी (अश्व-पस्त्यम्) अश्व और गृहों से युक्त (रयिम्) धनैश्वर्य की (याचतात्) याचना करो।

सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥ ४२ ॥

भा०—(स:) वह (अग्रे अह्नाम्) दिनों के पूर्व भाग में, ब्रह्मचर्य काल में, (हरि:) दु:खों का हर्ता, (हर्यत:) सबका प्रिय, (मद:) आनन्द और तृप्त होकर (चेतसा) ज्ञान और चित्त से (द्युभि:) प्रकाशों से सूर्य के तुल्य, सब मनुष्यों को (प्र चेतयते) उत्कृष्ट मार्ग पर जाने के लिये

चेताता है और (अनु चेतयते) बराबर चेताता रहता है। वह (द्वा जना अन्तः) छोटे बड़े, गरीब अमीर, स्वामी सेवक, आत्मा प्रभु, शास्य शासक और उत्तम निकृष्ट एवं स्त्री पुरुष सबके भीतर रहकर उनको (यातयन्) सब प्रकार से यत्न करवाता हुआ (ईयते) जाना जाता है। वह (धर्त्तरि) धारक पुरुष में (नराशंसं च) मनुष्यों से प्रशंसनीय (दैव्यं च) विद्वानों के योग्य ज्ञान का उपदेश करता है।

अ॒ञ्ज॒ते व्यं॑ञ्जते॒ सम॑ञ्जते॒ क्रतुं॑ रिहन्ति॒ मधु॑ना॒भ्यं॑ञ्जते। सिन्धो॑रुच्छ्वा॒से प॒तय॑न्तमु॒क्षणं॑ हिरण्यपा॒वाः प॒शुम॒प्सु गृ॑भ्णते ॥४३॥

भा०—(हिरण्य-पावाः) आत्मा को शोधने वाले विद्वान् (सिन्धोः उत्-श्वासे) गति वाले प्राण के ऊर्ध्व या श्वास-प्रश्वास के आधार पर (पतयन्तम्) देह को चलाने वाले, (उक्षणम्) सुखों की वर्षक (पशुम्) ज्ञानद्रष्टा आत्मा को (आसु) इन नाड़ियों में (गृभ्णते) ग्रहण करते हैं। वे उस (क्रतुम्) ज्ञानमय कर्त्ता आत्मा को (अंजते) साक्षात् करते हैं और (वि अंजते) विविध वाणियों से उसे प्रकट करते हैं, (मधुना) ज्ञानरूप मधु से उसका स्वाद लेते हैं और (अभि-अञ्जते) उसका साक्षात् करते हैं।

वि॒प॒श्चिते॒ पव॑मानाय गायत म॒ही न धारात्यन्धो॑ अर्षति।
अहि॒र्न जू॒र्णामति॑ सर्पति॒ त्वच॒मत्यो॒ न क्रीळ॑न्नसर॒द्वृषा॒ हरिः॑ ॥४४॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोग (पवमानाय) एक देह से अन्य देह में जाते हुए, (विपश्चिते) इस लोक में ज्ञान और कर्म का सञ्चय और मेधावी आत्मा का (गायत) उपदेश करो। जो (अन्धः) प्राण का धारक (मही धारा न) भारी जलधारा के समान (अति अर्षति) पार कर जाता है और जो (जूर्णाम् त्वचम्) पुरानी खाल या केंचुली को सांप के समान देह को (अति सर्पति) छोड़ कर अलग हो जाता है और जो (वृषा) बलवान् (हरिः) आत्मा (अत्यः न) अश्व समान (क्रीडन्) देह में विहार करता हुआ (असरत्) भाग निकलता है।

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ४५।२०

भा०—वह प्रभु और आत्मा कैसा है? (अग्रे गः) सबके आगे जाने वाला, (राजा) सूर्यवत् दीप्तिमान्, (अप्यः) प्राणों और आप्त जनों को हितकारक (अह्नां विमानः) दिनों का विशेष रूप से निर्माता और ज्ञान कराने वाले सूर्य के सदृश (अह्नां) न नाश होने वाले तत्वों का (विमानः) जगत् रूप में बनाने वाला (भुवनेषु अर्पितः) समस्त लोकों में व्यापक है। वह (हरिः) दुःख का हर्ता (घृत-स्नुः) स्नेह को प्रवाहित करने वाला, (सु-दृशीकः) सुखपूर्वक दर्शन करने योग्य (अर्णवः) ज्ञान-शक्ति का सागर, (ज्योति-रथः) रमणीय (ओक्यः) लोक में व्यापक होकर (राये) ऐश्वर्यों और विभूतियों को धारण करने के लिये (पवते) शुद्ध किया जाता है। इति विंशो वर्गः॥

असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः४६

भा०—वह (मदः) आनन्दमय, (त्रि-धातुः) तीन गुणों से जगत् का धारक (उद्-यतः) नियन्ता होकर (उद्-यतः स्कम्भः दिवः) महान् आकाश के खड़े हुए खम्भे के समान (दिवः) सूर्यादि लोकों को (स्कम्भः) थामने वाला, (असर्जि) जाना जाता है। वह (भुवनानि अर्षति) समस्त लोकों को व्यापता है। (यदि) जिसको (ऋग्मिणः) वेद-मन्त्रों से स्तुति करने वाले विद्वान् (गिरा) वाणी द्वारा (निर्णिजम् ययुः) विशुद्ध रूप में ग्रहण करते हैं उसी (पनिप्नतं) स्तुति योग्य (अंशुं) व्यापक प्रभु को (मतयः रिहन्ति) स्तुतियां भी पहुँचती हैं।

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः।
यद्गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि॥ ४७॥

भा०—हे आत्मन् ! (पुनानस्य) जगत् के संचालक (ते) तेरी (धारा:) विश्व की धारक शक्तियां (रंहय:) वेग वाली होकर (संयतः) अच्छी प्रकार नियमों में बद्ध हैं, वे (मेध्य:) पर-शक्ति से प्रेरित होने वाली ब्रह्म की शक्ति से वीर्यवती इस प्रकृति के (अण्वानि) सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणुओं को भी (प्र यन्ति) प्राप्त होती हैं। हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (चम्वो:) आकाश और भूमि के बीच, (यत्) जो (नाभि:) सूर्यों द्वारा (सम् अज्यसे) अच्छी प्रकार प्रकाशित हो रहा है। वह तू (सुवानः) उपासित होता हुआ, हे (सोम) सर्वोत्पादक प्रभो ! तू (कलशेषु आसीदसि) भुवनों में कण २ में विराजता है।

पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम्।
जहि विश्वान्रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ४८।२१

भा०—हे (सोम) प्रभो ! (नः उक्थ्य:) तू हमारा स्तुति योग्य इष्ट देव है। तू (क्रतु-वित्) कर्मों और ज्ञानों का जानने वाला होकर (नः पवस्व) हमें प्राप्त हो। तू (अव्य: वारे) आत्मा के वरणीय रूप में (प्रियम् मधु) सुखजनक ज्ञान (परि धाव) प्रदान कर। हे (इन्दो) तेजोमय ! तू (विश्वान् रक्षस:) दुष्टों और (अत्रिण:) दूसरों के अधिकार को खाने वालों को भी (जहि) विनष्ट कर। हम (विदथे) यज्ञ और सत्संगादि में (सुवीरा:) उत्तम वीरों से युक्त होकर (ते बृहद् वदेम) तेरा बृहद् गुण गान करें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[८७]

उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप्। ४,८ विराट् त्रिष्टुप्। ५–७,९ त्रिष्टुप्। नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

भा०—हे आत्मन् ! तू (नृभिः पुनानः) उत्तम पुरुषों और प्राणों द्वारा पवित्र किया जाता हुआ (कोशम् परि द्रव) हृदय-कोश में स्रवित हो और (नि सीद) विराजमान हो। (त्वा वाजिनं) तुझ बलवान् और ज्ञानवान् को (अश्वं न) अश्व के समान (मर्जयन्तः) नित्य प्रति आने वाले मलिन आवरणों से स्वच्छ करते हुए (रशनाभिः) रासों से अश्व के समान ही (रशनाभिः) प्रभु की व्यापक शक्तियों से (बर्हिः) प्रभु की ओर (नयन्ति) ले जाते हैं।

स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः॥२॥

भा०—(देवः इन्दुः) प्रकाशमय, दयालु प्रभु (अशस्ति-हा) अप्रशंसनीय पाप आदि का नाशक (वृजनं) बल की (रक्षमाणः) रक्षा करता हुआ (सु-आयुधः) आयुध आदि उपकरणों से सम्पन्न राजा के तुल्य (पवते) प्रकट होता है। वह (देवानां पिता) विद्वानों का पालक, पिता के तुल्य पूजनीय, (जनिता) जगत् का उत्पादक, (सु-दक्षः) उत्तम बलशाली, (वि-स्तम्भः) विशेष रूप से जगत् को थामने वाला और (दिवः पृथिव्याः धरुणः) आकाश, सूर्य, भूमि आदि का आश्रय है।

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं१ गुह्यं नाम गोनाम् ॥३॥

भा०—विद्वान् (ऋषिः) वेदज्ञानी (विप्रः) विविध विद्याओं में पूर्ण (जनानां पुरः-एता) जनता के आगे २ चलने वाला, (ऋभुः) बुद्धिमान्, (काव्येन) विद्वानों के उपार्जित ज्ञान से (उशनाः) प्रकाशित होता है (सः चित्) वही पूज्य है। (यत् आसां गोनाम्) जो इन वाणियों और प्राणों का (गुह्यं) बुद्धिस्थ (अपीच्यं) अप्रत्यक्ष (नाम) स्वरूप है वह उसको (निहितम्) निश्चित रूप से (विवेद) जाने।

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (एषः) वह परिचित उपासक (मधुमान्) ज्ञानवान् होकर (सोमः) तेरे द्वारा अनुशासित सेवक, (वृषा) बलवान् (ते वृष्णे) तुझ सुखों के वर्षक के लिये (पवित्रे परि अक्षाः) पवित्र बल में प्राप्त हो। वह (सहस्र-साः) हजारों का दाता, (शत-साः) सैकड़ों का दान करने वाला, (भूरि-दावा) अनेक बार दान करने वाला, (वाजी) बलवान्, होकर (शश्वत्-तमं बर्हिः) अनादि आश्रय को (अस्थात्) प्राप्त करता है।

एत सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥५।२२॥

भा०—(एते सोमाः) ये उत्तम विद्वान् (पवित्रेभिः पवमानाः) आत्मा को पवित्र करने वाले (महे वाजाय अमृताय) मोक्षरूप अमृतत्व के लिये (सहस्रा गव्या अभि) सहस्रों ज्ञान-वाणियों के (श्रवांसि) उपदेशों की प्राप्ति के लिये (श्रवस्यवः) ज्ञान श्रवण के इच्छुक बन कर (अभि असृग्रन्) तैयार हों। वे (पृतनाजः अत्याः न) वेगवान् सैनिक वीरों के समान हों। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथाभर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥ ६ ॥

भा०—(जनानां पुरु-हूतः) मनुष्यों में प्रशंसित, (पूयमानः) अभिषिक्त होकर (विश्वा भोजनानि) समस्त प्रकार के अन्नों, भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये (परि असरत् स्म हि) प्रयाण करे। (श्येन-भृत) उत्तम आचरणवान् तू हमें (प्रयांसि आभर) उत्तम अन्न प्राप्त करा और (रयिं तुञ्जानः) ऐश्वर्य प्रदान करता हुआ, (वाजम् अभि अर्ष) बल प्राप्त कर।

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥७॥

भा०—(एषः) यह उत्तम (सोमः) शासक (पवित्रे सुवानः) पवित्र पद के निमित्त अभिषिक्त होकर (सृष्टः सर्गः न) छूटे जल-प्रवाह के समान, वा (सृष्टः अर्वा न) छूटे हुए अश्व के समान (अदधावत्) निरन्तर आगे बढ़े । (तिग्मे शृंगे शिशानः महिषः न) तीखे सींगों को तीक्ष्ण करते हुए पशु के समान स्वयं भी (महिषः) महान् सामर्थ्य का धारक होकर (तिग्मे) तीखी, (शृङ्गे) शत्रु का नाश करने वाली अगल बगल की सेनाओं को (शिशानः) उत्तेजित करता हुआ सेनापति के तुल्य अज्ञान नाशक, मन और बुद्धि को तीक्ष्ण करता हुआ (शूरः सत्वा न) बलवान् पुरुष के समान स्वयं भी (सत्वा) स्थिर होकर (गाः गव्यम्) भूमिवत् वाणियों को चाहता हुआ (अभि) आगे बढ़े ।

एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (ते) तुझ (सोमस्य धारा) शासक की वाणी, (एषा) यह (अद्रेः अन्तः) मेघ में गर्जना के तुल्य (परमात्) सर्वोत्कृष्ट पद से (आ ययौ) प्राप्त होती है । वह (कू-चित् ऊर्वे सतीः गाः विवेद) किसी भी प्रदेश में विद्यमान वाणियों को सूर्यरश्मियों के तुल्य प्राप्त कराती है और (ते धारा) तेरी वाणी (दिवः न विद्युत्) आकाश से गिरती बिजली के समान (अभ्रैः सह स्तनयन्ती) मेघों के साथ गर्जती हुई सी (सोमस्य कृते पवते) पालनीय शिष्य गण के लिये प्रवाहित हो ।

उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥९।२३॥

भा०—हे (सोम) शिष्यजन ! तू (इन्द्रेण सरथं पुनानः) गुरु के साथ एक रथ में बैठे सारथी वा रथी के समान एक कुल में रहता हुआ (गोनां राशिम् उत परि यासि स्म) वेदवाणियों के समूह को अच्छी तरह प्राप्त कर। हे (जीरदानो) प्राणवत् ज्ञान प्रदान करने वाले जीवनदातः ! (शचीवः) वाणी और शक्ति के स्वामिन् ! तू (तव) अपनी (ताः) उन २ (बृहतीः पूर्वीः) बड़ी, महत्वपूर्ण (इषः) वाणियों को (शिक्ष) हमें दे ॥ इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[८८]

उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ सतः पंक्तिः । २, ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अ॒यं सोम॑ इन्द्र॒ तुभ्यं॑ सुन्वे॒ तुभ्यं॑ पवते॒ त्वम॑स्य पाहि ।
त्वं ह॒ यं च॑कृ॒षे त्वं व॑वृ॒ष इन्दुं॒ मदा॑य॒ युज्या॑य॒ सोम॑म् ॥ १ ॥

भा०—शिष्य के प्रति आचार्य के कर्त्तव्य। हे (इन्द्र) तत्वज्ञानी गुरो ! (अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे) यह सौम्य गुण वाला ब्रह्मचारी तेरी सेवा के लिये है। (तुभ्यं पवते) पवित्र होकर तेरी सेवा में आता है ॥ (त्वम् अस्य पाहि) तू इसका पालन कर। (यं त्वं चकृषे) जिसको तू आकर्षित करता है, (यं त्वं ववृषे) जिसके प्रति तू ज्ञान जल की वर्षा करता है उस (इन्दुम्) सेवक (सोमम्) उपासक शिष्य को (मदाय) आनन्द के लिये और (युज्याय) सत्संग करने के लिये (अस्य पाहि) उसकी रक्षा कर।

स ईं॒ रथो॒ न भु॑रि॒षाळ॑योजि म॒हः पु॒रूणि॑ सा॒तये॒ वसू॑नि ।
आदीं॒ विश्वा॑ नहु॒ष्या॑णि जा॒ता स्व॑र्षाता॒ वन॑ ऊ॒र्ध्वा नव॑न्त ॥२॥

भा०—जैसे (पुरूणि वसूनि सातये) अनेक ऐश्वर्यों को युद्ध वा व्यापार द्वारा प्राप्त करने के लिये (भुरिषाट् रथः अयोजि) बहुत भार

वहन करने वाला रथ जोड़ा जाता है वैसे ही (पुरूणि वसूनि सातये) बहुत से ऐश्वर्यों और देह में बसे इन्द्रिय गणों का दमन करने के लिये (भुरिषाट्) बहुत शीत, आतपादि सहन करने वाला (सः महः) वह गुणों में महान् ब्रह्मचारी (अयोजि) नियुक्त किया जाता है। (आत्) अनन्तर (ईम्) इसको सब ओर से (विश्वा नहुष्याणि जाता) सब मनुष्योपयोगी पदार्थ (वने स्वः-साता) वन में ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त (ऊर्ध्वा) उन्नत होकर (नवन्त) प्राप्त होते हैं।

वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शम्भविष्ठः।
विश्ववारो द्रविणोदा इव त्मन्पूषेव धीजवनोऽसि सोम ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन्! (यः) जो तू (वायुः न नियुत्वान्) वायु के तुल्य नाना शक्तियों का स्वामी रथवान् के सदृश (इष्ट-यामा) अपने इष्ट माता पिता आदि की ओर आने वाला होता है वह तू (हवे) युद्धादि में (नासत्या इव) राजा और नर नारी के समान ही (शम्-भविष्ठः असि) सुख का कारण हो। वह तू (विश्व-वारः) दुःखों का वारक एवं (विश्व-वारः) शरीर में आवृत कवच वा शाल दुशाले आदि से पूजित, (द्रविणोदाः) धनदाता स्वामी के तुल्य (त्मन्) और अपने आत्म-सामर्थ्य में (पूषा इव धी-जवनः) पोषक गृहपति के समान कर्म में कुशल (आ असि) हो।

इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित्।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः न) राजा के तुल्य (महा कर्माणि चक्रिः) बड़े २ काम करने वाला है, वह हे (सोम) वीर्यवन्! (पूर्भित्) शत्रु-नगरी को तोड़ने वाले सेनापति के तुल्य (पूर्भित्) देहबन्धन का भेदक होकर (वृत्राणाम्) बढ़ते दुर्विचारों का शत्रुवत् (हन्ता असि) नाशक हो। (पैद्वः न) अश्व के समान (हि) ही (त्वम्) तू (अहि-नाम्नां) सामने

लड़ने वाले जनों और (विश्वस्य दस्योः हन्ता असि) समस्त दुष्टों को मारने वाला हो।

अ॒ग्निर्न यो वन॒ आ सृ॒ज्यमा॑नो वृथा॒ पाजां॑सि कृणु॒ते न॒दीषु॑।
जनो॒ न यु॒ध्वा म॑ह॒त उ॑प॒ब्दिरि॑य॒र्ति सोम॒ः पव॑मान ऊ॒र्मिम् ॥५॥

भा०—(आसृज्यमानः वने अग्निः न नदीषु पाजांसि) जैसे वन का अग्नि नदियों में अपने को वृथा कर देता है वैसे ही वह जो (अग्निः) विनीत शिष्य (वने आसृज्यमानः) वनस्थ जनों के बीच तैयार होता है वह (नदीषु) उत्तम वाणियों में (वृथा) अनायास ही (पाजांसि) ज्ञान (कृणुते) प्राप्त कर लेता है। वह (युध्वा जनः न) योद्धा के तुल्य (सोमः) उत्तम शिष्य (पवमानः) आगे बढ़ता हुआ, (महतः) बड़े भारी वेदज्ञान का (उपब्दिः) उपदेष्टा होकर (ऊर्मिम् इयर्त्ति) उन्नत विचारों को प्रकट करता है।

ए॒ते सोमा॒ अति॒ वारा॒ण्यव्या॑ दि॒व्या न कोशा॑सो अ॒भ्रव॑र्षाः।
वृ॒था स॑मु॒द्रं सिन्ध॑वो॒ न नीचीः॑ सु॒तासो॑ अ॒भि क॒लशाँ॑ असृग्रन् ६

भा०—(एते) ये (सोमाः) विद्वान् जन (वाराणि अव्या अति) ऊन के बने कम्बलों को त्याग कर (दिव्याः कोशासः न) आकाशगत मेघों के तुल्य (अभ्र-वर्षाः) मेघों द्वारा गिराई वर्षा के तुल्य आते हैं और वे (सिन्धवः नीचीः न) बहती जलधाराओं के समान विनीत होकर (वृथा समुद्रम् अभि) अनायास ही प्रभु की ओर तथा (कलशान् अभि) राष्ट्रों की ओर (असृग्रन्) चले जाते हैं।

शु॒ष्मी शर्धो॒ न मारु॑तं पव॒स्वान॑भिशस्ता दि॒व्या यथा॒ विट्।
आपो॒ न म॒क्षू सु॑म॒तिर्भ॑वा नः स॒हस्रा॑प्साः पृतना॒षाण्न य॒ज्ञः ॥७॥

भा०—हे परमैश्वर्यवन्! तू (शुष्मी) बलवान् होकर भी (मारुतं शर्धः न पवस्व) वायु के समान हमें प्राप्त हो (यथा) जिससे (दिव्या

विट्) उत्तम प्रजा (अनभि-शस्ता) पीड़ित न हो। तू (मक्षु) शीघ्र ही (नः) हमारे प्रति (आपः न) आप्तजनों के समान (सु-मतिः) शुभ ज्ञान वाला हो। तू (सहस्र-अप्साः) दृढ़ाग होकर (यज्ञः न पृतना-षाट्) संगति प्राप्त सैन्य के समान संग्राम में शत्रु सेनाओं को जीते।

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद् गभीरं तव सोम धाम।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम॥८॥२७॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक! (ते राज्ञः वरुणस्य) तुझ तेजस्वी राजा के (व्रतानि) नाना कर्त्तव्य हैं। (तव गभीरम् बृहत् धाम) तेरा सामर्थ्य बड़ा गम्भीर हो। तू (शुचिः त्वम् प्रियः मित्रः न असि) शुद्ध, प्रिय मित्र के समान हो। तू (दक्षाय्यः) बलवान् (अर्यमा इव) न्यायकारी शासकवत् (असि) हो। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[८९]

उशना ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप्। २, ५, ६ त्रिष्टुप्। ३, ७ विराट् त्रिष्टुप्। ४ निचृत्त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः।
सहस्रधारो असदन्न्य१स्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः॥१॥

भा०—हे उत्तम विद्वन्! तू (स्यः) वह (वह्निः) व्रत का धारक होकर (पथ्याभिः प्रो अस्यान्) धर्म मार्ग से आगे बढ़ और (दिवः वृष्टिः न पवमानः अक्षाः) आकाश से वृष्टि के समान तू भी तेज से अज्ञानादि का नाशक होकर व्याप, आ। तू (सहस्र-धारः) बलयुक्त होकर (अस्मे नि असदत्) हमारे लिये इस पद पर विराज। तू हमारे लिये (मातुः उपस्थे) माता की गोद में और (वने च) वन में गुरु के पास रह।

राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम्।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम्॥२॥

भा०—वह (राजा) इस देह में, राष्ट्र-पति के तुल्य (सिन्धूनाम्) देह में बहती रक्त-धाराओं के बीच (वासः अवसिष्ट) वास करता है। वह (ऋतस्य नावम्) जलनौका के समान (ऋतस्य) गतिशील द्रव की (रजिष्ठाम्) रजोयुक्त, तीव्र (नावम्) प्रेरणा या तीव्रगति पर, नौका पर पुरुष के समान (आ अरुहत्) बढ़ता है। वह (द्रप्सः) रसस्वरूप होकर (श्येन-जूतः) आचारवान् पुरुषों से सन्मार्ग में प्रेरित होकर (ववृधे) बढ़ता है। उस समय (ईं) इन (जाम्) पुत्रवत् आत्मा को (पिता) परमात्मा (दुहे) मनोरथों से पूर्ण करता है। वह भी (ईम्) इस लोक को (पितुः दुहे) उस प्रभु के द्वारा ही नाना फल प्राप्त कराता है।

सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम्।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥३॥

भा०—(मध्वः) मधुर सुख की ओर (दिवः) नाना ऐश्वर्यों को चाहने वाली प्रजाएं (अस्य पतिम्) इस लोक के पालक (सिंह) शेर के समान बलवान् (अयासम्) अनथक (अरुषं हरिम्) रोषरहित पुरुष को (नसन्त) प्राप्त होती हैं। (युत्सु प्रथमः) युद्धकार्यों में श्रेष्ठ पुरुष, (गाः पृच्छते) भूमिवासियों की कुशल पूछता है। वह (उक्षा) राज्य भारवाही शासक (अस्य चक्षसा) इस विद्वान् के उपदेश से (गाः परि पाति) भूमियों की रक्षा करता है।

मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम्।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥ ४ ॥

भा०—(मधु-पृष्ठम्) शत्रु पीड़क बल के धारक, (घोरम्) शत्रु-भयकारी, (अयासम्) श्रमशील (ऋष्वं) महापुरुष को (उरु चक्रे रथे अश्वं) बड़े चक्र वाले रथ में अश्वतुल्य इस संवत्सर-चक्र-युक्त विश्व में, (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं। (स्वसारः, सु-असारः) भगिनियों के समान स्वतः

प्राप्त, वेग से गति करने वाली सेनाओं के तुल्य शक्तियां (ईम् मर्जयन्ति) उसका अभिषेक करतीं और (स-नाभयः) समस्त बन्धुजन उस (वाजिनम्) बल वाले को (ऊर्जयन्ति) अधिक बलवान् करते हैं।

चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥५॥

भा०—(ईम्) उसको (चतस्रः) चार (घृत-दुहः) जल देने वाली (पूर्वीः) सनातन अग्नि, जल, पृथिवी और तेज शक्तियां (ईम् सचन्ते) उसके साथ मिलकर रहती हैं। वे उस (समाने) समान (धरुणे) आश्रय में (नि-सत्ताः) स्थिर हैं। (ताः) वे (नमसा पुनानाः) विनय से प्राप्त होती हुई (ईम् अर्षन्ति) उसी को पहुँचती हैं और वे (विश्वतः ईं परि सन्ति) उसी के इर्द गिर रहती हैं।

विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य।
असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥६॥

भा०—वह प्रभु (दिवः विष्टम्भः) आकाश आदि का धारक, (पृथिव्याः धरुणः) पृथिवी का भी धारक है। (विश्वा उत क्षितयः) समस्त मनुष्य भी (अस्य हस्ते) उसके हाथ में हैं। हे जीव ! वह (नियुत्वान्) शक्तियों का स्वामी, (उत्सः) उद्भव-स्थान और (ते) तुझ (गृणते) उपदेष्टा के सुख के लिये (असत्) हो और (मध्वः अंशुः) यह मधुर व्यापक प्रभु (इन्द्रियाय) इन्द्र के पद के लिये (पवते) प्राप्त है।

वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥७॥२५॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (अवातः) सदा देदीप्यमान होकर (देव-वीतिम् अभि) विद्वानों की रक्षा शक्ति को (वन्वन्) प्राप्त करते हुए, (वृत्रहा) शत्रुनाशक होकर (इन्द्राय) इन्द्र पद के लिये (पवस्व) प्राप्त

हो। तू (महः पुरु-चन्द्रस्य रायः) बहुतों के सुखकारी (रायः) धन का (शग्धि) हमें प्रदान कर। हम (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम बलशाली हों। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[९०]

वसिष्ठ ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप्। २, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ भुरिक् त्रिष्टुप्॥ षडृचं सूक्तम्॥

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत्।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः॥१॥

भा०—(रोदस्योः) देह में प्राण और अपान का (जनिता) उत्पादक, (वाजं प्र हिन्वानः रथः) संग्राम की ओर जाने वाला, रथ के समान सन्नद्ध (वाजं) ज्ञानैश्वर्य को (सनिष्यन्) चाहता हुआ वह (प्र अयासीत्) आगे बढ़े। वह (इन्द्रं गच्छन्) प्रभु के पास जाता हुआ (आयुधा संशिशानः) काम, क्रोधादि अन्तः-शत्रुओं को मार गिराने के साधनों को (सं शिशानः) तीक्ष्ण करता हुआ और (हस्तयोः) हाथों में (विश्वा वसु आ-दधानः) नाना लोकों में बसाने वाले प्राणगण को धारण करता हुआ (प्र अयासीत्) आगे बढ़े।

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि रत्नधा दयते वार्याणि॥ २॥

भा०—(त्रि-पृष्ठं) तीनों लोकों के पोषक, (वृषणं) बलवान् (वयः-धाम्) समस्त बलों के धारक की ही (आंगूषाणां वाणीः) स्तोताओं की वाणियां (अवावशन्त) स्तुति किया करती हैं। (वना वसानः) समस्त ऐश्वर्यों को (वरुणः सिन्धून् न) नदियों को समुद्र के समान धारण करता हुआ, (रत्न-धाः) सूर्यादि पदार्थों को धारण करता हुआ (वार्याणि वि दयते) दुःखों के वारक साधनों और ऐश्वर्यों की रक्षा करता और अन्यों को प्रदान करता है।

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि । तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥३॥

भा०—हे उत्तम शासक ! तू स्वयं (शूर-ग्रामः) शूरवीर (सर्व-वीरः) शरीर में गति करने वाले प्राणों का स्वामी (सहावान्) सुख दुःख को सहने वाला, (जेता) विजयशील, (धनानि सनिता) धनों का दाता होकर (पवस्व) प्राप्त हो । (समत्सु) संग्रामों में (तिग्म-आयुधः) तीक्ष्ण हथियारों से सज्जित, (क्षिप्र-धन्वा) वेग से धनुष चलाने वाला, (अषाढः) अपराजित, (पृतनासु) संग्राम में (शत्रून्) शत्रुओं को (साह्वान्) विजय करने वाला, शूरवीर के तुल्य हो ।

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी । अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥४॥

भा०—हे प्रभो ! तू (उरु-गव्यूतिः) बड़े भारी मार्गों का शासक होकर (अभयानि कृण्वन्) अभय प्रदान करता हुआ (समीचीने) एक होकर (पुरन्धी) राष्ट्र के धारक राजा प्रजा वर्गों को (आपवस्व) प्राप्त हो और (अपः) आप्त प्रजावर्गों और (उषसः) शत्रुदाहकारी सेनाओं को, (स्वः) राष्ट्र को और (गाः) गौ आदि पशुओं को (सिषासन्) प्राप्त करना और उनको अन्यों में विभक्त करना चाहता हुआ (अस्मभ्यं) हमें (महः वाजान् सम् चिक्रदः) ज्ञान और ऐश्वर्यों का उपदेश कर ।

मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम् । मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ॥५॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (वरुणं मत्सि) श्रेष्ठ पुरुष को प्रसन्न कर, (मित्रं मत्सि) स्नेही जन को प्रसन्न कर, हे (इन्दो) दीप्तिमन्, तू (इन्द्रम् मत्सि) प्रभु को प्रसन्न कर । हे (पवमान) पवित्र होने वाले ! तू (विष्णुम्) व्यापक ईश्वर को प्रसन्न कर । तू (मारुतं शर्धः मत्सि)

प्रतुवद् बलवान् पुरुष-वर्ग को प्रसन्न कर। तू (देवान् मत्सि) मनुष्यों को प्रसन्न कर। हे (इन्दो) दयालो! तू (महान् इन्द्रम्) महान् ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को प्रसन्न किया कर।

एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद् दुरिता पवस्व। इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६।२६।३॥

भा०—हे (इन्दो) उत्तम पुरुष के उपासक आत्मन्! तू (राजा इव क्रतुमान्) राजा के समान कर्म करने में समर्थ है। तू (अमेन) अपने सहायक प्रभु से (विश्वा दुरिता) बुरे आचरणों को (घनिघ्नत्) नष्ट करता हुआ, (पवस्व) आगे बढ़। तू (सु-उक्ताय) उत्तम वचन के धारक (वचसे) वेद के (वयः) ज्ञान को (धाः) धारण कर। हे विद्वान् लोगों! (यूयम्) तुम सब (नः सदा स्वस्तिभिः पात) उपायों से हमारी रक्षा करो। इति षड्विंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

[९१]

कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी। दश स्वसारो अधि सानो अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥१॥

भा०—(रथ्ये आजौ) रथों द्वारा करने योग्य संग्राम में जैसे (धिया प्रथमः) सर्वप्रथम (मनोता) उत्तम ज्ञाता (वक्वा) उत्तम आदेष्टा पुरुष (प्रथमः असर्जि) मुख्य-नायक बनाया जाता है, वैसे ही इस (रथ्ये आजौ) रथ रूप देह से विजय करने योग्य, जीवन संग्राम में भी (धिया) कर्म और ज्ञान के बल पर (वक्वा) वचन कहने वाला, (मनोता) अन्तःकरण

में ओत-प्रोत, (मनीषीः) ज्ञानवान् आत्मा, (प्रथमः असर्जि) सबसे मुख्य है। (दश स्वसारः) दशों प्राण उसे (अव्ये सानौ अधि) रक्षक के पद पर (अधि अजन्ति) स्वीकार करते हैं और उस (वह्नि) देहवाही पुरुष को (सदनानि अच्छ) नाना आश्रमों में प्राप्त होते हैं।

वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः॥ २॥

भा०—(यः) जो (मर्त्येभिः) मरणधर्मा (नृभिः) पुरुषों द्वारा, (अविभिः) प्राणों द्वारा, (गोभिः) वाणियों द्वारा और (अद्भिः) आप्त पुरुषों द्वारा (मर्मृजानः) शुद्ध किया जाता है, वह (अमृतः) अमर आत्मा है। वह (इन्दुः) दीप्तिमान् (दिव्यस्य जनस्य) उत्तम जन्म को (वीती) भोगने के लिये है और वही (मर्त्येभिः) मनुष्यों द्वारा, (कव्यैः) विद्वानों के वचनों द्वारा (प्र सुवानः) उपासित है।

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति॥३॥

भा०—(वृषा) सुखों का वर्षक, (अंशुः) प्रभु (अस्मै वृष्णे) बलवान् जीव के हितार्थ (रोरुवत्) ज्ञान का उपदेश करता है स्वयं (पवमानः) पवित्र होकर (गोः) वाणी के (रुशत् पयः) अर्थ ज्ञान को प्रकट करता है। वह (वचः-वित्) वेदज्ञाता (ऋक्वा) ऋग्वेदज्ञ पुरुष (अध्वस्मभिः) नित्य (पथिभिः) उत्तम मार्गों से, (सूरः) सूर्य के तुल्य, (सहस्रं) सहस्रों सत्य और (अण्वं वि याति) सूक्ष्म विज्ञान को भी प्राप्त करता है।

रुजा दृळहा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान्।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम्॥ ४॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (दृढाचित्) अति दृढ़ (रक्षसः सदांसि) दुष्ट पुरुष के स्थानों को (रुज) तोड़ डाल। राष्ट्रकण्टकों को

(पुनानः) शोधता हुआ, (वाजान् वि ऊर्णुहि) नाना बलों और संग्रामों को विशेष रूप से ढक ले और (तुजता वधेन) शत्रुनाशक शस्त्रास्त्र से (अन्ति दूरात्) पास और दूर विद्यमान (एषाम्) राक्षसों के (उप-नायम्) नायक को (उपरिष्टात् वृश्च) ऊपर से ही काट डाल।

स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः।
ये दुःषहासो वनुषा बृहन्तस्तांस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥५॥

भा०—हे (विश्व-वार) सबसे वरण करने योग्य! (पुरु-क्षो) पूज्य, स्तुतियों के पात्र! (सः) वह तू (नव्यसे सूक्ताय) नवीन, उत्तम स्तुतिकर्त्ता के लिये (प्रत्नवत्) पुराने सनातन गुरु के समान (प्राचः पथः कृणुहि) आगे बढ़ने वाले प्राचीन मार्गों का उपदेश कर। हे (पुरु-कृत्) महान् कार्य करने वाले! (ते) तेरे (ये) जो (दुः-सहासः) शत्रुओं द्वारा दुःख से पराजित होने वाले, (वनुषा बृहन्तः) शत्रुनाशक सामर्थ्य के महान् साधन हैं (तान् अश्याम) हम प्राप्त करें।

एवा पुनानो अपः स्व१र्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ् नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥६॥१॥

भा०—हे (सोम) प्रभो! (एव) इस प्रकार तू (अपः) अन्तरिक्ष और (स्वः) आकाश को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अस्मभ्यं) हमारे (तोका तनयानि) सन्तान और (भूरि) बहुत सी (उरु) विशाल (क्षेत्रम्) भूमि और (उरु ज्योतींषि) बहुत २ प्रकाशों को (नः ज्योक् दृशये) हमें चिरकाल तक सम्यग् दर्शन करने के लिये (सूर्यं) सूर्य भी (रिरीहि) प्रदान कर। इति प्रथमो वर्गः ॥

[९२]

कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्। २, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

परि॑ सुवा॒नो हरि॑रं॒शुः प॒वित्रे॒ रथो॒ न स॑र्जि स॒नये॑ हिया॒नः ।
आप॒च्छ्लोक॑मिन्द्रि॒यं पू॒यमा॑नः॒ प्रति॑ दे॒वाँ अ॑जुषत॒ प्रयो॑भिः ॥१॥

भा०—(हरिः) सर्वदुःखहारी, (अंशुः) सब जगत् का भोक्ता, (सनये) ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिये (हियानः) प्रार्थित और (सुवानः) उपासित होता हुआ, (पवित्रे रथः न) पवित्र हृदय रूपी रथ में (सर्जि) प्राप्त हो। वह (पूयमानः) पवित्र रूप से गृहीत प्रभु (श्लोकम्) महान् स्तुति और (इन्द्रियं) ऐश्वर्य को (आपत्) प्राप्त करता और कराता है। विद्वान् पुरुषों ! आप लोग (देवान् प्रति) पूज्य गुरुजनों के प्रति (प्रयोभिः) उनको तृप्त करने वाले अन्नादि से (अजुषत) प्रेमपूर्वक सेवा किया करो।

अच्छा॑ नृ॒चक्षा॑ असरत्प॒वित्रे॒ नाम॒ दधा॑नः क॒विर॑स्य॒ योनौ॑ ।
सीद॒न्होते॑व॒ सद॑ने च॒मूषूपे॑मग्म॒न्नृष॑यः स॒प्त विप्राः॑ ॥ २ ॥

भा०—उत्तम शासक (नृचक्षाः) मनुष्यों का उपदेष्टा (कविः) दूरदर्शी पुरुष (अस्य) इस लोक के (योनौ) मूल देश में (नाम दधानः) कीर्त्ति को धारण करता हुआ (पवित्रे अच्छ असत्) पवित्रकारी कार्य के लिये बढ़े। वह (होता इव) ऋत्विक् के समान (चमूषु सीदन्) सेनाओं के आगे प्रमुख पद पर विराजे और (इम् उप) इसको (सप्त विप्राः ऋषयः) सात विद्वान् (उप अग्मन्) प्राप्त हों।

प्र सु॑मे॒धा गा॑तु॒विद्वि॒श्वदे॑वः॒ सोमः॑ पुना॒नः सद॑ एति॒ नित्य॑म् ।
भुव॒द्विश्वे॑षु॒ काव्ये॑षु र॒न्तानु॒ जना॑न्यतते॒ पञ्च॒ धीरः॑ ॥ ३ ॥

भा०—वह (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धि वाला (गातुवित्) भूमि को प्राप्त करने वाला, एवं सन्मार्गों को जानने वाला, (विश्व-देवः) सबका दाता, (सोमः) वह शासक प्रभु (पुनानः) पवित्र करता हुआ (नित्यं सदः एति) नित्य हृदय-मन्दिर में प्राप्त हो। वह (विश्वेषु काव्येषु) कवियों, विद्वानों से प्राप्त ज्ञानों में और वेदों में रमण करने वाला हो, वह (धीरः) बुद्धिमान्, (पञ्चजनान् अनु यतते) पांचों जनों के अनुकूल यत्न करे।

तव॒ त्ये सो॑म पवमान नि॒ण्ये विश्वे॑ दे॒वास्त्रय॑ एकाद॒शासः॑ ।
दश॑ स्व॒धाभि॒रधि॒ सानो॒ अव्ये॑ मृ॒जन्ति॑ त्वा न॒द्यः॑ स॒प्त य॒ह्वीः ॥४॥

भा०—हे (सोम) सर्वशासक प्रभो ! हे (पवमान) सर्वव्यापक (त्ये तव त्रयः एकादशासः विश्वे देवाः) तेरे वे ३३ देवगण, आठ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य और एक प्रजापति, प्राण और इन्द्र सब मिलकर (निण्ये) अदृष्ट रूप में और दशों प्राण भी (स्वधाभिः) जलों, अन्नों और बलों द्वारा, (अव्ये सानौ) रक्षक रूप में (अधि मृजन्ति) तुझे मार्जन करते हैं। तेरा ही, (सप्त यह्वीः नद्यः) सातों बड़ी २ धाराओं के तुल्य सात मुखस्थ प्राण भी अभिषेक सा करते हैं। प्रभु को सात बड़ी (नद्यः) छन्दोवाणियां स्वरूप वर्णन करके प्रकट रूप में दर्शाती हैं।

तन्नु स॒त्यं पव॑मानस्यास्तु॒ यत्र॒ विश्वे॑ का॒रवः॑ सं॒नस॑न्त ।
ज्योति॒र्यदह्ने॒ अकृ॑णोदु लो॒कं प्राव॒न्मनुं॒ दस्य॑वे॒ कर॒भीक॑म् ॥ ५ ॥

भा०—(पवमानस्य नु तत् सत्यम् अस्तु) परमशोधक प्रभु का सामर्थ्य सदा सत्य बना रहे (यत्र) जिसमें (विश्वे कारवः) सब कर्त्ता और स्तोता जन (सं नसन्त) एक हों (यद्) वह जो प्रभु (लोकं ज्योतिः अह्ने अकृणोत्) प्रकाशक सूर्य को दिन करने के लिये बनाता और जो (मनुं प्रावत्) मननशील ज्ञानी को प्रेम करता है और उसको (दस्यवे अभीकं कः) दुष्ट पुरुष के नाश के लिये प्रबल करता है।

परि॒ सद्मे॑व पशु॒मान्ति॒ होता॒ राजा॒ न स॒त्यः समि॑तीरिया॒नः ।
सोमः॑ पुना॒नः क॒लशाँ॑ अयासी॒त्सीद॑न्मृ॒गो न म॑हि॒षो वने॑षु ॥६॥२॥

भा०—वह शासक (पशुमान्ति सद्म इव) पशु आदि से समृद्ध गृह के समान हो। वह (होता राजा न सत्यः) दाता राजा के तुल्य सत्यवान्, (समितिः इयानः) सभादि को प्राप्त होता हुआ, (वनेषु) वनों में (महिषः मृगः न) सामर्थ्यवान् सिंह के तुल्य पराक्रमी होकर (पुनानः) देश को

निष्कण्टक करता हुआ (कलशान् अयासीत्) लोकों वा अभिषेक योग्य जलघटों को प्राप्त करता है । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[९३]

नोधा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् ।
२ त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥

भा०—(साकम्-उक्षः) एक साथ अभिषेक करने वाली (स्व-सारः) भगिनियों के समान स्नेही और (सु-असारः) सुखप्रद सेनाएं वा प्रजाएं (धीतयः) उसको धारण करने वाली (धनुत्रीः) उसको सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाली, (दश) संख्या में दश व्यक्तियें (धीरस्य) बुद्धिमान् को (मर्जयन्ति) अभिषिक्त करती हैं । वह (हरिः) वेगवान् सोम, आत्मा (सूर्यस्य जाः इव) सूर्य से उत्पन्न किरणों के तुल्य देशों एवं प्राण-शक्तियों के प्रति (परि अद्रवत्) प्रवाहित होता है, (अत्यः वाजी न) बलवान् अश्व के तुल्य वह (द्रोणम् ननक्षे) इस देह में प्राप्त होता है ।

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२॥

भा०—(मातृभिः शिशुः न) माताओं से जैसे बालक पुष्टि को प्राप्त होता है वैसे ही (वावशानः) नाना कामना करता हुआ (पुरु-वारः) इन्द्रियगण से परिवाहित होकर (वृषा) सब में शक्ति और बल भरने वाला (अद्भिः दधन्वे) प्राणों द्वारा धारण किया जाता है । (मर्यः न योषाम् अभि) मनुष्य जैसे स्त्री को प्राप्त होता है वैसे ही जो सोम (कलशे) इस देह में (उस्रियाभिः) शक्तियों से (सं गच्छते) संगत हो जाता है वह (निष्कृतम् अभि) परम धाम को प्राप्त हो जाता है ।

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥३॥

भा०—(अघ्न्याया ऊधः) गाय के स्तन को वत्स जैसे पीता है वैसे ही (अघ्न्यायाः) नाश न होने वाली परमेश्वरी गौ अर्थात् वाणी के (ऊधः) पान योग्य ज्ञानरस की (इन्दुः) प्रभु का उपासक ही (प्र पिप्य) पान करता है और वह (सु-मेधाः) बुद्धिमान् होकर (धाराभिः) शान्तिप्रद ज्ञान वाणियों से (सचते) परिशोधित या अलंकृत हो जाता है और (गावः) समस्त प्रजा और प्रतिनिधि जनों का उसकी (चमूषु) सेनाओं के पद पर सेनानायक के तुल्य, उसी के (चमूषु) इन्द्रियों के ऊपर (मूर्धानम्) शिरोवत् प्रभु को (निक्तैः वसुभिः न) शुद्ध वस्त्रों के तुल्य (अभि श्रीणन्ति) चारों ओर से ढकते हैं ।

स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।
रथिरायतामुशती पुरंन्धिरस्मद्र्य१गा दावने वसूनाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे ! (सः) वह तू (देवेभिः) कामनावान् जनों वा प्राणों द्वारा, (अश्विनम् रयिम् वावशानः) स्वयं भी अश्व वा राष्ट्र के ऐश्वर्य की कामना करता हुआ (नः) हमें भी (रद) सुख प्रदान कर । (रथिरायताम् उशती पुरंधिः) महारथियों, बहुतों को धारण करने वाली बुद्धि, शक्ति, नीति (वसूनां दानवे) प्राणों और लोकों के लिये (अस्मद्र्यक्) हमें भी (आ) प्राप्त हो ।

नू नो रयिमुप मास्व नृवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम् ।
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥५॥३॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ, (नू नः नृवन्तं रयिम्) मनुष्यों उत्तम नेता और प्राणों से युक्त ऐश्वर्य हमें (उप मास्व) दे । वह धन (विश्वः चन्द्रं) समस्त जनों को चन्द्रवत्

आह्लादजनक और (वाताप्यम्) वायु के समान प्राप्तव्य हो। (वन्दितुः) स्तुति करने वाले जन की (प्र तारि) आयु की वृद्धि हो। (प्रातः) प्रातः-काल, जीवन के पूर्व भाग में (मक्षु) शीघ्र ही (धिया-वसुः) बुद्धि और कर्म से ऐश्वर्य प्राप्त करने वाला विद्वान्, गुरु, प्रभु हमें (आ जगम्यात्) प्राप्त हो। इति तृतीयो वर्गः॥

[९४]

कण्व ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ३, ५ विराट् त्रिष्टुप्। ४ त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म॥१॥

भा०—(वाजिनि इव शुभः) अश्व पर जैसे शोभादायक आभूषण अच्छे लगते हैं वैसे ही (अस्मिन् वाजिनि) बलशाली ऐश्वर्य के प्रभु इस आत्मा में (शुभः धियः) शोभायुक्त स्तुतियां शोभा में (स्पर्धन्ते) एक दूसरे से बढ़ती हैं। (सूर्ये न विशः) सूर्य में रश्मियों के समान समस्त प्रजाएं भी उसके अधीन सत्कर्मों में एक दूसरे से बढ़ने का यत्न करती हैं। वह (कवीनान्) क्रान्तदर्शी विद्वान् के समान (पशु-वर्धनाय व्रजं न) पशुओं की वृद्धि के लिये गोष्ठ के तुल्य (अपः वृणानः) उत्तम कर्म का विस्तार करता हुआ प्रजा की वृद्धि के लिये (पवते) चेष्टा करता है।

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम्॥२॥

भा०—(भुवनानि) ये समस्त उत्पन्न लोक (स्वः-विदे) आनन्दमय प्रभु को प्राप्त करने वाले साधक के लिये (अमृतस्य धाम) अमृत तेज को (द्विता) दो प्रकार से (वि ऊर्ण्वन्) प्रकट करते हैं और (प्रथन्त) उसका विस्तार करते हैं। (गावः) वेदवाणियां जैसे (ऋतयन्तीः इन्दुम् अभिवावश्रे) सत्य का वर्णन करती हुई उसी तेजोमय प्रभु का वर्णन करती हैं वैसे ही

(स्वसरे) अपने मार्ग में (पिन्वानाः) प्रभु को प्रसन्न करने वाली (धियः) वाणियां एवं बुद्धिमान् जन उसी (इन्दुम् अभि वावश्रे) तेजोमय प्रभु को चाहते हैं।

परि॒ यत्क॒विः काव्या॒ भर॑ते॒ शूरो॒ न रथो॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
दे॒वेषु॒ यशो॒ मर्ता॑य॒ भूष॒न्दक्षा॑य रा॒यः पु॑रु॒भूषु॒ नव्यः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जो (कविः) विद्वान् (शूरः रथः नः) शूरवीर महारथी के समान (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवनों और (विश्वा काव्यानि) समस्त विद्वानों के योग्य ज्ञानों को (परि भरते) धारण करता है वह (देवेषु) प्राणों में आत्मा के तुल्य (देवेषु) विद्वानों के बीच, (मर्त्ताय) मनुष्य के उपकारार्थ (भूषन्) सामर्थ्यवान् होकर (यशः परि भरते) यश प्राप्त करता है और वह (पुरु-भूषः) बहुत से जनों में (नव्यः) स्तुत्य होकर (दक्षाय) कुशल पुरुष के उपकारार्थ (दक्षाय) अपने बल को बढ़ाने के लिये (रायः परि भरते) स्वयं ऐश्वर्य धारण करता है।

श्रि॒ये जा॒तः श्रि॒य आ निरि॑याय॒ श्रियं॒ वयो॑ जरि॒तृभ्यो॑ दधाति ।
श्रियं॒ वसा॑ना अमृत॒त्वमा॑य॒न्भव॑न्ति स॒त्या स॑मि॒था मि॒तद्रौ॑ ॥४॥

भा०—वह विद्वान् (श्रिये जातः) ऐश्वर्य के लिये प्रसिद्ध होता है, (श्रिये आ निः इयाय) लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिये ही विजेता के समान आता है। वह (जरितृभ्यः) विद्वानों को (श्रियं दधाति) कान्ति प्रदान करता और (वयः) जीवन (आदधाति) प्रदान करता है। (श्रियम् वसानाः) आश्रय योग्य सम्पदा को धारण करते हुए जन ही उस (अमृतत्वम् आयन्) परम मोक्ष को प्राप्त होते हैं। (मित-द्रौ) ज्ञानवन्धु की ओर द्रवित होने वाले प्रभु में (समिथा सत्या भवन्ति) सत्संगादि सब सत्य होते हैं।

इष॒मूर्ज॑म॒भ्य॑र्षाश्वं॒ गामु॒रु ज्योतिः॑ कृणुहि॒ मत्सि॑ दे॒वान् ।
विश्वा॑नि॒ हि सु॒षहा॒ तानि॒ तुभ्यं॒ पव॑मान॒ बाध॑से सोम॒ शत्रू॑न् ॥५॥४॥

भा०—हे (सोम) हे बलशालिन् ! तू (इषम् ऊर्जम् अभि अर्ष) हमें अन्न, बल और वृष्टि प्राप्त करा। तू हमें (अश्वम् गाम्) अश्व और गौ प्रदान कर। तू (उरु ज्योतिः कृणुहि) महान् ज्योति दे। तू (देवान् मत्सि) विद्वानों को सुखी कर। हे (पवमान) सर्वव्यापक तू (शत्रून् बाधसे) शत्रुजनों को जीवित करता है। (तुभ्यम्) तेरे लिये (तानि विश्वानि सुसहानि) वे सब पदार्थ सुख से वश करने योग्य हैं। इति चतुर्थो वर्गः॥

[९५]

प्रस्कण्व ऋषिः॥ पवमानः सोमा देवता॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ संस्तारपंक्तिः। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

कनि॑क्रन्ति॒ हरि॒रा सृ॒ज्यमा॑नः॒ सीद॒न्वन॑स्य ज॒ठरे॑ पुना॒नः।
नृभि॒र्यत॑: कृणुते नि॒र्णिजं॒ गा अतो॑ म॒तीर्ज॑नयत स्व॒धाभि॑: ॥१॥

भा०—(वनस्य जठरे) भोगने योग्य राष्ट्र के बीच में (सीदन्) बैठा हुआ राजा जैसे (पुनानः) अभिषिक्त होता हुआ (कनिक्रन्ति) निरन्तर हर्ष करता है वैसे ही (वनस्य जठरे) वन आश्रय के बीच विराज कर (पुनानः) योगादि-अभ्यासों से पवित्र करता हुआ (हरिः) विद्वान् (आ सृज्यमानः) गुरुजनों से प्रौढ़ बनाया जाता हुआ, (गाः कनिक्रन्ति) ज्ञानवाणियों का अभ्यास करे। वह (नृभिः यतः) सद्-गुरुओं से व्रतों में बद्ध होकर अपने को (निः-निजं) विमाल (कृणोति) कर लेवे। गुरुजनों ! आप लोग (अतः) इस हेतु, (स्वधाभिः) अन्नों के साथ २ (महीः जनयत) बुद्धियों को उत्पन्न करो।

हरि॑: सृजा॒नः प॒थ्यामृ॒तस्येय॑र्ति॒ वाच॑मरि॒तेव॒ नाव॑म्।
दे॒वो दे॒वानां॒ गुह्या॑नि॒ नामा॒विष्कृ॑णोति ब॒र्हिषि॑ प्र॒वाचे॑ ॥ २ ॥

भा०—(सृजानः) प्रतिष्ठा प्राप्त (हरिः) तेजस्वी पुरुष, (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (पथ्याम्) धर्ममयी, (वाचम्) वाणी को (अरिता इव

नावम्) नाव को नाविक के समान (इयर्त्ति) आगे बढ़ाता है। (देवः) ज्ञानदाता आचार्य, (बर्हिषि) वृद्धिकारक पद पर विराज कर (प्र-वाचे) उत्तम वाणी वाले शिष्य के लिये (देवानाम्) विद्वान् जनों की (गुह्यानि) बुद्धि में स्थित (नाम) ज्ञानों को (आविः कृणोति) प्रकट करता है।

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ ३ ॥

भा०—(अपाम् ऊर्मयः इव इत्) जैसे जलों की तरंगें (तर्तुराणाः) वेगवती होकर (प्र ईरते) किसी पदार्थ को आगे बढ़ाती हैं वैसे ही (मनीषाः) सन्मार्ग पर ले जाने वाली गुरुजनों की वाणियां (सोमम् अच्छ) उस सौम्यस्वभाव, शिष्य को (प्र ईरते) आगे बढ़ाती हैं। जैसे प्रजाएं राजा को विनय से (उप यन्ति) प्राप्त होती हैं वैसे ही (मनीषाः) ज्ञानवाणियां (नमस्यन्तीः) शिष्य का आदर करती हुई (उप यन्ति) उसे प्राप्त होती हैं, (संयन्ति) उसे मिल जातीं और (उशन्तं) उनको चाहने वाले उसको वे (उशन्तीः) चाहती हुई सी (आविशन्ति च) उसमें प्रवेश कर जाती हैं।

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥ ४ ॥

भा०—(सानौ महिषं न) पर्वत पर स्थित मेघ के तुल्य (मर्मृजानम्) पवित्र करने वाले (अंशुं) व्यापक, (उक्षणं) जलवत् ज्ञान का सेचन करने में समर्थ (गिरिष्ठाम्) विद्वान् को (दुहन्ति) विद्वान् पूर्ण करते हैं। (तं) उस (वावशानं) विद्यादि के इच्छुक (मतयः) ज्ञानवान् पुरुष और वाणियां भी (सचन्ते) प्राप्त होती हैं। वह (त्रितः) ज्ञान, कर्म और उपासना में प्राप्त या वेदत्रयी के पारंगत (समुद्रे वरुणम्) आकाश में मेघ तुल्य (समुद्रे) ज्ञान के अपार समुद्र प्रभु में (वरुणम्) आत्मा को (बिभर्त्ति) धारण करता है।

इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।
इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (उपवक्ता इव) व्याख्याता के समान होकर (पुनानः) पवित्र करता हुआ (होतुः वाचम्) ईश्वर की वाणी को प्रेरणा करता हुआ, (मनीषाम्) उत्तम बुद्धि को (वि स्य) लोगों के आगे प्रकट कर । (यत्) क्योंकि तू और (इन्द्रः च) ज्ञान का देने वाला गुरु दोनों ही (सौभगाय) सुख की वृद्धि के लिये (क्षयथः) एकत्र रहते हो । हम सब लोग (सुवीर्यस्य पतयः) बल वीर्य और उत्तम ज्ञान के स्वामी (स्याम) हों । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[९६]

प्रतर्दनो दैवोदासिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१०, ३, ११, १२, १४, १९, २३ त्रिष्टुप् । २, १७ विराट् त्रिष्टुप् । ४—९, १३, १५, १८, २१, २४ निचृत् त्रिष्टुप् । १६ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । २० २२ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते १

भा०—जब (सेनानीः) सेनापति (शूरः) शूरवीर (गव्यन्) नयी भूमियों को प्राप्त करने का इच्छुक (रथानाम् अग्रे एति) महारथियों के आगे २ चलता है तब (अस्य सेना हर्षते) उसकी सेना हर्ष मनाती है। वह (सोमः) शासक (सखिभ्यः) मित्रों को भी (भद्रान्) सुखजनक, (इन्द्र-हवान् कृण्वन्) ऐश्वर्यवान्, राजोचित आदेशों को प्रदान करता हुआ (रभसानि) युद्धोपयोगी (वस्त्रा) कवचादि को (आ दत्ते) ग्रहण करता है ।

समस्य हरिं हरयो मृजन्त्यश्वहयैरनिशितं नमोभिः ।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥२॥

भा०—(हरयः) विद्वान् (अनिशितम्) असंस्कृत, (अस्य हरिम्) इसके अश्व को और अन्य तेजस्वी जन को (अश्व-हयैः) वेगवान् अश्वों सहित और (नमोभिः) शत्रु को नमाने वाले अनेक साधनों से (संमृजन्ति) शोभित करते हैं। वह (इन्द्रस्य सखा) राजा का मित्र (रथम् आतिष्ठति) रथ पर विराजता है और (विद्वान् एता) विद्वान् इस रथ से (सुमतिम् अच्छ याति) आदर प्राप्त करता है।

स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा नो वरिवस्या पुनानः ॥ ३ ॥

भा०—हे (देव) विद्वन्! हे (सोम) अभिषिक्त! तू (नः) हमारे (देव-ताते) वीरों से किये जाने योग्य संग्राम में (महे प्सरसे) महान् ऐश्वर्य के लिये (पवस्व) आगे बढ़। तू (इन्द्र-पानः) ऐश्वर्य का पालक है। (अपः कृण्वन् द्याम् वर्षयन्) जलदाता मेघ के तुल्य (अपः कृण्वन्) काम करता हुआ (उत इमाम् द्याम्) और सेना से शस्त्रों की वर्षा करता हुआ (उरोः) विशाल राष्ट्र से (पुनानः) शत्रु को भगाता हुआ (नः वरिवस्य) हमें ऐश्वर्य प्रदान कर।

अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते।
तदुशन्ति विश्व इमे सखायस्तदहं वश्मि पवमान सोम ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान सोम) राष्ट्र को स्वच्छ करने वाले शासक! तू (अजीतये) कभी पराजित न होने और शत्रु को विजयी न होने देने के लिये, (अहतये) प्रजा को पीड़ित न होने देने के लिये, (स्वस्तये) सुख कल्याण के लिये और (बृहते विश्वतातये) बड़े भारी विश्वकल्याण के लिये (पवस्व) उद्योग कर। (इमे विश्वे सखायः) ये समस्त मित्रगण (तत् उशन्ति) वही सब चाहते हैं और (अहं तत् वश्मि) यही मैं भी चाहता हूँ।

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥६॥

भा०—(सोमः) सबका स्वामी, (पवते) सर्वत्र व्यापता है वह (महीनां जनिता) बुद्धियों का उत्पादक है। (दिवः जनिता) वही आकाशस्थ जगत् को प्रकट करता है। वही (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी का उत्पादक है। वह (अग्निः जनिता) अग्नि का प्रकाशक है। वह (सूर्यस्य जनिता) सूर्य का उत्पादक है। (इन्द्रस्य जनिता) वह ऐश्वर्य आदि का उत्पादक। (उत विष्णोः) और वही वायु का भी उत्पादक है। इति षष्ठो वर्गः॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन्॥६॥

भा०—वह (सोमः) शास्ता ही (रेभन्) उपदेश करता हुआ (पवित्रम् अति एति) पावन पद को प्राप्त करता है। वह (देवानां ब्रह्मा) विद्वानों के बीच ब्रह्मा के समान विद्वान् हो। वह (कवीनां पदवीः) क्रान्तदर्शी विद्वानों के बीच श्रेष्ठ पद को प्राप्त करने वाला हो। वह (विप्राणां ऋषिः) विद्वान् पुरुषों के बीच सत्य का द्रष्टा हो। वह (मृगाणां महिषः) पशुओं के बीच सिंह के समान महान् हो। (गृध्राणां श्येनः) वह पक्षियों के बीच बाज के समान पराक्रमी हो। (वनानां स्वधितिः) वनों के बीच कुठार तुल्य शत्रुओं के छेदन-भेदन में कुशल हो।

(२) अध्यात्म में—ज्ञान के प्रकाशक इन्द्रियों में आत्मा ही बलशाली होने से 'ब्रह्मा' है। देहावधि को क्रान्त कर देखने से इन्द्रिय ही 'कवि' हैं उनको लक्ष्य पद तक पहुँचाने और उनके ज्ञान को देखने वाला आत्मा 'पदवी' है। ज्ञान-कर्म के साधक 'विप्र' इन्द्रियें हैं उनका द्रष्टा 'ऋषि' आत्मा है। विषयों को खोजने वाले इन्द्रियगण के बीच वह आत्मा बलवान् होने से 'महिष' है। विषयों की लिप्सा वाले इन्द्रिय 'गृध्र' हैं, उनमें प्रशंसनीय आत्मा 'श्येन' है। भोग्यों को भोगने वाली इन्द्रियां 'वन' है, उनको शक्ति से धारने वाला आत्मा 'स्वधिति' है।

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन्॥ ७॥

भा०—(पवमानः सोमः) उत्तम शासक (सिन्धुः ऊर्मिं न) तरंग को नदी प्रवाह के तुल्य (वाचः ऊर्मिम्) वाणी के ज्ञान को प्रकट करता है। वह (गिरः) उपदेशों और (मनीषाः प्रावीविपद्) बुद्धियों को प्रकट करता है। वह (जानन्) ज्ञानवान् (गोषु वृषभः) गौओं में बलशाली सांड के समान, (गोषु) इन्द्रियगण में (वृषभः) बलदायक है। वही (अन्तः पश्यन्) भीतर देखता हुआ (इमा) इन (अवरा) गौण (वृजना) अनेक आत्मिक बलों को (आतिष्ठति) धारण करता है।

स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यंशोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (मत्सरः) सबको सन्तुष्ट करने वाला, (अवातः) सूर्य तुल्य कभी न बुझने वाला (सहस्र-रेताः) सहस्रों बलवीर्यों से युक्त होकर (पृत्सु वन्वन्) संग्रामों में शत्रु का नाश करता हुआ (वाजम् अभि अर्ष) ऐश्वर्य को प्राप्त कर। तू (मनीषी) बुद्धिमान् (इन्द्राय) परमैश्वर्य पद के लिये बढ़ता हुआ, (गाः इषण्यन्) भूमियों को चाहता हुआ (अंशोः ऊर्मिम् ईरय) व्यापक प्रभु के ज्ञान को प्राप्त करे।

परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥९॥

भा०—वह (सोमः) सर्वशास्ता, (कलशे प्रियः) राष्ट्र में सर्वप्रिय (देव-वातः) विद्वानों के बीच वायुवत् बलशाली (रण्वः) रणकुशल होकर (मदाय) सबके सुख के लिये हो। वह (सहस्र-धारः) बलवान्, सबको धारण करने वाला (शत-वाजः) सैकड़ों ऐश्वर्यों एवं वेगों का अध्यक्ष, (इन्दुः) ऐश्वर्यवान्, (वाजी सप्तिः न) अश्वारोही के तुल्य वेगवान् (समना परि जिगाति) संग्रामों को जाता है।

स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद् गातुं ब्रह्मणे पूयमानः॥१०।७॥

भा०—(सः) वह (पूर्व्यः) सबसे पूर्व विद्यमान (वसु-वित्) धनों का प्रापक आत्मा (जायमानः) स्वयं देह में प्रकट होने वाला (मृजानः) पवित्र, अन्यों का पवित्रकारक (अद्रौ) मेघरूप में (अप्सु दुदुहानः) समस्त कामनाओं का प्रदाता (अभिशस्तिपाः) चारों ओर से प्राप्त शत्रुओं से बचाने वाला, (भुवनस्य राजा) समस्त संसार का राजा (पूयमानः) उपासित होकर (ब्रह्मणे गातुम् विदत्) वेदज्ञान को प्राप्त कराता है। इति सप्तमो वर्गः ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥११॥

भा०—हे (सोम) जगत् के शासक ! हे (पवमान) पावन ! (त्वया हि) तेरे सहाय से (नः पूर्वे पितरः) हमारे पहले के पालक शासकादि जन (कर्माणि चक्रुः) अनेकानेक कर्म करते रहे । तू (अवातः) अपराजित होकर (वन्वन्) शत्रुओं का नाश करता हुआ, (परिधीन् अप ऊर्णु) बन्धनों या सीमाओं को खोल दे और (वीरेभिः अश्वैः) वीरों विद्वानों वा प्राणों द्वारा (नः मघवा भव) धनपति हो ।

यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥ १२ ॥

भा०—हे उत्तम शासक ! तू (वयः-धाः) दीर्घ जीवन का दाता (अमित्र-हा) शत्रुओं का नाशक (वरिवः-वित्) धनों का प्रापक है । तू (यथा मनवे अपवेथाः) जैसे ज्ञानवान् पुरुष को नाना पदार्थ प्रदान करे (एव) वैसे ही (हविष्मान्) उत्तम साधनों से युक्त होकर (द्रविणं दधानः) बल को धारण करता हुआ (पवस्व) प्राप्त हो और (इन्द्रे सं तिष्ठ) ऐश्वर्य-

पद पर विराज, (आयुधा नि जनय) शत्रु पर प्रहारक साधनों को उत्पन्न कर।

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१३॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (मधुमान्) ज्ञान आदि से सम्पन्न और (ऋत-वा) तेज से युक्त होकर (अपः वसानः) प्रजा को धारण करता हुआ (अव्ये सानौ अधि) रक्षक के उच्च पद पर विराज कर (घृतवन्ति द्रोणानि) जलसम्पन्न भूमि-भागों को (अव सीद) प्राप्त हो। तू (मदिन्तमः) सबका हर्षदाता (इन्द्र-पानः) ऐश्वर्य रक्षक और (मत्सरः) सबका पालक हो।

वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः १४

भा०—हे उत्तम शासक! तू (शत-धारः) जलधारा वाले मेघतुल्य (शत-धारः) वाणियों का धारक हो और (दिवः वृष्टिं) आकाश से जल वृष्टिवत् (दिवः वृष्टिम्) ज्ञान प्रकाशक-शक्ति को (पवस्व) प्राप्त कर। तू (सहस्र-साः) सहस्रों, ऐश्वर्यों का दाता एवं (वाज-युः) बल, वेगादि का दाता (देववीतौ पवस्व) प्रभु की प्राप्ति के लिये यत्न कर। (कलशे) अभिषेक घट में (सिन्धुभिः) बहती जलधाराओं से (सं वावशानः) सबको अच्छा लगता हुआ वा (कलशे) राष्ट्र में (सिन्धुभिः) अश्वों से (वावशानः) सबको वश करता हुआ, (उस्रियाभिः) दुग्धधाराओं के तुल्य समृद्धियों से (नः आयुः सं प्रतिरन्) हमारे जीवन की वृद्धि कर।

एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः।
पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥१५॥८॥

भा०—(एषः स्यः सोमः) यह वह विद्वान्, (मतिभिः) मतिमान् पुरुषों से (पुनानः) पवित्र होता हुआ, (वाजी अत्यः न) बलवान् अश्व के

समान बल से युक्त (अरातीः इत् तरति) शत्रुओं को पार करता है। इस प्रकार (दुग्धं पयः न) दूध के समान पवित्र वह शासक (अदितेः इषिरम्) माता पिता को पुत्रवत् प्रजा को प्रिय हो जाता है, वह (उरु इव गातुः) पथ के समान सबको उद्देश्य तक पहुँचाने वाला और (सुयमः वोढा न) यम नियम वाला ब्रह्मचारी, विवाह करने वाले के समान दृढ़ वा (सुयमः न वोढा) भारवाही अश्व वा बैल के समान उत्तम रीति से नियन्त्रित हो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥ १६ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! हे (सोम) विद्वन् ! तू (सोतृभिः पूयमानः) अभिषेककर्तृ जनों से अभिषिक्त होता हुआ (सु-आयुधः) उत्तम हथियारों से सम्पन्न, (गुह्यम् चारु नाम अभि अर्ष) बुद्धि में स्थित सुन्दर नाम को प्राप्त हो। तू (सप्तिः इव) अश्व के समान बलवान् (सप्तिः) सात राष्ट्र प्रकृतियों सहित (श्रवस्या) ज्ञान की इच्छा से प्रेरित होकर (वाजम् अभि अर्ष) ऐश्वर्य प्राप्त कर और (वायुम् अभि अर्ष) हमें प्राणवत् प्रिय गुरु को प्राप्त करा और (गाः अभि) मधुर वाणियों को प्राप्त कर।

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १७ ॥

भा०—जैसे (हर्यतम्) कान्तियुक्त, (जज्ञानं शिशुम्) उत्पन्न हुए बालक को (मृजन्ति) जलादि से स्वच्छ और (शुंभन्ति) सुशोभित करते हैं वैसे (मरुतः) वीर प्रजाजन, (गणेन) गण बना कर (जज्ञानं) नव उदीयमान (हर्यतं वह्निं) कार्यभार वहन करने में समर्थ पुरुष को (मृजन्ति, शुंभन्ति) स्नान कराते और अलंकृत करते हैं। वह (कविः) क्रान्तदर्शी, (गीर्भिः) उत्तम वाणियों से और (काव्येन) ज्ञान एवं कर्म समूह से (कविः) मेधावी (सन्) होकर (रेभन्) उपदेश करता हुआ (सोमः) विद्वान् (पवित्रम् अति एति) परम पावन पद को प्राप्त होता है।

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥१८॥

भा०—(यः) जो (ऋषि-मनाः) सत्यार्थद्रष्टा, (ऋषिकृत्) मन्त्रार्थ द्रष्टाओं का उत्पादक (सहस्र-नीथः) सहस्रों वाणियों का ज्ञाता (कवीनां पदवीः) विद्वानों में परमपद को प्राप्त होता है। वह (सिपासन्) अन्यों को ज्ञानैश्वर्य देता हुआ (स्तुप्) उपदेष्टा, (महिषः) महान् (सोमः) विद्वान् होकर (विराजम् अनु) दीप्तिमान् सूर्य के अनुसार (तृतीयं धाम) सर्वोत्कृष्ट पद को प्राप्त करता है।

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१९॥

भा०—(चमू-सत्) सेनाओं पर अध्यक्षवत् विराजने वाले सेनापति के तुल्य (चमूषत्) विषयों के भोक्ता, इन्द्रिय, मन, देह के ऊपर अध्यक्षवत् वशीकर्त्ता, (श्येनः) शंसनीय आचार वाला, (शकुनः) शक्तिमान्, अन्यों को भी उन्नत पद पर ले जाने में समर्थ और शत्रुओं को उत्पीड़न करने वाला, (विभृत्वा) सर्वत्र विहार करने वाला वा प्रजा को विशेष रूप से भरण पोषण करने में समर्थ (गोविन्दुः) वेद वाणियों और भूमियों को सूर्य रश्मिवत् धारण करने वाला, तेजस्वी, (द्रप्सः) द्रुतगति वाला, वीर्यवान् होकर (आयुधानि बिभ्रत्) नाना शस्त्रों उपकरणों को धारण करता हुआ, साधनसम्पन्न, (महिषः) महान् शक्तिशाली होकर, (अपाम् ऊर्मिम् सचमानः) जलों के तरंग के तुल्य प्रजा वर्गों के उत्तम बल को प्राप्त करता हुआ, (समुद्रं) समुद्रवत् महान्, सर्व रसों के आकर (तुरीयं धाम) चतुर्थ धाम, परम पद प्रभु को (विवक्ति) प्राप्त होता है।

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वोऽ३रा विवेश ॥२०॥९॥

भा०—वह (शुभ्रः मर्यः न) सुशोभित युवा पुरुष के समान अपने (तन्वं मृजानः) देह रूप को अलंकृत करता हुआ, (धनानां सनये) धनों के देने वाले के लिये (अत्यः सृत्वा न) वेगवान् अश्व के समान सदा सरण या आक्रमण करने में तैयार, (यूथा वृषा इव) गोयूथ में वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट, होकर (कोशम् परि अर्षन्) खड्ग वा धनकोश को प्राप्त करता हुआ, (कनिक्रदत्) शत्रुओं को ललकारता हुआ, वीरवत् (चम्वोः अविवेश) दोनों सेनाओं के बीच प्रवेश करे। इसी प्रकार विद्वान् उपदेष्टा होकर (चम्वोः) स्त्री पुरुषों के बीच प्रवेश करे। इस मन्त्र में जीव का गर्भाशय में प्रवेश भी कहा है। इति नवमो वर्गः ॥

पव॑स्वेन्दो॒ पव॑मानो॒ महो॑भिः॒ कनि॑क्रद॒त्परि॒ वारा॑ण्यर्ष।
क्रीळ॑ञ्च॒म्वो॒३॒॑रा वि॑श पू॒यमा॑न॒ इन्द्रं॑ ते॒ रसो॑ मदि॒रो म॑मत्तु ॥२१॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन्! तू (महोभिः पवमानः) बड़ों से अभिषिक्त होकर (पवस्व) हमें प्राप्त हो। (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, (वाराणि परि अर्ष) शत्रु-वारण में समर्थ बलों को प्राप्त कर। (पूयमानः) अभिषिक्त होकर तू (चम्वोः) सेनाओं में वीरवत् राजा प्रजावर्ग के बीच (आविश) प्रवेश कर। (ते रसः) तेरा बल (मदिरः) हर्षकारी होकर (इन्द्रम् ममत्तु) राजा का आह्लादक हो।

प्रास्य॒ धारा॑ बृह॒तीर॑सृग्रन्न॒क्तो गोभिः॑ क॒लशाँ॒ आ वि॑वेश।
साम॑ कृ॒ण्वन्त्सा॒मन्यो॑ विप॒श्चित्क्रन्द॑न्नेत्य॒भि सख्यु॒र्न जा॒मिम् २२

भा०—(अस्य धाराः बृहतीः) इसको बड़ी २ शक्तियां (प्र असृग्रन्) अच्छी प्रकार प्राप्त हों। फिर वह वीर विद्वान् (गोभिः अक्तः) वाणियों द्वारा चन्द्रवत् (कलशान् आ विवेश) कलशों के बीच स्नानार्थ प्रवेश करे। वह (विपश्चित्) ज्ञान और कर्म का ज्ञाता (सामन्यः) सर्वत्र समान व्यवहार में कुशल होकर और (साम कृण्वन्) सम्यग् व्यवहार करता

हुआ एवं (क्रन्दन्) उत्तम उपदेश करता हुआ, (सख्युः न जामिम्) सबको मित्र के बन्धु के तुल्य (अभि एति) स्नेह से प्राप्त करे ।

अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥२३॥

भा०—हे (पवमान) अभिषेक योग्य ! तू (इन्दुः) तेजस्वी होकर (अभि-गीतः) स्तुति किया जाता हुआ, (जारः प्रियां न) स्त्री की आयु को अपने आयु के साथ जीर्ण करने वाला पुरुष जैसे अपनी पत्नी को प्राप्त होता है वैसे ही तू (शत्रून् अपघ्नन्) शत्रुओं को मारता हुआ अपनी (प्रियां) प्रिय प्रजा को (एषि) प्राप्त हो । तू (शकुनः नः पत्वा) बाज के समान आक्रमणकारी होकर (वनेषु सीदन्) ऐश्वर्यों से तेजस्वी होकर (सोमः) शासक रूप से (कलशेषु पुनानः) कलशों के बीच अभिषिक्त हुआ (सत्ता) सर्वाध्यक्ष पद पर विराजे ।

आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्वचिक्रदत्कलशे देवयूनाम् ॥२४।१०।५॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! (पवमानस्य ते रुचः) अन्यों को पवित्र करने वाले तेरी कान्तियां और अभिलाषाएं एवं (योषा इव) स्त्री-तुल्य (सु-दुघाः) आनन्द प्रदान करने वाली (सु-धाराः) उत्तम वाणियां (आयन्ति) सब ओर फैलें। (हरिः) दुःखहर्ता (पुरु-वारः) वरण करने योग्य होकर (अप्सु आनीतः) प्रजाओं के बीच लाया जावे। वे (देवयूनां कलशे) राजा को चाहने वालों के राष्ट्र में (अचिक्रदत्) शासन करे । ऐसे ही विद्वान् पुरुष (देवयूनां कलशे) शुभ गुणों के आकांक्षी, जनों में उपदेश करे । इति दशमो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[९७]

ऋषिः—१—३ वसिष्ठः । ४—६ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः । ७—९ वृषगणो वासिष्ठः । १०—१२ मन्युर्वासिष्ठः । १३—१५ उपमन्युर्वासिष्ठः । १६—१८

व्याघ्रपाद्वासिष्ठः । १९—२१ शक्तिर्वासिष्ठः । २२—२४ कर्णश्रुद्वासिष्ठः । २५—२७ मृळीको वासिष्ठः । २८—३० वसुक्रो वासिष्ठः । ३१ ४४ पराशरः शाक्तः । ४५—४८ कुत्सः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१,६,१० १२, १४, १५, १९, २१, २५, २६, ३२, ३६, ३८, ३९, ४५, ४६, ५२, ५४, ५६ निचृत् त्रिष्टुप्। २—४, ७, ८, ११, १६, १७, २०, २३, २४, ३३, ४८, ५३ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, १३, २२, २७—३०, ३४, ३५, ३७, ४२—४४, ४७, ५७, ५८ त्रिष्टुप् । १८, ४१, ५०, ५१, ५५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ३१, ४९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४० भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ अष्टापञ्चाशदृचं सूक्तम् ॥

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥ १ ॥

भा०—(देवेभिः पूयमानः देवः) तेजस्वी पुरुषों से अभिषिक्त पुरुष (प्रेषा) उन्नति की ओर प्रेरक (हेमना) सुवर्णरूप साधन से (अस्य रसम्) राष्ट्र के बल को (सम् अपृक्त) अच्छी प्रकार जोड़ दे । वह (सुतः) अभिषिक्त होकर (रेभन्) शासन करता हुआ (पवित्रम् परि एति) पवित्र पद को प्राप्त करता है । उस समय वह (होता) सबको बुलाने वाला, (मिता इव पशुमन्ति सद्म परि एति) बने हुए पशुओं से युक्त गृहों को प्राप्त होता है ।

भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२॥

भा०—वह (महान् कविः) गुणों में महान् (भद्रा) कल्याण सूचक, (समन्या वस्त्रा वसानः) संग्राम योग्य वस्त्रों का धारक (निवचनानि शंसन्) निश्चित वचनों का उपदेश करता हुआ, (चम्वोः पूयमानः) दो सेनाओं के बीच अभिषिक्त होता हुआ, सेनापति के तुल्य (देव-वीतौ

जागृविः) वीरों एवं शुभ गुणों की प्राप्ति में (जागृविः) जागने वाला, (विचक्षणः) ज्ञान का द्रष्टा होकर (आ वच्यस्व) प्राप्त हो।

समु॑ प्रि॒यो मृ॑ज्यते॒ सानो॒ अव्ये॑ य॒शस्त॑रो य॒शसां॒ क्षैतो॑ अ॒स्मे।
अ॒भि स्व॑र॒ धन्वा॑ पू॒यमा॑नो यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३॥

भा०—(अस्मे) हमारे द्वारा (अव्ये सानौ) भूमि के सर्वोच्च प्रजा-पालक पद पर (प्रियः) सर्वप्रिय, (यशसां यशस्तरः) यशस्वी जनों में अधिक यशस्वी, (क्षैतः) भूमि का ही निवासी पुरुष (संमृज्यते) अभिषेक किया जाना उचित है। हे उत्तम शासक! तू (पूयमानः) अभिषिक्त होता हुआ, (धन्वस्व) मेघवत् इस भूमि में (अभि स्वर) सर्वत्र घोषणा कर। हे विद्वान् पुरुषों! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा सुखकारी उपायों से पालन करो।

प्र गा॑यता॒भ्य॑र्चाम दे॒वान्त्सोमं॑ हिनोत मह॒ते धना॑य।
स्वा॒दुः प॑वाते॒ अति॒ वार॒मव्य॒मा सी॑दाति क॒लशं॑ देव॒युर्नः॑ ॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषों! आप लोग (प्र गायत) उत्तम रीति से गान करो, हम लोग (देवान् प्र अर्चाम) विद्वानों का आदर करें। आप लोग (महते धनाय) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (प्र हिनोत) प्रेरित करो। वह (स्वादुः) 'स्व' ऐश्वर्य को ग्रहण करने में समर्थ होकर (अव्यं वारम्) रक्षक के वरणीय पद को, (पवाते) प्राप्त करे। वह (देवेयुः) विद्वानों को चाहता हुआ, (नः कलशम् आ सीदति) हमारे स्नान योग्य कलश के नीचे विराजे। हम उसका अभिषेक करें।

इन्दु॑र्दे॒वाना॒मुप॑ स॒ख्यमा॒यन्त्स॒हस्र॑धारः पवते॒ मदा॑य।
नृ॒भिः स्तवा॑नो॒ अनु॒ धाम॒ पूर्व॒मग॒न्निन्द्रं॑ मह॒ते सौभ॑गाय ॥५।११॥

भा०—(इन्दुः) तेजोयुक्त प्रभु का उपासक जीव, राजावत् (देवा-नाम् सख्यं आयन्) विद्वानों के मैत्री भाव को प्राप्त (सहस्रधारः) सहस्रों

स्तुतियों वाला होकर (मदाय) परमानन्द के लिये यत्न करे। वह (नृभिः स्तवानः) मार्गदर्शी जनों द्वारा उपदेश प्राप्त करता हुआ (पूर्वम् धाम अनु) पूर्व जन्म के अनुसार (महते सौभगाय) बड़े भारी ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (इन्द्रम् अगन्) परमेश्वर को प्राप्त हो। इति एकादशो वर्गः ॥

स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रम्मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (हरिः) उत्तम प्रजा का दुःखहारी होकर (पुनानः) राष्ट्र को निष्कण्टक करता हुआ, (स्तोत्रे राये) स्तुति योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त कर। (ते मदः) तेरा हर्ष (भराय) संग्राम के (इन्द्रं गच्छतु) प्रभु को प्राप्त हो। तू अपने (देवैः) वीरों सहित (सरथं) रथ से युक्त वीर सेनापतिवत् (राधः अच्छ याहि) आराध्य प्रभु को प्राप्त कर। हे विद्वान् जनों (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा आप लोग उत्तम उपायों से पालन करो।

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ ७ ॥

भा०—(देवः) ज्ञान का प्रकाशक, तेजस्वी पुरुष (उशनाः इव) सूर्यतुल्य स्वतः इच्छावान् होकर (काव्यम् प्रब्रुवाणः) विद्वान् कवि जनों तथा वेदज्ञान का प्रवचन करता हुआ (देवानां जनिम विवक्ति) विद्वान् जनों के बीच तत्व ज्ञान का प्रवचन करे। वह (महिव्रतः) बड़ा व्रतनिष्ठ, (शुचि-बन्धुः) शुद्ध पवित्र नियम-बन्धनादि से युक्त और (पावकः) परम-पावन गुरु, (वराहः) उत्तम वचनों का उपदेष्टा बन कर (रेभन्) उपदेश करता हुआ (पदा अभि एति) उत्तम पदों को प्राप्त हो।

प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं१ पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ॥ ८ ॥

भा०—(हंसासः) हंसों के समान सत् और असत् का विवेक करने वाले विद्वान् और वीर (वृषगणाः) बलवान् जन, (अमात्) सांसारिक दुःख और शत्रु वर्ग से भयभीत होकर (अस्तं मन्युम्) ज्ञानवान् शत्रु के स्तम्भक (तृपलं) क्षिप्र कार्यकारी (तं) प्रभु को (अयासुः) प्राप्त होते हैं। वे (सखायः) उसके मित्र होकर (आंगूष्यं) सबसे शरणवत् प्राप्त (पवमानं) परम पावन (दुर्मर्षः) असह्य विक्रमशील, (वाणम्) शत्रुनाशक पुरुष को प्राप्त कर (साकं प्र वदन्ति) उसका गुण गाते हैं।

स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान्, शासक (उरुगायस्य) महान् स्तुति वाले प्रभु के (जूतिम्) सेवनीय मार्ग को शिष्यवत् (रंहते) प्राप्त करता है। (वृथा क्रीडन्तं) अनायास लोकों में विचरण करते हुए उसको (गावः न मिमते) वाणियें वर्णन नहीं कर सकतीं और ये लोक माप नहीं सकते। वह (हरिः) तेजस्वी सूर्य के समान (तिग्म-शृङ्गः) तेजस्वी होकर (परीणसं कृणुते) ऐश्वर्य वा महान् कार्य करता है वह (दिवा नक्तम्) दिन और रात (ऋज्रः) तेजस्वी होकर (ददृशे) दिखाई देता है।

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१०॥१२

भा०—वह (इन्दुः) तेजस्वी, (वाजी) बलवान्, (सोमः) उत्तम शासक, (गोन्योघाः) जनसमूह का स्वामी होकर (सहः इन्वन्) शत्रु-पराजयकारी बल को संचालित करता हुआ (इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त राज्य के निमित्त (पवते) सज्जनों का उपकार करता है। वह (रक्षः हन्ति) दुष्टों को दण्ड देता है (अरातीः परा बाधते) ऋण न देने वाले शत्रुओं और अपराधियों को पीड़ित करता है। वह (वृजनस्य राजा) बल का राजा,

होकर (वरिवः कृण्वन्) धनैश्वर्यं सम्पादन करता हुआ विराजता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥११॥

भा०—(अध) और (मध्वा धारया पृचानः) मधुर वाणी से युक्त होता हुआ वह (अद्रि-दुग्धः) ज्ञान से परिपूर्ण होकर (रोम) ब्रह्मचर्य काल में गृहीत मृगाजिन वा आविक कम्बलादि को (तिरः पवते) एक ओर कर देता है और वह (इन्दुः) आह्लादक होकर (इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः) ज्ञान-दाता के मित्र भाव का सेवन करता हुआ (देवः) तेजस्वी (मत्सरः) सबका हर्षदाता होकर (देवस्य मदाय) गुरु के हर्ष का कारण होता है। इसी प्रकार (देवः) ऐश्वर्यादि का इच्छुक जीव उपास्यदेव का सख्य प्राप्त करता हुआ ज्ञान से पूर्ण होकर (रोम तिरः पवते) रोम से आवृत देहबन्धन को दूर करता है।

अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१२॥

भा०—(स्वेन रसेन) आनन्द रस से सब (देवान्) देवों, बल, धन आदि की कामना करने वाले जनों को संयुक्त करता हुआ, (पुनानः) पवित्र होता हुआ और (देवः) ज्ञान बलैश्वर्यप्रद साधक विद्वान् (ऋतुथा) काल वा ऋतु के अनुसार (प्रियाणि धर्माणि अभि वसानः) सबके प्रिय धारक यत्नों वा साधनों को धारण करता हुआ, (इन्दुः) तेजस्वी होकर, (अव्यै सानौ) सर्वरक्षक पद पर (दश क्षिपः) आशु काम करने वाले दश प्राणों को राजा दश प्रकृतियों के समान (अव्यत) प्राप्त करे।

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥१३॥

भा०—वह आत्मा (वृषा) सुखों का वर्षक, (शोणः) तेजस्वी, (गाः अभि कनिक्रदद्) वाणियों का उपदेश करता हुआ, (पृथिवीम् उत द्याम्) भूमिस्थ प्रजा और राजसभा को (नदयन्) अपने अनुकूल ध्वनित करता हुआ आता है। (आजौ) युद्ध एवं सर्वोपरि पद पर (इन्द्रस्य इव) मेघ के तुल्य (वग्नुः आशृण्वे) गम्भीर वचन, सर्वत्र सुनाई देवे, तब वह (इमाम् वाचम् प्रचेतयन् अर्षति) उत्तम ज्ञान देता हुआ वाणी को प्रकट करता है।

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम्।
पवमानः सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥१४॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! तू (रसाय्यः) ज्ञानरस से तृप्त (पयसा पिन्वमानः) परिपोषक जल से सेवित (मधुमन्तं अंशुम्) मधु से युक्त शान्तिदायक मधुपर्क को प्राप्त करता अन्य के प्रति (ईरयन्) प्राप्त कराता हुआ (एषि) प्राप्त होता है और तू (पवमानः) आगे बढ़ता हुआ, (इन्द्राय परि सिच्यमानः) ऐश्वर्ययुक्त राज्य पद के लिये अभिषिक्त होता हुआ (सन्तनिं कृण्वन्) सन्तानवत् विस्तृत प्रजाजन को (कृण्वन्) अपनाता हुआ (एषि) प्राप्त हो।

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नैः।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः १५।१३

भा०—हे (सोम) राजन् ! तू (उद-ग्रामस्य) अभिषेचक प्रजाजन के (मदाय) हर्षोत्सव के लिये (एव पवस्व) इस राष्ट्र को प्राप्त कर और कष्टों से रहित कर। (वधस्नैः) अपने दुष्ट नाशक साधनों से, (नमयन्) सब को विनय से नीचा करता हुआ (रुशन्तं वर्णम्) वरण योग्य अपने तेजस्वी रूप को, (परि भरमाणः) परिपुष्ट करता हुआ, (गव्युः) भूमि और वाणियों को चाहता हुआ (परि सिक्तः) अभिषिक्त होकर (नः अर्ष) हमें प्राप्त हो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

जुष्ट्वी न॑ इन्दो सु॒पथा॑ सु॒गान्यु॒रौ प॑वस्व वरि॒वांसि कृ॒ण्वन् ।
घ॒नेव॒ विष्व॑ग्दुरि॒तानि॑ वि॒घ्नन्नधि॒ ष्णुना॑ धन्व॒ सानो॒ अव्ये॑ ॥१६॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्य से सम्पन्न ! तू (सुपथा) उत्तम मार्ग से (नः) हमारे (सुगानि वरिवांसि) सुख से प्राप्य धनों को (जुष्ट्वी) प्राप्त होकर उनको (नः) हमारे लिये भी (सुगानि कृण्वन्) सुख से प्राप्य करता हुआ अथवा (सुगानि सुपथा जुष्ट्वी) सुख से गम्य वैदिक मार्गों को सेवन करके (उरौ) बड़े भारी परिमाण में (नः वरिवांसि कृण्वन्) धनैश्वर्य प्रदान करता हुआ, (विश्वक्) सर्वत्र (घना इव दुरुतानि विघ्नन्) घनीभूत बुरे पापाचारों को विनष्ट करता हुआ (स्नुना) अपनी प्रवाही, पवित्रकारक धारा से (अव्ये सानो अधि धन्व) रक्षकोचित पद पर प्राप्त हो ।

वृ॒ष्टिं नो॑ अर्ष दि॒व्यां जि॑ग॒त्नुमिळा॑वतीं शं॒गयीं॑ जी॒रदा॑नुम् ।
स्तुके॑व वी॒ता ध॑न्वा विचि॒न्वन्बन्धूँ॑रि॒माँ अव॑राँ इन्दो वा॒यून् ॥१७॥

भा०—हे (इन्दो) जीव को प्रेमरस के दाता ! तू (नः) हमारे लिये, (जिगत्नुम्) आने वाली, (इडावतीम्) अन्न से युक्त, (शं-गयीं) शान्तिदायक (जीरदानुम्) जीवनप्रद (दिव्या वृष्टिं अर्ष) दिव्य वृष्टि प्रदान कर । तू (इमान् अवरान् बन्धून्) इन अपने से अन्य, पद, मान, शक्ति वाले सम्बन्ध से बद्ध, (वायून्) वायुवत् बलवान् जनों को (स्तुका इव वीता) पुत्रों के समान प्रिय जानकर (विचिन्वन्) संग्रह करता हुआ (धन्व) प्राप्त कर ।

ग्र॒न्थिं न वि ष्य॑ ग्रथि॒तं पु॑ना॒न ऋ॒जुं च॑ गा॒तुं वृ॑जि॒नं च॑ सोम ।
अत्यो॒ न क्र॑दो॒ हरि॒रा सृ॑जा॒नो मर्यो॑ देव धन्व प॒स्त्या॑वान् ॥१८॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (पुनानः) पवित्र करता हुआ (ग्रथितं) बद्ध जीव को (ग्रन्थिं न) गांठ के समान (वि स्य) मुक्त कर और

(ऋजुं च गातुम्) सरल मार्ग को (वि स्य) खोल दे और (वृजिनं च) गन्तव्य मार्ग को खोल, (वृजिनं) वर्जनी पाप का भी (वि स्य) अन्त कर। तू (हरिः) दुःखहारी (अत्यः न क्रदः) अश्व के समान सबसे पार होकर, (आ सृजानः मर्यः) आदरणीय पद पर स्थापित मनुष्य के तुल्य (पस्त्यावान्) गृहपति के तुल्य लोकों का स्वामी होकर (धन्व) प्राप्त हो।

जुष्टो मदाय देवताति इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्दो) हे तेजस्विन् ! तू (देव-ताते) विद्वानों द्वारा विस्तारित यज्ञ में (मदाय: जुष्टः) आनन्द के लिये उपासित होकर (अव्ये सानौ) परमोच्च पद पर (स्नुना) आनन्द रस से (परि धन्व) प्राप्त हो। तू (सहस्र-धारः) सहस्रों धाराओं से बरसने वाले मेघ के समान सहस्रों धारक शक्तियों से सम्पन्न होकर (सुरभिः) सुख से कार्यों का आरम्भ करने वाला, (अदब्धः) अहिंसित होकर (नृ-सह्ये वाज-सातौ) मनुष्यों द्वारा विजय करने योग्य जीवन-संग्राम में (परि स्रव) आगे बढ़।

अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै २०।१४

भा०—(ये) जो (अरश्मानः) बन्धनों से रहित, (अरथाः) रमण करने योग्य देहों से रहित, (अयुक्ताः अत्यासः न) रथों में न जुते अश्व के समान असक्त, (आजौ ससृजानासः) युद्ध में छुटे अश्वों के तुल्य (आजौ) प्राप्तव्य पद के लिये (ससृजानासः) तैयार होते हुए (एते शुक्रासः सोमाः) ये शुद्ध ऐश्वर्यवान् सौम्य गुण वाले (देवासः) तेजस्वी जन (धन्वन्ति) आ रहे हैं। (पिबध्यै तान्) उनसे ज्ञानरस पान करने के लिये उन तक (उपयात) पहुँचो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥२१॥

भा०—हे (सोम) तेजस्विन्! तू (नः) हमारे (देव-वीतिम् अभि) शुभ गुणों से प्राप्य यज्ञ आदि को (परि स्रव) प्राप्त हो। वह (सोमः) उत्तम प्रशासक (चमूषु) सेनापति के तुल्य (चमूषु) प्राणों पर वशी होकर (नभः अर्णः) मेघ जैसे जल को देता है उसी प्रकार वह हमें (नभः) उत्तम शान्तिदायक ज्ञान और (काम्यम्) कमनीय (बृहन्तम्) बड़ा भारी, (वीरवन्तम्) वीरों से युक्त (उग्रम्) उग्र (रयिम्) धन (ददातु) प्रदान करे।

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥२२॥

भा०—(यदि) जब (वेनतः) तेजस्वी विद्वान् (मनसः) ज्ञानी पुरुष की (वाक्) वाणी, (तक्षत्) निकलती है, (वा) अथवा (यदि) जब (धर्मणि) राष्ट्रधारक (अनीके) प्रमुख पद पर स्थित (ज्येष्ठस्य) प्रशस्त (क्षोः) प्रभु की (वाक् तक्षत्) वाणी प्रकट होती है, (आत्) तब ही (ईम् इन्दुं) उस तेजस्वी (वरम्) वरणीय (जुष्टं पतिम्) प्रेमयुक्त पालक को (कलशे) राष्ट्र में (गावः आयन्) स्तुतियां प्राप्त होती हैं।

प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः।
धर्मा भुवद्वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥२३॥

भा०—(दानुदः) ज्ञान और ऐश्वर्य का दाता (दिव्यः) ज्ञाननिष्ठ बुद्धि पुरुष (दानु-पिन्वः) दान से सबको पुष्ट करने वाला, (सु-मेधाः) उत्तम से युक्त होकर, गुरुवत् (ऋताय) शिष्य को (ऋतम् पवते) ज्ञान प्रदान करे। वह (वृजन्यस्य) बल का (धर्मा) पालक (राजा) तेजस्वी, (दशभिः रश्मिभिः) दशों दिशाओं में जाने वाली किरणों के तुल्य दशों अमात्यों से (भूम) राष्ट्र को (प्र भारि) पालन पोषण करने में समर्थ होता है।

पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम्।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः ॥ २४ ॥

भा०—वह (इन्दुः) तेजस्वी पुरुष (पवित्रेभिः पवमानः) पवित्र साधनों से राष्ट्र को पवित्र करता हुआ, (नृचक्षाः) सबके शुभाशुभ को देखने वाला राजा एवं प्रभु (देवानाम् उत मर्त्यानम् राजा भुवत्) देवों और मर्त्यों विद्वानों और साधारण जनों का राजा हो जाता है। वह (रयीणां रयिपतिः भुवत्) ऐश्वर्यों का स्वामी हो जाता है। वह (सु-भृतम्) धारण करने योग्य (चारु) उत्तम (ऋतम्) तेज, अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य को (भरत्) धारण करता है।

अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः ।२५।१५

भा०—(श्रवसे अर्वान् इव) अन्न के लिये जैसे 'अश्व', यश वा धन के लिये जैसे अश्वारोही (स-तिम् अच्छ) युद्ध में जाता है, हे विद्वन ! तू भी (श्रवसे) श्रवण करने योग्य वेद ज्ञान के लिये (इन्द्रस्य सातिम् अभि अच्छ) तत्वदर्शी पुरुष से शिक्षा प्राप्त कर। तू (वायोः वीतिम् अभि अर्ष) गुरु से ज्ञान प्राप्त कर। (सः) वह (नः) हमें (सहस्राः बृहतीः इषः) हजारों अन्न सम्पदाएं (दाः) देवे। हे (सोम) राजन् ! तू (पुनानः) अभिषिक्त होता हुआ (नः) हमारे लिये (द्रविणः-वित्) धनैश्वर्य का दाता (भव) हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः २६

भा०—(देवाव्यः न) विद्वानों के रक्षक (परि-सिच्यमानः) अभिषिक्त होते हुए वा बढ़ते हुए, (सोमाः) प्रशासक, उपदेष्टा जन, (सु-वीरं) उत्तम वीरों से युक्त, (क्षयं) ऐश्वर्य और गृह को (धन्वन्तु) प्राप्त हों। (आ यज्यवः) एकत्र होकर सत्संग करने वाले (विश्व-वाराः) सर्वश्रेष्ठ, (होतारः) सुखप्रद (दिवि-यजः) ज्ञानप्रकाश के निमित्त वा राजसभा में एकत्र होकर और (मन्द्र-तमाः) हर्षयुक्त (सु-मातम्) उत्तम ज्ञान को (धन्वन्तु) प्राप्त हों।

एवा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ॥२७॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! (सोम) सबके शासक ! तू (देवताते) वीरों के राष्ट्र में (महे प्सरसे) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये, (देवपानः सन्) पदार्थों और गुणों का पालक होकर (पवस्व) आगे बढ़ । हम लोग (महः चित् हिताः हि स्मसि) तुझ महान् के शासन में स्थिर रहें, और तू (समर्ये) संग्राम, वा सभा-भवन में (पुनानः) अभिषिक्त होकर (रोदसी सु-स्थाने कृधि) राजा-प्रजा वर्ग को सुव्यवस्थित कर ।

अश्वो न क्रन्दो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥२८॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (वृषभिः युजानः) बलवान् जनों के साथ मिलकर (अश्वः न) रथ में अश्व के समान (युजानः) युक्त होकर (सिंहः न भीमः) सिंह के समान भयंकर और (मनसः जवीयान्) मन से भी अधिक वेगवान् होकर (ये) जो मार्ग (रजिष्ठाः) सरल हों, उन (अर्वाचीनैः पथिभिः) प्रत्यक्ष मार्गों से (नः सौमनसम् आ पवस्व) हमें सद्भाव प्रदान कर ।

शतं धारा देवजाता असृग्रन्त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य ॥ २९ ॥

भा०—(देव-जाताः) मेघ से उत्पन्न जलधाराओं के तुल्य 'देव' प्रभु से उत्पन्न (शतम् सहस्रम् धाराः) सौ-हजार (१००,००० = एक लक्ष), अनेक वाणी, (असृग्रन्) उत्पन्न होती हैं । (एनाः कवयः) उनको तत्व-दर्शी (मृजन्ति) सुशोभित करते हैं । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! तू (दिवः) ज्ञान का (सनित्रं) श्रेष्ठ (आ पवस्व) दान कर । तू (महतः) सर्वश्रेष्ठ (धनस्य) धन का पुरः-एता असि) अग्रगन्ता है ।

दिवो न सर्गा असस्रृग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ३०।१६

भा०—(अह्नां सर्गाः नः) दिनों के सृष्टा रश्मियों के तुल्य उस (दिवः) सुखवर्षी प्रभु से (सर्गाः असस्रृग्रन्) सृष्टियां बराबर उत्पन्न हुआ करती हैं। वह (धीरः) जगत् का धारक (राजा) सबका प्रकाशक प्रभु, (मित्रं न प्र मिनाति) मित्रवत् जीव सर्ग को विनष्ट नहीं करते और (पितुः पुत्रः न) पिता के पुत्र के समान (क्रतुभिः) उत्तम कर्मों से यत्न करता रहे। हे प्रभो! तू (अस्यै विशे) इस प्रजा के लिये (अजीतिम् आपवस्व) अविनाशमय रक्षा प्रदान कर। इति षोडशो वर्गः॥

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान्।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः॥ ३१॥

भा०—हे प्रभो! (यत्) जो तू (पूतः) पवित्र होकर (अव्यान् वारान्) प्रकृति के बने आवरणों को पार करके (अत्येषि) विराजता है। (ते मधुमतीः धाराः प्र असृग्रन्) तेरी मधुमयी वाणियां सुखद रूप से प्रकट होती हैं। हे (पवमान) सर्वव्यापक, (गोनाम् धाम पवसे) तू अपनी किरणों के तुल्य वाणियों का तेज प्रदान कर। तू ही (जज्ञानः) प्रकट होकर (सूर्यम् अर्कैः पिन्वः) सूर्य को तेजों से पूर्ण करता है।

कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ३२

भा०—हे प्रभो! तू (ऋतस्य पन्थाम् अनु कनिक्रदत्) सत्य के मार्ग का निरन्तर उपदेश करता हुआ स्वयं (शुक्रः) प्रकाशवान् होकर (अमृतस्य धाम वि भासि) अमृतमय मोक्ष को प्रकाशित करता है। (सः) वह तू (मत्सरवान्) आनन्द से युक्त होकर (कवीनां मतिभिः) कवियों की बुद्धियों द्वारा (वाचं हिन्वानः) अपनी वाणी को बढ़ाता हुआ (इन्द्राय धाम पवसे) जीवों के हितार्थ प्रकाश देता है।

दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥३३॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शास्तः ! (देव-वीतौ) विद्वान् जनों के प्राप्ति स्थानों में (कर्मणा) सत्कर्म के साथ साथ (धाराः पिन्वन्) वाणियों को देता हुआ, तू (दिव्यः) ज्ञान में कुशल, (सुपर्णः) ज्ञानवान् (अव चक्षि) हम पर कृपा कर। हे (इन्दो) हे ऐश्वर्यवन् ! (सोम-धानं कलशं) विद्वान् को उत्तम पद पर स्थापन करने वाले कलशों के मध्य (विश) ज्ञानार्थ प्रवेश कर और (क्रन्दन्) उपदेशादि देता हुआ (सूर्यस्य रश्मिम् उप इहि) सूर्यप्रकाश को प्राप्त कर।

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ३४

भा०—(ऋतस्य धीतिम्) सत्य को धारण करने वाली (ब्रह्मणः मनीषाम्) परमेश्वर की ज्ञानमयी बुद्धि का (वह्निः) धारक विद्वान् (तिस्रः वाचः) साम, ऋचा, यजुः अर्थात् गान, ऋग् और कर्म इनसे युक्त वाणियों का (ईरयति) उपदेश करता है और (गावः) वे वाणियां (पृच्छमानाः) प्रश्न करती हुई (गोपतिं यन्ति) वाणियों के पालक को प्राप्त होती हैं और (मतयः) बुद्धियां एवं स्तुतियां (वावशानाः) चाहती हुई (सोमं यन्ति) उपदेश को स्वतः प्राप्त हो जाती हैं।

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ३५।१७

भा०—(धेनवः) गौओं के समान (गावः) वाणियां वा भूमियां भी (सोमं) ब्रह्मचारी को (वावशानाः) चाहती हुई, (संनवन्ते) विनय से उसे प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार (मतिभिः) मतियों से पूछते हुए (विप्राः) विद्वान् भी (सोमं संनवन्ते) शासक के प्रति झुकते हैं (अज्यमानः) ज्ञान

से प्रकाशित होता हुआ (सुतः) अभिषिक्त होकर ही (सोमः पूयते) सोम पवित्र होता है और (सोमे) उस ऐश्वर्य युक्त में (त्रिष्टुभः अर्काः) तीनों प्रकारों से स्तुति करने वाली अर्चना वाणियां (संनवन्ते) उसकी ओर झुकती हैं। इति सप्तदशो वर्गः ॥

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम् ॥३६॥

भा०—(एव) इस प्रकार हे (सोम) विद्वन् ! तू (परि-सिच्यमानः) सब प्रकार से स्नात होकर (पूयमानः) पवित्र होता हुआ (नः स्वस्ति आपवस्व) हमें सुख दे। (बृहता रवेण) बड़े भारी गर्जन सहित (इन्द्रम् आविश) ऐश्वर्यपद को प्राप्त कर और (वाचं वर्धय) वाणी-बल को बढ़ा। फिर (पुरन्धिम् जनय) राष्ट्रधारक नीति को प्रकट कर।

आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ।३७

भा०—(विप्रः) विद्वान् (जागृविः) जागरणशील (सोमः) शास्ता पुरुष (मतीनां) मननशील पुरुषों के (ऋता) ज्ञानों को (पुनानः) प्राप्त करके (चमूषु) योग्य पदों पर (असदत्) विराजे। (यं) जिसको (मिथुनासः) परस्पर संगत, (नि-कामाः) अति प्रिय, (अध्वर्यवः) प्रजा का अविनाश चाहने वाले (रथिरासः) उत्तम रथी और (सु-हस्ताः) उत्तम हनन साधनों से सम्पन्न पुरुष (सपन्ति) प्राप्त होते हैं।

स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ३८

भा०—(सः) वह शासक (धाता) प्रजापालक होकर (सूरे न धाता) सूर्य के तेज के धारक चन्द्र के तुल्य, सूर्यसदृश तेजस्वी पुरुष के अधीन होकर (उप पुनानः) कार्य करता हुआ (उभे रोदसी आ अप्राः) दोन

लोकों को प्रकाश से पूर्ण करे। (यस्य प्रियसासः ऊती) जिसके सब प्रिय होकर रक्षा के लिये उद्यत हों (सः प्रिया आवः) वह भी सबके प्रिय धनों को भी प्रकट करे और (सः) वह (कारिणे न धनं प्र यंसत्) श्रमी को मजदूरी के तुल्य अपने अधीनों को धन दे।

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत्। येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥ ३९ ॥

भा०—(येन) जिसके द्वारा (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्व के (पदज्ञाः पितरः) परम पद के ज्ञाता पालक, गुरु आदि जन (स्वः-विदः) सुख को प्राप्त होकर (अद्रिम् अभि गाः) मेघ को लक्ष्य कर जैसे चातक या कृषक जलधाराओं को चाहता है वैसे ही जिन्होंने जिससे (गाः उष्णन्) ज्ञान वाणियां और शक्तियां प्राप्त की हैं (सः) वह (पूयमानः) उपासना किया गया (सोमः) सर्वप्रेरक प्रभु (वर्धिता) सबको बढ़ाने वाला (वर्धनः) स्वयं वृद्धिशील, (मीढ्वान्) सुखों का वर्षक, (नः) हमें (ज्योतिषा) प्रकाश से सूर्य वा चन्द्रवत् (अभि आवीत्) प्राप्त हो।

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा। वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥४०।१८॥

भा०—वह (समुद्रः) समुद्रसमान गंभीर, (प्रथमे) सर्वश्रेष्ठ (विधर्मन्) विशेष रूप से धारक इस अन्तरिक्ष में (प्रजाः जनयन्) प्रजाओं, लोकों को उत्पन्न करता हुआ (अक्रान्) सृष्टि रचना करता है। वही (भुवनस्य राजा) जगत् का राजा है। वह (वृषा) सर्व सुखों का वर्षक (पवित्रे) व्यापक (अव्ये) सर्वरक्षक (सानो) पद पर विराजता हुआ, (सुवानः) जगत् का उत्पादक (इन्दुः) प्रभु (सोमः) 'सोम' (बृहत्) महान् है, वही (ववृधे) सबसे बड़ा है।

म॒हत्तत्सोमो॑ महि॒षश्च॑कारा॒पां यद्गर्भोऽवृ॑णीत दे॒वान्।
अद॑धा॒दिन्द्रे॒ पव॑मा॒न ओजोऽज॑नय॒त्सूर्ये॒ ज्योति॒रिन्दुः॑ ॥ ४१ ॥

भा०—वह (महिषः) महान् (सोमः) प्रभु, (तत् महत् चकार) उस महान् आकाश को बनाता है (यत्) जो (अपाम् गर्भः) समस्त प्रकृति के परमाणुओं, जीवों के लिंग-शरीरों को (गर्भः) गर्भवत् होकर (देवान् अवृणीत्) समस्त लोकों को ढक रहा है। वह (पवमानः) सबका प्रेरक प्रभु (इन्द्रे ओजः अजनयत्) विद्युत् में तेज प्रकट करता है, वही (इन्दुः) तेजोमय प्रभु (सूर्ये ज्योतिः अजनयत्) सूर्य में प्रकाश उत्पन्न करता है।

मत्सि॑ वा॒युमि॒ष्टये॒ राध॑से च॒ मत्सि॑ मि॒त्रावरु॑णा पू॒यमा॑नः
मत्सि॒ शर्धो॒ मारु॑तं॒ मत्सि॑ दे॒वान्मत्सि॒ द्यावा॑पृथि॒वी दे॑व सोम ४२

भा०—हे (देव सोम) दानशील तेजस्विन् ! तू (इष्टये राधसे च) अपने इष्ट और धन के लाभ के लिये (वायुम् मत्सि) वायुवत् सर्वप्रिय पुरुष को प्रसन्न कर। (पूयमानः) पवित्र वा अभिषिक्त होता हुआ (मित्रा-वरुणा मत्सि) स्नेही और श्रेष्ठ जनों को प्रसन्न कर। (मारुतं शर्धः मत्सि) वैश्य वर्ग के बलवान् भाग को प्रसन्न कर। (देवान् मत्सि) विद्वानों को प्रसन्न कर (द्यावा-पृथिवी मत्सि) सूर्य-भूमि के तुल्य राजा और प्रजावर्ग को प्रसन्न कर।

ऋ॒जुः प॑वस्व वृ॒जिन॑स्य ह॒न्तापामी॑वां॒ बाध॑मानो॒ मृध॑श्च।
अ॒भि॒श्री॒णन्पयः॒ पय॑सा॒भि गोना॒मिन्द्र॑स्य॒ त्वं तव॑ व॒यं सखा॑यः ४३

भा०—हे विद्वन् ! तू (ऋजुः) सरल होकर (वृजिनस्य हन्ता) उपद्रव का नाशक (अमीवां अप बाधमानः) रोग आदि को दूर करता हुआ और (मृधः च अप बाधमानः) हिंसकों शत्रुओं को नष्ट करता हुआ, (पवस्व) राष्ट्र को पवित्र कर। तू (गोनाम् पयः अभि पयसा श्रीणन्) भूमियों से प्राप्त अन्न को बल से बढ़ाता हुआ, (त्वं इन्द्रस्य सखा) जीव मात्र का मित्र हो और (वयं तव सखायः) हम भी तेरे मित्र हों।

मध्व॒ सूदं॑ पवस्व॒ वस्व॒ उत्सं॑ वी॒रं च॑ न॒ आ प॑वस्वा॒ भगं॑ च ।
स्वद॒स्वेन्द्रा॑य॒ पव॑मान इन्दो र॒यिं च॑ न॒ आ प॑वस्वा समु॒द्रात् ॥४४॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (मध्वः सूदं पवस्व) मधुर अन्न के रस को प्राप्त कर और (नः) हमें (वस्वः उत्सम्) धनैश्वर्य के विकास रूप (वीरं च भगं च) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (आपवस्व) प्राप्त करा । तू (पवमानः इन्द्राय स्वदस्व) अभिषिक्त होकर राज्य का भोग कर और (समुद्रात् नः रयिम् आ पवस्व) समुद्र से हमें रत्नादि धन प्राप्त करा ।

सोमः॑ सु॒तो धार॒यात्यो॒ न हित्वा॒ सिन्धु॒र्न नि॒म्नम॒भि वा॒ज्य॑क्षाः ।
आ योनिं॒ वन्य॑मसदत्पुना॒नः समिन्दु॒र्गोभि॑रसर॒त्सम॒द्भिः ॥४५।१९॥

भा०—(सुतः अत्यः धारया न) प्रेरित अश्व जैसे गति से जाता है वैसे ही (सोमः) विद्वान् (सुतः) अभिषिक्त होकर (धारया) धारणशक्ति से आगे बढ़े । (वाजी सिन्धुः न निम्नम्) वेगवान् नद जैसे नीचे देश में बहता है वैसे ही (वाजी) ज्ञानवान् पुरुष (हित्वा) धारणावान् होकर, (निम्नम् अभि अक्षाः) अपने आगे झुके राष्ट्र को प्राप्त होता है । वह (वन्यं योनिम् आ असदत्) गृहवत् आश्रय पर विराजे । (पुनानः) अभिषिक्त होकर (गोभिः अद्भिः सम् असरत) उत्तम वाणियों और आप्त जनों सहित अच्छी प्रकार आगे बढ़े । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

ए॒ष स्य ते॑ पवत इन्द्र॒ सोम॑श्च॒मूषु॒ धीर॑ उश॒ते तव॑स्वान् ।
स्व॑र्चक्षा र॒थिरः॑ स॒त्यशु॑ष्मः॒ कामो॒ न यो दे॑वय॒ताम॒सर्जि ॥४६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (एषः स्यः) यह वह (उशते ते) कामनावान् तेरे हितार्थ (धीरः) धीर (तवस्वान्) बलवान् (सोमः) शासक विद्वान् (चमूषु पवते) सैन्यों के ऊपर अध्यक्षवत् बढ़ता है । वह (स्वः-चक्षाः) सर्वद्रष्टा, (रथिरः) रथवान् (सत्य-शुष्मः) सत्यबल से युक्त, (यः) जो (देवयतां) विजेता राजा को चाहने वाले जनों का (कामः) इष्ट (असर्जि) बना है ।

एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥ ४७ ॥

भा०—(एषः) यह (प्रत्नेन वयसा) पुराने ज्ञान से (पुनानः) पवित्र करता हुआ और (दुहितुः) सब सुखों को देने वाली बुद्धि के (वर्पांसि) आवरणों को (तिरः दधानः) दूर करता हुआ, (त्रि-वरूथं शर्म वसानः) तीनों तापों के वारक, सुखद शरण में रहता हुआ, (समनेषु रेभन् होता इव) मन्त्रोच्चारणकर्ता होता के समान स्वयं भी (रेभन्) भगवान् की स्तुति करता हुआ (अप्सु याति) लिंग शरीरों में जाता है ।

नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥ ४८ ॥

भा०—(यः) जो (सविता) मार्ग में प्रेरक (सत्य-मन्मा) सत्य चित्त वाला है, वह (त्वम्) तू हे (देव सोम) तेजस्विन् ! (चम्वोः पूयमानः) दोनों प्रकार की बाह्य, भीतरी सेनाओं के बल पर राष्ट्र को पवित्र करता हुआ (रथिरः) महारथी होकर (परि स्रव) प्रयाण कर। तू (अप्सु) प्रजाओं के बीच (स्वादिष्टः) मधुर (मधुमान्) सर्वप्रिय, बलवान् (ऋत-वा) सत्य का धारक हो ।

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ ४९ ॥

भा०—हे शास्तः ! तू (गृणानः) स्तुति किया जाता हुआ, (वीत्या) रक्षण शक्ति से (वायुम् अभि अर्ष) वायु के तुल्य पुरुष को प्राप्त कर (पूयमानः) अभिषिक्त होकर (मित्रा वरुणा) स्नेहवान् जनों को (अभि अर्ष) प्राप्त कर । (रथे-स्थाम्) रथ पर स्थिर (धी-जवनम्) बुद्धि द्वारा वेग से जाने वाले, (नरम्) उत्तम पद को (अभि अर्ष) प्राप्त कर और (वज्र-बाहुम्) बल वीर्य को बाहुओं में धारण करने वाले (वृषणं इन्द्रम् अभि अर्ष) सुखवर्षक रम्य पद को प्राप्त कर ।

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥५०।२०॥

भा०—हे तेजस्विन्! तू (सुवसनानिवस्त्रा) सुख से आच्छादन योग्य वस्त्रों को (अभि अर्ष) धारण कर। (सु-दुघाः धेनूः अभि अर्ष) सुख से दूध देने वाली गौओं को प्राप्त कर। (नः भर्त्तवे) हमारे पोषणार्थ (चन्द्रा हिरण्या अभि) सर्वाह्लादक सुवर्ण आदि धनों को प्राप्त कर और (अश्वान् रथिनः अभि) रथ वाले अश्वों को प्राप्त कर। इति विंशो वर्गः॥

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥ ५१ ॥

भा०—(नः दिव्या वसूनि अभि अर्ष) हमें दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त करा। (पूयमानः) अभिषिक्त होता हुआ तू (नः) हमारे (विश्वा पार्थिवा) समस्त पृथिवीस्थ (वसूनि) धनों को प्राप्त कर (येन) जिससे हम (द्रविणम् अभि अश्नवाम) ऐश्वर्य प्राप्त करें। तू (नः) हमारे बीच (जमदग्निवत्) प्रज्वलित अग्नि वाले गृहपति के तुल्य (आर्षेयं) ऋषियों के ज्ञान धन को प्राप्त कर।

अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥ ५२ ॥

भा०—(अया पवा) उस पावनी शक्ति से तू (एना वसूनि पवस्व) इन वासस्थानों को स्वच्छ कर हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (मांश्चत्वे) शत्रुओं को नाश करने में समर्थ (सरसि) वेगवान् सैन्य बल के आधार पर (प्र धन्व) आगे बढ़। (वातः न) वायु के समान तू (ब्रध्नः) तेजस्वी (जूतः) एवं वेगवान् होकर (पुरु-मेधः चित्) बहुत से शत्रुओं का नाश करता हुआ (तकवे) शरणागत को (नरं दात्) नायक प्रदान कर।

उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥ ५३ ॥

भा०—(उत) और (श्रुते) बहुश्रुत, (तीर्थे) दुःखों से तारने वाले गुरु के (अधि) अधीन रहकर (श्रवाय्यस्य) श्रवण योग्य वेद की (एना) इस (पवया) पवित्र वाणी से (नः पवस्व) हमें पवित्र कर। (नैगुतः) विनीत वाणी बोलने वाले शिष्यजनों का गुरु होकर तू (षष्टिं सहस्रा वसूनि) साठ हजार धनों को (पक्वं वृक्षं न) पके वृक्ष के तुल्य (रणाय धूनवत्) आनन्द के लिये कंपित कर। अर्थात् हम पर पके वृक्ष से फलों के तुल्य ६०००० ऐश्वर्यों के तुल्य ज्ञानों को प्रदान कर।

म॒हीमे अ॑स्य वृष॒नाम॑ शू॒षे मांश्च॑त्वे वा॒ पृश॑ने वा॒ वध॑त्रे।
अस्वा॑पयन्निगु॒तः स्ने॒हय॒च्चाप॒ामित्राँ॒ अप॒ाचितो॑ अचे॒तः ॥ ५४ ॥

भा०—(अस्य) इसके (इमे) ये (वृष-नाम) सुखों की वर्षाने वाली (शूषे) सुख देने वाली, (पृशने) परस्पर लड़ने योग्य (मांश्चत्वे) युद्ध काल में (वधत्रे) शत्रुओं का नाश करने वाली दो सेनाएं हैं। उनसे तू (निगुतः) भ्रष्ट वाणी बोलने वाले दुष्टों को (अस्वापयत्) सुला और (स्नेहयत् च) भगा देता है और (अचितः) अचेत (अमित्रान्) शत्रु जनों को (इतः अप अच) यहां से दूर कर।

सं त्री प॒वित्रा॒ वित॑तान्ये॒ष्यन्वेकं॑ धावसि पू॒यमा॑नः।
असि॒ भगो॒ असि॑ दा॒त्रस्य॑ दा॒तासि॑ म॒घवा॑ म॒घव॑द्भ्य इन्दो ५५।२१

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन्! तू (त्री पवित्रा सम् एषि) पवित्र करने वाले, इन अग्नि, वायु, जलों को एक साथ प्राप्त करता है। तू (पूयमानः) पवित्र होता हुआ (एकम् अनु धावसि) इनमें से एक का अनुधावन करता है। तू (भगः असि) ऐश्वर्यवान् है। तू (दानस्य दाता असि) दान योग्य धन का दाता है। तू (मघवद्भ्यः मघवा असि) धनवानों के धनों का भी स्वामी है। इत्येकविंशो वर्गः॥

ए॒ष वि॑श्व॒वित्प॑वते मनी॒षी सोमो॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ राजा॑।
द्र॒प्साँ ई॒रय॑न्वि॒दथे॑ष्विन्दु॒र्वि वार॒मव्यं॑ स॒मयाति॑ याति ॥ ५६ ॥

भा०—(एषः) यह (विश्ववित्) विश्व का ज्ञाता, (मनीषी) मेधावी (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त लोकों का राजा, (विदथेषु द्रप्सान् ईरयन्) संग्रामों में वेगवान् अश्वों को आगे बढ़ाते हुए सेनापति के समान, (विदथेषु) ज्ञान मार्गों में (द्रप्सान्) आगे बढ़ने वाले जीवगणों को (ईरयन्) प्रेरित करते हुए आ, (समयाति) दोनों प्रकार से (अव्यं वारम् अति याति) रक्षक माता पिता के वरणीय पद से पार कर जाता है।

इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ॥५७॥

भा०—(अदब्धाः) अविनाशी (महिषाः) बड़े २ महात्मा लोग (इन्दुं) उस प्रभु के रस का (रिहन्ति) आस्वादन करते हैं। (गृध्राः कवयः न) धनार्थी कवियों के समान (पदे) उस परम प्रभु के बीच स्थिर होकर (रेभन्ति) स्तुति करते हैं और (अपां रसेन) प्राणों के बल से वे (दशभिः क्षिपाभिः) दशों इन्द्रियों द्वारा उसके प्रकाश का (सम् अञ्जते) साक्षात् करते हैं।

त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥५८॥२२

भा०—हे (सोम) सर्वशासक ! (पवमानेन त्वया) परम पावन तुझसे (भरे) इस संग्राम में (वयम्) हम (शश्वत्) सदा (कृते वि चिनुयाम) अपना किया ही प्राप्त करते हैं (तत्) वही (नः) हमें (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः उत पृथिवी उत द्यौः) वायु, जल, भूमि, नदी, पृथिवी और सूर्य ये पदार्थ और मित्र श्रेष्ठ जन, माता, पिता, पुत्र, प्राण, भूमि सूर्यवत् प्रजा जन और राजा ये सब (मामहन्ताम्) प्रदान करें। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[९८]

अम्बरीष ऋजिष्वा च ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७, १० अनुष्टुप् । ३, ५, ९ निचृदनुष्टुप् । ६, १२ विराडनुष्टुप् । ८ आर्ची स्वराडनुष्टुप् । ११ निचृद् बृहती । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष पुरुस्पृहम्।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभ्वासहम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन्! तू (नः) हमें (वाज-सातमं) अन्न, ज्ञान आदि देने वाला (पुरु-स्पृहम्) बहुतों को अच्छा लगने वाला, (सहस्र भर्णसम्) सहस्रों का पालन करने में समर्थ, (तुवि-द्युम्नम्) बहुत से अन्नों, यशों, तेजों से युक्त, (विभ्वा-सहं) बड़ों २ को जीतने वाला (रयिम् अभि अर्ष) बल, वीर्य प्रदान कर।

परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत।
इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः ॥ २ ॥

भा०—जैसे योद्धा (रथे वर्म न) रथ पर बैठ कर कवच को पहनता है वैसे ही तू (स्यः) वह (सुवानः) अभिषेक प्राप्त करता हुआ (अव्ययं) रक्षक के योग्य (वर्म) सर्व रक्षक पद (परि अव्यत) प्राप्त कर। तू (इन्दुः) तेजस्वी होकर (द्रुणा) द्रुत गति से जाने वाले अश्व वा रथ से (हियानः) जाता हुआ (हितः) पद पर स्थिर होकर (धाराभिः) अपनी वाणियों से (अभि अक्षाः) सर्वत्र अधिकार कर।

परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥ ३ ॥

भा०—(स्यः सुवानः) वह तू अभिषिक्त होता हुआ, (इन्दुः) तेजस्वी (मद-च्युतः) हर्षप्रद होकर (अव्ये परि अक्षाः) बालों के बने राजवेश में रक्षक के पद पर प्राप्त हो। (यः) जो तू (अध्वरे) यज्ञ में यजमान के समान, (ऊर्ध्वः) उच्च-आसनस्थ होकर (भ्राजा न) दीप्ति से सूर्यवत् (गव्ययुः) वाणी और भूमि का स्वामी होकर (धारा एति) अपनी वाणी से प्राप्त होता है।

स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे।
इन्दो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥ ४ ॥

भा०—हे (देव) दानशील ! (त्वम्) तू (सः हि) वही है जो (शश्वते) अनेक (दाशुषे) आत्मसमर्पक (मर्त्ताय) मनुष्य को (वसु विवासि) ऐश्वर्य देता है। वह तू हे (इन्दो) तेज वाले ! (सहस्रिणं) सहस्रों से युक्त और (शतात्मानम्) सैकड़ों धनों वाला (रयिम् विवाससि) ऐश्वर्य प्रदान कर।

व॒यं ते॑ अ॒स्य वृ॑त्रह॒न्वसो॒ वस्वः॑ पुरु॒स्पृहः॑ ।

नि नेदि॑ष्ठतमा इ॒षः स्या॒म॑ सु॒म्नस्या॑ध्रिगो ॥ ५ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक ! हे (वसो) सब में बसने और बसाने वाले ! (वयम्) हम (ते) तेरे (पुरु-स्पृहः वस्वः) बहुतों से चाहने योग्य धन, (इषः सुम्नस्य) अन्न और सुख के (नेदिष्टतमाः) अति समीप (नि स्याम) होवें।

द्विर्यं पञ्च॒ स्वय॑शसं॒ स्वसा॑रो॒ अद्रि॑संहतम् ।

प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्यं॑ प्रस्ना॒पय॑न्त्यू॒र्मिण॑म् ॥ ६ ॥ २३ ॥

परि॒ त्यं ह॑र्य॒तं हरिं॑ ब॒भ्रुं पु॑नन्ति॒ वारे॑ण ।

यो दे॒वान्विश्वाँ॒ इत्परि॒ मदे॑न स॒ह गच्छ॑ति ॥ ७ ॥

भा०—(यम्) जिस (स्वयशसम्) अपने बलवान्, (अद्रि-संहतम्) पर्वत के समान दृढ़ शरीर वाले, (प्रियम्) प्रिय, (इन्द्रस्य काम्यम्) ऐश्वर्य-पद की कामना करने वाले, (ऊर्मिणम्) बलवान् पुरुष को (पञ्च स्वसारः) पांचों प्रजाएं, (द्विः) दो बार विद्या और व्रत में (प्रस्नापयन्ति) स्नान कराती हैं। (त्यं) उस (हर्यतं) कान्तिमान् (बभ्रुं) भरण में समर्थ (हरिम्) पुरुष को (वारेण परि पुनन्ति) वरण करके सभी पवित्र करते हैं। (यः) जो (विश्वान् देवान् इत्) समस्त पुरुषों को (मदेन सह परि गच्छति) हर्ष सहित प्राप्त होता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

अ॒स्य वो॒ ह्यव॑सा॒ पान्तो॑ दक्ष॒साध॑नम ।

यः सू॒रिषु॒ श्रवो॑ बृ॒हद्द॒धे स्व१र्ण ह॑र्य॒तः ॥ ८ ॥

भा०—आप लोग (अस्य) इसके (अवसा) बल और प्रेम से (वः) अपने (दक्ष-साधनम्) बल को बढ़ाने वाले बल का (पान्तः) पालन करते हो। (यः) जो (हर्यतः न) सूर्यवत् तेजस्वी होकर (स्वः न) प्रकाश-तुल्य (श्रवः बृहत्) बड़ा यश और ज्ञान (सूरिषु) विद्वानों को (दधे) धारण कराता है।

स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि ॥ ९ ॥

भा०—हे (मानवी) मननशील, (रोदसी) सूर्य-भूमिवत् व माता पितावत् जन सभाओं! हे (देवी) तेजस्विनी सभाओं! (वां यज्ञेषु) आप लोगों के यज्ञों में—संघों में (देवः इन्दुः) तेजस्वी, (गिरिष्ठाः) विद्वान् सत्यप्रतिज्ञ नेता (जनिष्ट) प्रकट होता है। उसको सब कोई (तुवि-स्वनि) बहुत स्तुत्य पद पर (अस्रेधन्) प्राप्त कराते हैं।

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे।
नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥ १० ॥

भा०—हे (सोमः) शासक! तू (पातवे) पालनकर्ता (इन्द्राय) शत्रुहन्ता तेजस्वी (नरे) नायक (दक्षिणावते) दान और शक्ति वाले (वृत्रघ्ने) दुष्टों के नाशक (सदनासदे देवाय) आसन पर विराजने वाले तेजस्वी व्यक्ति के पद के लिये (परि सिच्यसे) अभिषिक्त किया जा रहा है।

ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन्।
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥ ११ ॥

भा०—(ते) वे (सोमाः) शासकजन (प्रत्नासः) श्रेष्ठजन (वि-उष्टिषु) नाना प्रजाओं की इच्छाओं के बीच, (पवित्रे अक्षरन्) पवित्र पद पर आते हैं। वे (प्रातः) जीवन के प्रथम भाग में (सनुतः) छुपे (हुरः चितः) कुटिलता से धन बटोरने वाले, चोरों को और (अप्रचेतसः) मूर्खों को (अप प्रोथन्तः) दूर करते हैं।

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥ १२ ॥ २४ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रगण ! (यूयम् वयम् च सूरयः) तुम और हम सब विद्वान् मिलकर (पुरः रुचम्) सबके आगे रुचिकर, (वाज-गन्ध्यं) बल से शत्रुनाश में समर्थ, (वाज-पस्त्यम्) ऐश्वर्यादि से सम्पन्न गृह वाले पुरुष को, (अश्याम) प्राप्त हों और (सनेम) उसको ही पदाधिकार प्रदान करें । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[९९]

रेभसूनू काश्यपावृषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती । २, ३, ५, ६ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ निचृदनुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्तन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥ १ ॥

भा०—(हर्यताय) सबके प्रिय (धृष्णवे) शत्रुधर्षक पुरुष के हितार्थ (पौंस्यं धनुः) पौरुष योग्य धनुष् को तानते हैं और (असुराय) अन्यों को प्राण देने वालों के हितार्थ (महीयुवः) महत्व युक्त पूजा चाहने वाले लोग (विपाम् अग्रे) विद्वानों के सामने (शुक्राम्) कान्तियुक्त (निर्णिजम्) उत्तम वाणी का वस्त्र (वयन्ति) बुनते हैं ।

अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥ २ ॥

भा०—(यदि) जब (विवस्वतः) परिचर्या करने वाले जन की (धियः) बुद्धियां और स्तुतियां (हरिं यातवे) नायक को प्रयाण के लिये प्रेरित करती हैं (अध) तब वह (परिष्कृतः) सज धज कर (क्षपा) सेना सहित (वाजान् प्रगाहते) संग्रामों में विचरता है ।

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इसका (यः मदः) जो हर्ष, (इन्द्रपातमः) राष्ट्र को पालन करने में समर्थ है (यम् गावः आसभिः दधुः) जिसको वाणियां मुखों द्वारा उच्चारित होकर धारण कराती हैं और (पुरा) पहले जिसको (सूरयः) विद्वान् धारण करते हैं। (तम्) उसको हम (मर्जयामसि) अधिक पवित्र करते हैं।

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत।

उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥ ४ ॥

भा०—(उतो) और (धीतयः) तत्वप्रकाश करने वाली वाणियां (देवानां नाम बिभ्रतीः) विद्वानों का तत्व-प्रकाशक यथार्थ स्वरूप धारण करती हुई (तं) उसको (कृपन्त) समर्थ बनाती हैं और (पुराण्या गाथया) पुरातन वेद वाणी से विद्वान् वा (पुनानं) सर्वप्रेरक उसकी (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुति करती हैं।

तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम्।

दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—(मनीषिणः) बुद्धिमान् पुरुष (उक्षमाणं) सब प्रकार के शान्ति-जलों से सेचन करने वाले शान्तिप्रद (धर्णसि) सबके धर्त्ता। (तं) उसके (अव्यये वारे) अविनाशी हृदय में (पुनन्ति) स्वच्छ कर प्राप्त करते हैं और (पूर्णचित्तये) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये (दूतं न आ शासते) संदेश-हर के तुल्य जानते हैं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति।

पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (पुनानः) अति स्वच्छ, पवित्र रूप होता हुआ, (मदिन्तमः) अति अधिक आनन्ददायी होकर (सोमः) सर्व प्रेरक आत्मा, (चमूषु) विषयों को रसास्वादन करने वाली इन्द्रियों पर अध्यक्ष के तुल्य (सीदति) विराजता है। वह (पशौ न रेतः) भारवाही पशु पर जिस

प्रकार लोग जल लादते हैं उसी प्रकार (पशौ) अर्थद्रष्टा इन्द्रिय में वह आत्मा भी (रेतः आदधत्) अपना तेज और वीर्य प्रदान करता है, उसी के समान सामर्थ्य प्राप्त कर इन्द्रिय अपना ग्राह्य विषय भली प्रकार देखती हैं। वही (धियः पतिः) ज्ञानमयी बुद्धि वाणी और कर्म का स्वामी (वचस्पते) कहलाता है।

स मृ॒ज्यते सु॒कर्म॑भिर्दे॒वो दे॒वेभ्यः॑ सु॒तः।

वि॒दे यदा॑सु सन्द॒दिर्म॒हीर॒पो वि गा॑हते ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह (सुतः) वार २ उपासना किया प्रभु या आत्मा (सुकर्मभिः) उत्तम कर्मों से (देवेभ्यः) विद्वानों वा प्राणों से पृथक् रूप में (मृज्यते) बराबर शुद्ध पवित्र किया जाता है (यत्) क्योंकि वह (आसु) इन समस्त प्रजाओं में (सं ददिः) अपनी शक्ति प्रदान करता है और वही (अपः महीः) देह में जलवत् व्यापक प्राणों और रुधिर आदि द्रवों पदार्थों और यही भूमि के विकार स्थूल देह के तत्वों में (वि गाहते) विविध प्रकार से व्यापता है।

सु॒त इ॑न्दो प॒वित्र॒ आ नृभि॑र्य॒तो वि नी॑यसे।

इन्द्रा॑य मत्स॒रिन्त॑मश्च॒मूष्वा नि षी॑दसि ॥ ८ ॥ २६ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजःस्वरूप (यतः) जिससे तू (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (सुतः) अभिषिक्त होकर (पवित्रे वि नीयसे) स्वच्छ हृदय में विशेष रूप से प्राप्त होता है। तू (इन्द्राय मत्सरिन्तमः) उस ऐश्वर्यवान् आत्मा के लिये हर्षप्रद है। तू ही (चमूषु) समस्त लोकों में (निषीदसि) विराजता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[१००]

रेभसूनू काश्यपौ ऋषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७, ९ निचृदनुष्टुप्। ३ विराडनुष्टुप्। ५, ६, ८ अनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अ॒भी न॑वन्ते अ॒द्रुहः॑ प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्य॑म्।

व॒त्सं न पूर्व॒ आयु॑नि जा॒तं रि॑हन्ति मा॒तरः॑ ॥ १ ॥

भा०—(पूर्वे आयुनि जातं) बाल्यकाल में उत्पन्न हुए (वत्सं) बछड़े को जैसे (मातरः) माताएं या गौवें (रिहन्ति) चूमती हैं, वैसे ही (इन्द्रस्य) तत्वदर्शी आत्मा को (काम्यम्) कामना योग्य, (प्रियम्) प्रिय, (वत्सम्) वन्दनीय, (पूर्वे आयुनि) सबसे पहले विद्यमान आयु अर्थात् मानव हृदय में प्रकट हुए को (अद्रुहः) अहिंसाव्रती (मातरः) ज्ञानी लोग (रिहन्ति) उस प्रभु के आनन्द रस का आस्वादन करते हैं और (अभि नवन्ते) उसका वर्णन करते हैं।

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम्।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रो) परमेश्वर ! हे (सोम) सर्वैश्वर्यवन् ! तू (पुनानः) स्वच्छ रूप में प्रकट होता हुआ, (द्विबर्हसम्) दोनों लोकों को बढ़ाने वाला (रयिम्) ऐश्वर्य, बल, (आ भर) प्राप्त करा। क्योंकि (त्वं) तू (दाशुषः) त्यागी के (गृहे) गृह में (विश्वानि वसूनि) नाना ऐश्वर्यों को (पुष्यसि) पुष्ट करता है।

त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥ ३ ॥

भा०—(तन्यतुः वृष्टिं न) गर्जता मेघ जैसे वृष्टि करता है वैसे ही (त्वं) तू (मनो युजं धियं सृज) मन और ज्ञान को प्रेरित करने वाली (धियं) बुद्धि को प्रदान कर। हे (सोम) हे प्रभो ! (त्वं) तू ही (पार्थिवा दिव्या च) भूमि और आकाश के (वसूनि) ऐश्वर्यों को (पुष्यसि) बढ़ाता है। अतः तू (मनो युजं धियं वृष्टिं सृज) मन से योग करने वाले दुःखोच्छेदक कर्म वा बुद्धि प्रदान कर।

परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति।
रंहमाणा व्य१व्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥ ४ ॥

भा०—(सानसिः वाजी इव) जैसे सधा हुआ अश्व (अव्ययं वारं धावति) रक्षक स्वामी के अभिलाषा योग्य उद्देश्य की ओर दौड़ता है, वैसे ही (जिग्युषः) विजयशील, (सुतस्य) उपासित (ते) तुझ प्रभु की (धारा) वाणी एवं पोषक शक्ति, (रंहमाणा) वेगवती नदी के तुल्य (यथा) यथावत् (अव्ययं वारम्) परम रक्षक वरणीय पद की ओर (सानसिः) सुखपात्री (परिधावति) जा रही है ।

क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! हे (सोम) सन्मार्ग प्रेरक ! तू (क्रत्वे) कर्म में समर्थ (दक्षाय) उत्साहसम्पन्न (इन्द्राय) ऐश्वर्यप्रद पद के लिये (सुतः) अभिषिक्त हो और (मित्राय वरुणाय च पातवे) स्नेही और श्रेष्ठ-जनों के पालन के लिये हो ।

पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक ! तू (सुतः) अभिषिक्त होकर (वाज-सातमः) ज्ञान, धन आदि का दाता, (मधुमत्-तमः) सबसे उत्तम, ज्ञान-वान् होकर (इन्द्राय) जीवात्मा, (विष्णवे) व्यापक प्रभु और (देवेभ्यः) तेजस्वी पुरुषों के लिये (पवस्व) यत्न कर ।

त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥ ७ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने वाले ! (धेनवः जातं वत्सं न) गौएं जैसे उत्पन्न हुए बच्चे को (रिहन्ति) चाटती हैं वैसे ही (विधर्मणि) विविध रूप वाले (पवित्रे) पवित्र (जातं) प्रसिद्ध (वत्सं) वन्दनीय (हरिं) हृदयहारी (त्वां) तुझको (धेनवः) वेद वाणियां (रिहन्ति) प्राप्त करती हैं ।

पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥

भा०—हे (पवमान) पावन ! तू (शर्धन्) बलवान् होकर (चित्रेभिः रश्मिभिः) आश्चर्यकारक रश्मियों से सूर्य के समान (महि श्रवः यासि) धन और ज्ञान को प्राप्त करता है। (दाशुषः गृहे) त्यागी के गृह में (विश्वानि तमांसि जिघ्नसे) बहुत से अज्ञानों को नष्ट करता है।

त्वं द्यां च॑ महिव्रत पृथि॒वीं चाति॑ जभ्रिषे।

प्रति॑ द्रा॒पिम॑मुञ्चथा॒ः पव॑मान महित्व॒ना ॥ ९ ॥ २८ ॥ ४ ॥

भा०—हे (महिव्रत) महान् कर्म वाले (त्वम्) तू (द्याम् च महीं च) आकाश और भूमि को (अति जभ्रिषे) अच्छी प्रकार धारण करता है और (महित्वना) अपने सामर्थ्य से (द्रापिं प्रति अमुञ्चथाः) विश्व को कवचवत् धारण करता है। इति अष्टाविंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

[१०१]

ऋषिः—१—३ अन्धीगुः श्यावाश्विः। ४—६ ययातिर्नाहुषः। ७—९ नहुषो मानवः। १०—१२ मनुः सांवरणः। १३—१६ प्रजापतिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७, ९, ११—१४ निचृदनुष्टुप्। ४, ५, ८, १५, १६ अनुष्टुप्। १० पादनिचृदनुष्टुप्। २ निचृद् गायत्री। ३ विराड् गायत्री ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

पु॒रोजि॑ती वो॒ अन्ध॑सः सु॒ताय॑ मादयि॒त्नवे॑।

अप॒ श्वानं॑ श्नथिष्टन॒ सखा॑यो दीर्घजि॒ह्व्य॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनों ! (वः) आप अपने में से (पुरः-जीती) शत्रु के गढ़ों को जीतने वाले (अन्धसः) वीर पुरुष को (मादयित्नवे) प्रसन्न करने वाले के (सुताय) अभिषेक के लिये, (दीर्घजिह्व्यम्) लम्बी बातें करने वाले (श्वानम्) कुत्ते के समान पेट भरने वाले जन को (अप श्नथिष्टन) दूर करो।

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।

इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (पावकया) दुष्टों को शोधने वाली (धारया) शासन व्यवस्था से (सुतः) अभिषिक्त होकर (परि प्रस्यन्दते) वेग से भ्रमण करता है वह विद्वान् (इन्दुः) चन्द्रवत् आह्लादक, (अश्वः) अश्वतुल्य अन्यों का नेता और (कृत्व्यः) कर्म कुशल होता है ।

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।

यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ॥ ३ ॥

भा०—(तम्) उस (दुरोषम्) शत्रुओं के लिये रोष वाले (सोमं) शासक रूप से (विश्वाच्या धिया) सब में स्थित, सत्कर्म से (नरः) नायक-जन (अद्रिभिः) सत्कारों द्वारा (अभि हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं ।

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।

पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥

भा०—(मधुमत्तमाः) मधुर वाणी वाले, (सुतासः सोमाः) शासक-जन, (मन्दिनः) हर्षजनक, (पवित्रवन्तः) पवित्र कर्त्तव्य वाले, (इन्द्राय अक्षरन्) उस प्रभु के लिये जावें । हे वीर शासकों ! (वः अदाः) आप लोगों के सुख हर्षादि (देवान् गच्छतु) उत्तम पुरुषों को प्राप्त हों ।

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।

वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(इन्दुः) आत्मा (इन्द्राय पवते) परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये जाता है (इति) इस प्रकार (देवासः) विद्वान् लोग (अब्रुवन्) उपदेश करते हैं । (वाचः पतिः) वाणी का पालक प्रभु (मखस्यते) पूजा की अपेक्षा करता है वह (ओजसा) बल से (विश्वस्य ईशानः) जगत् का स्वामी है । इति प्रथमो वर्गः ॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रस्य सखा) परमेश्वर का मित्र (सोमः) आत्मा वा विद्वान् (दिवे दिवे) दिनोंदिन (रयीणां पतिः) ऐश्वर्यों का स्वामी (सहस्र-धारः) सहस्रों शक्तियों से युक्त (वाचम्-ईंखयः) स्तुतियों का कर्ता होकर (समुद्रः) समुद्र के तुल्य रसों से पूर्ण होता है ।

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ ७ ॥

भा०—(अयम्) यह (पूषा) सर्वपोषक, (रयिः) धन, (भगः) ऐश्वर्यों का स्वामी, (पुनानः अर्षति) सबको पवित्र होकर प्राप्त है । वह (विश्वस्य भूमनः) महान् विश्व का (पतिः) पालक है । (उभे रोदसी वि अख्यत्) दोनों लोकों को प्रकाशित करता है ।

समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ ८ ॥

भा०—(घृष्वयः) एक दूसरे से स्पर्धा करने वाली (प्रियाः) हृदय को प्रिय (गावः) वाणियां, (मदाय) अन्तरानन्द के लिये (सम्-अनूषत) स्तुति करती हैं । (इन्दवः सोमासः) तेजस्वी, सौम्य गुणों वाले, (पवमानासः) पवित्र करने वाले जन (पथः कृण्वते) सामान्य जनों का मार्ग बनाते हैं ।

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहै ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (ओजिष्ठः) तेज एवं बल का धारक है, हे (पवमान) पावन जन ! (तं) उसको लक्ष्य करके (श्रवाय्यं) श्रवण करने योग्य स्तुति को (आभर) प्राप्त कर । (यः) जो (पञ्चचर्षणीः अभि) पांचों प्रकार के मनुष्यों के प्रति पांचों इन्द्रियों में मन वा आत्मा के तुल्य है । (येन) जिससे (वयं) हम (रयिं वनामहे) ऐश्वर्यवत् देह को प्राप्त करें ।

सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।

मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—(सोमाः) ज्ञानैश्वर्य के धनी, (इन्दवः) तेजस्वी, (गातुवित्-तमाः) सन्मार्ग को जानने वालों में श्रेष्ठ, (मित्राः) जीवों के मित्र (सुवानः) ऐश्वर्य-विभूति से युक्त होते हुए (अरेपसः) दुष्कर्मों से रहित (स्वाध्यः) शुभ कर्मों का चिन्तन और धारण करने वाले (स्वर्विदः) सूर्यवत् तेजस्वी होकर (पवन्ते) सबको पवित्र करते हैं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।

इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अद्रिभिः) आदर करने योग्य पुरुषों द्वारा (सु-स्वानाः) पूजित होते हुए, (गोः त्वचि अधि) भूमि पर वेदवाणी का (चितानाः) सम्पादन करते हुए, (वसुविदः) सर्वत्र बसे प्रभु को जानते हुए (अस्मभ्यम् अभितः) हमारे सब ओर (इषम् सम् अस्वरन्) उत्तम वाणी का उपदेश करें ।

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।

सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ १२ ॥

भा०—(एते) ये (पूताः) पवित्र आचार वाले (विपश्चितः) ज्ञान का सञ्चय करने वाले, (सोमासः) पुरुष, (दधि-आशिरः) ध्यान में आश्रय लेने वाले, (सूर्यासः न) सूर्यों के तुल्य (दर्शनासः) दर्शनीय, (जिगलवः) आगे बढ़ने वाले होकर भी (घृते) अपने व्रत में (ध्रुवाः) स्थिर होते हैं।

प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः ।

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ १३ ॥

भा०—(सुन्वानस्य) परमैश्वर्य-सम्पन्न (अन्धसः) अन्नवत् पालक उस प्रभु के (तत्) उस (वचः) सामर्थ्य को (मर्त्तः) स्थूलदेहवान् (न वृत) प्राप्त नहीं कर सकता। हे विद्वानों ! आप लोग (भृगवः) तेजस्वी

होकर (मखं न) सुख से हीन (अराधसम्) दुःसाध्य (श्वानम्) कुत्ते के तुल्य लोभ को (अप हत) दूर करो।

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः।

सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥ १४ ॥

भा०—सोम-प्रभु, (ओण्योः भुजे) माता पिता के भुजा वा रक्षा में (पुत्रः न) पुत्रतुल्य हमारा (जामिः) बन्धु होकर (भुजे) पालन करने वाले (अत्के) उत्तम रूप में (ओण्योः आ अव्यत) आकाश और भूमि के (भुजे) पालनार्थ है। (योषणां जारः न) स्त्री को जीवनसंगी पति के तुल्य वह (योषणाम्) व्यापक प्रकृति को (सरत्) व्यापता है और (वरः योनिम् न आसदम्) वरणीय पुरुष जैसे अपने स्थान के लिये आसन की ओर बढ़ता है वैसे ही वह (योनिम्) उत्पादक प्रकृति को (आसदम्) व्यापने के लिये (आ अव्यत) सर्वत्र विद्यमान है।

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी।

हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥ १५ ॥

भा०—(सः) वह (वीरः) जगत् का प्रेरक (दक्ष-साधनः) भस्म करने वाले अग्नि के बल को वश करने वाला है (यः) जो (रोदसी) दोनों लोकों को (वि तस्तम्भ) थाम रहा है। वह (हरिः) प्रभु (वेधाः योनिम् न) घर को गृह स्वामी के तुल्य (आसदम्) अध्यक्षवत् विराजने के लिये, (वेधाः) विधाता होकर (पवित्रे अव्यत) पावन रूप में प्रकाशित है।

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि।

कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥ १६ ॥ ३ ॥

भा०—(गव्ये अधि त्वचि कनिक्रदत् सोमः) चर्म पर विराजमान विद्वान् के तुल्य, (गव्ये अधि त्वचि) वाङ्मय के भी ऊपर वह (सोमः) साक्षात् करने योग्य प्रभु (अव्यः वारेभिः पवते) स्नेह, दीप्ति आदि के सुन्दर रूपों से प्रकट होता है। वह (वृषा) सुखों का वर्षक, (हरिः)

मनोहर, (इन्द्रस्य निष्कृतम् अभि एति) आत्मा को साक्षात् प्राप्त होता है।
इति तृतीयो वर्गः ॥

[१०२]

त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—४, ८ निचृदुष्णिक् ।
५—७ उष्णिक् । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

भा०—(क्राणा) जगत् स्रष्टा प्रभु (महीनां शिशुः) महान् प्रकृति के परमाणुओं में (शिशुः) व्यापक है। वह (ऋतस्य) ज्ञान के (दीधितिं) प्रकाशक वेद की (हिन्वन्) प्रेरणा करता हुआ (विश्वा प्रिया) प्रिय पदार्थों को (परि भुवत्) व्यापता और (अध द्विता अभवत्) दोनों लोकों में विद्यमान है।

उप त्रितस्य पाष्यो३रभक्त यद् गुहा पदम् ।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

भा०—और (त्रितस्य) तीनों लोकों में व्यापक प्रभु के (पाष्योः) शिलातुल्य आकाश और भूमि के बीच एवं (गुहा) बुद्धि में (यद् पदम्) जिसका ज्ञानमय रूप सेवन किया जाता है, उस (यज्ञस्य) प्रभु का (सप्त धामभिः) सातों जगत् के धारक सामर्थ्यों वा प्राणों द्वारा (प्रियम्) प्रिय रूप है।

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (त्रितस्य) तीनों लोकों में व्यापक प्रभु के (त्रीणि) तीनों रूपों को (धारया) वाणी द्वारा (ईरय) बतला। (पृष्ठेषु) समस्त लोकों के (रयिम्) जीवनदाता उस प्रभु की (आ ईरय) सर्वत्र

स्तुति कर। (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म के सञ्चालक बलों को (वि मिमीते) विशेष रूप से जानता है।

जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥ ४ ॥

भा०—(अयम् ध्रुवः) जगत् का धारक प्रभु (रयीणां) ऐश्वर्यों को (चिकेत) जानता है। (मातरः) जगत्निर्माण करने वाले प्रकृति के परमाणु, (सप्त) संख्या में सात प्रकृति विकृतियें हैं। उस (जज्ञानं) जगत् को उत्पन्न करने वाले (वेधाम्) कर्त्ता की (श्रिये) हे मनुष्यों! ऐश्वर्य लाभ और आश्रय प्राप्ति के लिये (आ शासत) स्तुति करो।

अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः।
स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य व्रते) इसके व्रत में लगे (विश्वे देवासः) सब मनुष्य (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त, (अद्रुः) परस्पर द्रोह से रहित, (स्पार्हाः) प्रेम करने वाले और (रन्तयः) प्रसन्न (भवन्ति) होते हैं (यत् जुषन्त) जिसे वे प्रेम करते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन्।
कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

भा०—(गर्भम्) सब वशकर्त्ता, जगत् को गर्भ में धारण करने वाले (यम् ईम्) जिस (चारुम्) व्यापक को (ऋत-वृधः) सत्य वर्धक जन (दृशे) दर्शन के लिये (अजीजनन्) वाणी द्वारा प्रकट करते हैं। उस (कविम्) क्रांतदर्शी (मंहिष्टम्) दानशील, (अध्वरे पुरु-स्पृहम्) यज्ञ में बहुतों से स्पृहा करने योग्य प्रभु का सब लोग (जुषन्त) प्रेम से सेवन करते हैं।

समीचीने अभित्मना यह्वी ऋतस्य मातरा।
तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ॥ ७ ॥

भा०—(समीचीने) सुसम्बद्ध, (यह्वी) दोनों महान् (ऋतस्य) जगत् का निर्माण करने वाले ब्रह्म और प्रकृति हैं। (यत्) जिनके रूप को (यज्ञं तन्वानाः) यज्ञ का विस्तार करते हुए विद्वान् (आनुषक् अंजते) निरन्तर प्रकट करते हैं।

क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः।

हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥ ८ ॥ ५ ॥

भा०—(क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से, हे प्रभो! (शुक्रेभिः) शुद्ध तेजः-सामर्थ्यों से (दिवः व्रजं ऋणोः) आकाश में गतिशील लोकसमूह को चलाता है। वह तू (अध्वरे) अविनाशी आत्मा में (ऋतस्य दीधितिं) ज्ञान की किरण को प्रेरता हुआ हमारे (दिवः) प्रकाशमय आत्मा से (व्रजं) पापसमूह को (अप ऋणोः) दूर कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१०३]

द्वित आप्त्यः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ उष्णिक्। २, ५ निचृदुष्णिक्। ४ पादनिचृदुष्णिक्। ६ विराडुष्णिक् ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम्।

भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ १ ॥

भा०—(मतिभिः) मनुष्यों से (जुजोषते) प्रसन्न होने वाले, वा (मतिभिः जुजोषते) विद्वान् पुरुषों द्वारा सेवन किये जाते हुए, (पुनानाय) स्वच्छ रूप में साक्षात् होने वाले, (वेधसे) जगत् के विधाता (सोमाय) सर्वपालक प्रभु के लिये (उद्यतम् वचः) उत्तम सुसंयत स्तुति का (भृतिं न भर) वेतन के तुल्य प्रदान कर।

परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति।

त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥ २ ॥

भा०—वह प्रभु (त्रीणि) तीनों (अव्यया) अविनाशी (वाराणि) लोकों को सूर्य के तुल्य (गोभिः अंजानः) किरणों से प्रकाशित करता हुआ

(हरिः) तीनों तापों का हरण करने वाला (पुनानः) व्यापता हुआ (त्री सधस्था कृणुते) तीनों लोकों को रचता और (अर्षति) तीनों में व्यापता है।

परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति।

अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ॥ ३ ॥

भा०—(अव्यये वारे) अविनाशी प्रभु (मधुश्चुतम् कोशम् परि) परमानन्द प्रदान करने वाले हिरण्यगर्भ को वह (परि अर्षति) व्यापता है और (ऋषीणां वाणीः सप्त अभि नूषत) साक्षात् करने वाले ऋषियों की सातों वाणियां उसकी स्तुति करती हैं।

परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः।

सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ॥ ४ ॥

भा०—हे (विश्वदेवः) सब सुखों का देने वाला, (अदाभ्यः) अविनाशी (सोमः) सर्व जगत् का उत्पादक (मतीनां नेता) बुद्धियों और विद्वानों का नायक, (हरिः) दुःखहारी प्रभु (पुनानः) व्यापता हुआ (चम्वोः परि विशत्) भूलोक और द्युलोक दोनों को व्यापता है।

परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम्।

पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ॥ ५ ॥

भा०—हे (सोम) प्रभो ! तू (अमर्त्यः) अमृतस्वरूप, स्वयं (वाघत्) विद्वान् और (वाघद्भिः पुनानः) विद्वानों द्वारा हृदय में परिष्कृत, (इन्द्रेण) तेजस्वी आत्मा के साथ (दैवीः स्वधाः अनु) प्राणों और विद्वानों की शक्तियों के अनुसार (सरथम्) समान रस को (परि याहि) प्राप्त हो।

परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः।

व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥ ६ ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—यह (सप्तिः न-वाजयुः) अश्व के समान वेग से व्यापने वाला, (देवः) प्रकाशस्वरूप, (देवेभ्यः सुतः) विद्वानों द्वारा उपासित (वि आनशिः)

विशेष रूप से व्यापक (पवमानः) पवित्र करता हुआ (वि धावति) जाता है। इति षष्ठो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

[१०४]

पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ ऋषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१,३,४ उष्णिक्। २, ५, ६ निचृदुष्णिक् ॥ षडृच सूक्तम् ॥

सखा॑य॒ आ नि षी॑दत पुना॒नाय॒ प्र गा॑यत।
शिशुं॒ न य॒ज्ञैः परि॑ भूषत श्रि॒ये ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो (आ नि सीदत) आओ, चारों ओर घेरा लगा कर बैठ जाओ। (पुनानाय) पवित्रकर्ता प्रभु के लिये (प्र गायत) स्तुति करो। (शिशुं) बालक के तुल्य पवित्र, प्रभु को (श्रिये) ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिये (यज्ञैः परि भूषत) यज्ञों से सुशोभित करो, उसकी स्तुति करो।

समी॑ व॒त्सं न मा॒तृभि॑ः सृ॒जता॑ गय॒साध॑नम्।
दे॒वा॒व्यं१॒॑ मद॑म॒भि द्विश॑वसम् ॥ २ ॥

भा०—(मातृभिः वत्सं न) माताओं से (गयसाधनं) घर को चमकाने वाले बच्चे को जैसे (संसृजन्ति) संसृष्ट कर लेते हैं वैसे ही (गय-साधनम्) प्राणों के वशीकार द्वारा साधना योग्य (वत्सं) प्रभु को (मातृभिः) ज्ञान-कारिणी वाणियों से (सं सृजत) संसृष्ट करो। उसी (देव-अव्यं) देवों में व्यापक (मदम्) आनन्ददायक (द्विशवसम्) नर नारी के बल के धारक प्रभु की (प्र गायत) स्तुति करो।

पु॒नाता॑ दक्ष॒साध॑नं॒ यथा॒ शर्धा॑य वी॒तये॑।
यथा॑ मि॒त्राय॒ वरु॑णाय॒ शंत॑मः ॥ ३ ॥

भा०—(यथा शर्धाय वीतये) तेजःकांति प्राप्त करने के लिये (दक्ष-साधनं) बल-उत्साह के देने वाले को (पुनात) अन्तःकरण द्वारा उसके निर्दोष रूप का विवेक करो। (यथा) क्योंकि यह (मित्राय) स्नेह करने वाले और (वरुणाय) वरण करने वाले जनों को (शंतमः) शान्ति सुखदाता है।

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ ४ ॥

भा०—(अस्मभ्यं वसु-विदम्) हमें धनों को प्राप्त कराने वाले (त्वा) तुझको (वाणीः अभि अनूषत) नाना वाणियां स्तुति करती हैं। हे प्रभो ! हम (ते वर्णम्) तेरे प्रति अपनी अभिलाषा को (गोभिः अभि वासयामसि) वेदवाणी से आच्छादित करते हैं, उन्हीं द्वारा प्रकट करते हैं।

स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि ।
सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥

भा०—हे (मदानां पते) आनन्दों के पालक (इन्दो) हे रसस्वरूप ! तू (सः नः) वह हमारे में (देवप्सराः असि) देवरूप है। तू (सख्ये सखा इव) मित्र के लिये (नः गातु-वित्-तमः भव) उत्तम उपदेश और उत्तम मार्ग प्राप्त कराने वाला है। हमारी (गातु-वित्तमः) वाणी को सबसे अधिक जानने वाला तू ही है।

सनेमि कृध्य१स्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम् ।
अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥ ६ ॥ ७ ॥

भा०—तू (अस्मत्) हमसे (रक्षसम् अत्रिणं) हमारा नाश करने वाले, (अदेवं) दुःखदायी, (द्वयुम्) दो भाव रखने वाले कपटी, (कंचित्) चाहे वह कोई भी हो उसे (अस्मत् अप आकृधि) हमसे दूर कर और (नः) हमारे पाप को भी (अप युयोधि) दूर कर। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१०५]

ऋषी पर्वतनारदौ ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ उष्णिक् । ३, ४, ६ निचृदुष्णिक् । ५ विराडुष्णिक् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनों ! (वः पुनानम्) आप लोगों को पवित्र करने वाले (तम् अभि गायत) उसकी स्तुति करो और (गूर्त्तिभिः) स्तुति के साथ २ (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (शिशुं न) शिशु-समान अति प्रिय को (स्वदयन्त) भोजन कराने के तुल्य अग्नि में आहुति दो, एवं उस (शिशुं) प्रभु को जान कर (स्वदयन्त) मान्य जनों को भोजन कराओ।

सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते।
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥

भा०—(मातृभिः वत्सः इव) माताओं द्वारा जैसे बच्चा (हिन्वानः सम् अज्यते) पोषित होकर रूप और गुणों से प्रकट होता है वैसे ही (देवावीः) मनुष्यों के रक्षक, (मदः) आनन्दमय (इन्दुः) तेजोमय प्रभु भी (मतिभिः परिष्कृतः) स्तुतियों द्वारा सुभूषित होकर (सम् अज्यते) भली प्रकार प्रकट होता है।

अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ३ ॥

भा०—(अयं दक्षाय साधनः) वह बल का बढ़ाने वाला है। (अयं शर्धाय) वह कार्य करने और (वीतये) और प्रकाश करने में समर्थ है। वह (सुतः) उपासित होकर (अयं देवेभ्यः) यह विद्वानों के लिये (मधुमत्-तमः) सुख देने वाला है।

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व।
शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! (सुतः) अभिषिक्त राजातुल्य उपासित होकर तू (नः) हमें (गोमत् अश्ववत्) गौओं और अश्वों से सम्पन्न धन, (धन्व) प्रदान कर। मैं (ते) तेरे (शुचिं वर्णम्) कान्तिमय रूप को (गोषु अधि) वेदवाणियों के आश्रय से (दीधरम्) अपने में धारण करूं।

स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः ।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ ५ ॥

भा०—हे (हरीणां पते) समस्त मनुष्यों के पालक ! हे (इन्दो) तेजस्विन् ! (देवप्सरस्तमः) देदीप्यमान सूर्य के समान श्रेष्ठ रूप वाला तू (सः) वह (नः) हमारे प्रति (सख्ये सखा इव) मित्र के लिये मित्रतुल्य हितकारी और (रुचे भव) हमारी इच्छा पूर्त्ति के लिये हो ।

सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणम् ।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ६ ॥ ८ ॥

भा०—(त्वम् अस्मत् सनेमि) तू हमारा सदा से (सखा इव) मित्र के तुल्य है । तू हमसे सदा (अदेवं कंचित् अत्रिणम्) शत्रुवत् हमारे धन को खा जाने वाला, चाहे वह कोई हो उसको (अस्मत्) हमसे दूर कर । उसे (साह्वान्) हराने वाला तू ही है । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (द्वयुम्) दो भाव रखने वाले को (परिबाधः, अप बाधः) पीड़ित कर । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१०६]

ऋषिः—१—३ अग्निश्चाक्षुषः । ४—६ चक्षुर्मानवः ॥ ७—९ मनुराप्सवः । १०—१४ अग्निः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ८, १०, १४ निचृदुष्णिक् । २, ५—७, ११, १२ उष्णिक् । ९, १३ विराडुष्णिक् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

भा०—(श्रुष्टी जातासः) अन्न द्वारा उत्पन्न (स्वः-विदः इन्दवः) सुख-जनक वीर्य जैसे (वृषणम्) वीर्यसेचक अंग को प्राप्त होता है । वैसे ही (इमे) ये (सुताः) उत्पादित (हरयः) समस्त विद्वान् (इन्दवः) प्रभु के उपासक (स्वर्विदः) प्रभु के प्रकाश को जानने वाले (श्रुष्टी) शीघ्र

(जातासः) उत्पन्न होकर (वृषणम्) बलवान् (इन्द्रम्) प्रभु को (अच्छ यन्तु) प्राप्त होते हैं।

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः।

सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥

भा०—(अयं) यह (सानसिः) सेवन करने वाला (सुतः) उत्पन्न जीव, (भराय इन्द्राय) पोषक प्रभु को प्राप्त करने और (यथा विदे) यथार्थ जानने के लिये यह (सोमः) जीव (जैत्रस्य) कष्टों पर विजय पाने वाले परमेश्वर का (चेतति) स्मरण करता है।

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम्।

वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य मदेषु) इसके हर्ष के लिये (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सानसिं ग्राभम्) सुख से सेवन योग्य अवलम्ब को (गृणीत) ग्रहण करे। वह (अप्सुजित्) प्रकृति के परमाणुओं का शासक प्रभु (वृषणं वज्रं च) वृष्टिकारक विद्युत् के तुल्य (वृषणं) सुखवर्षी (वज्रम्) बल को (संभरत्) धारण करता है।

प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव।

द्युमन्तं शुष्ममाभरा स्वर्विदम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन्! तू (जागृविः) नित्य जागरणशील बन (इन्दो) तेजस्विन्! तू (प्र धन्व) आगे बढ़। तू (परि स्रव) उसके लिये आगे बढ़ और (स्वः-विदम्) सुख प्राप्त करने वाले, (द्युमन्तं शुष्मम्) तेजोयुक्त बल को (आ भर) प्रदान कर।

इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः।

सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो! तू (विश्व-दर्शतः) सबसे दर्शनीय! विश्व का द्रष्टा (सहस्र-यामा) सहस्र लोकों का नियन्ता, सत्य मार्ग का उपदेष्टा एवं

(विचक्षणः) विश्व का द्रष्टा है। वह तू हे प्रभो ! (वृषणम् मदम्) हर्षदायक आनन्द को (इन्द्राय पवस्व) जीवमात्र के लिये दे। इति नवमो वर्गः ॥

अ॒स्मभ्यं॑ गातु॒वित्त॑मो दे॒वेभ्यो॒ मधु॑मत्तमः ।

स॒हस्रं॑ याहि प॒थिभि॒ः कनि॑क्रदत् ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (गातुवित्-तमः) ज्ञानदाता और मार्गज्ञानी है। तू (देवेभ्यः) नाना जीवों के लिये (मधुमत्-तमः) अति मधुर आनन्द और ज्ञान का धर्ता है। तू (सहस्रं पथिभिः) सहस्र मार्गों से (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ (याहि) प्राप्त हो।

पव॑स्व दे॒ववी॑तय॒ इन्दो॒ धारा॑भि॒रोज॑सा ।

आ क॒लशं॒ मधु॑मान्त्सोम नः सदः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! हे (सोम) शासक ! तू (देव-वीतये) विद्वानों को प्राप्त होने के लिये (धाराभिः) धारकशक्तियों से और (ओजसा) पराक्रम से (मधुमान्) बलवान् होकर (कलशम् आ सदः) चेतना के अधिष्ठान अन्तःकरण में भी (आ सदः) विराजता है।

तव॑ द्र॒प्सा उ॑द॒प्रुत॒ इन्द्रं॒ मदा॑य वावृधुः ।

त्वां दे॒वासो॑ अ॒मृता॑य॒ कं प॑पुः ॥ ८ ॥

भा०—(तव द्रप्साः) तेरे आनन्द (उद-प्रुतः) जलसमान स्रोत से वेगपूर्वक निकलने वाले हैं। वे (मदाय) आनन्द के लिये (इन्द्रं वृधुः) आत्मा की शक्ति बढ़ाते हैं। (देवासः) विद्वान् जन (अमृताय) मोक्ष प्राप्ति के लिये (कं) तेरा आनन्द रस (पपुः) पीते हैं।

आ नः॑ सुतास इन्दवः पुना॒ना धा॑वता र॒यिम् ।

वृ॒ष्टिद्या॑वो रीत्यापः स्व॒र्विदः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (नः सुतासः इन्दवः) हमारे उत्पन्न जीव-आत्माओं ! आप लोग (वृष्टि-द्यावः) कर्मबन्धन के नाश के लिये प्रकाश को प्राप्त करने वाले और (रीति-आपः) जल तुल्य प्राणों को निर्गमन मार्गों में से क्षेत्रिक के तुल्य कर लेने वाले और (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त करने वाले होकर (रयिम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु को लक्ष्य कर (पुनानः) पवित्र होकर (आ धावत) आगे बढ़ो।

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति।

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(ऊर्मिणा पुनानः) उत्तम वेदज्ञान से (पुनानः) पवित्र होता हुआ (सोमः) जीव-आत्मा (अव्यः वारम्) सर्वरक्षक प्रभु के वरणीय रूप को (वि धावति) प्राप्त करता है। वह (पवमानः) पवित्र होता हुआ (अग्रे) सर्व प्रथम (वाचः कनिक्रदत्) वेदवाणियों का अभ्यास करे। इति दशमो वर्गः ॥

धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम्।

अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ ११ ॥

भा०—(मतयः) ज्ञानी जन (वाजिनम्) परमैश्वर्यवान् (वने क्रीडन्तं) जीवादि से सेवनीय (अति-अविम्) सूर्य से भी अति अधिक महान् (त्रि-पृष्ठम् अभि) तीन लोकों में व्यापक प्रभु को लक्ष्य करके (सम् अस्वरन्) स्तुति करते हैं।

असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः।

पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ १२ ॥

भा०—(वाजयुः सप्तिः न मीढे) संग्राम में वेगवान् अश्व के तुल्य, (कलशान् अभि असर्जि) कलशों के तुल्य अन्तःकरणों में प्रकट होता है। (वाचं जनयन्) वाणी को प्रकट करता और (पुनानः) पवित्र करता हुआ (असिष्यदत्) सर्वत्र विचरता है।

पर्वते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ १३ ॥

भा०—(हरिः) तेजस्वी, (हर्यतः) कान्तिमान्, आत्मा, (स्तोतृभ्यः) विद्वानों को (रंह्याः) वेग से (ह्वरांसि अति) विघ्नों को पार करता हुआ (पवते) प्राप्त होता है। वह (वीरवत् यशः अभि अर्षन्) वीरोचित यश को प्राप्त करावे।

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत ।
रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥ १४ ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (रेभन्) उपदेश देता हुआ तू (देवयुः) विद्वानों की कामना करने वाला है। तेरी (मधोः धाराः असृक्षत) धारण शक्तियों के तुल्य वाणियां उत्पन्न होती हैं। और तू (विश्वतः) सब प्रकार से (पवित्रं) परम पवित्र, प्रभु को (परि एषि) प्राप्त हो। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१०७]

सप्तर्षय ऋषयः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, ९, १४, २१ विराड् बृहती । २, ५ भुरिग् बृहती । ८, १०, १२, १३, १९, २५ बृहती । २३ पादनिचृद् बृहती । ३, १६ पिपीलिका मध्या गायत्री । ७, ११ १८, २०, २४, २६ निचृत् पंक्तिः ॥ १५, २२ पंक्तिः ॥ षड्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो ऐश्वर्यवान् (उत्तमं हविः दधन्वान्) उत्तम अन्न को प्राप्त करता हुआ और (यः) जो (अप्सु अन्तरा) प्रजाजनों के बीच (नर्यः) नेताओं में श्रेष्ठ है उसको (अद्रिभिः) आदर योग्य व्यक्तियों द्वारा (आ सुषाव) सब प्रकार के प्रजाजन अभिषिक्त करें। हे विद्वान् लोगों ! ऐसे ही (सोमम्) वीर्यवान् (सुतम्) निष्णात पुरुष को (इतः) इस राष्ट्र में (परि सिञ्चत) सब ओर अभिषिक्त करो।

नूनं पुनानो विभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥

भा०—तू (अदब्धः) पीड़ित न होकर (नूनम्) निश्चय से (पुनानः) राज्य को दुःखदायी जनों से रहित करता हुआ (अविभिः) सैन्यों सहित (परि स्रव) सर्वत्र आ जा । तू (सुते चित्) अभिषिक्त पद पर (सुरभिं-तरः) उत्तम रीति से कार्य-सम्पादन करने वाला होकर रह । (अप्सु) प्रजाओं के बीच (उत्तरम्) उत्कृष्ट गुणवान् (त्वा) तुझको देखकर तेरी (श्रीणन्तः) सेवा करते हुए (त्वा) तुझे (अन्धसा गोभिः) अन्नों और गो-दुग्धों से (मदामः) तृप्त करें और (गोभिः मदामः) वाणियों से तेरी स्तुति करें ।

परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥

भा०—जो व्यक्ति (देव-मादनः) तेजस्वी जनों को प्रसन्न करने वाला, (क्रतुः) कर्म करने में कुशल, (इन्दुः) दयालु, (वि-चक्षणः) तत्वदर्शी हो उसको (चक्षसे) अध्यक्ष कार्य के लिये (परि सुवानः) अभिषिक्त किया जाता है ।

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (धारया पुनानः) वेदवाणी से पवित्र एवं निष्णात होकर (वसानः) ब्रह्मचर्यपूर्वक रहता हुआ (अपः अर्षसि) आप्त-जनों को प्राप्त होता है और (रत्न-धाः) ज्ञानों रत्नतुल्य को धारण करता हुआ (ऋतस्य योनिम्) सत्य और तेज के स्थान को (आ सीदसि) प्राप्त कर । हे (देव) विद्वन् ! तू (उत्सः) झरने के तुल्य ज्ञान और सुख का दाता और (हिरण्ययः) रमणीय वचन कहने वाला हो ।

दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥५॥१२॥

भा०—(दिव्यम् ऊधः) आकाशस्थ ऊधस् अर्थात् मेघ से (मधु दुहानः) जल का दोहन कराने वाले (वाजी) वेगवान् वायु के तुल्य बलवान् पुरुष (दिव्यम्) श्रेष्ठ (प्रियम्) सर्वप्रिय (मधु दुहानः) मधुर वचन और अन्न को (दिव्यं ऊधः) भूमि के जलसिंचित स्थान से कृषकवत्, (प्रत्नम् सधस्थम्) श्रेष्ठ पद को (आ असदत्) प्राप्त करता है फिर वह (आ-पृच्छयम्) सबके पूछने योग्य, (धरुणं) राष्ट्र-धारक पद को (अर्षति) प्राप्त करता है। वह (वि-चक्षणः) विशेष द्रष्टा अध्यक्ष हो, (नृभिः) उत्तम पुरुषों द्वारा (धूतः) सुपरीक्षित हो। इति द्वादशो वर्गः ॥

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) अध्यक्ष! तू (जागृविः) सदा जागरणशील और (प्रियः) सर्वप्रिय, (विप्रः) मेधावी होने के कारण (अव्यः वारे) सैन्यवर्ग के सर्वश्रेष्ठ स्थान पर (परि पुनानः) अभिषिक्त होता हुआ, (अंगिरस्तमः) देह में जीव के समान राष्ट्र-शरीर में सबसे अधिक तेजस्वी, (अभवः) हो। तू (नः) हमारे (यज्ञं) यज्ञ को (मध्वा मिमिक्ष) सुख से बढ़ा।

सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥ ७ ॥

भा०—(सोमः) प्रभु, (मीढ्वान्) मेघवत् सुखों के वर्षक पुरुष के समान प्रजाओं का उत्पादक (पवते) जाना जाता है। वह (गातु-वित्-तमः) ज्ञान और वाणी के ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ, (ऋषिः) सबका द्रष्टा, (विप्रः) ज्ञानदर्शी, (विप्रः) मेधावी, (विचक्षणः) सर्वाध्यक्ष है। हे प्रभो! (त्वं कविः अभवः) तू तत्वदर्शी है। तू (देव-वीतमः) सूर्यादि लोकों में सबसे अधिक कान्तिमान् है। तू (दिवि) आकाश में (सूर्यम् आ रोहयः) सूर्य को स्थापित करता है।

सोम उ षुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥८॥

भा०—(सोतृभिः) उपासक जनों द्वारा (सुवानः) उपासित (सोमः) सर्वोत्पादक प्रभु (अवीनां स्नुभिः) सूर्यों के तेजों से (अश्वया इव हरिता) वेग से जाने वाली, मनोहर (धारया) शक्ति से (अति याति) सब पर शासन करता है। वह (मन्द्रया धारया) हर्षदायक वाणी से (अधि याति) सबको अपने वश करता है।

अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥ ९ ॥

भा०—वह प्रभु (गोमान्) वाणियों का स्वामी, (गोभिः) वाणियों द्वारा (अनूपे) हृदय देश में (अक्षाः) व्यापता है। वह (सोमः) प्रभु (दुग्धाभिः) वाणियों से (अक्षाः) व्यापता है। (सं-वरणानि) जल जैसे (समुद्रं न अग्मन्) समुद्र को प्राप्त होते हैं वैसे ही रसों के सागर प्रभु को समस्त (सं-वरणानि) प्रार्थना-वचन प्राप्त होते हैं। (मन्दी) आनन्द-वान् प्रभु (मदाय) सुख के लिये (तोषते) प्राप्त किया जाता है।

आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१०॥१३॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (अद्रिभिः) आदरयोग्य गुरु जनों से (आ-सुवानः) शिक्षित होता हुआ और (अव्यया वाराणि तिरः) कान्तिरहित अविद्या के आवरणों को दूर करता हुआ, (जनः पुरि न) पुर में मनुष्य के समान (हरिः) चित्ताकर्षक होकर तू (चम्वोः) प्राण अपान के आश्रय पर (पुरि विशत्) देहपुरी में प्रवेश करता हुआ, (वनेषु सदः दधिषे) अन्नादि के आश्रय पर अपने को धारण कर। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥११॥

भा०—(सः) वह आत्मा (मेष्यः) अन्धकारयुक्त प्रकृति के (अण्वानि) सूक्ष्म बन्धनों को (तिरः) दूर कर (ममृजे) शुद्ध हो जाता है।

(मीढे सप्तिः न) वेगवान् अश्व के तुल्य (वाज-युः) बल, ऐश्वर्य चाहता हुआ, (पवमानः) पवित्र करता हुआ, (मनीषिभिः) बुद्धिमान् (विप्रेभिः) विद्वान् (ऋक्भिः) स्तुतिकर्त्ता जनों द्वारा (अनुमाद्यः) स्तुति योग्य है।

प्र साम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा।

अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१२॥

भा०—(अर्णसा सिन्धुः न) जल से समुद्र के समान (देव-वीतये) सूर्यादि लोकों को प्रकाशित करने के लिये हे (सोम) प्रभो ! तू (अर्णसा प्र।पिप्ये) ऐश्वर्य से पूर्ण है। (अंशोः पयसा मदिरः न) सोमलता के रस से जैसे हर्षदायक दुग्धादि से युक्त होकर पात्र की ओर आता है, वैसे ही तू भी (जागृविः) जागरण करता हुआ (अंशोः पयसा) प्रभु के दिव्य आनन्द से (मदिरः) आनन्दप्रद होकर (मधु-श्चुतम् कोशम्) आनन्द देने वाले आनन्दमय कोश को (अच्छ) प्राप्त हो।

आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः।

तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥ १३ ॥

भा०—वह आत्मा (सूनुः नः प्रियः) पुत्र के समान प्यारा (मर्ज्यः) यज्ञ आदि से शुद्ध करने योग्य (सूनुः) देहादि का प्रेरक, (प्रियः) अति-प्रिय, (हर्यतः) कान्तिमान्, (अर्जुने अत्के आ अव्यत) शुद्ध कान्तियुक्त रूप में प्रकट होता है। (अपसः) कार्यकुशल जन (यथा रथं हिन्वन्ति) जैसे रथ को चलाते हैं, वैसे ही वे (रथं) रसस्वरूप (तम् ईम् हिन्वन्ति) उसकी भी उपासना करते हैं। उसी को (गभस्त्योः) प्राण अपान के आश्रय (नदीषु) नाड़ियों में (हिन्वन्ति) प्रेरित करते हैं।

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्।

समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १४ ॥

भा०—(समुद्रस्य विष्टपि) रसों के सागर प्रभु के शान्तिमय आश्रय में (अधि) रहकर (मनीषिणः) मनीषीजन (मत्सरासः) रसों से तृप्त (स्वः-

विदः) सुखमय प्रभु को जानने वाले (सोमासः) वीर्यवान् (आयवः) विद्वान् (मद्यम् मदम्) सुखकारी, हर्षमय प्रभु को लक्ष्य कर (अभि पवन्ते) आगे बढ़ते हैं।

तर॑त्समु॒द्रं पव॑मान ऊ॒र्मिणा॒ राजा॑ दे॒व ऋ॒तं बृ॒हत् ।
अर्ष॑न्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ धर्म॑णा॒ प्र हि॑न्वा॒न ऋ॒तं बृ॒हत् ॥१५॥१४॥

भा०—(राजा देवः) राजा के समान तेजस्वी, (देवः) प्रभु (बृहत) महान् (ऋतम्) सत्य कारण रूप (समुद्रम्) समुद्र संसार को, (तरत्) पार कर जाता है। (मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा) वह प्रभु मित्र और वरुण दिन-रात्रि के नियम रूप धर्म से उत्पत्ति और प्रलय करता हुआ (बृहत् ऋतम् अर्षन्) बड़े भारी जगत् के कारण रूप प्रधान अव्यक्त तत्व को व्यक्त रूप में प्रकट करता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

नृभि॑र्येमा॒नो ह॑र्य॒तो वि॑चक्ष॒णो राजा॑ दे॒वः स॑मु॒द्रियः॑ ॥ १६ ॥

भा०—(समुद्रियः) आकाश के तुल्य अनन्त प्रभु (राजा) जगत् का प्रकाशक, (देवः) सबका दाता, (हर्यतः) कान्तिमान् (वि-चक्षणः) सबका द्रष्टा परमेश्वर (नृभिः येमानः) प्राणों और विद्वानों द्वारा जगत् के लोकों और जीवों को व्यवस्थित करता है।

इन्द्रा॑य पवते॒ मदः॒ सोमो॑ म॒रुत्व॑ते सु॒तः ।
स॒हस्र॑धारो॒ अत्यव्य॑मर्षति॒ तमी॑ मृजन्त्या॒यवः॑ ॥ १७ ॥

भा०—(मदः सोमः) आनन्दमय सर्वप्रेरक प्रभु (सुतः) उपासित होकर (मरुत्वते इन्द्राय) प्राणों के स्वामी जीव के लिये (सहस्र-धारः) सहस्र धारा वाले मेघ के समान सुख का दाता होकर (पवते) उस पर कृपा करता है। (अव्यम् अति अर्षति) इस पार्थिव और प्रजामय आवरण को पार कर अन्तरात्मा में प्रकट होता है, (आयवः) इस तक पहुँचने वाले जन (तम् ईम् मृजन्ति) उसी की शोध लगाते हैं।

पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥ १८ ॥

भा०—वह (कविः) क्रान्तदर्शी, (सोमः) सर्वप्रेरक प्रभु (चमू पुनानः) आकाश और भूमि को प्रेरित करता हुआ (मतिं जनयन्) ज्ञान को प्रकट करता है, (देवेषु) ज्ञान दाता विद्वानों में (रण्यति) परिव्राजकवत् उपदेश करता है, वह (अपः वसानः) लोकों को आच्छादित करता हुआ (वनेषु सीदन्) काष्ठों में अग्नि के तुल्य (उत्-तरः) सबसे उत्कृष्ट होकर (गोभिः परि अव्यत) रश्मि-तुल्य ज्ञान का प्रकाश करता है ।

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधींरति ताँ इहि ॥१९॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हे (सोम) आत्मा के तुल्य प्रिय ! (दिवे दिवे) दिनों दिन (अहम् तव सख्ये) मैं तेरे मित्र-भाव में (ररण) प्रसन्न होता हूँ । (पुरुणि) मेरी इन्द्रियां ही (माम् नि चरन्ति) मेरा तिरस्कार करती हैं, (माम् अव चरन्ति) मुझे नीचा करके भोग भोगती हैं, (परिधीन् तान्) चारों ओर से खड़े शत्रुओं को (अति इहि) तू पराजित कर ।

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२०॥१५॥

भा०—हे (सोम) परमात्मन् ! (अहम्) मैं (नक्तम् उत दिवा) रात और दिन (सख्या) मित्रभाव के लिये (ते ऊधानि) तेरे समीप रहूँ । हे (बभ्रो) पोषक ! (घृणा) दीप्ति से (तपन्तं) तपते (सूर्यम्) सूर्य को देख (शकुनाः इव) उन्नत मार्ग से जाने वाले पक्षियों के तुल्य हम (अति पप्तिम) कष्टों से पार पहुँच जावें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

मृज्यमा॑नः सुहस्त्य समु॒द्रे वाच॑मिन्वसि ।

र॒यिं पि॒शङ्गं॑ बहु॒लं पु॑रु॒स्पृहं॒ पव॑माना॒भ्य॑र्षसि ॥ २१ ॥

भा०—हे (सुहस्त्य) उत्तम हस्त में स्थित शक्ति वाले ! तू (समुद्रे मृज्यमानः) हृदयाकाश में परिमार्जित होता हुआ, (वाचम् इन्वसि) वाणी को प्रेरित करता है । हे (पवमान) सर्वप्रेरक आत्मन् ! तू (पिशंगं) हमें दीप्तिमान् (पुरु-स्पृहं) बहुतों से चाहने योग्य, (बहुलं) अति अधिक (रयिं) ऐश्वर्य प्रदान कर ।

मृ॒जा॒नो वारे॒ पव॑मानो अ॒व्यये॒ वृषाव॑ चक्रदो॒ वने॑ ।

दे॒वानां॑ सोम पवमान निष्कृ॒तं गोभि॑रञ्जा॒नो अ॑र्षसि ॥२२॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक प्रभो ! (अव्यये) अविनाशी (वारे) सर्ववरणीय रूप में (मृजानः) परिशुद्ध, (पवमानः) सबको पवित्र करता हुआ, (वृषा) सुखों का वर्षक होकर तू (वने अव चक्रदः) सुखद रूप में प्राप्त होता है । हे (पवमान) सर्वव्यापक, तू (गोभिः) वाणियों से (अंजानः) प्रकाशित होता हुआ (देवानाम्) जीवों के (निःकृतम् अर्षसि) निःशेष रूप से किये उपासनादि कर्म को प्राप्त करता है ।

पव॑स्व॒ वाज॑सातये॒ऽभि विश्वा॑नि॒ काव्या॑ ।

त्वं स॑मु॒द्रं प्र॑थ॒मो वि धा॑रयो दे॒वेभ्यः॑ सोम मत्स॒रः ॥ २३ ॥

भा०—(वाज-सातये) ज्ञान प्रदान करने के लिये (विश्वानि काव्या अभि) समस्त ज्ञान-वाणियों को (अभि पवस्व) प्रदान कर । हे (सोम) प्रभो ! (त्वं) तू (समुद्रं) ज्ञान के सागर को (प्रथमः) सर्वप्रथम (मत्सरः) आनन्ददायक होकर (देवेभ्यः विधारयः) विद्वानों को देता है ।

स तू प॑वस्व॒ परि॒ पार्थि॑वं॒ रजो॑ दि॒व्या च॑ सोम॒ धर्म॑भिः ।

त्वां विप्रा॑सो म॒तिभि॑र्विचक्षण शु॒भ्रं हि॑न्वन्ति धी॒तिभिः॑ ॥२४॥

भा०—हे (विचक्षण) विशेष द्रष्टः ! तू (पार्थिवं रजः परि) पृथिवी लोक के (धर्मभिः) धारक बलों से (दिव्या) इस देह के प्रति दिव्य सुखों

को (परि पवस्व) प्राप्त करा। (त्वां शुभ्रम्) तुझ शुद्ध को लक्ष्य कर (विप्रासः) विद्वान् जन (मतिभिः धीतिभिः) ज्ञान वाणियों से (त्वां हिन्वन्ति) तेरी महिमा बढ़ाते हैं।

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥२५॥

भा०—(मरुत्वन्तः) प्राणों से युक्त (पवमानाः) पवित्र विद्वान् जन (पवित्रं अति असृक्षत) पावन प्रभु को प्राप्त होते हैं। वे (मत्सराः) आनन्दयुक्त (इन्द्रियाः) परमेश्वर का भजन करते हुए (हयाः) आगे बढ़ते हुए (मेधाम् अभि) बुद्धि और (प्रयांसि अभि च असृक्षत) कर्म-फलों का निर्माण करता है।

अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद् गाः कृण्वानो न निर्णिजम् २६।१६

भा०—(सोतृभिः हियानः इन्दुः) माता पिता आदि से प्रेरित शुक्र रूप जीव (अपः वसानः) सूक्ष्म प्राणों में आच्छादित होकर (कोशम् परि अर्षति) गर्भ की ओर जाता है। (होतृभिः हियानः) उपासकों से प्रेरित (इन्दुः) आत्मा, (अपः वसानः) आप्त जनों में रहता हुआ, (कोशम् परि अर्षति) आनन्दमय प्रभु को प्राप्त होता है। वह (ज्योतिः जनयन्) दीप्तिमय रूप को प्रकट करता हुआ (मन्दनाः गाः कृण्वानः) आनन्द-जनक वाणियां बोलता हुआ (निः निजम् कृण्वानः) अपने विशुद्ध रूप को प्रकट करता है। इति षोडशो वर्गः ॥

[१०८]

ऋषिः—१, २ गौरिवीतिः। ३, १४—१६ शक्तिः। ४, ५ उरुः। ६, ७ ऋजिश्वाः। ८, ९ ऊर्द्धसद्मा। १०, ११ कृतयशाः। १२, १३ ऋणञ्चयः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ९, ११ उष्णिक् ककुप्। ३ पादनिचृदुष्णिक्। ५, ७, १५ निचृदुष्णिक्। २ निचृद्बृहती। ४, ६, १०, १२ स्वराड्बृहती। ८, १६ पंक्तिः। १४ निचृत्पंक्तिः। १३ गायत्री॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम्॥

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।

महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) हे ऐश्वर्यवन् ! तू (मधुमत्-तमः) अतिमधुर रस से युक्त है । तू (क्रतुवित्तमः) कर्मों और ज्ञानों के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ है । तू (मदः) स्तुत्य है और (द्युक्ष-तमः) तेजोमय एवं (मदः) आनन्दस्वरूप है तू (इन्द्राय) इस जीव के लिये (अति पवस्व) अनेक सुख प्रदान कर ।

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विदः ।

स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥ २ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे रस का पान करके, (वृषभः) बलवान् पुरुष (वृषायते) आनन्द जल की वृष्टि करता है । (अस्य स्वः-विदः) इस सुख प्राप्त करने वाले की रक्षा में (सः) वह (सु-प्र-केतः) उत्तम ज्ञानवान् जीव (एतशः वाजं नः) संग्राम को जाने वाले अश्व के तुल्य (इषः अभि अक्रमीत्) इच्छायोग्य पदार्थों को प्राप्त होता है ।

त्वं ह्यङ्ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।

अमृतत्वाय घोषयः ॥ ३ ॥

भा०—(अंग) हे (पवमान) पावन ! (त्वं हि) निश्चय तू ही (द्युमत्-तमः) तेजोमय (जनिमानि) उत्पन्न होने वाले जीवों को (अमृतत्वाय घोषयः) मोक्ष का उपदेश करता है ।

येना नवग्वो दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।

देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥ ४ ॥

भा—(येन) जिसके द्वारा (दध्यङ्) ध्यान का अभ्यासी, (नवग्वः) प्रशस्त मार्ग से जाने वाला, (चारुणः अमृतस्य) आत्मा के स्वरूप को (अप ऊर्णुते) खोलता है, (येन) जिससे (विप्रासः) ज्ञानी पुरुष (देवानां) इन्द्रियों के (सुम्ने) सुख में (अमृतस्य चारुणः) अमर फल के भोक्ता आत्मा के (श्रवांसि) ज्ञानों को प्राप्त करते हैं । और (येन श्रवांसि आनशुः)

जिससे वे नाना ज्ञान प्राप्त करते हैं वही उनको (अमृत्वाय घोषय:) अमृत का उपदेश करता है।

एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः।
क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(क्रीड़न् अपां ऊर्मिः इव) जलतरंगों के तुल्य खेलता हुआ (एषः) यह (स्यः) वह आत्मा, (धारया सुतः) वेदवाणी द्वारा उपासित होकर (अव्यः वारेभिः) परम रक्षक के श्रेष्ठ वरण योग्य साधनों से (पवते) प्राप्त होता है। इति सप्तदशो वर्गः॥

य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जैसे सूर्य (ओजसा) पराक्रम से (अश्मनः अन्तः) मेघ में से (गाः अप्याः उस्रियः) वेग से जाने वाली जलधाराओं को (निः अकृन्तत्) बाहर करता है, वैसे ही (यः) जो प्रभु (ओजसा) अपने बल से (अश्मनः अन्तः) भोक्ता आत्मा के अन्तःकरण से (उस्रियाः) ऊपर को आने वाली (अप्याः) प्रवृत्तियों और (गाः) स्तुति वाणियों को प्रेरित करता है और (गव्यं व्रजं) वाणियों के व्यापने योग्य मार्ग को (अभि तत्निषे) बनाता है, विस्तृत करता है, हे (धृष्णो) प्रभो ! वह तू (वर्मी-इव) कवचधारी वीर के समान (आ रुज) बाधक कारणों को दूर कर।

आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्।
वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् जनों ! आप (अश्वं न स्तोमं) अश्व के समान वेगवान्, (अप्-तुरम्) परमाणुओं के चलाने वाले, (रजः-तुरम्) लोक लोकान्तरों के संचालक (वनक्रक्षम्) लोकों में व्यापक, काष्ठों में अग्नि के तुल्य अव्यक्त, (उद-प्रुतम्) जलाशय के तुल्य प्रभु की (आ सोत परि सिंचत) आदर से उपासना करो।

सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।

ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥ ८ ॥

भा०—(सहस्र धारम्) सहस्रों शक्तियों से सम्पन्न, (वृषभम्) सुखों के वर्षक, (पयःवृधम्) पुष्टिकारक पदार्थों को बढ़ाने वाले, (जन्मने देवाय प्रियम्) जन्म लेने वाले आत्मा को तृप्त करने वाले की उपासना करो, (यः) जो (ऋत-जातः) सत्य रूप में प्रकट होने वाले (ऋतेन) अपने सामर्थ्य से (देवः राजा) चमचमाते सूर्य के तुल्य (बृहत् ऋतम् वावृधे) बड़े भारी ज्ञान को बढ़ाता है ।

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः ।

वि कोशं मध्यमं युव ॥ ९ ॥

भा०—हे (इषः पते) अन्नों के स्वामिन् ! तू (बृहत्) बड़े भारी (द्युम्नं) तेज और (यशः) कीर्त्ति को (अभि दिदीहि) लक्ष्य कर (देवयुः) जीवों की कामना करने वाला उनका प्रिय स्वामी, तू हे (देव) दानदातः ! तू (मध्यमं कोशम्) बीच के खजाने को (वि युव) खोल दे । (२) सब इच्छाओं का स्वामी होने से आत्मा 'इषःपति' है । इन्द्रियों का स्वामी होने से 'देवयु' है । मनोमय कोश मध्यकोश है, प्रथम कोश अन्नमय और अन्तिम कोश आनन्दमय है । प्राणमय, विज्ञानमय और मनोमय बीच के कोश हैं जो आत्म-प्रत्यक्ष में बाधक हैं । सो इच्छा-शक्ति की तीव्रता अर्थात् एकाग्रता से उनका भी बन्धन टूटता है और आत्मा का स्वच्छ तेजोमय रूप प्रकट होता है ।

आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।

वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥१०॥१८॥

भा०—हे (सु-दक्ष) उत्तम बलशालिन् ! तू (सुतः) अभिषिक्त होकर (चम्वोः) दो मुख्य सेनाओं के ऊपर (आवच्यस्व) अध्यक्ष पद पर आ और (विशां वह्निः) प्रजाओं को वहन करता हुआ, (विश्पतिः न) राजा के

तुल्य (दिवः वृष्टिं) आकाश से बरसती वृष्टि को मेघ के तुल्य (दिवः) तेज की (वृष्टिं) शत्रु को काट गिराने वाली सेना को (पवस्व) प्रेरित कर और (अपां रीतिम्) आप्त जनों की परिपाटी को प्रवृत्त कर। (गविष्टये) भूमि के प्रार्थी प्रजाजन के उपकारार्थ (धियः जिन्व) कर्मों को प्रवृत्त करो। इत्यष्टादशो वर्गः॥

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम्॥ ११॥

भा०—(एतम्) उस (त्यं) परम (सहस्र-धारं) सहस्रों धारक शक्तियों के स्वामी, (वृषभं) ऐश्वर्यों की वर्षा करने वाले प्रभु से (दिवः) कामना करने वाले पुरुष (दुहुः) आनन्द का दोहन करते हैं। वे (विश्वा वसूनि बिभ्रतम्) ऐश्वर्यों के धारक प्रभु को प्राप्त कर, (विश्वा वसूनि दुहुः) उसी से ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।

वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा॥ १२॥

भा०—(सः) वह (अमर्त्यः) अविनाशी प्रभु (जनयन्) जगत् का उत्पादक (वृषा) वीर्यसेक्ता पिता के समान (वि जज्ञे) जाना जाता है। वह (ज्योतिषा) अपने तेज से (प्र-तपन्) सूर्यवत् तपता हुआ (तमः वि जनयन्) अन्धकार को दूर करता है। वह (कविभिः सु-स्तुतः) क्रान्तदर्शी जनों से स्तुति को प्राप्त करता और (निः-निजं दधे) अपना विशुद्ध रूप धारता है। (अस्य दंससाः) इसके ही कर्म-सामर्थ्य से (त्रि-धातु) यह जगत् तीन लोकों में धारित है।

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम्।
सोमो यः सुक्षितीनाम्॥ १३॥

भा०—(यः वसूनां सुन्वे) जो समस्त ऐश्वर्यों का उत्पादक है, (यः रायां सुन्वे) जो समस्त ऐश्वर्यों और धनों का स्वामी है और (यः इडानां

आनेता) जो समस्त प्राणियों का नायक है और (यः सुक्षितीनां सुन्वे) जो प्रजाओं का शासक है (सः सोमः) वही 'सोम' है।

यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥ १४ ॥

भा०—(यस्य) जिसके दिये को (नः इन्द्रः पिबात्) हमारा आत्मा वा राजा उपयोग करता है, (यस्य वा मरुतः) और जिसके दिये ऐश्वर्य को ये प्राणगण भोग करते हैं और (यस्य वा अर्यमणा भगः) जिसके ऐश्वर्य को शत्रुओं का नियन्ता राजा भी भोगता है (येन) जिसके द्वारा हम लोग (मित्रावरुणौ) स्नेही जन और श्रेष्ठ जनों को (आ करामहे) प्राप्त करते हैं और जिसकी कृपा से हम (अवसे महे) अपनी बड़ी भारी रक्षा के लिये (इन्द्रम् आकरामहे) अपने तेजस्वी आत्मा को स्वीकार करते हैं वही 'सोम' है।

इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः ।
पवस्व मधुमत्तमः ॥ १५ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (इन्द्राय पातवे) राज्य-पद की रक्षा के लिये, (सु-आयुधः) उत्तम शस्त्रास्त्रों से युक्त होकर (नृभिः यतः) उत्तम जनों से सुसंगत यत्नवान् होकर (मदिन्तमः) सबसे अधिक हर्षदायी (मधुमत्-तमः) अति बलशाली होकर (पवस्व) सुख प्रदान कर।

इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः ॥१६॥१९॥

भा०—(सिन्धवः समुद्रम् इव) नदियां जैसे समुद्र को प्रवेश करती हैं वैसे ही हे (सोम) जीव ! तू भी (सोम-धानम्) जगत् को उत्पन्न करने वाले परम सामर्थ्य रूप वीर्य के एकमात्र आश्रय (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (हार्दि) मनोहर रूप में (आ विश) प्रवेश कर। वह परमेश्वर (मित्राय) स्नेही, (वरुणाय) वरण करने वाले (वायवे) ज्ञानी पुरुष के लिये (जुष्टः)

प्रीतियुक्त (दिवः) ज्ञान और प्रकाश का (उत्तमः) सर्वोत्तम (वि-स्तम्भः) महान् आश्रय है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१०९]

अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा ऋषयः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ८, १०, १३, १४, १५, १७, १८ आर्ची भुरिग्गायत्री । २—६, ९, ११, १२, १९, २२ आर्ची स्वराड् गायत्री । २०, २१ आर्ची गायत्री। १६ पादनिचृद् गायत्री ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

परि॒ प्र ध॒न्वेन्द्रा॑य सोम स्वा॒दुर्मि॒त्राय॑ पू॒ष्णे भगा॑य ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) जीव ! तू (इन्द्राय) तेजस्वी (मित्राय) स्नेही (पूष्णे) पोषक (भगाय) सेवनीय प्रभु की प्राप्ति के लिये (परि प्र धन्व) आगे बढ़ ।

इन्द्र॒स्ते सोम सु॒तस्य॑ पेयाः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य॒ विश्वे॑ च दे॒वाः ॥२॥

भा०—हे (सोम) जीवात्मन् ! (सुतस्य ते) उत्पन्न हुए तेरी (इन्द्रः पेयाः) जगदीश्वर रक्षा करे। और (क्रत्वे) तेरे ज्ञान प्राप्त करने और (दक्षाय) उत्साह की वृद्धि करने के लिये (विश्वे देवाः च) समस्त विद्वान् तेरा पालन करें।

ए॒वामृता॑य म॒हे क्षया॑य॒ स शु॒क्रो अ॑र्ष दि॒व्यः पी॒यूषः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) आत्मन् ! (सः) वह (शुक्रः) तेजोयुक्त (दिव्यः) दिव्य, (पीयूषः) परम रसस्वरूप प्रभु है। उस (महे अमृताय) महान् अमृत को और (महे क्षयाय) बड़े भारी शरण्य प्रभु को प्राप्त करने के लिये (एव) ही तू (अर्ष) आगे बढ़।

पव॑स्व सोम म॒हान्त्स॑मु॒द्रः पि॒ता दे॒वानां॒ विश्वा॒भि धाम॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक प्रभो ! तू (देवानां पिता) तेजोमय लोकों का पालक है, (समुद्रः) समुद्र के समान महान् है, तू (विश्वा धाम) समस्त लोकों में (अभि पवस्व) सुखों की वर्षा कर।

शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ॥ ५ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक ! हे प्रभो ! तू (शुक्रः) देदीप्यमान और गतिदायक है, तू (देवेभ्यः पवस्व) सूर्यादि लोकों के हितार्थ व्याप, उनको शक्ति दे, (दिवे पृथिव्यै, प्रजायै च शम्) आकाश, पृथिवी और प्रजाओं को शान्ति (पवस्व) प्रदान कर।

दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (दिवः धर्त्ता असि) आकाश धारक (शुक्रः) कान्तिमान् (पीयूषः) सज्जनों से पान करने योग्य रस के तुल्य है। तू (सत्ये) सत् प्रकृति से उत्पन्न (विधर्मन्) विशेष रूप से धारण करने योग्य इस विश्व में (वाजी) बलवान् (धर्त्ता असि) धारण करने वाला है।

पवस्व सोमद्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्पादक (पूर्व्यः) तू सबसे पूर्व पालन करने वाला, (द्युम्नी) तेजस्वी (महान्) बड़े २ (अवीनाम्) सूर्यों को भी (सु-धारः) सुख से धारण करने वाला है। वह तू (अनुपवस्व) हम पर अनुग्रह कर।

नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥ ८ ॥

भा०—वह (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (येमानः) यमनियमादि द्वारा साधित, (जज्ञानः) प्रकट किया गया, (पूतः) पवित्र, (मन्द्रः) हर्षदायक, (स्वः-वित्) सर्वज्ञ है। वह प्रभु (विश्वानि क्षरत्) समस्त सुख प्रदान करे।

इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥ ९ ॥

भा०—वह (इन्दुः) देदीप्यमान (प्रजाम् उराणः) प्रजा का उत्पादक और (पुनानः) सबको पवित्र करने वाला प्रभु (नः) हमारे लिये (विश्वानि द्रविणानि) समस्त ऐश्वर्य (करत्) उत्पन्न करे।

पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१०॥२०॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक प्रभो ! तू (निक्तः अश्वः न) धुले अश्व के समान, (वाजी) ज्ञानवान् और बलवान् है । तू (क्रत्वे) ज्ञान, (दक्षाय) बल और ज्ञान (धनाय) धन प्राप्त करने के लिये (पवस्व) हम पर अनुग्रह कर । इति विंशो वर्गः ॥

तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ ११ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक प्रभो ! (सोतारः) उपासक लोग (ते मदाय) तेरे परमानन्द की प्राप्ति के लिये और (ते महे द्युम्नाय) तेरे महान् तेज की प्राप्ति के लिये (तम्) उस अनिवर्चनीय, (रसम्) रस-स्वरूप, (सोमम्) सर्वोत्पादक तुझको (पुनन्ति) प्राप्त होते हैं ।

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥१२॥

भा०—वे (शिशुम् जज्ञानम्) उत्पन्न होते बालक के तुल्य देहों और हृदयों में व्यापक (सोमं) सर्वोत्पादक और (हरिं) सर्व दुःखहारी (इन्दुम्) तेजोमय प्रभु का (देवेभ्यः) मनुष्यों के कल्याण के लिये (पवित्रे) पवित्र हृदय में (मृजन्ति) ध्यान और अभ्यास करते हैं ।

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥ १३ ॥

भा०—(इन्दुः) तेजःस्वरूप (चारुः) कर्मफल का भोक्ता (कविः) स्तुति करने वाला, जीव वा विद्वान् (मदाय) आनन्दस्वरूप (भगाय) ऐश्वर्यवान् प्रभु की प्राप्ति के लिये (अपाम् उपस्थे) प्राणों के बल पर (पविष्ट) अपने को पवित्र करे ।

बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥ १४ ॥

भा०—वह (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का (चारु नाम बिभर्त्ति) सुन्दर नाम लेता है, (येन) जिससे (विश्वानि वृत्रा जघान) वह समस्त विघ्नों का नाश कर देता है ।

पिब॑न्त्यस्य॒ विश्वे॑ दे॒वासो॒ गोभि॑: श्री॒तस्य॒ नृभि॑: सु॒तस्य॑ ॥१५॥

भा०—(नृभिः सुतस्य) उत्तम मनुष्यों से पूजित और (गोभिः श्रीतस्य) वाणियों द्वारा सेवित, (अस्य) इसके परम रस का (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् लोग पान करते हैं।

प्र सु॑वा॒नो अ॑क्षाः स॒हस्र॑धारस्ति॒रः प॒वित्रं॒ वि वार॒मव्य॑म् ॥१६॥

भा०—वह (सुवानः) उत्तम रीति से उपासित, (सहस्र-धारः) सहस्रों धारक शक्तियों से सम्पन्न (पवित्रम्) परम पवित्र, (अव्यम्) सर्वरक्षक (वारम्) सामर्थ्य को (प्र अक्षाः) प्राप्त करता है।

स वा॒ज्य॑क्षाः स॒हस्र॑रेता अ॒द्भिर्मृ॑जा॒नो गोभि॑: श्री॒णानः ॥ १७ ॥

भा०—(सः) वह (वाजी) बलवान्, (सहस्र-रेताः) सहस्र वीर्यों वाला, (अद्भिः) आप्त जनों से (मृजानः) विवेचित, (गोभिः श्रणानः) दुग्ध-धाराओं के तुल्य वेदवाणियों से सुसंस्कृत होकर (अक्षाः) प्रकट होता है।

प्र सो॑म या॒हीन्द्र॑स्य कु॒क्षा नृभि॑र्येमा॒नो अद्रि॑भिः सु॒तः ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) साधक! तू (अद्रिभिः) आदर योग्य (नृभिः) गुरुजनों से (सुतः) प्रेरित होकर (येमानः) यम नियम का पालन करता हुआ, (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (कुक्षौ) बीच वा गुरु के विद्यागर्भ में स्थित होकर (प्र याहि) सन्मार्ग में गमन कर।

अस॑र्जि वा॒जी ति॒रः प॒वित्र॒मिन्द्रा॑य॒ सोम॑: स॒हस्र॑धारः ॥ १९ ॥

भा०—(सहस्र-धारः) सहस्रों शक्तियों वाला, (वाजी) ज्ञानी (सोमः) विद्वान् पुरुष, (इन्द्राय) प्रभु को प्राप्त करने के लिये (पवित्रम्) अन्तःकरण को पवित्र करने के साधन को (तिरः असर्जि) प्राप्त करे।

अ॒ञ्जन्त्ये॑नं॒ मध्वो॒ रसे॒नेन्द्रा॑य॒ वृष्ण॒ इन्दुं॒ मदा॑य ॥ २० ॥

भा०—साधक लोग (एनम्) उस (इन्दुम्) प्रभु की ओर द्रवित होने वाले आत्मा को (वृष्णः) सुखवर्षी (इन्द्राय मदाय) परमानन्द की प्राप्ति के लिये (मध्वः रसेन अञ्जन्ति) ज्ञान रस से प्रकाशित करते हैं।

देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥ २१ ॥

भा०—वे साधक जन, हे सोम ! (अपः वसानम्) कर्मों के वासनामय लिङ्ग शरीर के धारक (हरिम्) कान्तियुक्त (त्वा) तुझको (देवेभ्यः पाजसे) देवों की बल-सिद्धि के लिये (मृजन्ति) परिष्कृत करते हैं।

इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥२२॥२१॥

भा०—(इन्दुः) इस आत्मा को (इन्द्राय) परमेश्वर के प्राप्त्यर्थ (तोशते) तप से तपाया जाता है, (नि तोपते) नियमों द्वारा क्लेशित किया जाता है, (श्रीणन्) वह सोम सेवा करता हुआ ही (उग्रः) बलशाली होकर (अपः रिणन्) नाना कर्म करता है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[११०]

त्र्यरुणत्रसदस्यू ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता छन्दः—१, २, १२ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । १०, ११ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ विराड्बृहती । ५, ६ पादनिचृद् बृहती । ९ बृहती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (वाज-सातये) ज्ञान के लिये (परि प्र धन्व) चारों ओर भ्रमण कर और (सक्षणिः) सहनशील होकर (वृत्राणि परि) विघ्नों का नाश करने के लिये परिव्राट् के तुल्य हो। तू वीर के समान (ऋणयाः) देव-पितृ आदि के ऋणों से मुक्त होकर (द्विषः) द्वेषभावों को पार करने के लिए (नः ईयसे) हमें प्राप्त हो।

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! (त्वां सुतम् अनु) तुझ दीक्षित के साथ भी (मदामसि) प्रसन्न होते हैं। हे (पवमान) पावन ! तू (महे) बड़े

(स-मर्यराज्ये) मनुष्यों सहित राज्य में राजा के तुल्य (वाजान् अभि) ज्ञानों और ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर (प्र गाहसे) आगे बढ़ ।

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।

गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ ३ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्रकारक ! तू (वि-धारे) विविध लोकों के धारक ! अन्तरिक्ष में (शक्मना) अपनी महान् शक्ति से (सूर्यम् अजीजनः) सूर्य को प्रकट करता है और (पयः) अन्न और जल को उत्पन्न करता है और (पुरन्ध्या) विश्वपोषक बल से और (गो-जीरया) पृथ्वी और रश्मियों को प्रेरित करने वाली शक्तियों से (रंहमाणः) सञ्चालित करता है ।

अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।

सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अमृत) अविनाशिन् ! तू (मर्त्येषु) मनुष्यों में (धर्मन्) धर्म में स्थित होकर (अमृतस्य) अविनाशी, (चारुणः) उत्तम, (ऋतस्य) सत्य को (अजीजनः) प्रकट कर और (सदा) सदा (वाजम् सनिष्यदत्) ज्ञान प्रदान करता हुआ (अच्छ असरः) आगे भ्रमण कर ।

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ ५ ॥

भा०—तू (श्रवसा) श्रवण योग्य आत्मज्ञान से (उत्सम् न कंचित्) जल-निकास वा कूप के तुल्य (अक्षितम् जनपानम्) जीव-जगत् के पालक अक्षय प्रभु को (ततर्दिथ) यत्न से प्राप्त कर और (गभस्त्योः) बाहुओं में लगी अंगुलियों से जैसे पदार्थ धारण किया जाता है वैसे ही प्राण-अपान की (शर्याभिः) साधनाओं से (भरमाणः) बल को धारण करता हुआ प्रभु को प्राप्त कर ।

आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।

वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—(केचित्) कई (दिव्याः) ज्ञान के उपासक (वसु-रुचः) सबको बसाने वाले प्रभु को चाहते हुए (आत्) अनन्तर (ईं पश्य-मानासः) उस प्रभु को बन्धुवत् देखते हुए (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुति करते हैं कि वह (देवः सविता) सब जगत् का उत्पादक है। वही (वारं न व्यूर्णुते) अन्धकारतुल्य अज्ञान को दूर करता है। इति द्वाविंशो वर्गः॥

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) प्रभो ! (प्रथमाः) पहले श्रेष्ठ जन (वृक्तबर्हिषः) काम क्रोध आदि शत्रुओं को तृणों के तुल्य छेदन करते हैं। (महे वाजाय) महान् बल और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (त्वे) तेरे सम्बन्ध में (श्रवसे) ज्ञानोपदेश श्रवण के लिये (धियं दधुः) कर्म और बुद्धि को लगाते हैं। (सः त्वम्) वह तू हे (वीर) बलशालिन् ! (नः) हमें भी (वीर्याय) उस बल की प्राप्ति के लिये (चोदय) प्रेरित कर।

दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥ ८ ॥

भा०—(दिवः) प्रकाशमय प्रभु का (पीयूषं) पान करने योग्य (यत् पूर्व्यं उक्थ्यं) जो पूर्व विद्वानों द्वारा उपदिष्ट ज्ञान है उसको (दिवः) तेमोमय (महः गाहात्) महान् प्रभु से वे (निर् अधुक्षन्) प्राप्त करते हैं और (जायमानं) हृदय में प्रकट होने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को लक्ष्य कर (सम् अस्वरन्) उसी की स्तुति करते हैं।

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना।
यूथे नः निःष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥ ९ ॥

भा०—हे (पवमान) व्यापक ! (यत्) जो (इमा विश्वा भुवना) इन समस्त लोकों पर (मज्मना) अपने बल से (यूथे वृषभः न) जूथ में बिजार के तुल्य सर्वत्र बीजवपन करने वाला होकर (अभि निःस्थाः)

विराजता है और (वि तिष्ठसे) उनमें विविध प्रकार से विराजता है। अतएव तू महान् 'सोम' सर्वोत्पादक है।

सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥ १० ॥

भा०—(एषः) यह (पुनानः) पवित्र करता हुआ, (मधुमान्) आनन्द से युक्त, (ऋत-वा) सत्य से युक्त, (स्वादुः) सुखद, (ऊर्मिः) तरङ्गवत् उत्तम एवं (वाज-सनिः) बलदायक (वरिवः-वित्) धनों को प्राप्त करने वाला, (वयःधाः) बलों का धारक, (इन्दुः) तेजोमय प्रभु (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (पवते) प्रकट होता है।

एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥ ११ ॥

भा०—(सोमः) वह शासक प्रभु (अव्यये) अविनाशी (वारे) वरणीय रूप में (पुनानः) प्रकट होता हुआ, (शिशुः न क्रीडन्) बालकवत् जगत् के सर्जन-संहार आदि कर्म करता हुआ, (पवमानः) जगत् को चलाता हुआ, (सहस्र-धारः) सहस्रों शक्तियों वाला और (शत-वाजः) सैकड़ों ऐश्वर्यों वाला (इन्दुः) परम तेजस्वी है।

स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप दुर्गहाणि।
स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् ॥ १२ ॥ १३ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः! (सः) वह तू (पृतन्यून्) संग्राम में बाधक शत्रुओं को (सहमानः पवस्व) सबको पराजित करता हुआ (दुर्गहाणि रक्षांसि) कठिनता से वश में आने वाले दुष्ट भावों को (अप सेध) दूर कर और तू (सु-आयुधः) उत्तम आयुधों से सम्पन्न होकर (शत्रून् सासह्वान्) शत्रुओं को पराजित करने वाला हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१११]

अनानतः पारुच्छेपिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृदष्टिः । २ भुरिगष्टिः । ३ अष्टिः ॥ तृचं सूक्तम् ॥

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः । सूरो न स्वयुग्वभिः । धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः । विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ १ ॥

भा०—वह (अया) इस (हरिण्या रुचा) मनोहर दीप्ति एवं कान्ति से (स्वयुग्वभिः सूरः) रश्मियों से सूर्य तुल्य तेजस्वी होकर (स्व-युग्वभिः) प्राणों से वा नियुक्त पुरुषों से राजा के तुल्य (पुनानः) चित्त को स्वच्छ करता हुआ (विश्वा द्वेषांसि) सब प्रकार के द्वेष भावों को (तरति) तर जाता है। (सप्तास्येभिः ऋक्वभिः) सर्पणशील मुखों वाले तेजों से सूर्य के तुल्य (ऋक्वभिः) ज्ञानवान् पुरुषों द्वारा (यत्) जब (विश्वा रूपा परियाति) समस्त रुचिकर पदार्थों को जान लेता है तब वह (अरुषः) रोषरहित, (हरिः) मनोहर (पुनानः) अति पवित्र होता है (सुतस्य) उस अभिषिक्त विद्वान् की (धारा रोचते) वाणी सबको अच्छी लगती है।

त्वं त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे । परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ २ ॥

भा०—हे आत्मन्! हे राजन्! (त्वं) तू (पणीनां त्यत् वसुविदः) व्यवहार में रहने वाले इन्द्रियों का वह धन ज्ञान जान लेता है और (मातृभिः) ज्ञान करने वाले साधनों या विद्वानों से (वसु) प्राप्त ज्ञान को (स्व दमे) अपने दमनशील चित्त में (ऋतस्य धीतिभिः) सत्य के धारक विद्वानों द्वारा (सं मर्जयसि) उनसे मिलकर शुद्ध कर लेता है, (यत्र) जहां (धीतयः) ज्ञान के धारक (परावतः) परम रक्षास्थान से (साम न)

सामवचनतुल्य ज्ञान का (रणन्ति) उपदेश करते हैं वहां तू (त्रिधातुभिः अरुषीभिः) तीनों लोकों को धारण करने वाली दीप्तियुक्त नीतियों से (वयः दधे) तेज और दीर्घायु को धारण करता है और वह तू (रोचमानः) सर्वप्रिय होकर (वयः दधे) बल को धारण करता है।

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः। अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्। वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ ३ ॥ २४ ॥

भा०—(पूर्वाम् प्रदिशम् अनु) जैसे सूर्य पूर्व दिशा की ओर (रश्मिभिः याति) रश्मियों सहित आता और (दर्शतः) दर्शनीय रमणीय होकर (यतते) उद्यत होता है, वैसे वह भी (पूर्वाम् प्रदिशम् अनु) सबसे पूर्व विद्यमान वेदवाणी का अनुसरण कर (चेकितत् याति) ज्ञान प्राप्त करता हुआ गमन करता है और वह (दैव्यः) प्रभु का उपासक होकर (दर्शतः) दर्शनीय (रथः) परमानन्द से युक्त होकर (रश्मिभिः) मर्यादाओं या साधनों से यत्न करता है। हे (सोम) विद्वन्! हे (इन्द्र) आचार्यवर! आप दोनों (समत्सु अनपच्युता) संग्रामों में कुमार्गों में न गिरने वाले स्थिर वीरों के तुल्य (वज्रः च यत् अनपच्युता भवथः) बल वीर्य से युक्त स्थिर हो जाते हो तब, लोग (जैत्राय) विजय के लिये (इन्द्रं) उस तत्वदर्शी को (हर्षयन्) हर्षित करते हैं और (पौंस्या उक्थानि अग्मन्) पौरुष युक्त वचनों को कहते हैं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[११२]

शिशुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३ विराट् पंक्तिः । ४, निचृत् पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम्।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥१॥

भा०—(नः धियः नानानं) हमारी बुद्धियां नाना प्रकार की हैं। (जनानां व्रतानि वि) मनुष्यों के कर्म भी विविध प्रकार के हैं। जैसे—(तक्षा) तरखान (रिष्टम् इच्छति) लकड़ी काटना चाहता है, (भिषक् रुतम् इच्छति) वैद्य रोगी को चाहता है और (ब्रह्मा) वेद का विद्वान् (सुन्वन्तम्) यज्ञ करने वाले को (इच्छति) चाहता है। उसी प्रकार हे (इन्दो इन्द्राय) हे ऐश्वर्यवन्! तू ऐश्वर्य पद के लिये (परि स्रव) आगे बढ़।

जर॑तीभि॒रोष॑धीभिः प॒र्णेभिः॑ शकु॒नाना॑म्।
का॒र्मा॒रो अश्म॑भि॒र्द्युभि॒र्हिर॑ण्यवन्तमिच्छ॒तीन्द्रा॒येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥२॥

भा०—जैसे (जरतीभिः ओषधीभिः) जीर्ण होने वाली, परिपक्व ओषधियों से, (शकुनानाम् पर्णेभिः) पक्षियों के पंखों से और (द्युभिः अश्मभिः) तीक्ष्ण शिला खण्डों से बाण बनाने वाला (कार्मारः) क्रिया-कुशल शिल्पी (हिरण्यवन्तम्) धन-सम्पन्न को प्राप्त करना चाहता है वैसे ही हे (इन्दो) तेजस्विन्! (जरतीभिः ओषधीभिः) शत्रु को हानि करने वाली सेनाओं से और (शकुनानाम् पर्णेभिः) शक्तिशाली, अपने को और तुझे उन्नत पद तक उठा लेने वाले वीर पुरुषों के पालन सामर्थ्यों से और (द्युभिः-अश्मभिः) चमचमाते शस्त्रों से (इन्द्राय) राज्यपद के लिये (परि स्रव) आगे बढ़।

का॒रुर॒हं त॒तो भि॒षगु॑पलप्र॒क्षिणी॑ न॒ना।
नाना॑धियो वसू॒यवोऽनु॒ गा इ॑व तस्थि॒मेन्द्रा॒येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥३॥

भा०—(अहं कारुः) मैं उत्तम शिल्पों का सम्पादन करने वाला हूँ। (ततः भिषक्) मेरा पुत्र वा पिता, रोगों की चिकित्सा करने वाला है और (नना) माता वा बहिन (उपलप्रक्षिणी) वकशील सोम व्यापी है। हम लोग सभी (वसूयवः) धन की इच्छा करते हुए (नाना धियः) नाना कर्मों वाले होकर (गाः इव) गोपालक के प्रति गौओं के सदृश (अनु तस्थिम) तेरी आज्ञानुसार कार्य करते हैं। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्,

(इन्द्राय) हमारे ऐश्वर्य के देने के लिये (परि स्रव) मेघवत् सुख की वृष्टि कर।

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः। शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥ २५ ॥

भा०—(वोढा अश्वः) भार उठाने वाला अश्व वा बैल (सुखम्) सुख से ले चलने योग्य (रथम्) वेग से जाने वाले रथ को (इच्छति) चाहता है। (उपमन्त्रिणः) मित्र लोग (हसनाम्) परस्पर हास-विनोद (इच्छन्ति) चाहते हैं। (शेपः रोमण्वन्तौ भेदौ इच्छति) पुरुष का कामांग लोमयुक्त दो खण्ड अर्थात् युवति के अंग की अपेक्षा करता है। हे (इन्दो) तेजस्विन्! तू उसी प्रकार (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पद की ओर (परि स्रव) गमन कर और उसे प्राप्त कर। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[११३]

कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७ विराट् पंक्तिः। ३ भुरिक् पंक्तिः। ४ पंक्तिः। ५, ६, ८-११ निचृत् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

भा०—(आत्मनि) अपने में (महत् वीर्यं करिष्यन्) महान् बल चाहता हुआ और (महत् बलं दधानः) महान् बल धारण करता हुआ, (वृत्र-हा) विघ्न रूप शत्रुओं का नाश करने वाला, (इन्द्रः) राजा और आत्मा (शर्यणावति) शत्रु-हिंसक सेना से युक्त बल-सैन्य के आश्रय पर (सोमम् पिबतु) ऐश्वर्य का उपभोग करे।

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

भा०—हे (मीढ्वः) ऐश्वर्यों की प्रजाओं पर और शस्त्रों की शत्रुओं पर वर्षा करने वाले! हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे (दिशांपते) वायुवत्

दिशाओं के पालक ! तू (सुतः) पूजित होकर (ऋत-वाकेन) त्रिकालबाधित वेद-वचन और (सत्येन) सज्जनों के उपदिष्ट व्यवहार से और (श्रद्धया) सत्य बुद्धि और (तपसा) तप से युक्त होकर (आर्जीकात्) धर्मनीति से युक्त उच्च पद से (आ पवस्व) हमें प्राप्त हो। हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (इन्द्राय परि स्रव) ऐश्वर्यप्रद की पद प्राप्ति के लिये उद्योग कर।

पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत्।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेन्दो परि स्रव॥३॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्य के समान पुरुष की कामनाओं को पूर्ण करने वाली और दूर २ तक जाने वाली शक्ति वा सेना ही (पर्जन्य-वृद्धम्) मेघवत् बड़े २ शत्रुओं के विजेता, (महिषम्) महान्, भूमि के उपभोक्ता (तम्) उसको (आभरत्) सब ओर से पुष्ट करता है। (गन्धर्वाः) भूमि को धारण करने वाले जन (तम् प्रति अगृभ्णन्) उसको अपनाते हैं और (सोमे) उस उत्तम शासक के बल पर ही (रसम् आदधुः) अपना विशेष बल रखते हैं। हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (इन्द्राय) ऐसे शत्रुहन्ता और ऐश्वर्यप्रद राज्य के लिये (परि स्रव) उद्योग कर।

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन्। श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ ४॥

भा०—हे (ऋत-द्युम्न) सत्यकान्तियुक्त ! हे (सत्य-कर्मन्) सत्कर्म करने वाले ! हे (सोम) ऐश्वर्य-शक्ति के पालक ! तू (ऋतम् वदन्) यथावत् वेदानुसार वचन कहता हुआ (सत्यं वदन्) सत्य का उपदेश करता हुआ, (श्रद्धां वदन्) सत्य को धारण करने वाली बुद्धि वा वाणी का उपदेश करता हुआ, हे (इन्दो) तेजस्विन् ! (धात्रा) पुरोहित वा पोषक जन से (परि-कृतः) सुसज्जित होकर (इन्द्राय परि स्रव) ऐश्वर्यपद के लिये आगे बढ़।

सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः। सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ ५॥ २६॥

भा०—(सत्यम्-उग्रस्य) सत्य को सर्वोपरि बोलने वाले, (बृहतः) महान् प्रभु के (संस्रवाः सं स्रवन्ति) अच्छी प्रकार एक साथ बहने और प्रवाह से चलने वाले ज्ञान, ऐश्वर्य और बल (सं स्रवन्ति) एक साथ बहते, बढ़ते और प्राप्त होते हैं। (रसिनः) उस बलवान् के (रसाः) बल एवं सैन्य (सं यन्ति) एक साथ जा रहे हैं, इस प्रकार हे (हरे) दुःखों के हरने हारे। तू (ब्रह्मणा पुनानः) वेद ज्ञान से पवित्र देश को निष्कण्टक करता हुआ, हे (इन्दो) तेजस्विन्! तू (इन्द्राय परि स्रव) ऐश्वर्यपद के लिये आगे बढ़। इति षड्विंशो वर्गः॥

यत्र॑ ब्र॒ह्मा प॑वमान छन्द॒स्यां॒३॒ वाचं॒ वद॑न्।
ग्राव्णा॒ सोमे॑ मही॒यते॒ सोमे॑ना॒नन्दं॑ ज॒नय॒न्निन्द्रा॒येन्दो॒ परि॑ स्रव॥६॥

भा०—हे (पवमान) पवित्रकारक! (यत्र) जहां (ब्रह्मा) वेदज्ञ, विद्वान्, (छन्दस्यां वाचं वदन्) छन्दोमयी वेदवाणी का उपदेश करता हुआ (ग्राव्णा) विद्वान् के सहयोग से (सोमे) शासक पद पर (महीयते) प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और (सोमेन आनन्दं जनयन्) ऐश्वर्य से सबको आनन्द देता हुआ विराजता है उसी (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त पद के लिये हे (इन्दो) तेजस्वित्! तू भी (परि स्रव) उद्योग कर।

यत्र॒ ज्योति॒रज॑स्रं॒ यस्मि॑ल्लो॒के स्व॑र्हि॒तम्।
तस्मि॒न्मां धे॑हि पवमाना॒मृते॑ लो॒के अक्षि॑त॒ इन्द्रा॒येन्दो॒ परि॑ स्रव॥७॥

भा०—हे (पवमान) पवित्रकारक प्रभो! (यत्र) जहां (अजस्रं ज्योतिः) सदा प्रकाश बना रहे, (यस्मिन् लोके) जिस लोक में सदा (स्वः हितम्) सुख बना रहता है, (तस्मिन्) उस (अमृते अक्षिते लोके) मृत्युरहित, विनाशरहित लोक में (माम् धेहि) मुझे रख। (इन्दो इन्द्राय परि स्रव) हे दयार्द्र-स्वभाव! तू (इन्द्राय) इस आत्मा के लिये सुखों को बहा।

यत्र॒ राजा॑ वैवस्व॒तो यत्रा॑व॒रोध॑नं दि॒वः।
यत्रा॒मूर्य॒ह्वती॒राप॒स्तत्र॒ माम॒मृतं॑ कृ॒धीन्द्रा॒येन्दो॒ परि॑ स्रव॥८॥

भा०—(यत्र वैवस्वतः राजा) जहां वह प्रकाशमान, सबका स्वामी विराजता है, (यत्र) जहां (दिवः) ज्ञान की सदा स्थिति है, (यत्र अमूः) जहां वे (यह्वतीः आपः) महान् आप्त जन एवं व्यापक शक्तियां हैं (तत्र माम् अमृतं कृधि) उस लोक में मुझ को भी मरणरहित बना। (इन्द्राय इन्दो परिस्रव) हे दयालो! तू इस अन्नोपभोक्ता जीव के लिये (परि स्रव) दया कर।

यत्रा॑नुका॒मं चर॑णं त्रिना॒के त्रि॑दि॒वे दि॒वः ।
लो॒का यत्र॒ ज्योति॑ष्मन्त॒स्तत्र॒ माम॒मृतं॑ कृधी॒न्द्राये॑न्दो॒ परि॑ स्रव ९

भा०—(यत्र अनुकामं चरणं) जहां कामनानुसार विचरण हो, (त्रि-नाके) तीनों प्रकार के सुख और (त्रि-दिवे) तीनों प्रकार के प्रकाशों से युक्त, (यत्र) जिस लोक में (लोकाः दिवः ज्योतिष्मन्तः) जीवगण सूर्यवत् आत्मज्योति से सम्पन्न हैं (तत्र माम् अमृतं कृधि) वहां मुझको जरा-मृत्यु से रहित कर। (इन्द्राय इन्दो, परि स्रव) हे दयालो! तू जीव के लिये सुखों की वर्षा कर।

यत्र॒ कामा॑ निका॒माश्च॒ यत्र॑ ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टप॑म् ।
स्व॒धा च॒ यत्र॒ तृप्ति॑श्च॒ तत्र॒ माम॒मृतं॑ कृधी॒न्द्राये॑न्दो॒ परि॑ स्रव ॥१०॥

भा०—(यत्र कामाः) जहां सब प्रकार की अभिलाषाएं और (निकामाः च) इच्छाएं पूर्ण हों, (यत्र) जहां (ब्रध्नस्य) सूर्य के प्रकाश में (विष्टपम्) बिना ताप का, सुखप्रद स्थान हो, (यत्र) जहां (स्वधा च) आत्मा को धारण करने वाली सुख देने वाली सामग्री हो और (तृप्तिः च) तृप्ति देने वाली शान्ति हो (तत्र) उस लोक में हे (इन्दो) प्रभो! तू (माम्) मुझ (अमृतम्) कभी न नाश होने वाले जीव को (कृधि) उत्पन्न कर।

यत्रा॑न॒न्दाश्च॒ मोदा॑श्च॒ मुदः॑ प्र॒मुद॒ आस॑ते । काम॑स्य॒ यत्रा॒प्ताः
कामा॒स्तत्र॒ माम॒मृतं॑ कृधी॒न्द्राये॑न्दो॒ परि॑ स्रव ॥ ११ ॥ २७ ॥

भा०—(यत्र आनन्दाः च मोदाः च) जिस लोक में ऋद्धियां और हर्ष हैं, जहां (मुदः प्रमुदः आसते) हर्षदायी सम्पदाएं और ऐश्वर्य विराजते हैं, (कामस्य) इस अभिलाषायुक्त जीव को (यत्र कामाः आप्ताः) जहां कामनाएं प्राप्त हो जाती हैं (तत्र माम् अमृतं कृधि) उस लोक में मुझे दीर्घायु-युक्त कर। (इन्द्रो इन्द्राय परि स्रव) हे दयालो! इस जीव के हितार्थ तू दया से द्रवीभूत हो। इति सप्तविंशो वर्गः॥

[११४]

कश्यप ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, २ विराट् पंक्तिः। ३, ४, पंक्तिः। चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

य इन्दोः पर्वमानस्यानु धामान्यक्रमीत्।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥१॥

भा०—(यः) जो (इन्दोः) ऐश्वर्यवान् (पवमानस्य) सर्वप्रेरक प्रभु के (धामानि) बलों और कार्यों का (अनु अक्रमीत्) अनुगमन करता है (तम्) उसको (सु-प्रजाः इति) उत्तम प्रजा वाला उत्तम गृहपति (आहुः) कहते हैं। हे (सोम) उत्तम वीर्यवन्! (यः ते) जो तेरे (मनः अनु अविधत्) चित्त के अनुकूल आचरण करता है, (तम् सुप्रजाः इति आहुः) उसको भी उत्तम प्रजा का स्वामी, 'प्रजापति' कहते हैं। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (इन्द्राय परिस्रव) ऐश्वर्य देने वाले, स्वामिपद के लिये आगे बढ़।

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव॥२॥

भा०—हे (ऋषे) मन्त्रार्थों के द्रष्टा! हे (कश्यप) तत्वज्ञानी, तू (मन्त्र-कृतां) मन्त्रोपदेश करने वाले विद्वानों के (स्तोमैः) मन्त्रसमूहों से (गिरः उत्-वर्धयन्) अपनी वाणियों को बढ़ाता हुआ (यः वीरुधां पतिः) जो ओषधियों के तुल्य उत्पन्न प्रजाओं का पालक है उस (राजानं सोमम्)

चन्द्रवत् प्रकाशमान शासक को (नमस्य) आदर से नमस्कार कर। हे (इन्दो इन्द्राय परिस्रव) प्रभो ! तू अन्न के उपभोक्ता जीव के लिये सुखों की वर्षा कर।

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः। देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

भा०—(सप्त दिशः) सात दिशाएं, उनके तुल्य सात आदेश करने वाले, (सप्त होतारः) यज्ञ में सात ऋत्विजों के तुल्य ये सात, आज्ञा देने वाले, ये (देवाः आदित्याः सप्त) तेजस्वी, सात ऋतुओं के तुल्य भूमि के रक्षक वा तेजस्वी राजा के अधीन सात सचिव आदि हैं। (तेभिः) उनसे हे (सोम) शासक ! तू (नः अभि रक्ष) हम प्रजाओं की रक्षा कर। हे (इन्दो) हे दयालो ! तू (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (परि स्रव) चारों ओर जा।

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः।
अरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः किं चनाममदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥ २८ ॥ ७ ॥ ९ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! (यत् ते श्टतं हविः) जो तेरा परिपक्व अन्न और ज्ञान है (तेन नः अभि रक्ष) उससे तू हमारी रक्षा कर (अरातीवा) शत्रु भाव से युक्त जन (नः मा तारी त्) हमारा नाश न करे। (नः किंचन मो आममत्) हमें कुछ भी पदार्थ किसी प्रकार का कष्ट न दे। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तु (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त को पद के लिये (परि स्रव) आगे बढ़। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

॥ इति पावमानं सौम्यं नवमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ दशमं मण्डलम्

[१]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अग्रे॑ बृ॒हन्नु॒षसा॑मू॒र्ध्वो अ॑स्थान्निर्जग॒न्वान्तम॑सो॒ ज्योति॒षागा॑त् ।
अ॒ग्निर्भा॒नुना॒ रुश॑ता॒ स्वङ्ग॒ आ जा॒तो विश्वा॒ सद्मा॑न्यप्राः ॥ १ ॥

भा०—(अग्रे) सबसे पूर्व जैसे (बृहन् अग्निः) महान् अग्नि (रुशता भानुना) चमकते प्रकाश से और (उषसाम् ज्योतिषा) उषाओं की ज्योति से (निः-जगन्वान्) निकलता हुआ (तमसः ऊर्ध्वः) अन्धकार के भी ऊपर (अस्थात्) विराजता और (ऊर्ध्वः आगात्) ऊपर उठता है और (सु-अङ्गः जातः) तेजस्वी होकर (विश्वा सद्मानि आ अप्राः) सब लोकों को अपने प्रकाश से पूर्ण करता है। वैसे ही तेजस्वी पुरुष भी (बृहन्) महान् (उषसाम्) तेजस्वी पुरुषों के बलों और कामनायुक्त प्रजाओं के ऊपर विराजे, (निर्जगन्वान्) उदय को प्राप्त होकर शत्रु रूप तम को पराजित करे, (सु-अङ्गः) वह सुदृढ़ अंग होकर (विश्वा सद्मानि आ अप्राः) सब गृहों, आश्रमों और पदों को तेज से पूर्ण करता है।

स जा॒तो गर्भो॑ असि॒ रोद॑स्यो॒रग्ने॒ चारु॒र्विभृ॑त॒ ओष॑धीषु ।
चि॒त्रः शिशु॒ः परि॒ तमां॑स्य॒क्तून्प्र मा॒तृभ्यो॒ अधि॒ कनि॑क्रदद् गाः॥२॥

भा०—जैसे अग्नि (रोदस्योः गर्भः) उत्तरारणि और अधरारणि के बीच गुप्त रहता है, (जातः) उत्पन्न होकर (ओषधीषु विभृतः) काष्ठों में धारित होता है (तमांसि परि) अन्धकारों को दूर करके (मातृभ्यः गाः अक्तून् कनिक्रदत्) चक्षुओं को किरणें देता और प्रकाशित पदार्थों को

बतलाता है वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू गर्भ से उत्पन्न बालक के सदृश (जातः रोदस्योः) उत्पन्न या प्रकट होकर स्व और पर सैन्यों का (गर्भः) वश करने वाला (असि) है । तू (चारुः) प्रजाओं का भोक्ता और (ओषधीषु विभृतः) अन्न आदि ओषधियों पर परिपुष्ट बालकवत् ही (ओषधीषु) तेज धारण करने वाली सेनाओं के आश्रय से (विभृतः) विशेष परिपुष्ट है । तू (शिशुः) शिशु के समान (चित्रः) परिवर्धन करने योग्य, आश्चर्य कर्मकारी, (शिशुः) प्रजाओं के बीच शासन करने वाला होकर (तमांसि परि) अन्धकारवत् दुःखों को दूर करता हुआ (अक्तून्) सब दिनों (मातृभ्यः) मातृवत् राष्ट्रनिर्माता जनों के लिये (गाः अधि कनिक्रदत्) वाणियों और भूमियों पर शासन करे ।

विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥ ३ ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (विष्णुः) विविध विद्याओं में निष्णात होकर (अस्य परमं विद्वान्) इस लोक के श्रेष्ठ पद को प्राप्त करता हुआ, (बृहन् जातः) बड़ा होकर (तृतीयम् अभि पाति) सूर्य जैसे तीसरे लोक 'द्यौ' को पालता है वैसे ही वह (तृतीयम् अभिपाति) तीसरे आश्रम को पालन करता है । (यत्) जो (सचेतसः) समान चित्त होकर (अस्य आसा) इसके मुख से (पयः) अपने दुग्धवत् ज्ञान को (अक्रत) प्राप्त करते हैं वे (अत्र) उसकी (स्वं) अपना जानकर (अभि अर्चन्ति) पूजा करते हैं ।

अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (जनित्रीः) जैसे उत्पादक काष्ठ अग्नि को बढ़ाते हैं फिर वह (अन्यरूपाः प्रति एति) उनको भस्म कर देता है, वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (पितुभृतः) अन्नादिपालक साधनों को धारण करने वाली

प्रजाएं (अन्नावृधं त्वा) अन्न से बढ़ने वाले शिशु के सदृश तेरी (अन्नैः प्रति चरन्ति) ऐश्वर्यों से सेवा करते हैं। (पुनः) और तू (अन्य रूपाः) शुष्क स्नेहरहित उनको (प्रति एषि) विपरीत होकर प्राप्त होता है और तू (मानुषीषु विक्षु) मानुष प्रजाओं में (होता असि) सबको सुख का दाता होता है।

होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम्।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्वग्निमतिथिं जनानाम् ॥५॥

भा०—(होतारं) सब सुखों वा ज्ञानों के दाता, (चित्र-रथम्) आश्चर्यजनक रथ वाले, वा (अध्वरस्य) हिंसा से रहित, (यज्ञस्य-यज्ञस्य) उत्तम यज्ञ सत्संगादि के (केतुम्) ज्ञाता (रुशन्तम्) तेजस्वी और (मह्ना) अपने सामर्थ्य से (देवस्य-देवस्य) प्रत्येक तेजोयुक्त, दानशील, को (प्रत्यर्धिं) बढ़ाने वाले (जनानां अतिथिम्) मनुष्यों के बीच अतिथिवत् पूज्य (त्वा) तुझ (अग्निम्) ज्ञानप्रकाशक विद्वान्, प्रभु की (श्रिया) ऐश्वर्य के लिये आश्रय लेता हूँ।

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ॥ ६ ॥

भा०—(अध) और (सः तु) वह तू (पेशनानि वस्त्राणि वसानः) उत्तम वस्त्रों को धारण करके (अग्निः) अग्निसमान तेजस्वी होकर (पृथिव्याः नाभा) भूमि के मध्य प्रबंध करने योग्य केन्द्र में स्थित होकर (अरुषः) रोषरहित, (इडायाः पदे जातः) भूमि के प्राप्त करने को सामर्थ्यवान् होकर हे राजन्! तू (पुरः-हितः) सबके समक्ष स्थित होकर (देवान् यक्षि) तेजस्वी पुरुषों की संगति कर।

आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ॥ ७ ॥ २९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! सूर्यवत् तू (द्यावापृथिवी उभे हि) सूर्य और भूमि के समान मूर्धन्य शासक जन और आश्रित प्रजाजन को तू

(मातरा पुत्रः न) माता पिताओं को पुत्र के समान (सदा आततन्थ) सदैव बढ़ा। हे (यविष्ठ) बलशालिन्! हे (सहस्य) शत्रुपराजयकारिन्! (अथ) और तू (उशतः देवान्) तेजस्वी विद्वान् पुरुषों को (प्र याहि) प्राप्त हो और (इह आ वह) इस राष्ट्र में उनको आदर से रख। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[२]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप्। २, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (यविष्ठ) बलशालिन्, (त्वं) तू (उशतः देवान्) कामनावान् मनुष्यों का (पिप्रीहि) पालन कर और (विद्वान्) विद्वान्, होकर हे (ऋतु-पते) सूर्यसदृश तेजस्विन्! राजसभा के सदस्यों और तेजस्वी राजभ्राताओं को भी (इह यज) राष्ट्र में आदरपूर्वक रख। (ये) जो (दैव्या ऋत्विजः) विद्वान् ऋतु में यज्ञ करने वाले वा विद्वानों के आदरकर्त्ता हैं (तेभिः) उनके साथ (त्वं) तू भी (होतॄणाम् आयजिष्ठः असि) दाताओं और उपदेष्टाओं में सबसे श्रेष्ठ हो।

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (होत्रं वेषि) दान को चाहता है और (उत पोत्रं वेषि) पवित्रकारक कर्म को भी चाहता है। तू (जनानां) मनुष्यों के बीच में (मन्धाता) ज्ञान का धारक विद्वान् और (द्रविणः-दाः) धनों का दाता, (ऋत-वा) ज्ञान और तेज का स्वामी (असि) है। (वयम्) हम लोग (हवींषि) अन्नों का (स्वाहा कृणवाम) उत्तम पात्रों में प्रदान करें

और (अग्निः देवः) सर्वप्रकाश (अर्हन्) पूज्य होकर (देवान् यजतु) विद्वानों का आदर करे ।

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ३

भा०—हम (देवानाम् अपि) विद्वान् लोगों के (पन्थाम् अगन्म) मार्ग पर चलें। (यत् शक्नवाम) जो कार्य हम कर सकें (तत्) उसे (अनु) क्रम से (प्रवोढुम्) समाप्त कर सकें। (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (अग्निः) अग्नि के समान है। (सः यजात्) वही यज्ञ करता है, (स इत् उ होता) वही (होता) ग्रहण करने वाला है। (सः अध्वरान् कल्पयाति) वही हिंसा रहित कर्मों को करता है और (ऋतून् कल्पयाति) वही ऋतुओं को फलोत्पादन में समर्थ करता है ।

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ॥४॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (विदुषां वः यद् व्रतानि) आप विद्वानों के व्रत-नियमादि (वयं) हम (अविदुस्तरासः) अत्यन्त अज्ञानी होकर भंग करें। विद्वान् तेजस्वी पुरुष (येभिः ऋतुभिः) जिन सत्य बलों से (देवान् कल्पयाति) विद्वानों को कार्य करने में समर्थ करता है, उनही से वह हमारे (तत् विश्वम्) उस सबको (आ पृणाति) पूर्ण करे ।

यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ॥ ५ ॥

भा०—(दीनदक्षाः) हीन-बल (मर्त्यासः) मनुष्य (यत्) जब (पाकत्रा मनसा) अपने न्यून ज्ञान से (यज्ञस्य) दान, पूजा सत्संग आदि के विषय में (न मन्वते) नहीं जानें (तत्) तब (क्रतु-वित्) यज्ञ का ज्ञाता (विद्वान् अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष, (होता) ज्ञान देने वाला, (यजिष्ठः)

दानशील होकर (देवान् ऋतुशः यजाति) विद्वानों वा फलों को चाहने वाले जनों को ऋतु-अनुसार (यजाति) यज्ञ करावे।

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ॥६॥

भा०—(विश्वेषाम्) समस्त (अध्वराणाम्) यज्ञों का (अनीकं) प्रमुख, (चित्रं केतुम्) विचित्र ज्ञाता (त्वा) तुझको (जनिता) तेरे पिता ने (जजान) उत्पन्न किया है। (सः) वह तू (नृवतीः क्षाः अनु) मनुष्यों से बसी भूमियों में (स्पार्हाः) सबसे चाहने योग्य, (क्षुमतीः) अन्नों से पूर्ण, (विश्व-जन्याः) हितकारिणी, (इषः) ज्ञानवृष्टियों को (आ यजस्व) प्रदान कर।

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ॥७।३०॥

भा०—(यं त्वा) जिस तुझको (द्यावापृथिवी) सूर्य-भूमिवत् माता पिता उत्पन्न करते हैं और (यं त्वा आपः) जिस तुझको आप्त जन उत्पन्न करते हैं, (यं त्वा सुजनिमा त्वष्टा जजान) जिस तुझको उत्तम जन्म देने वाला गुरु उत्पन्न करता है, हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक! तू (पितृयाणम्) पालक माता पिताओं द्वारा गमन योग्य (पन्थाम् प्र विद्वान्) मार्ग को भली भांति जानता हुआ (द्युमत्) तेजस्वी और (समिधानः) प्रकाशवान् होता हुआ (वि भाहि) विशेष रूप से चमक। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[३]

त्रित ऋषिः अग्निर्देवता ॥ छन्दः—पादनिचृद् त्रिष्टुप्। २, ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ विराटत्रिष्टुप्। ५—७ त्रिष्टुप्। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥ १ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन्! तू (इनः) सबका स्वामी (अरतिः) मतिमान्, (समिद्धः) अग्नि के समान प्रदीप्त (रौद्रः) दुष्टों को रुलानै वाला, (दक्षाय) ज्ञान-कर्म के लिये (सु-सु-मान्) उत्तम सामर्थ्यों से सम्पन्न (अदर्शि) दिखाई दे। सूर्य के समान (चिकित्) ज्ञानी पुरुष (बृहता भासा) बड़े तेज से (वि भाति) प्रकाशित होता है जैसे सूर्य (रुशतीम् अपाजन् असिक्नीम् एति) दीप्त वर्ण की उषा को दूर करता हुआ श्याम रात्रि को प्राप्त होता और (असिक्नीम् अपाजन् रुशतीम् एति) श्यामा रात्रि को दूर कर शुक्लवर्ण उषा को प्राप्त करता है वैसे ही विद्वान् पुरुष भी दिन को दूर करके रात्रि को और रात्रि को त्याग कर दिन को प्राप्त करे।

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम्।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति॥ २॥

भा०—(यत्) जैसे (कृष्णाम् एनीम् वर्पसा अभिभूत्) सूर्य कृष्ण रात्रि को उज्ज्वल रूप से अभिभूत करता है और (पितुः जाम् योषाम्) बड़े पालक से उत्पन्न उषा को स्त्री समान (जनयन्) प्रकट करता है, वैसे ही विद्वान् पुरुष अपने (वर्पसा) रूप से (कृष्णाम् एनीम् अभिभूत्) कृष्ण वर्ण की मृगछाला को धारण करे फिर (बृहतः पितुःजाम्) उत्तम वंश के पिता की कन्या को (योषां जनयन्) अपनी स्त्री करता हुआ (सूर्यस्य भानुं) सूर्य की कान्ति को (ऊर्ध्वं) ऊपर (स्तभायन्) धारण करता हुआ (वसुभिः) विद्वानों के साथ (दिवः अरतिः) कामना योग्य पत्नी का स्वामी, होकर (वि भाति) प्रकाशित हो।

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥ ३॥

भा०—जैसे (जारः) रात्रि विनाश करता हुआ सूर्य (स्वसारं पश्चात् अभि एति) अपनी भगिनी के तुल्य अन्धकार हटाने वाली उषा के पीछे

पीछे दौड़ता है और स्वयं (भद्रः) सुखकारी होकर (भद्रया सचमानः आगात्) सुखदायिनी उषा के साथ मिलकर आता है और वह (उशद्भिः वर्णैः) उज्ज्वल रश्मियों से (रामम् अभि अस्थात्) रात्रि के अन्धकार को पराजित करता है वैसे ही (भद्रः) प्रजा को सुख देने वाला, विद्वान् (भद्रया सचमानः) प्रजा को सुख देने वाली बुद्धि वा नीति से युक्त होकर (आगात्) प्राप्त हो। वह (जारः) शत्रु या दुष्टों का नाश करने वाला होकर (स्वसारं) सुख से शत्रु को उखाड़ने वाली सेना वा (स्वसारं) स्वयं आने वाली प्रजा के (पश्चात् अभिएति) पीछे तदनुकूल रहकर वश करे। वह (अग्निः) अग्नि के समान पुरुष, (सु-प्र-केतैः) ज्ञानवान् (द्युभिः) रश्मि-तुल्य विद्वानों के साथ (वितिष्ठन्) विविध कार्यों को करता हुआ, (उशद्भिः) उज्ज्वल कामना वाले (वर्णैः) विद्वानों के साथ (रामम् अभि अस्थात्) अन्धकार तुल्य शत्रु पर चढ़ाई करे।

अस्य यामा॑सो बृ॒ह॒तो न व॒ग्नूनिन्धा॑ना अ॒ग्नेः सख्यु॑ः शि॒वस्य॑।
ई॒ड्य॑स्य॒ वृष्णो॑ बृह॒तः स्वासो॒ भामा॑सो॒ याम॑न्न॒क्तव॑श्चिकित्रे ॥४॥

भा०—(अस्य) इस (बृहतः) महान् (अग्नेः) तेजस्वी (सख्युः) सबके मित्र (शिवस्य) कल्याणकारक प्रभु एवं राजा के (वग्नून् इन्धानाः) उत्तम उत्तम शब्दों को प्रकट करते हुए (यामासः) राज्यप्रबन्ध, व्यवस्थादि और (ईड्यस्य) स्तुतियोग्य (वृष्णः) सुखों के वर्षक, (बृहतः) महान्, (स्वासः) सौम्य उसके (भामासः) तेज भी (यामन् अक्तवः) मार्ग में प्रकाश करने वाले रश्मियों के समान (यामन्) राज्यनियन्त्रण में (अक्तवः) स्नेहधायक दीपकों के तुल्य (चिकित्रे) प्राप्त हों।

स्व॒ना न यस्य॒ भामा॑सः॒ पव॑न्ते॒ रोच॑मानस्य बृह॒तः सु॒दिव॑ः।
ज्येष्ठे॑भि॒र्यस्तेजि॑ष्ठैः क्री॒ळु॒मद्भि॒र्वर्षि॑ष्ठेभि॒र्भा॒नुभि॒र्नक्ष॑ति॒ द्याम् ॥५॥

भा०—(यस्य सु-दिवः) जिस सूर्यवत् तेजस्वी (बृहतः) महान् (रोचमानस्य) कान्तिमान् के (स्वनाः न) आज्ञा-वचनों के समान

(भामासः) क्रोध, वा पराक्रम (पवन्ते) प्रकट होते हैं और (यः) जो (ज्येष्ठेभिः) उत्तम (तेजिष्ठैः) तेजस्वी, (क्रीडुमद्भिः) विनोदी, (वर्षिष्ठैः) वयोवृद्ध, (भानुभिः) रश्मितुल्य अज्ञानान्धकार के नाशक पुरुषों के साथ (द्याम् नक्षति) आकाशवत् पृथिवी को प्राप्त होता है वही उत्तम नेता है।

अस्य शुष्मांसो ददृशानपंवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (देव-तमः) विद्वानों में श्रेष्ठ, (विभ्वा) सामर्थ्यवान् (अरतिः) मतिमान्, सबका स्वामी है वह (प्रत्नेभिः) पूर्व से चले आये, वृद्ध, (रुशद्भिः) दीप्तियुक्त (रेभद्भिः) उपदेष्टा जनों सहित (वि भाति) सुशोभित होता है। (नियुद्भिः जेहमानस्य) सैन्यों के साथ जाते हुए वायु के समान बलवान् (ददृशान-पवेः) प्रकट शस्त्रादि वाले (अस्य) इसके (शुष्मासः) नाना बल (स्वनयन्) मेघ के समान गर्जते हैं।

स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ।७।३१

भा०—(सः) वह तू (नः) हमें (महि) बड़ा ऐश्वर्य (आ वक्षि) प्राप्त करा। (युवत्योः दिवः-पृथिव्योः) परस्पर मिले आकाश और पृथिवी दोनों पर सूर्य के समान युवा युवती, एवं शासक शास्य जनों पर (आ सत्सि च) तू अध्यक्षवत् विराज। वह तू (अग्निः) अग्रणी नायक होकर (सु-तुकेभिः अश्वैः) सुख से जाने वाले अश्वों से (स्वयं सु-तुकः) सुख से जाना वाला और (रभस्वद्भिः रभस्वान्) वेगवान् अश्वों से वेगवान् होकर (इह स्वान् आगम्याः) यहां अपनों को प्राप्त कर। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[४]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१—४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ६ त्रिष्टुप् ।
७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥ १ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! हे प्रभो ! मैं (ते प्रयक्षि) तेरी अच्छी प्रकार पूजा करूं। (ते मन्म प्र इयर्मि) तेरी मैं खूब स्तुति करूं (यथा) जैसे भी हो तू (हवेषु) यज्ञों में (नः वन्द्यः भुवः) हमारा वन्दना करने योग्य है। हे (अग्ने) ज्ञानमय ! तू (इयक्षवे पूरवे) पूजा करने वाले, सत्संगी मनुष्य के लिये (धन्वन् इव प्रपा असि) चातक के लिये आकाश में स्थित मेघवत् और मरुस्थल में विद्यमान 'प्रपा' प्याऊ के समान उत्तम रसपान कराने वाला है।

त्वां जनासो अभि सञ्चरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन ॥ २ ॥

भा०—(गावः ऊष्णम् इव व्रजम्) गौएं जैसे शीत से पीड़ित होकर उष्ण गोशाला की ओर जाती हैं, वैसे ही हे (यविष्ठ) बलशालिन् ! (यम् उष्णम्) जिस अग्निवत् प्रतापी (त्वा) तुझको (जनासः) मनुष्य शीतार्त्त जनों के समान (अभि सञ्चरन्ति) शरण आते हैं, वह तू (देवानाम्) उत्तम पुरुषों में (दूतः) पूजित एवं प्रतापी, गुणों में महान् अग्निवत् ही (मर्त्यानाम् अन्तः) मनुष्यों के भीतर (रोचनेन) प्रकाश से (चरसि) विचरता है।

शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥ ३ ॥

भा०—(शिशुं न माता) जैसे माता बच्चे को (सचनस्यमाना बिभर्त्ति) अपने संपर्क में रखना चाहती हुई पालती है, वैसे ही (माता) पृथिवी, (त्वा) तुझ (जेन्यं) विजयशील को (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई और (सचनस्यमाना) तेरे साथ सम्पर्क रखती हुई (त्वा बिभर्त्ति) तुझे पुष्ट करती है। तू (हर्यन्) धनादि चाहता हुआ, (अवसृष्टः पशुः इव) छूटे हुए पशु

के समान स्वच्छन्द होकर (धनोः अधि) धनुष् के बल पर (प्रवता यासि) अपने निम्न स्थानों को प्राप्त करता और (जिगीषसे) उनको जीतना चाहता है।

मूरा अमूर न व॒यं चि॑कित्वो महि॒त्वम॑ग्ने॒ त्वम॒ङ्ग वि॑त्से।
शये॑ व॒व्रिश्चर॑ति जि॒ह्वयाद॒न्रे॑रि॒ह्यते॑ युव॒तिं वि॒श्पतिः॒ सन् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे (अमूर) मोहरहित! हे (चिकित्वः) ज्ञानवन्! (वयं मूराः) हम मूढ मनुष्य (महित्वं न विद्मः) तेरे सामर्थ्य को नहीं जानते। (अंग) हे तेजस्विन्! (त्वं वित्से) तू ही जानता है। तू (वव्रिः) वरणीय होकर (शये) सुख से सोता है और (जिह्वया) वाणी के बल से (अदन्) राष्ट्र का भोग करता हुआ विचरता है। तू (विश्पतिः सन्) प्रजापालक राजा होकर (युवतिं रेरिह्यते) भूमि का स्त्रीवत् उपभोग करता है।

कू॒चिज्जायते॒ सन॑यासु॒ नव्यो॒ वने॑ तस्थौ पलि॒तो धू॒मके॑तुः।
अ॒स्ना॒तापो॑ वृष॒भो न प्र वे॑ति॒ सचे॑तसो॒ यं प्र॒णय॑न्त॒ मर्ताः॑ ॥५॥

भा०—(धूम-केतुः) धूम की ध्वजा वाला अग्नि, (पलितः वने तस्थौ) व्याप कर वन में रहता है, (नव्यः सनयासु चित् जायते) स्वयं नया होकर सूखी लकड़ियों में कहीं भी उत्पन्न हो जाता है, वही अग्नि (वृषभः) मेघस्थ विद्युत् होकर (अस्नाता आपः प्रवेति) विना गीला हुए ही जलों में व्यापता है, और (यं मर्त्ता सचेतसः प्र-णयन्त) ज्ञानवान् मनुष्य जिसे उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार (नव्यः) स्तुत्य जन (सनयासु) पूर्व विद्यमान प्रजाओं में (क्वचित् जायते) कहीं भी बनाया जाता है और वह (पलितः) वयोवृद्धवत् पूज्य (धूम-केतुः) शत्रुओं को कंपाने वाले ध्वजा से युक्त, (वने तस्थौ) ऐश्वर्य युक्त पद पर विराजता है और (वृषभः आपः न) बैल जैसे पिपासित होकर जलों के पास आता है वैसे ही वह (अस्नाता) अनभिषिक्त होकर (आपः प्रवेति) प्रजाजनों को प्राप्त करता है और तब

(मर्त्ताः) मनुष्य (स-चेतसः) एक समान चित्त वाले होकर (यं प्र-नयन्त) जिसको प्रधान पद पर स्थापित करते हैं।

तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्।
इयन्ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥६॥

भा०—जैसे (तनूत्यजा इव वनर्गू तस्करा) देह को त्यागने वाले वन में विचरने वाले पापकर्मा दो चार (दशभिः रशनाभिः अभ्यधीताम्) दसों रस्सियों से मनुष्य को बांध डालते हैं और जैसे (तनूत्यजा) देह को त्याग कर, धड़ से पृथक् लटकती (तस्करा) निरन्तर काम करने वाली (वनर्गू) ग्राह्य पदार्थों तक पहुँचने वाली बाहुएं (दशभिः रशनाभिः) दसों अंगुलियों से पदार्थ को (अभि अधीताम्) अच्छी प्रकार पकड़ती हैं वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन्, तेरी ये दोनों सेनाएं (तनूत्यजा इव) अपना देह छोड़ने में समर्थ, (तस्करा) निरन्तर कर्म करने में समर्थ (वनर्गू) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में जाने वाली दो बाहुओं के समान (दशभिः रशनाभिः) दूर २ तक व्यापने वाली शक्तियों से राष्ट्र को (अभि अधीताम्) बांध लें। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (इयं ते) यह तेरी (नव्यसा मनीषा) अतिस्तुत्य बुद्धि है, इससे (शुचयद्भिः) ईमानदार होकर काम करने वाले (अंगैः) ज्ञानवान् पुरुषों से (रथं न) अश्वों से रथ के तुल्य इस राष्ट्र को (युक्ष्व) सञ्चालित कर।

ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत्।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वोऽ अप्रयुच्छन् ७।३२

भा०—हे (जात-वेदः) पदार्थों को जानने वाले विद्वन्! (ब्रह्म च) वेद और (इयं च गीः) यह वाणी (ते सदम् इत्) तेरी सदा ही (वर्धनी भूत्) बढ़ाने हारी हो। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (नः तनयानि तोका) हमारे पुत्रों और पौत्रादि संततियों की (रक्ष) रक्षा कर। (उत नः तन्वः) और हमारे शरीरों की (अप्रयुच्छन् रक्ष) विना प्रमाद किए हुए रक्षा कर। इति द्वात्रिंशो वर्गः॥

[५]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २—५ त्रिष्टुप् । ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥१॥

भा०—वह प्रभु, राजा, (एकः) अद्वितीय, (समुद्रः) समुद्र के समान अपार, गम्भीर (रयीणां धरुणः) सब ऐश्वर्यों का आश्रय है। वह (भूरि-जन्मा) नाना जनों का स्वामी होकर (अस्मत् हृदः) हमारे हृदयों तक को (विचष्टे) देखता है। जैसे सूर्य (निण्योः उपस्थे) आकाश और भूमि के बीच (ऊधः) अन्तरिक्ष में (सिषक्ति) स्थित होता है, वैसे ही (निण्योः) सन्मार्ग पर चलाने योग्य शासक और शास्य वर्ग के (उपस्थे) समीप वह (ऊधः) उत्तम पद पर (सिषक्ति) स्थिर हो और (उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः) जैसे विद्युत् रूप अग्नि मेघ में स्थान को व्यापता है वैसे ही वह (उत्सस्य) मेघ या कूपवत् उन्नत वा अवनत, ऊंचे या नीचे जन समुदाय के (मध्ये) बीच में (निहितं पदं) स्थित अधिकार को (वेः) प्राप्त करता है।

समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥२॥

भा०—(वृषणः) बलवान् (महिषाः) बड़े २ पुरुष (समानं नीडं वसानाः) समान पद को धारण करते हुए, (अर्वतीभिः) शत्रुहिंसक सेनाओं के साथ (संजग्मिरे) मिलकर रहें। (कवयः) विद्वान् लोग (ऋतस्य पदं नि पान्ति) न्याय पद को सुरक्षित रक्खें। (गुहा) बुद्धि में (पराणि नामानि) विनयकारी उपायों को (दधिरे) धारण करें।

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ॥३॥

भा०—(ऋतायिनी मायिनी) अन्न वाले बुद्धिमान् माता पिता जैसे (शिशुं सं दधाते) बालक का पोषण करते हैं (वर्धयन्ती शिशुं मित्वा जज्ञतुः) उसको बढ़ाते हुए, माप २ कर उसको बड़ा करते हैं। वैसे ही शास्य और शासक दोनों भूमि आकाशवत् अधरोत्तर रहकर (ऋतायिनी) अन्न और तेज से सम्पन्न, (मायिनी) धन और बल से युक्त होकर (सं दधाते) मिलकर रहें और (शिशुं) शासक राजा को (मित्वा) बना कर (वर्धयन्तीः) उसे बढ़ाते हुए (जज्ञतुः) प्रकट करें और (चरतः ध्रुवस्य) जङ्गम और स्थावर दोनों के (विश्वस्य) जगत् के (नाभिं तन्तुं) बांधने वाले एवं विस्तार करने वाले को (मनसा) ज्ञानपूर्वक (वियन्तः) जानते हुए (कवेः) प्रभु के विषय में भी (चित्) ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (ऋतस्य वर्तनयः) अन्न के उत्पादक विद्वान् (वाजाय इषः) अन्न को चाहते हुए (प्रदिवः सुजातम् सचन्ते) तेजस्वी सूर्य से उत्पन्न मेघ को या परमाकाश में स्थित सूर्य को कारण जानते हैं वैसे ही (ऋतस्य वर्तनयः) सत्य निर्णय और ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले लोग (वाजाय इषः) ऐश्वर्य की कामना करते हुए (प्र-दिवः) ज्ञान और तेज से (सु-जातम्) सुपूजित विद्वान् और राजा को (सचन्ते) प्राप्त होते हैं। (रोदसी) आकाश और भूमि दोनों (आधीवासं वावसाने) सूर्यरूप अग्नि को अध्यक्षवत् धारण करते हुए (घृतैः अन्नैः) जलों और अन्नों से (मधूनां) मधुर पदार्थों के उत्पादक सूर्य की महिमा बढ़ाते हैं वैसे ही (रोदसी) शत्रु को रुलाने वाला रुद्र, सेनापति और उसकी सेना मिलकर अपने ऊपर (अधीवासं वावसाने) उत्तरीय पटवत् अधिशासक राजा को धारण करते हुए (घृतैः अन्नैः) जलों और अन्नों द्वारा (मधूनां) सुखप्रद पदार्थों और बलों के अध्यक्ष की (वावृधाते) वृद्धि करें ।

सप्त स्वसृ॑रुरुषी॑र्वा॑वशा॒नो वि॒द्वान्मध्व॒ उज्ज॑भारा दृ॒शे कम्।
अ॒न्तर्ये॑मे अ॒न्तरि॑क्षे पुरा॒जा इ॒च्छन्व॒व्रिम॑विदत्पूष॒णस्य॑ ॥ ५ ॥

भा०—(विद्वान्) ज्ञानी आत्मा (सप्त) सात, वा गतिमान् (स्वसः) स्व आत्मा से ही उत्पन्न होने वाली (अरुषीः) कान्तियुक्त सात ज्वालाओं के समान आंख नाक, कान, मुख में स्थित सात प्राणधाराओं को (वावशानः) वश करता हुआ (दृशे) बाह्य पदार्थ को देखने के लिये (मध्वः कम् उत जभार) मधुर रसरूप मधुर सुख को शिरःस्थान में प्रकट करता है और वह (पुराजाः) पूर्ववत् जन्म लेने वाला जीव (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में स्थित सूर्यवत् अन्तःकरण में स्थित रह कर उन सब प्राणों को (अन्तः येमे) भीतर ही बद्ध रखता है और (वव्रिम् इच्छन्) अपने बाह्य देह को चाहता हुआ (पूषणस्य अविदत्) पोषक माता पिता को प्राप्त करता है। वैसे ही (विद्वान्) ज्ञानी, ऐश्वर्यपद को प्राप्त करने वाला राजा, (स्वसः) स्वयं राष्ट्र को सञ्चालन करने में कुशल (अरुषीः) रोषादि रहित सौम्य-स्वभाव वाली (सप्त) सात प्रकृतियों को (वावशानः) चाहता और उनको वश में करता हुआ, (मध्वः) प्रजा को तृप्त करने वाले बल या राष्ट्र को (दृशे) देखने के लिये (कम् उत् जभार) उनको उत्तम पद पर स्थापित करे। वह (पुराजाः) पूर्ववत् प्रसिद्ध राजा (अन्तरिक्षे अन्तः) अपने राष्ट्र के भीतर उन सातों को (येमे) नियम में रक्खे और (वव्रिम्) तेजस्वी रूप को चाहता हुआ, (पूषणस्य अविदत्) राष्ट्र पोषक वर्ग को प्राप्त करे।

स॒प्त म॒र्यादाः॑ क॒वय॑स्ततक्षु॒स्तासा॒मेका॒मिद॒भ्यं॑हु॒रो गा॑त्।
आ॒योर्ह॑ स्क॒म्भ उ॑प॒मस्य॑ नी॒ळे प॒थां वि॑स॒र्गे ध॒रुणे॑षु तस्थौ ॥६॥

भा०—(कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः) विद्वान् लोगों ने सात 'मर्यादाएं' कही हैं। मनुष्य को खा जाने या नाश करने से उनको 'मर्यादा' कहा है। (तासाम् एकाम् इत्) उनमें से एक को भी जो (अभि गात्) प्राप्त हो वह (अंहुरः) पापी है। (उपमस्य आयोः) समीपवर्ती मनुष्य को

(स्कम्भः) थम्भे के समान बांधने वाला, (पथां विसर्गे) मार्गों के विविध दिशाओं में जाने के केन्द्र में (स्कम्भः) दीपक के रूप में वा (धरुणेषु स्कम्भः) गृह में लगे धरन के दण्डों के बीच थम्भे के समान राजा भी (धरुणेषु) राष्ट्र के बीच में केन्द्रस्थ स्तम्भ के समान (तस्थौ) स्थिर होकर विराजे। राजा या व्यवस्थापक दोनों का यही कर्त्तव्य है। सात मर्यादाएं—पानमक्षाः स्त्रियो मृगया दण्डः पारुष्यमन्यदूषणम् इति सप्त मर्यादाः ॥ यद्वा स्तेयं गुरुतल्पारोहणं ब्रह्महत्यां सुरापानं दुष्कृतकर्मणः पुनः पुनः सेवनं पातकेऽनृतोद्यमिति। निरु० ॥ सुरापान, जूआ खेलना, स्त्री, व्यसन, मृगया, कठोर दण्ड, कठोर वचन और दूसरे पर मिथ्या, दोषारोपण, ये सात कार्य मनुष्यों को भक्षण कर जाने से 'मर्य-अदाः' 'मर्यादा' कहाती है।

असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥७॥३३॥५

भा०—(परमे व्योमन्) सर्वश्रेष्ठ, विशेष रक्षा करने वाले और (दक्षस्य) बल और ज्ञान के (जन्मन्) उत्पत्ति स्थान और (अदितेः-उपस्थे) अखण्ड वा अदीनशक्ति के धारक अध्यक्ष पद पर ही (असत् च सत् च) असत् और सत् दोनों निर्भर हैं। (नः) हमारे (ऋतस्य) सत्य और न्यायव्यवस्था का (प्रथम-जाः) सबसे प्रथम, प्रकट करने वाला (अग्निः ह) निश्चय से वह तेजस्वी राजा वा प्रभु है। (पूर्वे आयुनि) पहले जन समुदाय में भी वही (वृषभः च) मेघ के समान सुखों की वर्षा करने वाला और (धेनुः) गौ के समान पालक था। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

षष्ठोऽध्यायः

[६]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । २ विराट् पंक्तिः । ४,५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् पंक्तिः । ६ पंक्तिः । ७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥ १ ॥

भा०—(अग्नेः) अग्नि के समान तेजस्वी के (शर्मन्) गृह या सुख में (अभिष्टौ) अभीष्ट फल प्राप्ति के लिये (जरिता) स्तुति करने वाला पुरुष (यस्य अवोभिः) जिसके ज्ञानों और स्नेहों से (एधते) बढ़ता है और (यः) जो (ज्येष्ठेभिः भानुभिः) उत्तम कान्तियों से (ऋषूणां पर्येति) ज्ञानदर्शी विद्वानों और विद्यार्थियों के बीच (परि वीतः) कान्ति युक्त सूर्यवत् तेजस्वी वा उपवीत होकर (परि एति) प्राप्त होता है (सः) वह ही (वि-भावा) विशेष कांति से उज्ज्वल (अयं सः) यह (अग्निः) 'अग्नि' नाम से कहाने योग्य है ।

यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥२॥

भा०—जैसे (भानुभिः) प्रकाशों से (अग्निः) अग्नि प्रकाशक होकर (वि भाति) विशेष रूप से चमकता और प्रकाश करता है वैसे ही (यः) जो (अजस्रः) नाश न होने वाला, (ऋतावा) ज्ञानवान् पुरुष भी (देवेभिः) अपने उत्तम गुणों और विजयी वीरों से (वि-भाति) चमकता है और (यः) जो (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (सख्या आ विवाय) सत्य भाव से प्राप्त होता है वह (सप्तिः न अत्यः) वेगवान् अश्व के समान (अपरिह्वृतः) कुटिल मार्गगामी नहीं होता ।

ई॒शे यो विश्व॑स्या दे॒ववी॑ते॒रीशे॑ वि॒श्वायु॑रु॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ ।
आ यस्मि॑न्म॒ना ह॒वींष्य॒ग्नावरि॑ष्टरथः स्क॒भ्नाति॑ शू॒षैः ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वस्याः देवतीतेः) संसार के प्रकाशमान लोकों के प्रकाश करने में (ईमे) समर्थ है, और जो (विश्वायुः) सबका जीवनदाता होकर (उषसः) प्रभात के (वि-उष्टौ ईशे) प्रकाशित करने में समर्थ है। (यस्मिन् अग्नौ) जिस अग्निवत् ज्ञानमय में (मना हवींषि) विचार योग्य ज्ञान ही अग्नि में हवि के समान हैं, वह (अरिष्ट-रथः) मंगलकारक रमणीय रूप वाला प्रभु (शूषैः स्कभ्नाति) अपने बलों से समस्त जगत् को थामता है।

शू॒षेभि॑र्वृ॒धो जु॑षा॒णो अ॒र्कैर्दे॒वाँ अच्छा॑ रघु॒पत्वा॑ जिगाति । म॒न्द्रो होता॒ स जु॒ह्वा॒३॒॑ यजि॑ष्ठः सम्मि॑श्लो अ॒ग्निरा जि॑घर्ति दे॒वान् ॥४॥

भा०—(सः) वह (शूषेभिः वृधः) नाना बलों से बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाला और (अर्कैः जुषाणः) स्तुत्यादि करने योग्य, (रघुपत्वा) तीव्र गामी रथों से जाने वाला, (अग्निः) तेजस्वी पुरुष, (देवान् अच्छ जिगाति) समस्त विद्वानों, वीरों को आदर पूर्वक प्राप्त करता है। वह (मन्द्रः) स्तुति योग्य (होता) सुखों का दाता, (जुह्वा यजिष्ठः) वाणी से सबका सत्कार करने वाला, (सं-मिश्लः) सबके साथ सम्बद्ध, (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (देवान् आ जिघर्त्ति) उत्तम जनों और वीरों को प्राप्त करता है।

तमु॒स्रामिन्द्रं॒ न रेज॑मानम॒ग्निं गी॒र्भिर्नमो॑भि॒रा कृ॑णुध्वम् ।
आ यं विप्रा॑सो म॒तिभि॑र्गृ॒णन्ति॑ जा॒तवे॑दसं जु॒ह्वं॑ स॒हाना॑म् ॥ ५ ॥

भा०—(इन्द्रं न रेजमान) सूर्य के समान चमकने वाले (उस्राम्) ऐश्वर्यों के देने वाले, (तम् अग्निम्) अग्नि तुल्य तेजस्वी पुरुष को (नमोभिः गीर्भिः) विनय युक्त वाणियों द्वारा (आ कृणुध्वम्) प्राप्त होवो। (यं) जिसको (विप्रासः) विद्वान् (मतिभिः) स्तुतियों से (आ

गृणन्ति) उपदेश करते हैं उस (जात-वेदसं) ज्ञानों से सम्पन्न (सहानां) समस्त बलों के (जुह्वम्) मुख्य दाता को तुम भी (आ कृणुध्वम्) प्राप्त होवो ।

सं यस्मि॒न्विश्वा॒ वसू॑नि ज॒ग्मुर्वाजे॒ नाश्वाः॒ सप्ती॑वन्त॒ एवैः॑ ।
अ॒स्मे ऊ॒तीरिन्द्र॑वाततमा अर्वाची॒ना अ॑ग्न॒ आ कृ॑णुष्व ॥ ६ ॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके अधीन (विश्वा वसूनि सं जग्मुः) समस्त ऐश्वर्य एकत्र हैं, और जिसके अधीन (वाजे सप्तीवन्तः अश्वाः न एवैः) संग्राम में तीव्रगामी अश्वों के समान सभी जन अपने २ कर्मों सहित एकत्र हैं, हे (अग्ने) तेजस्विन् ! वह तू (अस्मे) हमारे लिये (इन्द्र-वात-तमाः) तेजस्वी पुरुषों द्वारा प्राप्त (ऊतीः) रक्षाएं (अर्वाचीनाः ऊतीः) नवीन २ रक्षासाधन प्राप्त (आ कृणुष्व) करा ।

अधा॒ ह्य॑ग्ने म॒ह्ना नि॒षद्या॑ स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो हव्यो॑ ब॒भूथ॑ ।
तं ते॑ दे॒वासो॒ अनु॒ केत॑माय॒न्नधा॑ वर्धन्त प्रथ॒मास॒ ऊमाः॑ ॥७॥१॥

भा०—(अध हि) और हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (सद्यः जज्ञानः) शीघ्र प्रकट होकर (हव्यः) स्तुत्य (बभूव) होता है । (ते देवासः) वे तेजस्वी जन (ते केतम् अनु आयन्) तेरे ज्ञान का अनुसरण करते हैं । (अध) और वे (प्रथमासः ऊमाः) गुणों में उत्कृष्ट होकर (अवर्धन्त) वृद्धि को पाते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

[७]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् विराट् त्रिष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

स्व॒स्ति नो॑ दि॒वो अ॑ग्ने पृथि॒व्या वि॒श्वायु॑र्धेहि य॒जथा॑य देव ।
सचे॑महि॒ तव॑ दस्म प्रके॒तैरु॑रु॒ष्या ण॑ उ॒रुभि॑र्देव॒ शंसैः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) प्रकाशस्वरूप ! (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (विश्वायुः) सबका जीवन है । तू (यजथाय) यज्ञ के लिये (नः) हमें (दिवः पृथिव्या)

आकाश और भूमि से (स्वस्ति) सुख (धेहि) प्रदान कर। हे (दस्म) सब दुःखों के नाशक! (तव प्र-केतैः) तेरे ज्ञानों से (सचेमहि) हम सदा युक्त हों। हे (देव) तेजस्विन्! तू (नः) हमारी (उरुभिः शंसैः) उत्तम अनुशासनों से (उरुष्य) रक्षा कर।

इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड् वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (इमाः मतयः) ये वाणियां (तुभ्यं जाताः) तेरी स्तुति के लिये प्रकट हुईं (गोभिः अश्वेभिः राधः गृणन्ति) धेनुओं और अश्वों सहित समस्त धन (तुभ्यं) तेरा ही बतलाती हैं। (मर्त्तः) मनुष्य (यदा) जब (ते भोगम् अनु आनट्) तुझसे ही अपना सब भोग्य पदार्थ प्राप्त करता है, हे (वसो) सबको बसाने वाले! हे (सुजात) गुणों से प्रकाशित! तब वह मनुष्य (मतिभिः दधानः) मतियों से उसे प्राप्त करता है।

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—मैं (अग्निम्) तेजस्वी, पापों के भस्म करने वाले ज्ञानदाता को ही (पितरं मन्ये) पालक मानता हूँ। (अग्निम् आपिम्) उस अग्रणी को ही बन्धु मानता हूँ। (अग्निं भ्रातरम्) उस तेजस्वी को ही भ्राता और (सदम् इत्) सदा ही (सखायम्) मित्र (मन्ये) मानता हूँ। मैं (बृहतः अग्नेः) उस महान् अग्नि के (अनीकं) भारी बल की (सपर्यम्) उपासना करता हूँ। (दिवि) आकाश में (सूर्यस्य) सूर्य के समान सबके सञ्चालक प्रभु के (यजतं शुक्रं) पूज्य, शुद्ध स्वरूप की मैं उपासना करूं।

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (अस्मे धियः) हमारी बुद्धियां, स्तुतियां और हमारे कर्म (सिध्राः) सिद्ध होकर (अस्मे सनुत्रीः) हमें फलदायक हों। तू (नित्य-होता) सदा ऐश्वर्यों का दाता, प्रभु (यं दमे त्रायसे) जिसको गृह और शासन में रख कर उसकी रक्षा करता है (सः ऋतावा) वह ज्ञान और धन का स्वामी, (रोहित्-अश्वः) लाल अश्वों वाला और वह (पुरु-क्षुः) बहुत से अन्नों का स्वामी हो जाता है। हे प्रभो ! (द्युभिः अहभिः) तेजोयुक्त सब दिन (अस्मा वामम् अस्तु) हमें धन प्राप्त हो।

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम्।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥ ५ ॥

भा०—(द्युभिः हितम्) प्रकाशों से युक्त, (मित्रम् इव प्रयोगं) मित्रवत् योग द्वारा प्राप्य, (प्रत्नम्) पुराण, (ऋत्विजम्) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले, (अध्वरस्य) यज्ञ रूप जगत् के (जारम्) विनाश करने वाले, सर्वप्रकाशक अग्नि को (बाहुभ्याम् अजनयन्त) जैसे मथ कर प्रकट करते हैं वैसे ही उस प्रभु की (बाहुभ्यां अजनन्त) बाहुएं फैला कर याचना करते हुए महत्ता प्रकट करते हैं और उसी (होतारं) प्रभु को (विक्षु) प्रजाओं में (नि असादयन्त) प्राप्त करते हैं।

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ॥ ६ ॥

भा०—हे (देव) हे प्रकाशस्वरूप ! तू (देवान्) सूर्यादि लोकों को (स्वयं यजस्व) स्वयं प्रकाश देता है। (अप्रचेताः) अविद्वान् (पाकः) दुःखों से तप्त पुरुष (ते किं कृणवत्) तेरी क्या उपासना करेगा ? हे (देव) दानशील ! तू (ऋतुभिः) ऋतुओं से (यथा देवान् अयजः) सूर्य, वायु, जलादि की संगति करता है (एवा) वैसे ही हे (सु-जात) सर्वोत्तम प्रकाशक ! (तन्वं) इस महान् विश्व वा देह को भी तू (यज) सुसंगत कर।

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वोऽप्रयुच्छन् ७।२

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् प्रभो ! तू (नः अविता उत गोपा भव) हमारा पालक और रक्षक हो। तू (नः वयः-कृत् उत वयोधाः भव) हमें जीवन देने वाला और हमारा धारण कराने वाला हो। तू (नः सुमहः हव्यदातिं रास्व) हमें बहुत बड़े अन्नादि पदार्थों का दान कर। (उत नः तन्वः) हमारे शरीरों वा पुत्र पौत्रादि की भी (अप्रयुच्छन्) विना प्रमाद किये (त्रास्व) रक्षा कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[८]

त्रिशिरास्त्वाष्ट्र ऋषिः॥ १—६ अग्निः ७—९ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५—७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥

अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ १ ॥

भा०—वह (अग्निः) प्रभु (बृहता केतुना) बड़े भारी ज्ञान से सूर्यवत् (प्र याति) सर्वोपरि पद को प्राप्त है। वह (वृषभः) सुखों का वर्षक (रोदसी) आकाश और भूमि को व्याप कर (आ रोरवीति) गर्जता है। (दिवः चित् अन्तान्) आकाश के छोरों और (उपमाम्) समीप के स्थानों में सबको (उद् आनट्) व्याप कर सर्वोपरि विद्यमान है। वह (महिषः) महान् (अपाम् उपस्थे) प्रकृति के परमाणुओं और जीवों के ऊपर स्थित रहकर (ववर्ध) सबसे बड़ा है।

मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मानस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्त्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह आत्मा (गर्भः) सबको ग्रहण करने वाला, (वृषभः) मेघवत् सुखों का वर्षक, (ककुद्मान्) तेजस्वी, (अस्रेमा)

सर्वश्रेष्ठ, (वत्सः) स्तुत्यक, (शिमीवान्) कर्मों को करने में कुशल (अरा-वीत्) उपदेश करता है । वह (सः) वह (देवताति) लोकों और किरणों में सूर्यवत् (स्वेषु क्षयेषु) अपने लोकों में (उद्यतानि कृण्वन्) उत्तम व्यवस्थाएं करता हुआ, (प्रथमः) सबसे प्रथम (जिगाति) विराजता है ।

आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (पित्रोः) माता पिता के तुल्य आकाश और भूमि के (मूर्धानं) सर्वोच्च या मुख भाग को बनाता है उस (सूरः) सर्वप्रेरक पुरुष के (अर्णः) तेज को (अध्वरे दधिरे) यज्ञ में अग्निवत् दिव्य पदार्थ धारण करते हैं । (अस्य पत्मन्) इसके शासन में (अरुषीः) तेजस्विनी (अश्व-बुध्नाः) भोक्ता आत्मा से बद्ध (तन्वः) नाना देहों को (ऋतस्य योनौ) सत्य कारण रूप प्रकृति-तत्व में जीवगण (जुषन्त) सेवन करते हैं ।

उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे३ स्वायै ॥ ४ ॥

भा०—हे (वसो) सबमें बसने हारे आत्मन् ! जैसे (उषः-उषः) प्रत्येक उषा में (त्वम् अग्रम् एषि) तू सर्वप्रथम पद को प्राप्त होता है, तू (यमयोः) दिन रात के जोड़ों में सूर्यवत् (यमयोः) भोग्य-भोक्ता सम्बन्ध से बद्ध जीव और प्रकृति में (वि-भावा अभवः) विशेष कान्ति से युक्त है । (ऋताय) सञ्चालन करने के लिये तू (सप्त पदानि दधिषे) सातों लोकों को धारण करता है । (स्वायै तन्वे) अपने विस्तृत जगन्मय देह के लिये (मित्रं जनयन्) मित्र, वायु, जल आदि को प्रकट करता है । ऐसे ही प्राण अपान यम में प्रभु अपने प्राण को प्रकट कर, सात प्राणों को धारता है ।

भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ॥५॥३॥

भा०—तू (गोपाः) इन्द्रियों का पालक होकर (महः ऋतस्य) इस महान् सत्य एवं मूल प्रकृति का (चक्षुः भुवः) प्रकाशक है। तू ही (ऋताय वेषि) मूलकारण प्रकृति को व्यापता है इसी से (वरुणः भुवः) तू सर्वश्रेष्ठ है। हे (जातवेदः) ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामिन्! तू ही (अपां नपात्) जलों में पाद रहित नौकावत् सबका तारक है तू (यस्य हव्यं जुजोषः) जिसके उपकार-वचन को प्रेम से स्वीकार करता है, तू उसका (दूतः भुवः) दूत व ज्ञान देने वाला होता है। इति तृतीयो वर्गः॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम्॥ ६॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वव्यापक! तू (यज्ञस्य) विराट् यज्ञ का और (रजसः च) लोकों का (नेता) सञ्चालक (भुवः) है, (यत्र) जिनमें तू (शिवाभिः) कल्याणकारक (नि-युद्भिः) प्रेरक शक्तियों से (सचसे) व्याप रहा है। तू ही (दिवि) आकाश में (स्वर्षाम्) तेज को देने वाले सूर्य को (मूर्धानं) शिरोवत् (दधिषे) धारण करता है और तू ही (हव्य-वाहम्) ज्ञान देने वाली (जिह्वाम्) हव्यवाहिनी अग्नि, जिह्वा के तुल्य सत्य वेदवाणी को (चकृषे) प्रकट करता है।

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति॥ ७॥

भा०—(त्रितः) तीनों गुणों से बद्ध जीव (परस्य पितुः) परम पालक पिता की (एवैः) नाना ज्ञानों और कर्मों से (धीतिम्) उपासना की (इच्छन्) कामना करता हुआ (क्रतुना) कर्म द्वारा (अस्य) उसको (अन्तः वव्रे) अपने भीतर वरण करे। (पित्रोः उपस्थे) माता पिता की गोद में बैठे बालक के तुल्य वह जीव भी ब्रह्म और प्रकृति की (उपस्थे सचस्यमानः) गोद में प्राप्त होकर (जामि ब्रुवाणः) स्तुति करता हुआ (आयुधानि वेति) बाधाओं से युद्ध करने के साधनों को प्राप्त करता है।

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ८

भा०—(सः) वह आत्मा (पित्र्याणि) पालक पिता से प्राप्त (आयुधानि) उपकरणों को वीरवत् (विद्वान्) प्राप्त कर उनका ज्ञान करके, वह (आप्त्यः) लिंग शरीरस्थ जीव (इन्द्रेषितः) परमेश्वर से प्रेरित होकर (त्रिशीर्षाणं) तीन शिरों, गुणों से युक्त (सप्त-रश्मिं) सात बन्धनों से बद्ध इस देह को (जघन्वान्) प्राप्त होकर (त्रितः) तीनों गुणों में बद्ध होकर, (त्वाष्ट्रस्य) उस प्रभु परमेश्वर की (गाः निः ससृजे) वाणियों को प्रकट करता है ।

भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजोऽवाभिनत्सत्पतिर्मन्यमानम् ।
त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनामाचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ९।४

भा०—वह (सत्पतिः) सज्जनों का पालक परमेश्वर (मन्यमानम्) अभिमानी (भूरि ओजः) बहुत बल (उद्-इन क्षन्तम्) प्राप्त कराने वाले को (अव अभिनत्) भेद डालता है और वह (विश्व-रूपस्य त्वाष्ट्रस्य) उस देहमय विश्वरूप अर्थात् आत्मा के रूप से युक्त देह की (गोनाम् आचक्राणः) इन्द्रियों के स्थान बनाने की चेष्टा करता हुआ (त्रीणि शीर्षाणि) तीन शिरस्थ प्राणों को (परा वर्क्) छेदन करता है, वह शिर में प्राण, मुख और कान इनके तीन छिद्र बनाता है । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[९]

त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीष ऋषिः ॥ आपो देवताः ॥ छन्दः—१—४, ६ गायत्री । ५ वर्धमाना गायत्री । ७ प्रतिष्ठा गायत्री ८, ९ अनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

भा०—(आपः) हे आप्त जनों ! हे व्यापक प्रभो ! आप (मयः-भुवः स्थ) जलों के समान सुख को उत्पन्न करने वाले हो। (ताः) वे आप (ऊर्जे) हमें उत्तम बल को देने के लिये (दधातन) धारण करो, आप हमें (महे रणाय) बड़े भारी सुख प्राप्त करने और (चक्षसे) ज्ञानदर्शन के लिये (दधातन) धारण करें।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

भा०—हे (आपः) आप्त जनों ! हे सर्वव्यापक प्रभो ! (उशतीः इव मातरः) पुत्र को चाहने वाली माताओं के समान (वः यः शिवतमः रसः) आपका जो कल्याणकारी ज्ञान और बल है (तस्य) इसका (इह नः भाजयत) हमें यहां सेवन कराइये।

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

भा०—हे (आपः) जलवत् शान्तिदायक आप्त जनों ! आप लोग (चनः) उत्तम ज्ञान को (जनयथ) उत्पन्न करो, (यस्य क्षयाय) आप लोग जिसके ऐश्वर्य की वृद्धि करते हो, (तस्मै अरं गमाम) हम भी उसको शीघ्र प्राप्त हों।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ ४ ॥

भा०—(देवीः) ज्ञानप्रकाशमय (आपः) जलवत् शान्तिदायक आप्तजन और व्यापक परमेश्वर (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों और वे (अभिष्टये) अभीष्ट प्राप्ति के लिये हों। (पीतये भवन्तु) हमारे रसपानवत् पालन के लिये भी हों। वे (नः) हमारे (शं योः) शान्ति देने और कष्ट को दूर करने के लिये (नः अभि स्रवन्तु) हमें सब ओर से प्राप्त हों।

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्।
अपो याचामि भेषजम् ॥ ५ ॥

भा०—जैसे (अप:) जल (वार्याणां) 'वारि' अर्थात् जलों से उत्पन्न वृक्ष, वनस्पति आदि के (ईशाना:) स्वामी हैं, उनको उत्पन्न करने और बढ़ाने वाले हैं और (चर्षणीनां क्षयन्तीः) वे जल विचरणशील प्राणियों को भी इस जगत् पर बसाने वाले वा उनके दोषों को नष्ट करते हैं।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवम् ॥ ६ ॥
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम।
ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥ ७ ॥
इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ ८ ॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ ९ ॥ ५ ॥

भा०—व्याख्या देखो मं० १। सू० २३। मन्त्र, २०, २१, २२, २३ ॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१०]

ऋषिः—१, ३, ५,–७, ११, १३ यमी वैवस्वती। २, ४, ८—१०, १२, १४ यमो वैवस्वत ऋषिः ॥ १, ३, ५–७, ११, १३ यमो वैवस्वतः २, ४, ८—१०, १२, १४ यमी वैवस्वती देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ११ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ५, ९, १० १२ त्रिष्टुप्। ७, १३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। १४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥

भा०—स्त्री पुरुष को कहती है। मैं (सखी आ) मित्र होकर अथवा (सख्या) सख्य भाव के लिये (सखायं) मित्र रूप में तुझको (ओ (आ-उ) ववृत्यां चित्) आदर से प्राप्त करूं। (तिरः पुरु चित्) बहुत बड़े

(अर्णवं जगन्वान् वेधाः) सागरवत् दीर्घ जीवन के पार जाता हुआ, प्रजापति, गृहस्थ (पितुः नपातम्) पिता के वंश को न गिरने देने वाले पुत्र वा वधू के पिता के नाती को (प्रतरं दीध्यानः) जगत्-सागर से पार होने के लिये नौकावत् उत्तम साधन समझता हुआ (क्षमि) भूमि तुल्य पुत्रोत्पादन समर्थ स्त्री में (अधि आ दधीत) आधान करे। विशेष—यह वचन पुत्राभिलाषिणी, पुत्रोत्पादन में समर्थ स्त्री का जीवन के उत्तर भाग में विद्यमान निष्पुत्र पति के प्रति है। पति पत्नी दोनों एक नाम से कहाने योग्य होने से 'सखा और सखी' हैं। पुत्रोत्पादन करके ऋण रूप अर्णव के पार जाना गृहस्थ का कर्तव्य है। स्त्री की दृष्टि में उसका पुत्र उसके पिता का नाती और पुरुष के वंश को चलाने से भी 'नपात्' है। विवाह-बन्धन में परस्पर एक दूसरे को बांधने वाला संस्कार 'उपयम' कहाता है। बंधने वाले स्त्री और पुरुष दोनों यम और यमी हैं। विविध प्रजाएं 'वि-वसु' हैं, उनका स्वामी विवस्वान् वा वधू के माता पिता हैं और उनके वंशज वा वधू 'वैवस्वत' हैं। परस्पर विवाह-बन्धन में बन्धने से वे 'वैवस्वत यम-यमी' कहाते हैं।

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

भा०—पुरुष कहता है—(ते सखा) तेरा मित्रभूत पुरुष (ते एतत् सख्यं) तेरे इस सखा-भाव की (न वष्टि) कामना नहीं करता। (यत्) क्योंकि (सलक्ष्मा) समान लक्षण वाली स्त्री ही (विषु-रूपा भवाति) बहुत प्रजा आदि से सम्पन्न होती है। (उर्विया) इस भूमि में (महः) बड़े (असुरस्य) वीर्यवान् पुरुष के (पुत्रासः) पुत्र ही (वीराः) वीर (दिवः धर्तारः) कामनाशील भूमिवत् माता के पोषक (परि ख्यन्) दिखाई देते हैं।

यह वचन स्त्री के असमान निर्बल, नपुंसक वा पुत्रोत्पादन में असमर्थ पुरुष का प्रतीत होता है। इसी से वह स्त्री के संग को स्वयं

स्वीकार न करके बलवान् पुरुष से पुत्र प्राप्त करने की ओर इशारा करता है। अन्य बलवान् पुरुष से प्राप्त क्षेत्रज पुत्र भी गृहस्थ की अवधि के बाद माता के रक्षक वा पिता के दायभागी होने के निमित्त शास्त्र में कहे हैं।

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१ मा विविश्याः ॥३॥

भा०—पुनः पुत्रार्थिनी स्त्री कहती है—(ते अमृतासः) वे नाश को प्राप्त न होने वाले दीर्घायु पुरुष (एतत् उशन्ति घ) ऐसा अवश्य चाहते हैं कि (एकस्य मर्त्यस्य चित् त्यजसं) एक मनुष्य का भी उत्तम पुत्र हो। और (ते मनः अस्मे निधायि) तेरा मन मेरे मन में निहित है। तू (जन्युः पतिः) पुत्रोत्पादक स्त्री का पति है। तू ही (तन्वम् आ विवश्याः) देह में गर्भ रूप से प्रविष्ट हो। स्त्री विवाहबन्धन से बन्धी होकर असमर्थ पुरुष से ही पुत्र प्राप्त करने का आग्रह करती है।

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

भा०—पुरुष कहता है—(यत् कत् ह पुरा न चकृम) वह कौन सा उपाय है जो हम पहले नहीं कर चुके। (ऋता वदन्तः) सदा सत्य बोलते हुए (नूनम्) अवश्य ही हम (अनृतम् रपेम) असत्य बोलें, यदि कहें कि अमुक उपाय नहीं किया। (गन्धर्वः अप्सु) गम्या भूमि को धारण करने वाला पुरुष भी जलीय अंशों में है और (अप्या च योषा) जलीय परमाणुओं से युक्त स्त्री भी है। (न सा नाभिः) हम दोनों का वही एक आश्रय है। वही (नौ तत् जामि) हम दोनों में यही दोष है जिससे कि एक प्रकृति के ही स्त्री और पुरुष होने से सन्तान उत्पन्न नहीं होती।

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥५॥६॥

बाहु का (उप बर्बृहि) आश्रय ले और (मत् अन्यत् पतिम् इच्छस्व) मुझसे दूसरे पुरुष को पति रूप से चाह। पुत्रोत्पादन में असमर्थ पुरुष स्त्री को अगली सन्तानें उत्तम होने की आशा से ही वीर्यवान् पुरुष से पुत्र प्राप्त करने की सम्मति देता है। इति सप्तमो वर्गः ॥

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्। काममूता बह्वे३तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥ ११ ॥

भा०—हे पुरुष! जो तू अपने से अन्य को पति रूप से चाहने के लिये कहता है तो (किं भ्राता असत्) क्या तू भाई है, (यत्) कि जिस कारण तू (अनथं भवाति) नाथ अर्थात् पति के समान नहीं हो रहा है। (किम् उ स्वसा) क्या मैं बहिन हूँ (यत् निर्ऋतिः) जो निर्गति, लाचार होकर (नि गच्छात्) चली जाऊं। अर्थात् तुम मेरे पति हो, मैं तुम्हारी स्त्री हूँ। अतः (काम-मूता) काम से युक्त होकर (एतत् बहु रपामि) यह बहुत कुछ कह रही हूँ कि तू (मे तन्वा) मेरे देह से (तन्वं) अपने देह को (सं पिपृग्धि) संगत कर।

न वा उ ते तन्वा तन्वं१ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्। अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२॥

भा०—(वा उ) यदि ऐसा ही विकल्प है अर्थात् तू मुझे भाई और अपने को बहन समझती है तो (ते तन्वा) तेरी देह से मैं (तन्वं न सं पपृच्याम्) अपने देह का संपर्क न कराऊं, क्योंकि (यः स्वसारं निग-च्छात्) जो भगिनी का संग करे उसे भी (पापं आहुः) पापी कहते हैं। (अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व) तू मुझसे भिन्न के साथ आमोद-प्रमोद कर। हे (सुभगे) सौभाग्यवति! (ते भ्राता) तेरा भरण पोषण करने वाला पति पुरुष भी भाई के समान ही (एतत् न वष्टि) ऐसे संग की कामना नहीं करता।

ब॒तो ब॑तासि यम॒ नैव ते॒ मनो॒ हृद॑यं चाविदाम ।
अ॒न्या किल॒ त्वां क॒क्ष्ये॑व यु॒क्तं परि॑ ष्वजाते॒ लिबु॑जेव वृ॒क्षम् ॥१३॥

भा०—पुनः स्त्री पति के हृदय के भाव की परीक्षा करने के निमित्त कहती है—हे (यम) विवाह से बद्ध पुरुष ! (बत बतः असि) खेद है कि तू बड़ा निर्बल है । (ते मनः हृदयं च नैव आविदाम) तेरे मन और हृदय को हम न जान पाये । (किल युक्तं त्वा अन्या) क्या समर्थ तुझको कोई अन्य स्त्री (वृक्षम् लिबुजा-इव) वृक्ष को लता के समान (परि स्वजाते) आलिंगन करती है ।

अ॒न्यमू॒ षु त्वं य॑म्य॒न्य उ॒ त्वां परि॑ ष्वजाते॒ लिबु॑जेव वृ॒क्षम् ।
तस्य॑ वा॒ त्वं मन॑ इ॒च्छा स वा॒ तवाधा॑ कृणुष्व सं॒विदं॒ सुभ॑द्राम्
॥ १४ ॥ ८ ॥

भा०—पुरुष अन्तिम आज्ञा देता है । हे (यमि) विवाहित स्त्री ! (त्वं) तू (अन्यम् उ वृक्षम् लिबुजा इव) अन्य पुरुष को वृक्ष की लता के समान आलिंगन कर । और (अन्यः उ त्वां परि स्वजाते) और अन्य पुरुष तुझे आलिंगन करे । (तस्य वा त्वं मनः इच्छ) तू उसके मन को चाह और (स वा तव) वह तेरे मन को चाहे । (अध) और तू (सु-भद्राम् संविदं कृणुष्व) कल्याणकारिणी उत्तम मति को कर । इस शब्द योजना से बहन भाई के परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध का भी निषेध किया है और रक्त में एक समान तत्व वाले स्त्री पुरुषों में यदि परस्पर सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति न हो तो भी अतिरिक्त पुरुष से सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा अर्थात् 'नियोग' वेद में प्रतिपादित है । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[११]

हविर्धान आंगिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृज्जगती । ३—५ विराड् जगती । ७—९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ
ऋतून् ॥ १ ॥

भा०—जैसे (वृषा) वर्षा करने वाला सूर्य (यह्वः) महान् होकर (वृष्णे दोहसा) वर्षणशील मेघ के दोहन या पूर्ण-सामर्थ्य से (दिवः) आकाश से (पयांसि दुदुहे) जलों की वर्षा करता है ऐसे ही (वृषा) बलवान् (यह्वः) बलों में महान् और (अदाभ्यः) शत्रुओं से अहिंस्य होकर (अदितेः) अपराधीन, व्यक्ति (दिवः) भूमि से (दोहसा) अन्नादि देने के सामर्थ्य से (पयांसि दुदुहे) पुष्टिकारक अन्नों को प्राप्त करे । (स वरुणः) वह सर्वश्रेष्ठ राजा, (धिया) बुद्धि या कर्म द्वारा (यथा विश्वं वेद) जैसे राष्ट्र को प्राप्त करे और जाने वैसे ही वह (यज्ञियः) राष्ट्र-यज्ञ का कर्त्ता (यज्ञियान् ऋतून् यजतु) परस्पर संगति करने वाले सदस्यों और ऋतुओं को एकत्र करे ।

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि
वोचति ॥ २ ॥

भा०—जैसे (अप्या) जल से प्राप्त करने योग्य (गन्धर्वी) वाणी को धारण करने वाली विद्युत् (रपत्) गर्जती है । वैसे ही (अप्या) जल प्रकृति की (गन्धर्वी) भूमि के समान वा वाणी को धारण करने वाली विदुषी (योषणा) स्त्री वा प्रजा (रपत्) कहे कि (नदस्य) गर्जनशील मेघ के समान उदार पुरुष के (नादे) शासन में (मे मनः परि पातु) मेरा मन मेरी रक्षा करे । वह (अदितिः) अखंड शासक होकर (नः) हमें (इष्टस्य मध्ये) ऐश्वर्य के बीच में (नि धातु) स्थापित करे और (नः) हम में से (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा (भ्राता) सबका पालक (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (नः विवोचति) हमें विद्याओं का उपदेश करे ।

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥३॥

भा०—(यद्) जब (उशताम्) ऐश्वर्य चाहने वालों के बीच में (उशन्तं) कामना करने वाले (क्रतुं) कर्म कुशल (अग्निं) ज्ञानवान् पुरुष को (विदथाय) यज्ञाग्निवत् (होतारं) ग्रहीता रूप से (जीजनन्) विशेष रूप से प्रकट करते हैं, उस समय (सो चित नु उषा) वह कामनावती स्त्री भी प्रभात वेला के समान (क्षु-मती) उत्तम वचन बोलती हुई, (यशस्वती) गुणों से कीर्त्ति युक्त (स्वर्वती) सुखसम्पदा वाली होकर (मानवे उवास) मनुष्य के हितार्थ रहे ।

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥ ४ ॥

भा०—(यदि) जब (आर्याः विशः) श्रेष्ठ प्रजाएं (दस्मं) दुष्ट पुरुषों के नाशक (होतारम्) भृत्यों को वेतनादि देने वाले, (अग्निं) तेजस्वी पुरुष को नायक रूप से (वृणते) वरण करती हैं (अध) अनन्तर ही (धीः अजायत) वह राष्ट्र को धारण करने में समर्थ हो जाता है । (अध) और उसी समय (निः) कान्तिमन् तेजस्वी (श्येनः) बाज के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाला वीर सेनापति, (इषितः) प्रेरित होकर (त्यं) उस (द्रप्सं) बलवान्, (विभ्वं) महान्, (वि-चक्षणं) बुद्धिमान् पुरुष को (अध्वरे) राष्ट्र रूप यज्ञ वा अहिंसनीय पद पर (आभरत्) प्राप्त करता है ।

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः॥५॥

भा०—(पुष्यते यवसा इव) पोषण करने वाले पशु को जैसे तृण (घास) उत्तम लगते हैं वैसे ही (पुष्यते) अपना पोषण करने वाले राष्ट्र के लिये हे नायक ! तू (सु-अध्वरः) उत्तम अहिंसक (मनुषः) मननशील

पुरुष की (होत्राभिः) वाणियों द्वारा (सदा रण्वः असि) सदा रमण योग्य प्रजा को प्रिय हो और (शशमानः) उपदेश किया जाकर (विप्रस्य) विद्वान् के (उक्थं वाजं) प्रशंसनीय ज्ञान को (ससवान्) सेवन करता हुआ तू (भूरिभिः उप यासि) बहुत से अनुगामियों सहित प्राप्त हो। इति नवमो वर्गः ॥

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥६॥

भा०—हे विद्वन्! (जारः आभगम्) रात्रि को जीर्ण करने वाला सूर्य जैसे अपने प्रकाश को सब ओर फैलाता है वैसे तू भी (पितरा) माता पिता के तुल्य पूज्यों के प्रति (उद् ईरय) उत्तम वचन कह। उन्हें (भगम् आ ईरय) ऐश्वर्य सुख प्राप्त करा। क्योंकि (हर्यतः) तेजस्वी पुरुष ही (इयक्षति) दान देने में समर्थ होता है, वह (हृत्ता इष्यति) उनको हृदय से चाहता है। वह (वह्निः) कार्य-भार को उठाने में समर्थ होकर (विवक्ति) विविध वचन कहता है, (सु-अपस्यते) उत्तम कार्य करता है और (मखः) पूज्य होकर (तविष्यते) बल के कर्म करता है, और (असुरः) बलवान् होकर (मती वेपते) अपनी बुद्धि से शत्रुओं को कंपाता है।

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत्सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान्भूषति द्यून् ॥७॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रभो! (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (ते सुमतिम् अक्षत्) तेरे ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, (सहसः सूनो) बल के प्रेरक! (सः अति प्रशृण्वे) वह सबसे प्रसिद्ध हो जाता है। (सः) वह (इषं) अन्न सम्पदा और सेना को (दधानः) धारण करता हुआ (अश्वैः वहमानः) अश्व आदि साधनों से राज्य को धारण करता और (द्यून्) सब दिनों (द्युमान् अमवान्) तेजस्वी, बलवान् (भूषति) बना रहता है।

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ८

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! राजन्! (यजत्र) हे पूज्य! (यत्) जब (यजता देवेषु) विजयेच्छुक जनों में (एषा देवी) यह विजयेच्छुक वा विदुषी (समितिः) समिति, सभा, (भवति) हो और (यत्) जब हे (स्वधावः) अन्नादि के स्वामिन्! तू (रत्ना विभजासि) नाना रत्न विभक्त करे तब (अत्र) इस अवसर पर (नः) हमारा (वसुमन्तं भागं) ऐश्वर्ययुक्त भाग हमें (वीतात्) प्राप्त हो।

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः॥९॥१०॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (सधस्थे सदने) एक साथ स्थित होने के सभाभवन में तू (नः) हमारे वचन श्रवण कर। और (अमृतस्य) अमृत के समान सत्य ज्ञान को (द्रवित्नुम्) प्रवाहित करने वाले (रथम्) रमणीय उपदेश को (युक्ष्व) प्राप्त कर। (देव-पुत्रे) तेजस्वी पुरुषों को पुत्र के तुल्य पालन करने वाला (नः) हमारे (रोदसी) सूर्य-भूमिवत् तेजस्वी राजा और प्रजा दोनों को (आ वह) धारण कर। जिससे (देवानाम्) विद्वानों और वीरों में से कोई भी हमसे (माकिः अपभूः स्याः) अपमानित और तिरस्कृत न हो। इति दशमो वर्गः॥

[१२]

हविर्धान आङ्गिऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ५, ७. निचृत् त्रिष्टुप्। ६ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा।
देवो यन्मर्तान्यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन्॥१॥

भा०—(देवः) तेजस्वी, (होता) दानशील पुरुष (प्रत्यङ्) आत्मा के समान सर्वप्रिय होकर (स्वम् असुं यन्) अपने प्राण-बल को प्राप्त करता हुआ (मर्त्तान्) वीर पुरुषों को (यजथाय) सुसंगत (कृण्वन्)

करता हुआ (सीदत्) प्रधान पद पर विराजता है, उस समय ही (द्यावा क्षामा) सूर्य और भूमिवत् (प्रथमे) सर्वश्रेष्ठ, शास्य-शासक गण (ऋतेन अभिश्रावे) वेद-वचन द्वारा अपनी प्रतिज्ञा सुनाते हुए (सत्यवाचा भवतः) सत्यवाणी से बद्ध जीव होते हैं।

देवो देवान्परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान्।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् २

भा०—हे तेजस्विन्! तू (देवः) तेजस्वी, (विद्वान्) विद्वानों पर भी (ऋतेन) वेदधर्म के द्वारा (परि-भूः) सर्वोपरि शासक होकर (चिकित्वान्) ज्ञानवान् और (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (नः हव्यं वह) हमें उत्तम ज्ञान और उत्तम धनादि प्राप्त करा। वह तू (धूम-केतुः) धूम की ध्वजा से युक्त अग्नि के तुल्य (धूम-केतुः) शत्रु को कंपाने वाली ध्वजा वाला (समिधाः) सबके सहयोग से तेजस्वी, (भा-ऋजीकः) अपनी कांति से दुष्टों को भूनने वाला (मन्द्रः) सर्वस्तुत्य, (होता) सबको आदर पूर्वक बुलाने वाला (नित्यः) नित्य और (वाचा यजीयान्) वाणी से सबका सत्कार करने वाला हो।

स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी।
विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः॥ ३॥

भा०—(यदि देवस्य गोः) जब तेजस्वी सूर्य का (स्वावृक्) सुखप्रद (अमृतं) जल उत्पन्न होता है तब (अतः) इस जल से ही (उर्वीः) पृथिवी पर (जातासः अमृतं धारयन्त) उत्पन्न हुए प्राणी जीवन धारण करते हैं। और (यद् एनी) जब वह दीप्त सूर्य कान्ति, (दिव्यं) आकाश से उत्पन्न (घृतं दुहे) जल को प्रवाहित करती है (तत् यजुः अनु) उस दान को लक्ष्य करके ही (विश्वे देवाः अनु गुः) सब जीव उसकी स्तुति करते एवं अनुकरण करते हैं।

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद्द्यावोऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥४॥

भा०—हे (घृतस्नू द्यावाभूमी) जल के वर्षाने और बहाने वाले, भूमि और आकाश के समान स्नेहवर्षक, माता, पिता, गुरु, आचार्य (रोदसी) एवं उत्तम उपदेष्टा जनों ! मैं (वर्धाय) अपनी वृद्धि के लिये (वां अपः अर्चामि) आपके उत्तम उपकार रूप कर्म का आदर करता हूँ । (मे शृणुतं) आप मेरा वचन श्रवण करें । (यत्) जब (द्यावः) सूर्य के तेजस्वी किरण (अहा) सब दिनों (असु-नीतिम् अयन्) जीवों के जीवन प्राप्त करने का कार्य करते हैं तब (अत्र) इस लोक में (पितरा) आकाश और भूमिवत् माता पिता भी (मध्वा) मधुर वचन और वेद द्वारा (नः शिशीताम्) हमें शक्ति दें ।

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(राजा) तेजस्वी राजा (नः किं स्वित् जगृहे) हमारा क्या स्वीकार करे ? (अस्य व्रतं) उसके नियम को हम (कत् अति चकृम) कब २ उल्लंघन करते हैं ? (कः विवेद) इस बात को कौन जानता है ? वह राजा प्रजाओं का (मित्रः चित्) स्नेही मित्र के समान (जुहुराणः हि) आमन्त्रित होकर (नः देवान् याताम्) हम अभिलाषी जनों को प्राप्त हो । वह (वाजः अपि अस्ति) निश्चय बलवान् है तो भी वह (श्लोकः नः) वेदोपदेश के तुल्य माननीय होकर हमें प्राप्त हो । इत्येकादशो वर्गः ॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जो (सलक्ष्मा) समान लक्षणों से युक्त स्त्रीवत् प्रकृति (विषु-रूपा भवाति) विविध रूपों से सम्पन्न होती है इस सम्बन्ध

में (अमृतस्य) अमृत रूप उस प्रभु का (नाम) स्वरूप (दुर्मन्तु) गहन है। (यः) जो पुरुष उस (यमस्य) नियामक प्रभु के (सु-मन्तु) सुख से मनन करने योग्य अमृतमय रूप का (मनवते) मनन करता है, हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (ऋष्व) महान्! तू (अ प्रयुच्छन्) निष्प्रमाद होकर (तम् पाहि) उसकी रक्षा।

यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून्परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥ ७ ॥

भा०—(यस्मिन् विदथे) ज्ञानस्वरूप जिसमें (देवाः मादयन्ते) विद्वान् हर्ष को प्राप्त होते हैं और (यस्य विवस्वन्तः सदने) सूर्य के तुल्य जिसके आश्रय में (देवाः) किरणों के तुल्य विद्वान् और वीर जन (धारयन्ते) अपने में व्रत-नियमादि गुण धारण करते हैं। जिस (सूर्ये) सूर्यवत् तेजस्वी के अधीन रहकर (ज्योतिः अदधुः) वे तेज और ज्ञान को धारण करते हैं और (मासि अक्तून्) चन्द्रमा के तुल्य जिसके आश्रय पर लोग रात्रियों के समान विशेष गुण धारण करते हैं उस (द्योतनिं) तेजस्वी पुरुष के आश्रय ही (अजस्रा) सब नर नारी एक दूसरे का नाश न करते हुए, निरन्तर (परि चरतः) सेवा करें।

यस्मिन्देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये न वयमस्य विद्म।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥८॥

भा०—(यस्मिन् मन्मनि) मनन योग्य ज्ञानमय जिसमें (देवाः संचरन्ति) विद्वान् लोग सम्यक् आचरण करते हैं। (वयम् अस्य) हम लोग उस प्रभु के (अपीच्ये) अप्रकट रूप में, विद्यमान स्वरूप को (न विद्म) नहीं जानते। वह (मित्रः) स्नेही (अदितिः) अविनाशी, (सविता) सर्वोत्पादक, (देवः) सर्व-ज्ञानप्रद (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ प्रभु को प्राप्त करने के लिये (अनागान् नः) निष्पाप हमको (अत्र) उस प्रभु के सम्बन्ध में (वोचत्) उपदेश करे।

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥९॥१२॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त ११ । ९ ॥ इति द्वादशो वर्गः ॥

[१३]

विवस्वानादित्य ऋषिः ॥ हविर्धाने देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥१॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों को (नमोभिः) विनय आदि लक्षणों सहित (पूर्व्यं) ज्ञान में पूर्ण (ब्रह्म) वेद और ब्रह्म-ज्ञान का (युजे) उपदेश करता हूँ। (सूरेः) जगत् के उत्पादक प्रभु का वह (श्लोकः) ज्ञानोपदेश (पथ्या इव) सन्मार्ग पर ले जाने वाली पगदण्डी के समान है। (विश्वे) समस्त (अमृतस्य पुत्राः) अमर परमेश्वर के पुत्र और (ये) जो (दिव्यानि धामानि आ तस्थुः) कामना योग्य उत्तम लोकों को प्राप्त हैं वे सब (शृण्वन्तु) श्रवण करें।

यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥२॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप लोग (यद्) जब (यमे इव) परस्पर सम्बद्ध होकर, (यतमाने) यत्न करते हुए (आ एतं) प्राप्त होवो, तो (वयं) आप दोनों को (देवयन्तः मनुषाः) विद्वानों को चाहने वाले मनुष्य (प्रभरन्) अच्छी प्रकार पालन करें। आप लोग (स्वम् उ लोकं विदाने) अपने आत्मा को जानते हुए (आ सीदतम्) आदरणीय पद पर विराजो। और (नः इन्दवे) हमारे ऐश्वर्य के लिये (सु-आसस्थे भवतम्) शुभ आसन पर बैठो।

पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सम्पुनामि ॥ ३ ॥

भा०—(रुप: पदानि) सीढ़ी के पग-दण्डों के समान मैं (रुप:) उच्च पद तक चढ़ने के साधन योगमार्ग के (पञ्च पदानि) पांचों यमों को (अनु अरोहम्) क्रम से चढ़ूं । और (व्रतेन) व्रत के पालनपूर्वक मैं (चतुष्पदीम्) चार पदों वा चार आश्रमों से युक्त जीवन-पद्धति को (अनु एमि) प्राप्त होऊं । (एताम्) उस वाणी को (अक्षरेण) अक्षर आदि के द्वारा वाणी के समान ही (अ-क्षरेण) अविनाशी वेदमय ज्ञान से (प्रति मिमे) प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान करूं और (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (नाभौ) केन्द्र प्रभु में रह कर मैं अपने को (अधि सम् पुनामि) खूब पवित्र करूं ।

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥४॥

भा०—(देवेभ्य:) विद्वान् पुरुषों के लिये (मृत्युं) मृत्यु को (अवृणीत कम्) दूर करो, (प्रजायै) प्रजा के लिये (अमृतं) दीर्घ जीवन को (न अवृणीत) नष्ट न होने दो । (बृहस्पतिम्) वेद-वाणी के पालक (यज्ञं) सत्संग योग्य (ऋषिं) वेद मन्त्रों के द्रष्टा पुरुष को (अकृण्वत) नियुक्त करो और (मन:) विवाह बन्धन से बद्ध पुरुष (प्रियां तन्वं) अपने प्रिय सन्तति आदि को (प्रारिरेचीत्) उत्पन्न करे ।

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥५॥१३॥

भा०—(पित्रे पुत्रास:) पिता के लिये पुत्र जैसे प्रेम-भाव दर्शाते हैं वैसे ही (मरुत्वते) प्राणों के अध्यक्ष (शिशवे) भीतर सोने वाले आत्मा के सुखार्थ ही ये (सप्त) सातों प्राणगण (ऋतम् अपि अवीवृतन्) ज्ञान वा सुख को प्राप्त कराते हैं । (अस्य उभयस्य) ज्ञान और कर्म का सम्पादन करने वाले इसके (उभे इत् राजेते) दोनों ही ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय

प्रकाशित होते हैं। (पुष्यतः) पोषक दोनों वर्गों के स्वामी आत्मा के वे दोनों ही प्रकार के प्राण (यतेते) यत्न करते हैं। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१४]

यम ऋषिः ॥ देवताः—१—५, १३—१६ यमः। ६ लिंगोक्ताः। ७—९ लिंगोक्ताः पितरो वा। १०—१२ श्वानौ ॥ छन्दः—१, १२ भुरिक् त्रिष्टुप्। २, ३, ७, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ६ विराट् त्रिष्टुप्। ५, ९ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ८ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप्। १३, १४ निचृदनुष्टुप्। १६ अनुष्टुप्। १५ विराड् बृहती ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥ १ ॥

भा०—(प्रवतः महीः) उत्तम कर्म वालों को (महीः परेयिवांसम्) उत्तम भूमि को प्राप्त कराने वाले, और (अनु) अनन्तर (बहुभ्यः) बहुतों के हितार्थ (पन्थाम्) मार्ग को (अनुपस्पशानम्) साक्षी वा पहरेदार के समान सबके मार्ग द्रष्टा और (वैवस्वतं) प्रजाओं के स्वामी, (जनानां संगमनम्) मनुष्यों के एक स्थान पर मिल जाने का आश्रय (यमं राजानं) नियन्ता राजा को (हविषा दुवस्य) उत्तम अन्न, वचन आदि से सत्कार कर।

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उं।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्याउ अनु स्वाः ॥२॥

भा०—(प्रथमः) सबसे उत्कृष्ट पुरुष (यमः) नियन्ता है। वह (नः गातुं विवेद) हमारी वाणी और स्तुति का पात्र हो। (एषा) वह (गव्यूतिः) मार्ग (अपभर्त्तवा न उ) त्याग करने योग्य नहीं है। (यत्र) जिसमें (नः) हमारे (पितरः) पालक पिता, पितामह आदि (स्वाः पथ्याः) अपने २ हितकारी मार्गों को (जज्ञानाः) जानते हुए (एना) इसी मार्ग से (अनु परेयुः) दूर तक चले जाते रहे, अर्थात् दीर्घ जीवन व्यतीत कर परलोक तक गये।

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

भा०—(मातली) ज्ञान मार्ग का प्रापक (काव्यैः) विद्वानों के ज्ञानों से (यमः) नियन्ता, व्यवस्थापक पुरुष (अंगिरोभिः) तेजस्वी पुरुषों से, और (बृहस्पतिः) बृहती वेदवाणी का पालक विद्वान् (ऋक्वभिः) वेदज्ञ विद्वानों द्वारा (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता है। (ये देवाः) जो विद्वान् (यान् च वावृधुः) जिनको बढ़ाते हैं और जो जन (देवान् वावृधुः) इन विद्वानों, ज्ञान धनादि देने वालों को बढ़ाते हैं उनमें से (अन्ये) एक वर्ग के (स्वाहा) उत्तम वाणी और शुभ दान-सत्कार से (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं और (अन्ये) दूसरे जन (स्वधया) अन्न-जल द्वारा (मदन्ति) तृप्त होते हैं।

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥४॥

भा०—हे (यम) नियन्तः ! तू (इमं) इस (प्र-स्तरम्) श्रेष्ठ आसन पर (आसीद हि) अवश्य विराज और (पितृभिः) पालन करने वाले पिता, पितामह आदि और (अङ्गिरोभिः) ज्ञानी पुरुषों से (सं-विदानः) उत्तम-उत्तम ज्ञान प्राप्त करता हुआ, हे (राजन्) तेजस्विन् ! तू राजा (हविषा) इस सत्कार योग्य साधन से (मादयस्व) प्रसन्न हो। (कवि-शस्ताः मन्त्राः) मेधावी पुरुषों से उपदिष्ट मननयोग्य विचार (त्वा आवहन्तु) तुझे उत्तम मार्ग पर ले जावें।

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥५॥१४॥

भा०—हे (यम) नियन्तः ! तू (यज्ञियेभिः) पूजा और सत्संग के योग्य (अंगिरोभिः) तेजस्वी, (वैरूपैः) विविध रुचि और नाना विद्या, कलाओं में निपुण विद्वानों सहित (आ गहि) आ और (मादयस्व) सबको प्रसन्न कर। (यः) जो (पिता) पिता के समान प्रजा का रक्षक है उस

(विवस्वन्तं) विविध धनों के स्वामी को मैं (हुवे) प्रार्थना करता हूँ कि वह (ते अस्मिन् यज्ञे) तेरे इस यज्ञ में (बर्हिषि) आसन पर (नि-सद्य) विराजे और (आ) सबको हर्षित करे।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ६ ॥

भा०—(अंगिरसः) अंगारों के समान तेजस्वी, (नः) हम प्रजाओं के (पितरः) पालक (नवग्वाः) सदा नवीन वाणियों को प्रकट करने वाले (अथर्वाणः) अहिंसक, (भृगवः) पापनाशक, (सोम्यासः) अन्नादि से सत्कार करने योग्य हैं। (यज्ञियानाम्) सत्संग के योग्य उनकी (सुमतौ) शुभ मति और उनकी (भद्रे सौमनसे) कल्याणकारक सुखजनक शुभचित्तता में हम (स्याम) सदा रहें।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥७॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (पूर्व्येभिः पथिभिः) पूर्व के ऋषियों, द्वारा बनाये मार्गों से (प्र इहि प्र इहि) निरन्तर आगे बढ़े जा। (यत्र) जिन मार्गों में (नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व पिता आदि जन (परा ईयुः) दूर दूर तक दीर्घ जीवन पार किये हैं, उस मार्ग पर चलते हुए तू (स्वधया मदन्ता) अन्न और शक्ति से प्रसन्न होते हुए (यमं) नियन्ता और (वरुणं च) दुष्टों के वारक दिन रात्रिवत् (राजाना) तेजस्वी (उभा) दोनों स्त्री पुरुषों को (पश्यासि) देख।

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥ ८ ॥

भा०—हे पुरुष ! वा हे स्त्रि ! तू (पितृभिः) पालक माता, पिता, गुरुजनों से (सं गच्छस्व) सत्संग कर। (यमेन सं गच्छस्व) नियन्ता जन

से और (परमे व्योमन्) सर्वोत्कृष्ट आकाशवत् रक्षा स्थान प्रभु के अधीन रह कर (इष्ट-आपूर्तेन) यज्ञ दान आदि के साधनों से (सं गच्छस्व) सदा युक्त रहे। (अवद्यं हित्वाय) निन्दनीय आचरण को छोड़ कर (पुनः अस्तम् एहि) बार २ गृह को प्राप्त हो। और (सु-वर्चाः) तेजस्वी होकर (तन्वा) सन्तति उत्पन्न करने वाली स्त्री और कुलवर्धक पुत्रादि से (सं गच्छस्व) संगति लाभ कर।

अपे॑त॒ वी॑त॒ वि च॑ सर्प॒ताता॒ोऽस्मा ए॒तं पि॒तरो॑ लो॒कम॑क्रन्।
अहो॑भिर॒द्भिर॒क्तुभि॒र्व्य॑क्तं य॒मो द॑दात्यव॒सान॑मस्मै ॥ ९ ॥

भा०—हे दुष्ट पुरुषों! (अतः अप इत) यहां से दूर भागो। (वि इत) विविध दिशाओं में जाओ। (वि सर्पत च) परे चले जाओ। (पितरः) पालक जन (एतं लोकं) इस लोक को (अस्मै) प्रजा के लिये (अहोभिः अक्तुभिः) दिन रात (अद्भिः) जलों से (वि-अक्तं) सींचे, इस लोक को हरा-भरा (अक्रन्) बनावें। (यमः) नियन्ता राजा वा प्रभु (अस्मै) इसके लिये यहां ही (अवसानं ददाति) आश्रय देता है।

अति॑ द्रव सार॒मे॒यौ श्वानौ॑ चतुर॒क्षौ श॒बलौ॑ सा॒धुना॑ प॒था।
अथा॑ पि॒तॄन्त्सु॑वि॒दत्राँ॒ उपे॑हि य॒मेन॒ ये स॑ध॒मादं॒ मद॑न्ति ॥१०॥१५॥

भा०—हे मनुष्य! तू (सारमेयौ) सूर्य की प्रभा से उत्पन्न (श्वानौ) वेगवान्, (चतुरक्षौ) चारों दिशाओं में व्यापक, (शबलौ) श्याम-रक्त वर्ण से युक्त दिन रात्रि दोनों को (साधुना पथा) धर्म-मार्ग से (अति द्रव) व्यतीत किया कर। ये जो विद्वान् (यमेन) सर्व-नियन्ता प्रभु के साथ (सधमादं) आनन्द (मदन्ति) अनुभव करते हैं उन (सु-विदत्रान्) ज्ञानवान्, (पितॄन्) पालक माता, पिता और ज्ञानी पुरुषों को (उपेहि) प्राप्त हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

यौ ते॒ श्वानौ॑ यम रक्षि॒तारौ॑ चतुर॒क्षौ प॑थि॒रक्षी॑ नृ॒चक्ष॑सौ।
ताभ्या॑मेनं॒ परि॑ देहि राजन्त्स्व॒स्ति चा॑स्मा अनमी॒वं च॑ धेहि ॥११॥

भा०—हे (यम) नियन्तः! (ते) तेरे (यौ श्वानौ) जो सदा चलने वाले, (रक्षितारौ) मृत्यु से रक्षक, (चतुरक्षौ) चारों आश्रमों में व्याप्त, (पथि-रक्षी) जीवन-मार्ग में रक्षा करने वाले, (नृ-चक्षसौ) देह के नायक आत्मा को ज्ञानादि के दर्शन कराने वाले प्राण अपान हैं। हे (राजन्) प्रकाशस्वरूप! (ताभ्याम्) उनसे (एनं) इस जीव को (परि देहि) मुक्त कर और (अस्मै स्वस्ति च अनमीवं च धेहि) उसको सुख, और नीरोग शरीर प्रदान कर।

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्॥ १२॥

भा०—(यमस्य) सर्वनियन्ता राजा के (दूतौ) प्रतिनिधियों के समान, दोनों प्रकार के राजपुरुष [पोलिस] (उरु-णसौ) बलवान् वा तीक्ष्ण शक्ति वाले, (असु-तृपा) प्राण रक्षा योग्य द्रव्य मात्र से तृप्त होने वाले, (उदुम्बलौ) अति बलशाली जन (जनान् अनु चरतः) प्रजाजनों को देखते हुए विचरते हैं। (तौ) वे दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे लिये और (सूर्याय दृशये) सूर्यवत् तेजस्वी द्रष्टा अध्यक्ष के लिये (इह अद्य) इस देश और काल में (भद्रम् असुम् पुनः दाताम्) कल्याणकारक बल और जीवन बार २ देवें।

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥ १३॥

भा०—(यमाय) यम नियम की व्यवस्था करने वाले राजा के लिये (सोमं) ओषधि, अन्न, ऐश्वर्य (सुनुत) उत्पन्न करो, और (यमाय) उस नियन्ता के उपकारार्थ (हविः जुहुत) यज्ञाग्नि में आहुतियोग्य द्रव्य दो, अन्न दान करो। (यज्ञः) यज्ञ और सत्संगादि भी (अग्नि-दूतः) अग्निवत् तेजस्वी दूतों वाला और (अरंकृतः) सुशोभित होकर (यमं ह गच्छति) उस नियन्ता को ही शरणार्थ प्राप्त होता है।

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ १४ ॥

भा०—(यमाय) उस नियन्ता के लिये ही (घृतवद् हविः) घृत से युक्त अन्न (जुहोत) प्रदान करो । और (प्र तिष्ठत च) उत्तम मार्गों पर चलो और देश-देशान्तर में प्रस्थान करो । (सः) वह (नः देवेषु) विद्वानों और वीर पुरुषों में (जीवसे) उनके जीवनार्थ (दीर्घायुः प्र आ यमद्) दीर्घजीवन प्रदान करे ।

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं यम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ १५ ॥

भा०—(यमाय) व्यवस्थापक (राज्ञे) राजा के लिये (मधुमत्तमं) अति मधुर, (हव्यं) ग्रहण करने योग्य पदार्थ (जुहोतन) प्रदान करो । (ऋषिभ्यः) ऋषियों के लिये (पूर्वजेभ्यः) पूर्वज और (पूर्वेभ्यः) पूर्व के (पथिकृद्भ्यः) मार्ग का उपदेश करने वालों को (इदं नमः) अन्न, वचनादि द्वारा आदर प्राप्त हो ।

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥ १६ ॥ १६ ॥

भा०—(एकम् इत् बृहत्) यह एक ही महान् ब्रह्म (त्रि-कद्रुकेभिः) तीन द्रुतगामी गुणों द्वारा (षट् उर्वीः) छहों महान् शक्तियों को (पतति) प्राप्त होता है । जैसे एक सूर्य, गर्मी, सर्दी, वर्षा तीन गुणों से छहों ऋतुओं को व्यापता है उसी प्रकार एक प्रभु ज्योति, गौ, आयु अर्थात् सूर्य और भूमि और जीवन तत्व इन तीनों द्वारा इन छहों बड़ी शक्तियों को चला रहा है । द्यौ, पृथिवी, आपः, ओषधिगण, उर्क्, सूनृता अर्थात् सूर्य, भूमि, जल, वनस्पति अन्न और वाणी ये छः बड़ी शक्तियां 'षट् उर्वी' हैं । (त्रिष्टुप्, गायत्री, छन्दांसि) त्रिष्टुप्, गायत्री एवं अन्य छन्दोबद्ध

वाणियां (ता सर्वा) वे सब (यमे) व्यवस्थापक प्रभु में (आहिता) स्थापित हैं। इति षोडशो वर्गः॥

[१५]

शंखो यामायन ऋषिः॥ पितरो देवताः॥ छन्दः—१, २, ७, १२—१४ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ९, १० त्रिष्टुप्। ४, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप्। ११ निचृज्जगती। चतुर्दशर्चं सूक्तम्॥

उदी॑रता॒मव॑र॒ उत्परा॑स॒ उन्म॑ध्य॒माः पि॒तरः॑ सो॒म्यासः॑।
असुं॒ य ई॒युर॑वृ॒का ऋ॑त॒ज्ञास्ते नो॑ऽवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु॥ १॥

भा०—(अवरे उत् ईरताम्) निकृष्ट, अल्प ज्ञान और अल्प आयु वाले जन ऊपर उठें। (परासः) पर, उत्कृष्ट पद को प्राप्त (पितरः) पालक जन भी (उत् ईरताम्) उत्तम पद को प्राप्त हों। इसी प्रकार (मध्यमाः सोम्यासः) उक्त दोनों वर्गों के बीच, मध्यम श्रेणी के पालक जन (उद् ईरताम्) उत्तम पद को प्राप्त करें। (ये) जो (ऋत-ज्ञाः) सत्य के ज्ञाता विद्वान् (असुम् ईयुः) जीवन को प्राप्त हों (ते) वे (पितरः) पालक (अवृकाः) भेड़िये के समान हिंसक न होकर (हवेषु) यज्ञों के समय (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

इ॒दं पि॒तृभ्यो॒ नमो॑ अस्त्व॒द्य ये पूर्वा॑सो॒ य उप॑रास ई॒युः।
ये पार्थि॑वे॒ रज॒स्या निष॑त्ता॒ ये वा॑ नू॒नं सु॑वृ॒जना॑सु वि॒क्षु॥ २॥

भा०—(ये पूर्वासः) जो विद्या आदि गुणों में पूर्ण, और (ये उपरासः) सर्वोपरि विद्यमान अथवा (ये पूर्वासः, ये उ परासः) जो हमसे पूर्व और जो हमारे बाद के (अद्य ईयुः) अब हमें प्राप्त हैं (ये पार्थिवे) जो इस भूलोक में (आ निषत्ताः) उत्तम पदों पर विराजमान हैं और (ये वा) जो निश्चय करके (सु-वृजनासु) प्रजा के दुःखों को दूर करने वाली सेनाओं में अध्यक्ष होकर विराजते हैं उन (पितृभ्यः इदं नमः अस्तु) प्रजापालक जनों को यह अन्न, वेतन और आदर प्राप्त हो।

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥३॥

भा०—(अहं) मैं (सुविदत्रान् पितॄन् अवित्सि) उत्तम, ज्ञानवान्, पालक जनों को प्राप्त करूं और मैं (विष्णोः नपातं) व्यापक प्रभु के अविनाशी स्वरूप और (वि-क्रमणं च) सर्ग-रचना-कौशल को (अवित्सि) जानूं। (ये) जो (बर्हि-सदः) बुद्धिमान् वा उत्तम आसन पर विराजते और (सुतस्य पित्वः) उत्तम औषध, अन्न को (स्वधया भजन्त) स्व-शरीर पोषक रूप से सेवन करते हैं (ते) वे (इह आगमिष्ठाः) यहां आदरपूर्वक आवें ।

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ४ ॥

भा०—हे (बर्हि-षदः पितरः) यज्ञ में स्थित गुरु जनों ! आप लोगों की (ऊती अर्वाक्) हमारे प्रति सदा रक्षा एवं प्रीति हो । (इमा हव्या) इन अन्न, वस्त्र, धनादि पदार्थों को हम (वः) आप लोगों के निमित्त (चकृम) समर्पण करते हैं । (ते) वे आप लोग (आगत) आइये, (अथ) और (शन्तमेन अवसा) शान्ति प्रीति आदि से (नः शंयोः) हमें सुख प्राप्ति (दधात) कराइये । और (अरपः दधात) पापों को दूर कीजिये ।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५॥१७॥

भा०—(सोम्यासः पितरः) अन्न, जल, ऐश्वर्यादि के योग्य (पितरः) माता पिता आदि (बर्हिष्येषु) यज्ञोपयोगी (प्रियेषु) तृप्तिदायक, (निधिषु) नियम से धारण करने योग्य पदार्थों के निमित्त (उप-हूताः) आदर पूर्वक बुलाये हों । (ते) वे (इह आगमन्तु) यहां आवें । (ते इह अधि श्रुवन्तु) वे यहां हमारे वचन सुनें । और (ते अस्मान् अवन्तु) वे हमारी रक्षा करें ।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६॥

भा०—हे (पितरः) प्रजापालक जनों! (विश्वे) आप सब लोग (दक्षिणतः) दाएं ओर (जानु आच्य) गोडे सिकोड़ कर (नि-सद्य) विराज कर (इमं यज्ञम् अभि गृणीत) इस यज्ञ वा प्रभु को लक्ष्य कर उपदेश कीजिये। (यद् वः) जो आप लोगों के प्रति हम (पुरुषता आगः कराम) मनुष्य होने के कारण अपराध कर दें (केन चित्) किसी भी कारण से (नः मा हिंसिष्ट) आप लोग हमें पीड़ित न करें।

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ७ ॥

भा०—हे (पितरः) पालक जनों! (अरुणीनाम् उपस्थे) उत्तम भूमियों और प्रजाओं के समीप (आसीनासः) विराजते हुए आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) दानशील मनुष्य के लिये उसके (रयिं धत्त) देने योग्य धन को धारण करो और कालान्तर में (तस्य पुत्रेभ्यः) उसके ही पुत्र पौत्रों के लिये (वस्वः प्रयच्छत) उस धन का प्रदान करो। (ते) वे आप लोग (इह ऊर्जं दधात) इस यज्ञ में बल आधान करें, अधिकार धारण करें।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ८ ॥

भा०—(नः) हमारे (ये) जो (पूर्वे) पूर्व विद्यमान, विद्या आदि में पूर्ण (सोम्यासः पितरः) ऐश्वर्य शिष्यपुत्रादि के हितैषी (वसिष्ठाः) उत्तम 'वसु' अर्थात् अन्यों को बसाने वाले होकर (सोमपीथं अनु ऊहिरे) सोम अर्थात् शिष्यादि से पालन करने योग्य ज्ञान को प्रतिदिन धारण करते हैं (तेभिः उशद्भिः) उन गुरु जनों के साथ (सं-रराणः यमः) सुखपूर्वक रहता हुआ यम-नियमों का पालक शिष्य (प्रतिकामम् उशन्) प्रत्येक उत्तम पदार्थ को चाहता हुआ (हवींषि अत्तु) अन्नों का उपभोग करे।

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥९॥

भा०—(ये) जो (होत्रा-विदः) अग्निहोत्र और वेदवाणी के (स्तोम-तष्टासः) वेद के सूक्तों को खोल २ कर बतलाने वाले विद्वान् (देवत्रा) विद्या के इच्छुक शिष्यों को (जेहमानाः) प्राप्त होकर उनके लिये (तातृषुः) धनादि चाहते हैं उन (अर्कैः) अर्चनीय (सुविदत्राभिः) ज्ञानवान् (सत्यैः) सत्यभाषी, (कव्यैः) क्रान्तदर्शी, (घर्म-सद्भिः) तेजस्वी, (पितृभिः) पितृवत् पूज्य गुरुजनों सहित हे, (अग्ने) विनीत शिष्य ! तू सबके (अर्वाङ् आयाहि) समक्ष आ ।

ये स॒त्यासो॑ हवि॒रदो॑ हवि॒ष्पा इन्द्रे॑ण दे॒वैः स॒रथं॒ दधा॑नाः ।
आग्ने॑ याहि स॒हस्रं॑ देवव॒न्दैः परैः॒ पूर्वैः॑ पि॒तृभि॑र्घर्म॒सद्भिः॑ ॥१०॥१८॥

भा०—(ये) जो (सत्यासः) सत्याचरणशील, (हविः-अदः) उत्तम अन्न के खाने वाले (हविष्पाः) उत्तम अन्नरस का पान करने वाले, (इन्द्रेण देवैः) आत्मदर्शी गुरु के साथ (स-रथं दधानाः) समान रथ के धारक (देव-वन्दैः) शिष्यजनों से वन्दनीय, (परैः पूर्वैः) श्रेष्ठ, विद्यादि में पूर्ण (घर्म-सद्भिः) तेजस्वी जनों के साथ हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू भी (सहस्रं आ याहि) बलवान् पद को प्राप्त हो ।

अग्नि॑ष्वात्ताः पितर॒ एह ग॑च्छत॒ सदः॑ सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अ॒त्ता ह॒वींषि॒ प्रय॑तानि ब॒र्हिष्यथा॑ र॒यिं सर्व॑वीरं दधातन ॥११॥

भा०—(अग्नि-सु-आत्ताः) विनयशील शिष्यों और अग्निवत् तेजस्वी पुरुषों द्वारा आश्रित (पितरः) उनके पालक गुरुजनों ! हे (सुप्रणीतयः) उत्कृष्टमार्ग में ले जाने वालों ! आप लोग (इह आगच्छत) यहां आइये और (सदः सदः सदत) प्रत्येक सभा में और उत्तम आसन पर विराजिये । आप लोग (प्रयता हवींषि) भृति, वेतन आदि का (अत्त) उपभोग कीजिये (अध) और (बर्हिषी) इस राष्ट्र यज्ञ में (सर्व-वीरं रयिं) समस्त वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य को (दधातन) धारण करें ।

त्वम॑ग्न ईळि॒तो जा॑तवे॒दोऽवा॑ड्ढ॒व्यानि॑ सुर॒भीणि॑ कृ॒त्वी।
प्रादा॑ पि॒तृभ्य॑: स्व॒धया॒ ते अ॑क्षन्न॒द्धि त्वं दे॑व॒ प्रय॑ता ह॒वींषि॑ ॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (जातवेदः) ऐश्वर्य, ज्ञान और विद्या में प्रसिद्ध ! (त्वम् ईडितः) तू सर्वप्रिय होकर (हव्यानि) ग्रहण योग्य पदार्थों को (सुरभीणि कृत्वी) उत्तम गन्ध युक्त करके (अवाट्) प्रदान कर। तू (पितृभ्यः प्रादाः) अपने पालक जनों को भी अन्न प्रदान कर। (ते) वे उस अन्न को (स्वधया) 'स्व-धा' अर्थात् अपने शरीर के पोषण धारण के निमित्त ही (अक्षन्) प्राप्त करें। और (त्वं) तू भी हे (देव) दानशील ! (प्रयता हवींषि) अपने गुरुजनों से प्रदत्त अन्नों को (अद्धि) खाया कर।

ये चे॒ह पि॒तरो॒ ये च॒ नेह याँश्च॑ वि॒द्म याँ उ॑ च॒ न प्र॑वि॒द्म।
त्वं वे॑त्थ॒ यति॒ ते जा॑तवेद॒: स्व॒धाभि॑र्य॒ज्ञं सुकृ॑तं जुषस्व ॥ १३ ॥

भा०—(ये च इह पितरः) जो यहां पालक हैं, (ये च न इह) और जो यहां नहीं हैं (यान् च विद्म) जिनको हम जानते हैं और (यान् उ च न प्र-विद्म) जिनको हम नहीं जानते, हे (जात-वेदः) विद्यावन् ! (यति) यदि (ते) उनको (त्वं वेत्थ) तू जानता है तो (स्वधाभिः) अन्न जलों सहित (सुकृतं) उत्तम रीति से किये (यज्ञं जुषस्व) दान का सेवन कर। दान से उनकी सेवा कर।

ये अ॑ग्निद॒ग्धा ये अन॑ग्निदग्धा॒ मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दय॑न्ते।
तेभि॑: स्व॒राळसु॑नीतिमे॒तां य॑थाव॒शं त॒न्वं॑ कल्पयस्व ॥१४॥१९॥

भा०—ये (अग्नि-दग्धाः) जो लोग ज्ञानवान् प्रभु या गुरु द्वारा अपने अज्ञान को भस्म कर देने वाले और (ये अनग्नि-दग्धाः) जो यज्ञ, गुरु आचार्यादि द्वारा कर्मों को भस्म नहीं कर पाये वा जो संन्यासी अग्निहोत्र नहीं करते और (मध्ये दिवः) भूमि में वा प्रकाश के बीच ही (स्वधया) अन्न, जल, या स्वशरीर की शक्ति से (मादयन्ते) सुखी रहते हैं (तेभिः)

उनके साथ तू (स्वराट्) दीप्त होता हुआ (एताम्) इस (असु-नीति) बल प्राप्त करने वाले (तन्वं) देह को (यथावशं) यथाशक्ति (कल्पयस्व) समर्थ बना । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१६]

दमनो यामायन ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७, ८ निचृत् त्रिष्टुप् १, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६, ९ त्रिष्टुप् । १० स्वराट् त्रिष्टुप् । ११ अनुष्टुप् । १२ निचृदनुष्टुप् । १३, १४ विराडनुष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृभ्यः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (एनं) इस प्रजा जन वा शिष्य को (मा वि दहः) विशेष रूप से भस्म कर । (मा अभि शोचः) शोक से संतप्त मत कर । हे (जातवेदः) हे ऐश्वर्यवन् ! (यदा) जब तू इसे (शृतं कृणवः) परिपक्व करे, तब (अस्य त्वचं मा चिक्षिपः) इसकी त्वचा को मत विछिन्न अर्थात् शारीरिक दण्ड से त्वचा को भंग करने वाली पीड़ा न दे । (मा शरीरं चिक्षिपः) देह को भी बेचैन मत कर । (अथ) अनन्तर (एनं) बल-वीर्य सम्पन्न इस जन को (पितृभ्यः) माता, पिता आदि की सेवा के लिये (प्र हिणुतात्) भेज देना ।

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥ २ ॥

भा०—हे (जात-वेदः) समस्त विद्याओं के ज्ञाता गुरो ! (यदा) जब तू (एनं शृतं ईं करसि) इसको परिपक्व कर ले (अथ एनं पितृभ्यः परि दत्तात्) तब उसको माता पितादि की सेवा में प्रदान कर, क्योंकि (यदा) जब पुरुष (एताम् असु-नीतिं गच्छति) प्राण और बल के धारण करने की

इस शिक्षा को प्राप्त कर लेता है (अथ) तभी वह (देवानां) क्रीड़ाशील इन्द्रियों को वश करने में समर्थ होता है।

सूर्यं॒ चक्षु॑र्गच्छतु॒ वात॑मा॒त्मा द्यां च॑ गच्छ पृ॑थि॒वीं च॒ धर्म॑णा।
अ॒पो वा॑ गच्छ॒ यदि॒ तत्र॑ ते हि॒तमोष॑धीषु॒ प्रति॑ तिष्ठा॒ शरी॑रैः॥३॥

भा०—हे मनुष्य ! (सूर्यं चक्षुः गच्छतु) आंख सूर्य के प्रकाश को प्राप्त करे। (आत्मा वातम्) आत्मा, यह प्राण वायु को प्राप्त करे। तू (धर्मणा) सामर्थ्य के अनुसार, (द्यां च गच्छ) आकाश और (पृथिवीं च) पृथिवी को वा माता और पिता को भी वा काम्य फल और देह को प्राप्त कर। (वा अपः गच्छ) वा तू कर्म, आप्त जनों को प्राप्त कर। (यदि ते तत्र हितम्) यदि उनमें तेरा हित है तो तू (शरीरैः) शरीरों द्वारा (ओषधीषु) ओषधियों और अन्नों के आधार पर (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठा प्राप्त कर।

अ॒जो भा॒गस्तप॑सा॒ तं त॑पस्व॒ तं ते॑ शो॒चिस्त॑पतु॒ तं ते॑ अ॒र्चिः।
यास्ते॑ शि॒वास्त॒न्वो॑ जातवेद॒स्ताभि॑र्वहैनं सु॒कृता॑मु लो॒कम्॥४॥

भा०—(भागः) भोक्ता आत्मा स्वयं (अजः) उत्पन्न नहीं होता है। हे (जातवेदः) विद्वन् ! (तं) उसको (तपसा तपस्व) तप से संतप्त कर। (ते शोचिः) तेरा शुद्ध प्रकाश (तं) उस आत्मा को (तपतु) तप्त करे और (तं ते अर्चिः तपतु) उसको तेरा ज्ञान शुद्ध करे। (याः) जो (ते शिवाः तन्वः) शान्तिदायक रूप हैं (ताभिः एनं सुकृताम् लोकम् वह) उनसे उसको तू पुण्यकर्म जनों के स्थान में प्राप्त करा।

अव॑ सृज॒ पुन॑रग्ने पि॒तृभ्यो॒ यस्त॒ आहु॑त॒श्चर॑ति स्व॒धाभिः॑।
आयु॒र्वसा॑न॒ उप॑ वेतु॒ शेषः॒ सं ग॑च्छतां त॒न्वा॑ जातवेदः॥५॥२०॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (यः) जो (ते आहुतः) तेरे अधीन होकर (स्वधाभिः) भिक्षादि द्वारा तेरी सेवा करता है उस शिष्य को तू (पुनः) फिर (पितृभ्यः अव सृज) पालक जनों के हित प्रेरित कर। वह

(वसानः) उत्तम वस्त्र धारण करके (शेषः आयुः उपवेतु) अपनी शेष आयु को माता पिता के साथ व्यतीत करे। हे (जातवेदः) विद्वन्! वह (तन्वा सं-गच्छताम्) सदा दृढ़ शरीर से युक्त रहे। इति विंशो वर्गः॥

यत्ते॑ कृ॒ष्णः श॑कु॒न आ॑तु॒तोद॑ पिपी॒लः स॒र्प उ॒त वा॒ श्वाप॑दः।
अ॒ग्निष्टद्वि॒श्वाद॑ग॒दं कृ॑णोतु॒ सोम॑श्च॒ यो ब्रा॑ह्म॒णाँ आ॑वि॒वेश॑॥६॥

भा०—(यत्) जब (ते) तुझे (कृष्णः) काला वा काटने वाला (शकुनः) पक्षी वा दुःखदायी जन्तु, वृश्चिक आदि (आ तुतोद) खूब व्यथित करे (पिपीलः) कीड़ा, मकोड़ा काटे वा (सर्पः) सांप जाति का जन्तु काटे (उत वा श्वा-पदः) वा कुत्ते के समान पंजे वाला कुत्ता, व्याघ्र आदि काटे, (तत्) उसको (अग्निः) अग्नि वा ज्ञानवान् पुरुष (विश्वात्) सब प्रकार से (अगदं कृणोतु) पीड़ारहित करे। (सोमः च) और जो ओषधि-विज्ञ पुरुष (ब्राह्मणान् आ विवेश) वेदज्ञ विद्वान् को प्राप्त है वह भी उसको नीरोग करे।

अ॒ग्नेर्वर्म॒ परि॒ गोभि॑र्व्ययस्व॒ सं प्रोर्णु॑ष्व॒ पीव॑सा॒ मेद॑सा च।
नेत्त्वा॑ धृ॒ष्णुर्हर॑सा॒ जर्हृ॑षाणो द॒धृग्वि॑ध॒क्ष्यन्प॑र्य॒ङ्खया॑ते॥७॥

भा०—तू (अग्नेः गोभिः) ज्ञानवान् पुरुष की वाणियों द्वारा (वर्म) रक्षा के योग्य वस्त्र कवचादि (परि व्ययस्व) धारण कर। और (पीवसा मेदसा च) पुष्टिकारक और स्नेहयुक्त देहधातुओं से अपने को (सं प्र ऊर्णुष्व) अच्छी प्रकार आच्छादित कर। जिससे (धृष्णुः) अग्नि सदृश गुरु (जर्हृषाणः) प्रसन्न होकर (दधृक्) कठोर होकर (वि-धक्ष्यन्) विपरीत पापादि को दग्ध करता हुआ (त्वा नेत पर्यंखयाते) तुझे न घेर ले, दण्डित न करे।

इ॒मम॑ग्ने चम॒सं मा वि जि॑ह्वरः प्रि॒यो दे॒वाना॑मु॒त सो॒म्याना॑म्।
ए॒ष यश्च॑म॒सो दे॑व॒पान॒स्तस्मि॑न्दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ते॥८॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (इमं चमसं) इस कृपापात्र जन को (मा विजिह्वरः) कुटिल मत बनने दे। प्रत्युत वह (देवानाम् प्रियः) धनादि देने वालों को प्रिय और (सोम्यानाम् प्रियः) माता पिता आदि को भी प्रिय हो। (यः) जो (चमसः) पात्र के समान विनीत होकर (एषः) वह (देवपानः) विद्वानों का पालक है (तस्मिन्) उस पर समस्त (देवाः) विद्वान् (अमृताः) दीर्घायु मनुष्य (मादयन्ते) हर्षित होते हैं।

क्रव्यादम॒ग्निं प्र हि॑णोमि दू॒रं य॒मरा॑ज्ञो गच्छतु रिप्रवा॒हः।
इ॒हैवाय॒मित॑रो जा॒तवे॑दा दे॒वेभ्यो॑ ह॒व्यं व॑हतु प्रजा॒नन् ॥ ९ ॥

भा०—मैं (क्रव्यादम्) मांस खाने वाले (अग्निं) दुष्ट जन्तु वा मृत्यु को (दूरं प्र हिणोमि) दूर कर दूं। और (रिप्र-वाहः) पाप धारक पुरुष (यम-राज्ञः गच्छतु) नियन्ता राजा के पुरुषों के हाथों जावे। (इतरः) और उससे अन्य निष्पाप जन (जात-वेदाः) धनसंपन्न होकर (प्र-जानन्) ज्ञान प्राप्त करता हुआ, (इह एव) इस आश्रम में ही, (देवेभ्यः हव्यं वहतु) ज्ञान आदि के दाता विद्वानों को अन्न आदि प्रदान करे। वह गुरु (देवेभ्यः) विद्या के अभिलाषी जनों को (हव्यं) ज्ञान आदि देवे।

यो अ॒ग्निः क्र॒व्यात्प्र॑वि॒वेश॑ वो गृ॒हमि॒मं पश्य॒न्नित॑रं जा॒तवे॑दसम्।
तं ह॑रामि पितृय॒ज्ञाय॑ दे॒वं स घ॒र्ममि॑न्वात्पर॒मे स॒धस्थे॑ ॥१०॥२१॥

भा०—(यः) जो (अग्निः) अग्नि के संतापक (क्रव्यात्) मांसभक्षी जन (इतरं) अपने से भिन्न (जात-वेदसं) विद्या से संपन्न को देखकर (इमं वः गृहम्) इस आपके घर में (प्र-विवेश) प्रवेश करे। मैं (तं हरामि) उसको दूर करूं और (सः) वह विद्या से संपन्न पुरुष (पितृ-यज्ञाय) पालक माता पिता के आदर और सत्संग के लिये (परमे) सर्वोत्कृष्ट (सधस्थे) स्थान पर स्थित (देवं घर्मं) सूर्यवत् प्रकाशमान प्रभु, तपस्वी ज्ञानी पुरुष को (इन्वात्) प्राप्त करे। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (क्रव्य-वाहनः अग्निः) कटे काष्ठादि में लगे अग्नि के तुल्य तेजस्वी पुरुष (क्रव्य-वाहनः) उत्तम अन्नों या समिधादि का धारक होकर (ऋतवृधः पितॄन् यक्षत्) सत्य को बढ़ाने वाले गुरु आदि का आदर और सत्संग करता है वह (देवेभ्यः च) विद्वानों और (पितृभ्यः) गुरु जनों के (हव्यानि) ज्ञानों को (प्र वोचति, आ वोचति) प्रवचन करता और कराता है ।

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हम (उशन्तः) तुम चाहते हुए (त्वा नि धीमहि) तुझे स्थापित करते हैं और (उशन्तः) तुझे वा तुझसे ज्ञानादि की कामना करते हुए (सम् इधीमहि) तुझे बढ़ाते हैं । हे ज्ञानवन् ! तू (उशन्) अग्निवत् प्रदीप्त होकर (उशतः पितॄन्) तुझे चाहने वाले माता, पिता, गुरुजनों को (हविषे अत्तवे) उत्तम भोजन कराने के लिये (आ वह) रथादि द्वारा प्राप्त करा और (आ वह) उनके भरण का भार वहन कर ।

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥ १३ ॥

भा०—जैसे अग्नि जिस स्थान के घास को जलाता है, वहां वह स्वयं शान्त होकर बाद में और अधिक घास उत्पन्न होने का कारण बनता है वैसे ही हे (अग्ने) गुरो ! (त्वं) तू (यम्) जिस शिष्य को (सम् अदहः) अग्निवत् संतप्त करे । (तम् उ) उसको ही (पुनः) कालान्तर में वा बार २ (निर्वापय) शान्त, सुखी किया कर । (अत्र) उसमें (कियाम्बु) कितना अथाह जलवत् ज्ञानसागर (रोहतु) उत्पन्न हो और (पाक-दूर्वा) पकी दूब के समान (वि-अल्कशा) वेद-विद्या (रोहतु) लता के समान उगे और बढ़े ।

शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्या३ सु सं गम इमं स्व१ग्निं हर्षय ॥ १४ ॥ २२ ॥ १ ॥

भा०—हे (शीतिके) शीतल स्वभाव वाली ! हे (शीतिकावति) शीतवत् शान्तिदायक वाणियों से युक्त ! हे (ह्लादिके) आह्लाददायिनि ! हे (ह्लादिकावति) आह्लाद देने वाली वाणियों से युक्त विद्ये ! तू (मण्डूक्या) जल में मण्डूकी के समान गहरी डुबकी लगाने वाली बुद्धि के द्वारा (आ गमः) प्राप्त हो, (सं गमः) अच्छी प्रकार विदित हो । और (इमं अग्निम्) उस विद्वान् को (सु हर्षय) अच्छी प्रकार हर्षित कर । इति द्वाविंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१७]

देवश्रवा यामायन ऋषिः ॥ देवताः—१, २ सरण्यूः । ३—६ पूषा । ७—९ सरस्वती । १०, १४ आपः । ११—१३ आपः सोमो वा ॥ छन्दः—१, ५, ८ विराट् त्रिष्टुप् । २, ६, १२ त्रिष्टुप् । ३, ४, ७, ९—११ निचृत् त्रिष्टुप् । १३ ककुम्मती बृहती । १४ अनुष्टुप् । चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ १ ॥

भा०—(त्वष्टा) सृष्टा परमेश्वर (दुहित्रे) जगत् को पूर्ण करने वाली प्रकृति को (वहतुं कृणोति) धारण करता है । तभी (इदं विश्वं भुवनं) यह समस्त जगत् (सम् एति) उत्पन्न होता है । (यमस्य महः विवस्वतः) महान्, सर्व-नियन्ता लोकों के स्वामी प्रभु की (जाया) विश्व की उत्पादक प्रकृति (पर्युह्यमाना) सब प्रकार से प्रभु द्वारा धारण की जाकर (माता) माता होकर (ननाश) अव्यक्त रूप से विद्यमान रहती है वैसे ही (त्वष्टा) तेजस्वी पुरुष (दुहित्रे) सुखों की देने हारी स्त्री के हितार्थ ही (वहतुं कृणोति) विवाह करता है, (इति इदं विश्वं भुवनं समेति) इसी कारण यह समस्त लोक ठीक २ चलता है । (यमस्य विवस्वतः) विवाह कर्त्ता,

विविध धनों के स्वामी पुरुष द्वारा (पर्युह्यमाना) परिणयपूर्वक विवाह की गयी (जाया) पुत्रोत्पादन में समर्थ स्त्री (माता सती महः ननाश) कालान्तर में माता होकर पति के समान पूज्यपद को प्राप्त होती है।

यास्क के अनुसार—त्वष्टा सूर्य दुहिता उषा को धारण करता है तब यह सब विश्व प्रकट होता है। तब उस महान् सूर्य की उत्पादक माता रात्रि, उससे लुप्त हो जाती है।

अपा॑गूहन्न॒मृतां॒ मर्त्ये॑भ्यः कृ॒त्वी सव॑र्णामद॒दु॒र्विव॑स्वते।
उ॒ताश्विना॑वभर॒द्यत्तदासी॒दज॑हादु॒ द्वा मि॑थु॒ना स॑र॒ण्यूः ॥ २ ॥

भा०—जल, भूमि आदि तत्व उस (अमृतां) प्रकृति को (अप अगूहन्) छिपा कर रखते हैं। वे (विवस्वते सवर्णाम्) विविध लोकों के स्वामी, परमेश्वर के समान वर्ण की, व्यापक प्रकृति को (कृत्वा) व्यक्त करके (मर्त्येभ्यः) प्राणियों के उपभोग के लिये (अददुः) प्रदान करते हैं। वह (सरण्यूः) गतिशील प्रकृति (द्वा मिथुना अजहात्) दो जोड़ों को उत्पन्न करती है (उत तत् आसीत्) जो अव्यक्त रूप में थी वही (अश्विनौ अभरत्) आकाश और पृथिवी को उत्पन्न करती है। यास्क के अनुसार—यह वाणी का वर्णन है। (विवस्वान्) उस प्रभु की (अमृतां) नित्य वाणी को विद्वान् (सवर्णां कृत्वा) वर्णों सहित करके (अप अगूहन्) खोल कर वर्णन करते हैं और (मर्त्येभ्य अददुः) मनुष्यों के हितार्थ प्रवचन द्वारा प्रदान करें। (यत् तत् आसीत्) वह जो परम ब्रह्म-ज्ञानमय वाणी है वह (अश्विनौ) विद्या में व्यापनशील गुरु शिष्य दोनों को (अभरत्) धारण-पोषण करती है। वह (सरण्यूः) गुरु से शिष्य को प्राप्त होने वाली वाणी, (द्वा मिथुना) दोनों जोड़ों को (अजहात्) उत्पन्न करती है।

पू॒षा त्वे॒तश्च्या॑वयतु॒ प्र वि॒द्वाननष्ट॑पशु॒र्भुव॑नस्य गो॒पाः।
स त्वै॒तेभ्यः॒ परि॑ ददत्पि॒तृभ्यो॒ऽग्निर्दे॒वेभ्यः॑ सुविद॒त्रिये॑भ्यः ॥३॥

भा०—(पूषा) सबका पोषक (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (त्वा इतः प्र च्यवतु) तुझे उत्तम मार्ग की ओर ले जावे। वह (अनष्टपशुः) ऐसे पशु-पालक के समान है जिसकी रक्षा में पशु कभी नष्ट नहीं होते। (सः अग्निः) वह सर्वप्रकाशक प्रभु (त्वा) तुझ जीव को (एतेभ्यः पितृभ्यः) इन माता, पिता, चाचा आदि पूज्य एवं (देवेभ्यः) सुख आदि के दाता तुझे चाहने वाले (सुविदत्रियेभ्यः) ज्ञान के रक्षक गुरुओं के हाथ (परि ददत्) प्रदान करता है।

आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥४॥

भा०—(विश्वायुः) सबको जीवन देने वाला, सर्वत्र व्यापक (आयुः) प्राणाधार प्रभु (त्वा परि पासति) तेरी सर्वत्र रक्षा करे। (पूषा) पोषक प्रभु (प्रपथे) उत्तम मार्ग में (पुरस्तात्) आगे से (पातु) रक्षा करे। (यत्र सुकृतः आसते) जहां उत्तम कर्म करने वाले पुण्यात्मा विराजते हैं और (यत्र ते ययुः) जिस उत्तम लोक में वे जाते हैं (तत्र) वहां, उस मार्ग में (देवः सविता) सर्वोत्पादक प्रभु (त्वा ददातु) तुझे स्थापित करे।

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत्।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥५॥२३॥

भा०—(पूषा) पोषक प्रभु (इमाः सर्वाः आशाः) इन समस्त दिशाओं और हमारी इच्छाओं को (अनु वेद) प्रतिक्षण जानता है। (सः अस्मान्) वह हमें (अभय-तमेन) भयरहित मार्ग से (नेषत्) ले चले। (स्वस्ति-दाः) वह कल्याणों का दाता (आ-घृणिः) सब प्रकार से प्रकाशों से युक्त, (सर्व-वीरः) सब वीरों का स्वामी, (प्र-जानन्) ज्ञान को जानता हुआ, प्रभु (अप्र-युच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (नः पुरः एतु) सदा हमारे आगे रहे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥६॥

भा०—(पथाम् प्रपथे) सब मार्गों में उत्तम मार्ग में (पूषा अजनिष्ट) पोषक प्रभु ही सबका मार्गदर्शक है। वही (दिवः प्रपथे, पृथिव्याः प्रपथे) आकाश और भूमि के मार्ग में रक्षक है। वह ही (प्र-जानन्) ज्ञान से सम्पन्न प्रभु (उभे प्रिय-तमे सध-स्थे) अति प्रिय इह लोक और परलोक में (आ च परा च चरति) समीप और दूर विद्यमान रहता है। वह ही (आ चरति च) पुण्य कर्मों का अनुकूल फल देता है। वह ही (प्रजानन्) खूब जानता है कि इसने यह बुरा वा अच्छा काम किया है।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ७ ॥

भा०—(देवयन्तः) ज्ञान-प्रकाशक, प्रभु की कामना करते हुए विद्वान् उसको (सरस्वतीम् हवन्ते) प्रशस्त ज्ञान सम्पन्न शक्ति मानते हैं और (अध्वरे तायमाने) यज्ञ के विस्तृत होने पर (सरस्वतीम् हवन्ते) ज्ञानमय प्रभु का स्मरण करते हैं। (सुकृतः) पुण्यात्मा लोग (सरस्वतीं अह्वयन्त) प्रभु को ही पुकारते हैं। क्योंकि वह (सरस्वती) ज्ञान की स्वामिनी शक्ति ही (दाशुषे वार्यं दात्) दानशील पुरुष को वरण योग्य उत्तम ज्ञान, धन प्रदान करता है।

सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ८ ॥

भा०—हे (सरस्वति) ज्ञान की स्वामिनि ! (देवि) देनेहारी ! (या) जो तू (स्वधाभिः) उत्तम अन्न, (पितृभिः) माता, पिता, गुरुजनों सहित (मदन्ती) प्रसन्न करती हुई (स-रथं ययाथ) एक समान रथ में जाती है, वह तू (अस्मिन् आ-सद्य) यहां उत्तम आसन पर आदरपूर्वक विराज कर

(अस्मे) हमें (अनमीवाः) रोगरहित (इषः) अन्न और काम्य पदार्थ प्रदान कर। (२) प्रभु 'सरस्वती' है। वह भी (पितृभिः स्वधाभिः) सर्वपालक अन्न, जलादि अपनी धारण-पोषणकारिणी शक्तियों से सबको तृप्त करता और स्वयं भी पूर्णकाम है। हमारे रमणयोग्य देह रूप रथ में भी विद्यमान है। वह हमारे यज्ञ में विराजता है, वह हमें उत्तम अन्नवत् इष्ट कर्मफल है।

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥ ९ ॥

भा०—(यज्ञम् अभि-नक्षमाणाः) यज्ञ को प्राप्त होते हुए, (पितरः) गृहस्थ जन (यां) जिस (सरस्वतीं) वेदज्ञानयुक्त विदुषी को (दक्षिणा) दक्षिण भाग में (हवन्ते) स्वीकार करते हैं। वह तू (अत्र) हे विदुषि ! इस लोक में, (सहस्र-अर्घम्) सहस्रों प्रकार से पूज्य, उपयोगी, (इडः भागं) अन्न के सेवनीय भाग और (सहस्रार्घं रायः पोषम्) सहस्रों गुणा धन की वृद्धि (यजमानेषु धेहि) यज्ञशील, दानी जनों में धारण करा।

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि १०।२४

भा०—(अस्मान्) हमें (आपः) आप्त, (मातरः) माता के तुल्य पवित्र स्नेह से युक्त विद्वान् (शुन्धयन्तु) पवित्र करें और (घृत-प्वः) जलवत् पवित्र करने वाले विद्वान् (नः घृतेन) हमें शान्तिदायक स्नेह से ही (पुनन्तु) पवित्र करें। वे (देवीः) दिव्यगुणों से युक्त जन (विश्वं रिप्रं प्रवहन्ति) सब प्रकार का पाप बहा देते हैं। (आभ्यः इत् शुचिः) उनसे ही पवित्र होकर मैं (उत् एमि) अभ्युदय को प्राप्त होऊं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ११ ॥

भा०—(द्रप्सः) द्रुतगति से जाना वाला सूर्य (यः च पूर्वः) जो सबसे पूर्व रसरूप तेज, (प्रथमान् द्यून् अनु) प्रथम के सब दिनों वा (प्रथमान् द्यून् अनु) पूर्व उत्पन्न तेजस्वी लोकों और (इमं योनिम् च अनु) इस भूमि लोक को भी (चस्कन्द) प्राप्त होता है और (समानं योनिम् सञ्चरन्तं अनु) समान लोक या स्थान को ;जाते हुए जिसके पीछे (सप्त होत्राः) सात ऋतुगण जाते हैं उसी प्रकार (द्रप्सः) तेजोरूप आत्मा जो इस देह से पूर्व विद्यमान है, जो (प्रथमान् द्यून्) पूर्व के काम्य देहों और (इमं योनिम्) इस देह को भी प्राप्त होता है। एक समान देह में विचरते उस आत्मा के प्रति (सप्त होत्राः जुहोमि) मैं अपने सातों प्राणों की आहुति करता हूँ ।

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्कन्द॑ति॒ यस्ते॑ अं॒शुर्बा॒हुच्यु॑तो धि॒षणा॑या उ॒पस्था॑त् ।
अ॒ध्व॒र्योर्वा॒ परि॑ वा॒ यः प॒वित्रा॒त्तं ते॑ जुहोमि॒ मन॑सा॒ वष॑ट्कृतम् १२

भा०—हे प्रभो ! (यः ते द्रप्सः) जो तेरा तेजोमय रस (स्कन्दति) प्रवाहित होता है, (यः ते अंशुः) जो तेरा व्यापक रस (धिषणायाः उपस्थात्) सर्वोपरि दातृशक्ति से (बाहु-च्युतः) मानो बाहुओं द्वारा प्रदत्त वा प्रेरित है (वा अध्वर्योः) अथवा कभी नष्ट न होने वाला प्रभु से प्रेरित है (वा यः पवित्रात् परि) अथवा जो 'पवि' नाम विद्युत् रूप वज्र के रक्षक मेघादि से भूमि पर जल रूप से वा पवित्र, सर्वशोधक प्रभु वा सूर्य वा वायु से प्राप्त होता है, (तं) उस (ते) तेरे तेजोमय प्राण तत्व को (मनसा वषट्-कृतम्) मनोबल से छः विभागों में विभक्त वा प्रदत्त कर (जुहोमि) प्राप्त करता हूँ ।

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्क॒न्नो यस्ते॑ अं॒शुर॒वश्च॒ यः प॒रः स्रु॒चा ।
अ॒यं दे॒वो बृह॒स्पति॒ः सं तं सि॑ञ्चतु॒ राध॑से ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रभो ! (यः ते द्रप्सः) जो तेरा सर्वोत्पादक रस (स्कन्नः) सर्वत्र प्रवाहित है, (यः ते अंशुः) जो तेरा सूक्ष्म अंश (स्रुचा) प्राण शक्ति

द्वारा (अवः च, परः च) इस लोक में और दूर के लोकों में व्याप्त है (तं) उसको (अयं देवः बृहस्पतिः) यह तेजस्वी, बड़े लोकों का पालक सूर्य (राधसे) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये (सं सिञ्चतु) अच्छी प्रकार जल और तेज के रूप में सिञ्चित करे।

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः।
अपां पयस्वदित्पयस्तेन मा सह शुन्धत ॥ १४ ॥ २५ ॥

भा०—हे (ओषधयः) तेजोधारिणी शक्तियों! आप लोग (पयस्वतीः) पुष्टिकारक रस से युक्त हो। (मामकं वचः) मेरा वचन (पयस्वत्) बल से युक्त मधुर हो। (अपां पयः) जलों का सारभूत अंश भी (पयस्वत्) सारयुक्त है। (तेन) उससे आप (सह) साथ साथ (शुन्धत) मुझे शुद्ध करो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१८]

सङ्कुसुको यामायन ऋषिः ॥ देवताः—१—४ मृत्युः। ५ धाता। ६ त्वष्टा। ७—१३ पितृमेधः। १४ पितृमेधः प्रजापतिर्वा ॥ छन्दः—१, ५, ७—९ निचृत् त्रिष्टुप्। २—४, ६, १२, १३ त्रिष्टुप्। भुरिक्त्रिष्टुप्। ११ निचृत् पंक्तिः। १४ निचृदनुष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥१॥

भा०—हे (मृत्यो) मरणशील पुरुष! तू (परं पन्थाम्) सबसे उत्तम मार्ग का (अनु इहि, परा इहि) अनुसरण कर। (यः ते स्वः) जो तेरा अपना अभिमत है उसे ही तू मान। वह (देव-यानात् इतरः) तेजस्वी, आदित्य ब्रह्मचारी, मुमुक्षुओं से जाने योग्य मोक्ष मार्ग से अतिरिक्त है। (चक्षुष्मते) आंख वाले, और (शृण्वते) सुनने वाले (ते ब्रवीमि) तुझे उपदेश करता हूँ कि तू (नः प्रजां मा रीरिषः) हमारी संतान का नाश न कर।

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥२॥

भा०—हे (यज्ञियासः) यज्ञशील जनों ! आप लोग (मृत्योः पदं) मृत्यु के कारण को (योपयन्तः) दूर करते हुए (यत् ऐत) जब जाओगे तो (द्राघीयः) दीर्घ एवं (प्रतरं) उत्तम (आयुः दधानाः भवत) जीवन धारण करने वाले होवोगे। आप (प्रजया धनेन) प्रजा और धन से (आ-प्यायमानाः) बढ़ते हुए और (शुद्धाः पूताः भवत) शुद्ध पवित्र होकर रहो।

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ३ ॥

भा०—(इमे जीवाः) ये जीवित जन (मृतैः वि आववृत्रन्) मरे बन्धुजनों से घिरे न रहें। (अद्य) आज के तुल्य सदा (नः) हमें (भद्रा) कल्याणकारी (देव-हूतिः) विद्वानों का उपदेश (अभूत्) हो। जिससे हम (द्राघीयः प्रतरं आयुः) दीर्घतम उत्कृष्ट जीवन को (दधानाः) धारण करते हुए (नृतये, हसाय) नृत्य, हास्य, आनन्द के लिये (प्राञ्चः अगाम) आगे के मार्ग पर बढ़ें।

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ ४ ॥

भा०—मैं (जीवेभ्यः) जीवनधारी मनुष्यों के लिये (इमं परि-धिं) इस प्राणरक्षक व्यवस्था को (दधामि) स्थापन करता हूँ। (एषां) इन जीवों में से (अपरः) कोई भी (एतम् अर्थं मा गात् नु) इस मृत्यु के मार्ग से न जावे। समस्त जीवगण (शतं शरदः) सौ बरस (पुरूचीः) और भी बहुत अधिक वर्ष (जीवन्तु) जीवें और (पर्वतेन) पालन पोषणकारी उपाय से (मृत्युः अन्तः दधताम्) प्रकोट से शत्रु के समान मृत्यु को अन्तर्हित करें, दूर करें।

यथाहान्यनु पूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥५॥२६॥

भा०—(यथा) जैसे (अहानि) दिन (अनु पूर्वं भवन्ति) एक दूसरे के पश्चात् होते हैं (यथा ऋतवः ऋतुभिः साधु यन्ति) जैसे ऋतुएं ऋतुओं के साथ जुटी २ गुजरती हैं। (यथा पूर्वम्) जैसे पूर्व विद्यमान पिता आदि को (अपरः) आगे आने वाला पुत्र न त्याग करे (एव) ऐसे ही हे (धातः) पालक प्रभो ! तू (एषाम् आयूंषि कल्पय) इनका दीर्घ जीवन कर। षड्विंशो वर्गः ॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ॥६॥

भा०—हे मनुष्यों ! आप लोग (अनु-पूर्वं) पूर्व विद्यमान वृद्ध जनों के अनुकूल (यतमानाः) सन्मार्ग में यत्नवान् होते हुए (यति स्थ) जितने भी हो जाओ वे सब (जरसं वृणानाः) वृद्ध होते हुए (आयुः आरोहत) जीवन की नसैनी पर चढ़ो। (इह) इस लोक में (त्वष्टा) सब जगत् का विधाता प्रभु, (स-जोषाः) प्रीतियुक्त होकर (वः सु-जनिमा) आप लोगों की उत्पत्ति और (जीवसे) जीने के लिये (दीर्घम् आयुः) दीर्घ आयु (करति) करे।

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ७ ॥

भा०—(इमाः) ये (अविधवाः) पति से अविरहित (नारीः) स्त्रियां (सु-पत्नीः) पति की उत्तम धर्मपत्नी होकर (आंजनेन सर्पिषा) घृतादि गंधयुक्त पदार्थ से सुशोभित होकर (सं विशन्तु) अपने गृह में प्रवेश करें वे (अनश्रवः) आंसुओं से रहित, (अनमीवाः) रोग से रहित, (सुरत्नाः) सुन्दर रत्न अथवा रम्य गुणों वाली (जनयः) सन्तानों को उत्पन्न करने में समर्थ स्त्रियां (अग्रे) आदरपूर्वक पहले (योनिम् आ रोहन्त) गृह में आवें।

उदी॑र्ष्व ना॒र्य॒भि जी॑वलो॒कं ग॒तासु॑मे॒तमुप॑ शेष॒ एहि॑ ।
ह॒स्त॒ग्रा॒भस्य॑ दिधि॒षोस्तवे॒दं पत्यु॑र्जनि॒त्वम॒भि सं ब॑भूथ ॥ ८ ॥

भा०—हे (नारि) स्त्रि ! तू (जीव-लोकम् अभि) जीवित जनों को लक्ष्य करके (उत् ईर्ष्व) उठ खड़ी हो। (एतं गतासुम् उप शेषे) तू इस प्राणरहित के समीप पड़ी है। (आ इहि) उठ आ। (हस्तग्राभस्य) पाणिग्रहण करने वाले और (दिधिषोः) पोषण करने वाले (तव पत्युः) तेरे पालक पति के (इदं जनित्वं) इस सन्तान को (अभि) लक्ष्य करके तू (सं बभूथ) उससे मिलकर रह। यदि संतान जीवित न हो तो (जनित्वम् अभि) केवल सन्तान को लक्ष्य कर (संबभूथ) नियोग विधि से पुत्र उत्पन्न कर।

धनु॒र्हस्ता॑दा॒ददा॑नो मृ॒तस्या॒स्मे क्ष॒त्राय॒ वर्च॑से॒ बला॑य ।
अत्रै॒व त्वमि॒ह व॒यं सु॒वीरा॒ विश्वा॒ः स्पृधो॑ अ॒भिमा॑तीर्जयेम ॥९॥

भा०—(मृतस्य हस्तात्) मृत पुरुष के हाथ से (धनुः आददानः) धनुष् अर्थात् अधिकार ग्रहण करता हुआ, हे अधिकारवान् पुत्र ! (अस्मे) हमारे (क्षत्राय) वीर्य, (वर्चसे) तेज और (बलाय) बल की वृद्धि के लिये (त्वं अत्र एव) तू यहां स्थिर रह। जिससे (इह) इस राष्ट्र में (वयं) हम (सु-वीराः) उत्तम वीर, पुत्र वाले होकर (विश्वाः अभिमातीः स्पृधः जयेम) सब अभिमान युक्त शत्रु सेनाओं पर विजय प्राप्त करें।

उप॑ सर्प मा॒तरं॒ भूमि॑मे॒तामु॑रु॒व्यच॑सं पृथि॒वीं सु॒शेवा॑म् ।
ऊर्ण॑म्रदा युव॒तिर्दक्षि॑णावत ए॒षा त्वा॑ पातु॒ निर्ऋ॑तेरु॒पस्था॑त् १०।२७

भा०—हे मनुष्य ! तू (मातरम्) माता के समान आदर योग्य, (एतां) इस (उरु-व्यचसम्) आकाश के समान विशाल, (पृथिवीम्) विस्तृत (सु-शेवाम्) सुख के देने वाली, (भूमिम्) भूमि को (उप सर्प) प्राप्त हो। (एषा) वह (ऊर्ण-म्रदाः) ऊन के समान मृदु (दक्षिणावतः) दान देने योग्य उत्साह और शक्तिजनक धन के स्वामी की (युवतिः)

युवती स्त्री-वत् सर्वस्वामिनी है। वह (त्वा) तुझे (निर्ऋतेः उपस्थात्) पापाचरण से (पातु) बचावे। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ११ ॥

भा०—हे (पृथिवि) पृथिवी ! मातः ! (उत् श्वञ्चस्व) उत्साहपूर्वक उत्तम मार्ग की ओर ले जा। तू (मा नि बाधथाः) पीड़ित मत कर। (अस्मै सूपायना) इसको सुख से समीप आने वाली, (सु-उपवञ्चना) सुख से समीप रहने वाली, (भव) होकर रह। हे (भूमे) सर्वोत्पादिके, (यथा माता पुत्रं सिचा अभि ऊर्णुते) जैसे माता पुत्र को अपने वस्त्रांचल से ढांपती है वैसे तू (एनम् अभि सिच) उसका अभिषेक कर, और (अभि ऊर्णुहि) सब ओर से आच्छादित कर।

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्। ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥१२॥

भा०—(पृथिवी उत् श्वञ्चमाना) पृथिवी उत्साह उत्पन्न करती हुई (सु तिष्ठतु) सुख से विराजमान हो। (सहस्रं मितः) सहस्रों अन्नादि और प्राणी (उप श्रयन्ताम् हि) उस पर आश्रय लें। (ते) वे (गृहासः) हमारे घर (घृतश्चुतः भवन्तु) घृतवत् स्नेह युक्त शांति देने वाले हों। वे (अस्मै) इस मनुष्य को (अत्र) यहां (शरणाः सन्तु) दुःख विनाशक शरण हों।

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्। एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु १३

भा०—हे राजन्! (ते) तेरे अधीन इस (पृथिवी) भूमि को (उत् स्तभ्नामि) उत्तम रीति से प्रबन्धयुक्त करता हूँ। (इमं लोगं) इस जन-समूह को (त्वत् परि निदधत्) तेरे आश्रय में संभलाता हुआ (अहं मो रिषम्) मैं दुःखी न होऊं, (ते) तेरी (एतां स्थूणां) इस टेक या व्यवस्था को (पितरः) पालक शासक वर्ग (धारयन्तु) धारण करें। (अत्र) इस

लोक में (यमः) नियन्ता प्रभु (ते सदना मिनोतु) तेरे गृहों को, या तेरे पदाधिकारों को (मिनोतु) व्यस्थित करे।

प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः।
प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा॥ १४॥ २८॥ ६॥

भा०—विद्वान् लोग (इष्वाः पर्णम् इव) बाण के मूल में वेग को तीव्र करने के लिये जैसे 'पर्ण' पांख लगाते हैं वैसे ही वे (प्रतीचीने अहनि) किसी सर्वपूज्य दिन (माम्) मुझको (इष्वाः) शत्रु के प्रति ठीक मार्ग में चलाने योग्य सेना पर (पर्णम्) संचालक रूप से (आ दधुः) स्थापित करें और मैं (प्रतीचीं वाचम्) सेना द्वारा आदर से ग्रहण योग्य आज्ञा को (जग्रभ) उस आज्ञा द्वारा प्रजा वा सेना को अपने ऐसे वश करूं (यथा रशनया अश्वं) जैसे रास से घोड़े को वश में किया जाता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥ इति षष्ठोऽध्यायः॥

सप्तमोऽध्यायः

[१९]

मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः॥ देवताः ११, २—८ आपो गावो वा। १२ अग्नीषोमौ॥ छन्दः—१, ३–५ निचृदनुष्टुप्। २ विराडनुष्टुप्। ७, ८ अनुष्टुप्। ६ गायत्री। अष्टर्चं सूक्तम्॥

नि वर्तध्वं मानु गातास्मान्त्सिषक्त रेवतीः।
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम्॥ १॥

भा०—हे (रेवतीः) धनसम्पन्न प्रजाओं! (नि वर्त्तध्वं) तुम बुरे मार्ग से लौट जाओ। (मा अनु गात) उसका अनुगमन मत करो। (अस्मान् सिषक्त) हमें धन से पुष्ट करो। हे (अग्नि-सोमा) अग्नि और सोम के समान तेजस्वी बनो! तुम (पुन-र्वसू) पुनः पुनः नये २ धन

को कमाने वाले ! (पुनः-वसू) पुनः पुनः इस राष्ट्र में बसने वाले (अस्मे रयिम् धारयतम्) हमें धन-ऐश्वर्य धारण कराओ ।

पुनरेना निवर्तय पुनरेना न्या कुरु ।

इन्द्र एणा नियच्छत्वग्निरेना उपाजतु ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (एना) इनको (नि वर्तय) पाप मार्ग से लौटा । (एना पुनः नि आ कुरु) इनको पुनः पुनः वश कर । (इन्द्रः) तेजस्वी होकर (एना नि यच्छतु) इनको नियमों में रखे और (अग्निः) तेजस्वी पुरुष, (एना उ अजतु) इनको सन्मार्ग में ले जावे ।

पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।

इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥ ३ ॥

भा०—(एताः) ये सब (पुनः निवर्तन्ताम्) बार बार लौट कर आवें और (अस्मिन् गोपतौ) इस गौओं के पालक गोपाल, भूमिपाल के अधीन रहकर (पुष्यन्तु) समृद्धि को प्राप्त करें । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (इह एव नि धारय) इस स्थान में ही इनको नियम में धारण कर (या रयिः) जो द्रव्य सम्पत् है वह (इह तिष्ठतु) यहां स्थिर रूप से रहे ।

यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत्परायणम् ।

आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥ ४ ॥

भा०—(यत् नियानं) जो जीवों का नीचे जाना और (नि-अयनम्) निम्न लोक में रहना और (सं-ज्ञानं) उनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना और (यत् परा अयनम्) जो परम पद को प्राप्त करना और इसी प्रकार (आ-वर्त्तनं) इस संसार में लौट कर आना, इस सबका मैं (हुवे) ज्ञान प्राप्त करूं । (यः गोपाः) जो सब इन्द्रियों, लोकों और वेदादि वाणियों का रक्षक है (तम् अपि हुवे) उसको भी मैं स्वीकार करता हूँ ।

य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम् ।

आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा निवर्तताम् ॥ ५ ॥

भा०—(यः गोपाः) जो रक्षक, (वि-अयन) विविध लोक या प्राप्ति-योग्य पदों को (उत् आनट्) उत्तम मार्ग से प्राप्त करता है, (यः परा-अयनम् उत् आनट्) जो दूर, परम प्राप्य मोक्ष प्राप्त कराता है, वह रक्षक (आ-वर्त्तनं नि-वर्त्तनम्) इस लोक में और पुनः यहां से लौटने की व्यवस्था को भी (अपि नि वर्ततास्) नियमपूर्वक चला रहा है।

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि।
जीवाभिर्भुनजामहै ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (नि-वर्त्त) नियम से संसार को चलाने वाले! (आ वर्तय) तू ही लौट कर आता है और तू ही (नि वर्तय) लौटा कर ले जाता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः पुनः गाः देहि) हमें फिर २ इन्द्रियगण आदि रीति के स्थूल साधन (देहि) प्रदान कर। (जीवाभिः) प्राण के संसर्ग से चेतनायुक्त उन इन्द्रिय-वृत्तियों से हम (पुनः भुनजामहै) फिर भोग करें।

परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा।
ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः ॥ ७ ॥

भा०—हे (देवाः) नाना कामना वाले जीवो! (वः) तुम सबको मैं (ऊर्जा घृतेन पयसा) अन्न, दुग्ध आदि पुष्टिकारक पदार्थ से (विश्वतः परि दधे) सब प्रकार से पालन पोषण करता हूँ। (ये के च) और जो कोई भी (देवाः) उत्तम भोगों की कामना करने वाले (यज्ञियाः) प्रभु की उपासना से पवित्र हैं वे (नः) हमारे बीच (रय्या) श्रेष्ठ सम्पदा से (सं सृजन्तु) संसर्ग करते हैं।

आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना निवर्तय ॥ ८ ॥ १ ॥

भा०—हे (निवर्तन) जगत् को नियम में चलाने वाले (आवर्तय) तू हमें सन्मार्ग में चला। हे (निवर्त्तन) हमें दुःखों और पापों से हटाने

वाले ! तू (निवर्त्तय) हमें दुःखदायी मार्गों से हटा। (भूम्याः चतस्रः प्रदिशः) जीवों के उत्पन्न होने के लिये भूमि की चार मुख्य दिशाएं हैं (ताभ्यः एनाः निवर्त्तय) उन सबसे उनको रोक, उन सब में जाने के लिये नियम-पूर्वक उन पर शासन कर। इति प्रथमो वर्गः ॥

[२०]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ आसुरी त्रिष्टुप्। २, ९ अनुष्टुप्। ३ पादनिचृद् गायत्री। ४, ५, ७ निचृद् गायत्री। ६ गायत्री। ८ विराड् गायत्री। १० त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

भ॒द्रं नो॒ अपि॑ वातय॒ मनः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (नः मनः) हमारे चित्त को (भद्रं अपि वातय) कल्याणकारी सुखजनक मार्ग की ओर प्रेरित कर। (२) अथवा (नः भद्रं मनः अपि वातय) हमें सुखकर उत्तम ज्ञान प्रदान कर।

अ॒ग्निमी॑ळे भु॒जां यवि॑ष्ठं शा॒सा मि॒त्रं दु॒र्धरी॑तुम्।

यस्य॒ धर्म॒न्त्स्व१॒॑रेनीः॑ सप॒र्यन्ति॑ मा॒तुरूधः॑ ॥ २ ॥

भा०—(भुजां अग्निम्) पालन करने वाले वीरों के बीच तेजस्वी, (यविष्ठं) जवान, शक्तिशाली, (शासा) शासन एवं शस्त्र बल से (दुर्धरीतुम्) संग्राम में पराजित न होने वाले, (मित्रं) प्रजा के जीवन को बचाने वाले, पुरुष की मैं (ईडे) स्तुति करूं, (यस्य धर्मन्) जिसके धारण करने के बल पर (एनीः) उसे प्राप्त होने वाले जीव (मातुः ऊधः) माता के स्तन के समान (यस्य स्वः सपर्यन्ति) जिसके प्रकाश का सेवन करते हैं।

यमा॒सा कृ॒पनी॑ळं भा॒साके॑तुं व॒र्धय॑न्ति।

भ्राज॑ते॒ श्रेणि॑दन् ॥ ३ ॥

भा०—जो (श्रेणि-दन्) प्रजाओं और सेनाओं के पंक्तिबद्ध दलों को अन्नादि देने वाला है और (यम्) जिस (कृप-नीळम्) कृपा के परम आश्रय और (भासा-केतुं) ज्ञान दीप्ति से सब पदार्थों का ज्ञान कराने वाले

को (आसा) मुख द्वारा वा (आसा) उपासना द्वारा (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं वह (भ्राजते) सर्वत्र प्रकाशित होता है।

अ॒र्यो वि॒शां गा॒तुरे॑ति॒ प्र यदान॑ड् दि॒वो अन्ता॑न्।
क॒विर॒भ्रं दीद्या॑नः॥ ४॥

भा०—(विशां अर्यः) प्रजाओं का स्वामी प्रभु (गातुः) सबके प्राप्त करने योग्य है। वह (यत्) जो (दिवः अन्तान्) आकाश के दूर २ के मार्गों तक सूर्यवत् (प्र आनट्) व्याप्त है। वह (अभ्रं दीद्यानः) मेघ को विद्युत् के तुल्य हृदयाकाश को ज्ञान से प्रकाशित करता हुआ (कविः) क्रान्तदर्शी, (प्र एति) उत्तम पद पर स्थित है।

जु॒षद्ध॒व्या मानु॑षस्यो॒र्ध्वस्त॑स्था॒वृभ्वा॑ य॒ज्ञे।
मि॒न्वत्सद्म॑ पु॒र ए॑ति॥ ५॥

भा०—अग्नि जैसे (यज्ञे मानुषस्य हव्या जुषत् ऊर्ध्वः तस्थौ) यज्ञ में मनुष्य के हवि को ग्रहण करता हुआ ऊपर उठता है वैसे ही (ऋभ्वा) ज्ञानवान् पुरुष (यज्ञे) परस्पर संग के अवसर पर (मानुषस्य) मनुष्य के (हव्या) अन्नादि पदार्थों को (जुषत्) स्वीकार करता हुआ (ऊर्ध्वः तस्थौ) उत्तम आसन पर विराजे, वह (सद्म मिन्वन्) गृह वा आसन को प्राप्त होता हुआ (पुरः एति) आगे आता है।

स हि क्षेमो॑ ह॒विर्य॒ज्ञः श्रु॒ष्टीद॑स्य गा॒तुरे॑ति।
अ॒ग्निं दे॒वा वाशी॑मन्तम्॥ ६॥ २॥

भा०—(सः) वह (हवि-यज्ञः) उत्तम अन्नादि द्वारा किया गया यज्ञ, (क्षेमः हि) प्रजा का रक्षक और कल्याण करने वाला है। (अस्य) इसका (गातुः) विद्वान् पुरुष (श्रुष्टी इत्) उत्तम फल शीघ्र ही (एति) प्राप्त करता है। (देवाः) ज्ञान के इच्छुक पुरुष (वाशीमन्तम् अग्निम्) उत्तम वाणी से युक्त पुरुष की उपासना करते हैं। इति द्वितीयो वर्गः॥

यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य ।
अद्रेः सूनुमायुमाहुः ॥ ७ ॥

भा०—जिस (अद्रेः सूनुम्) मेघ के प्रेरक को (आयुम् आहुः) सबका जीवन कहते हैं उस (यज्ञ-साहं) यज्ञ के धारक (अग्निं) सूर्यवत् प्रभु की (पूर्वस्य शेवस्य) उत्तम सुख की प्राप्ति के लिये (दुवः इषे) उपासना करता हूँ।

नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आस्युः ।
अग्निं हविषा वर्धन्तः ॥ ८ ॥

भा०—(अस्मत् ये के च नरः) हमारे जो भी उत्तम पुरुष हों (ते) वे (अग्निं हविषा वर्धन्तः) ज्ञानस्वरूप प्रभु को स्तुति द्वारा बढ़ाते हुए (विश्वा इत् वामे) समस्त प्रकार से सेव्य प्रभु में (आ स्युः) रमें ।

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान ॥ ९ ॥

भा०—(अस्य) इस प्रभु का (यामः) जगत् नियामक नियन्त्रण (कृष्णः) दुष्टों का पीड़क, (श्वेतः) निर्दोष (अरुषः) दीप्तिमान् (ब्रध्नः) जगत् को बांधने वाला (ऋज्रः) धर्म मार्ग में चलाने वाला (उत) और (शोणः) वेगवान् (यशस्वान्) अन्न, धनैश्वर्य से सम्पन्न है । जिसको (जनिता) प्रभु (हिरण्यरूपं जजान) सुखकारी रूप में प्रकट करता है ।

एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः ।
गिर आवक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१०।३॥

भा०—(एव) इस प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (वि-मदः) आनन्द में मग्न, (अमृतेभिः) दीर्घजीवी वृद्धजनों से (स-जोषाः) प्रीतियुक्त पुरुष (सु-मतीः इयानः) सुबुद्धियों को प्राप्त करता हुआ (ते) तेरे विषय में अपनी (मनीषाम्) मन की उत्तम भावना और (गिरः) वाणियों को

(आ वक्षत) धारण करता है। हे (ऊर्जं नपात्) बल के देने हारे ! तू (इषम्) अन्न (ऊर्जं) बल और (सु-क्षितिम्) निवास योग्य भूमि (विश्वम्) ये सब (आभरः) प्रदान कर। इति तृतीयो वर्गः ॥

[२१]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ८ निचृत् पंक्तिः। २ पादनिचृत् पंक्तिः। ३, ५, ७ विराट् पंक्तिः। ६ आर्ची पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे ॥१॥

भा०—हम लोग (स्तीर्ण-बर्हिषे) बिछे कुशादि आसनों से युक्त (यज्ञाय) यज्ञ के लिये (स्व-वृक्तिभिः) अन्तरात्मा को आकर्षित करने वाली स्तुतियों द्वारा (अग्निं न) ज्ञानप्रकाशक अग्रणी, (होतारं) सुखों के देने वाले, (पावक-शोचिषे) पवित्रकारक प्रकाश वाले, (शीरं) सर्वव्यापक, (त्वा) तुझको (आ वृणीमहे) वर्णन करते हैं और (मदे) आनन्द के लिये (वि वृणीमहे) अपनाते हैं। तू (विवक्षसे) उसको धारण कर, तू महान् है।

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे ॥२॥

भा०—(अश्व-राधसः) इन्द्रियों के साधक (ते) वे (स्वाभुवः) आत्म-सामर्थ्य वा ऐश्वर्य से सम्पन्न जन (त्वा) तुझको (शुम्भन्ति) सुशोभित करते हैं। (उप-सेचनी) अभिषेक क्रिया (त्वाम् वेति) तुझे चाहती है। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (ऋजीतिः) सत्य मार्ग से जाने वाली (आहुतिः) स्तुति और दान (वि मदे) तृप्ति के लिये (त्वाम् वेति) तुझे प्राप्त होती है। तू (विवक्षसे) उसे धारण करता है।

त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव। कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन्! (सिञ्चतीः इव) जैसे सेचन करने वाली मेघमालाएं सूर्य पर आश्रित हैं, वैसे ही (त्वे) तेरे बल पर कुछ जन (धर्माणः) समस्त धर्मों को धारण करने वाले (सिञ्चतीः इव) अभिषेक कराने वाली जल-धाराओं और प्रजाओं के समान ही (जुहूभिः) स्तुतिकारक वाणियों द्वारा (आसते) तेरे आश्रय पर खड़े हैं। सूर्य जैसे सबको सुख देने के लिये (कृष्णा अर्जुना रूपाणि धत्ते) काले श्वेत रूप, रात्रि-दिन है वैसे तू भी (मदे) प्रजा के हर्ष के लिये (कृष्णा) दुष्टों को कर्षण वा पीड़ित करने वाले और (अर्जुना) धनादि अर्जन करने वाले क्षात्र और वैश्य सम्बन्धी (रूपा) रुचिकर व्यवहारों को और (विश्वाः श्रियः) समस्त लक्ष्मियों को (धिषे) धारण करता और (विवक्षसे) विशेष रूप से उनको वहन करता है।

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (सहसावन्) बलशालिन्! हे (अमर्त्य) अमरणशील! तू (यं रयिं) जिस ऐश्वर्य को (चित्रं) आश्चर्यकारक (मन्यसे) मानता है, तू (तम्) उसको (नः वाज-सातये) हमारे बल आदि की वृद्धि और (वि मदे) तृप्ति के लिये (यज्ञेषु) यज्ञों में (नः आ भर) हमको प्राप्त करा। तू (विवक्षसे) महान् शक्तिशाली है।

अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ॥५॥४

भा०—(अथर्वणा) अहिंसक, प्रजापालक राजा या गुरु द्वारा (जातः) उत्पन्न (अग्निः) ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष (विश्वानि काव्या विदद्) समस्त विद्वानों के ज्ञानों को जाने। वह (काम्यः) सबके कामना योग्य, होकर (विवस्वतः यमस्य) विविध राजाओं वा प्रजाओं के स्वामी, प्रजा वा राष्ट्र के नियन्ता राजा का (दूतः) दूत भी (भुवत्) हो। हे प्रजाजनो! वह (वः वि मदे) आप लोगों के नाना हर्ष, सुखों के लिये हो। वह (विवक्षसे) गुणों में महान् और कार्य भार उठाने में समर्थ है। इति चतुर्थो वर्गः॥

त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे । त्वं वसूनि काम्या
वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! लोग (यज्ञेषु) सत्संगों, धार्मिक कार्यों में, और (अध्वरे) हिंसा-रहित प्रवाहित यज्ञ के (प्रयति) होते हुए (त्वाम् ईषते) तेरी स्तुति करते हैं, तुझे चाहते हैं। और (त्वं) तू वह (विश्वा काम्या वसूनि) समस्त प्रकार के, कामना करने योग्य नाना धनों को (विदधासि) विशेष रूप से धारण करता है। हे प्रजाजनो ! (वः मदे) तुम प्रजाओं, लोगों के सुख हर्ष के लिये (दाशुषे) दानशील आत्मसमर्पक प्रजाजन के हितार्थ (विवक्षसे) महान् शक्तिशाली और पूज्य है।

त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने निषेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (यज्ञेषु) यज्ञों में (घृतप्रतीकं) घृत से प्रदीप्त होने वाले अग्नि के समान तेज से चमकने वाले, (ऋत्विजं) "ऋतु" अर्थात् सदस्यों और अमात्यों से संगत, (चारुम्) सुन्दर (शुक्रम्) कार्य करने में समर्थ, (चेतिष्ठम्) सबसे अधिक ज्ञानवान्, (त्वां) तुझको ही (मनुषः) मननशील जन यज्ञों में (नि-सेदिरे) स्थापित करते हैं। हे प्रजाजनों ! (वः मदे विवक्षसे) वह महान् पुरुष आप लोगों को सुखी करने में समर्थ है।

अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत् ।
अभिक्रन्दन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे ८।५

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (बृहत्) महान् है। तू (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) कान्ति से (प्रथयसे) प्रख्यात करता है। (अभि क्रन्दन्) आक्रमण करता हुआ (वृषायसे) बलवान् होकर रहता है। तू (जामिषु) सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ दाराओं में गृहपति के समान (जामिषु) ओषधि आदि की उत्पादक भूमियों में सूर्यवत् (जामिषु) प्रजाओं के बीच

(गर्भं दधासि) गर्भ अर्थात् शासन, वश करता है। हे प्रजाजनों ! वह (विवक्षसे) महान् यह सब (वः वि मदे) तुम्हारे हर्ष के लिये ही करता है।

इन समस्त ऋचाओं में 'वि वो मदे, विवक्षसे' यह एक अनुष्टुप् का चरण विच्छिन्न रूप से पढ़ा है। शेष समस्त ऋचा अनुष्टुप् है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[२२]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद् वा वासुक्रः ॥ इन्द्रो देवता छन्दः १, ४, ८, १०, १४ पादनिचृद् बृहती। ३, ११ विराड् बृहती। २, ६, १२, १३ निचृदनुष्टुप्। ५ पादनिचृदनुष्टुप्। ७ आर्च्यनुष्टुप्। ९ अनुष्टुप्। १५ निचृत् त्रिष्टुप्। पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कुह॑ श्रु॒त इन्द्रः॒ कस्मि॑न्न॒द्य जने॑ मि॒त्रो न श्रू॑यते।
ऋषी॑णां वा॒ यः क्षये॒ गुहा॑ वा॒ चर्कृ॑षे गि॒रा ॥ १ ॥

भा०—वह (इन्द्रः) प्रभु (कुह श्रुतः) कहां सुना जाता है ? (अद्य) आज भी (मित्रः न श्रूयते) वह मित्र के समान (कस्मिन् जने श्रूयते) किस जनसमूह में श्रवण किया जा सकता है ? उत्तर—(यः) जो (ऋषीणां क्षये) मन्त्रद्रष्टा विद्वानों के निवास स्थल में वा (गुहा) गुहावत् बुद्धि में स्थित है वह (गिरा चर्कृषे) वाणी द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

इ॒ह श्रु॒त इन्द्रो॑ अ॒स्मे अ॒द्य स्तवे॑ व॒ज्र्यृची॑षमः।
मि॒त्रो न यो जने॒ष्वा यश॑श्च॒क्रे असा॒म्या ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु (जनेषु) मनुष्यों में (असामि) पूर्ण (यशः चक्रे) यश उत्पन्न करता है, (अद्य) आज भी जो (वज्री) बलशाली (ऋचीषमः) स्तुति के अनुरूप है, वह (इन्द्रः) प्रभु हमारे द्वारा (इह श्रुतः) इस जगत् में श्रवण करने और (स्तवे) स्तुति करने योग्य है।

म॒हो यस्पतिः॒ शव॑सो॒ असा॒म्या म॒हो नृ॒म्णस्य॑ तूतु॒जिः।
भ॒र्ता वज्र॑स्य धृ॒ष्णोः पि॒ता पु॒त्रमि॑व प्रि॒यम् ॥ ३ ॥

भा०—(यः शवसः पतिः) जो बल का स्वामी है और (असामि) असाधारण (महः नृम्णस्य) बड़े भारी धनैश्वर्य का (ततुजिः) दाता है। वह (घृष्णोः वज्रस्य) दुष्टों के नाशक बल का (भर्ता) धारक और (प्रियं पुत्रम् इव पिता) प्यारे पुत्र के प्रति पिता के समान पालक है।

युञ्जानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः॥ ४॥

भा०—हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन्! (देवः) प्रकाशस्वरूप, तू (देवस्य वातस्य) शक्तिप्रद वायु के बने, (धुनी) देह के प्रेरक (अश्वा) दोनों अश्वों के तुल्य प्राण एवं अपान को (युञ्जानः) देह में संयुक्त करता हुआ और (वि-रुक्मता पथा) विशेष प्रकाश से युक्त मार्ग से (स्यन्ता) जाने वाले उन दोनों को (अध्वनः) मार्ग के पार (सृजानः) करता हुआ (स्तोषि) स्तुति किया जाता है।

त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः॥ ५॥

भा०—(ययोः) जिन दोनों का (न देवः) न कोई प्रकाशयुक्त पिण्ड, (न मर्त्यः) और न कोई मरणधर्मा जड़ पदार्थ (यन्तः) नियमन कर सकता है और (नकिः) न कोई उनका (विदाय्यः) ज्ञान करने हारा है। (त्वं) तू (त्या चित्) उन दोनों (वातस्य अश्वा) वायु के बने अश्वों के समान देह के चालक (ऋज्रा) ऋजु मार्ग से जाने वाले प्राण अपान को (त्मना) अपने सामर्थ्य से (वहध्यै) धारण करने के लिये (आ अगाः) प्राप्त होता है।

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम्।
आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम्॥ ६॥

भा०—(उशनाः) भोगों की कामना करने वाला मनुष्य (अध ग्मन्ता वां पृच्छते) जाते हुए तुम दोनों को लक्ष्य करके पूछता है कि (कदर्थाः)

किस प्रयोजन से, तुम दोनों (पराकाद् दिवः) दूरवर्त्ती सूर्य और (ग्मः च) भूमि से (नः) हम जीवों के इस (मर्त्यं गृहं आ जग्मतुः) मरण धर्मा गृह, देह में आते हो।

आ नं इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम्।

तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः आपृक्षसे) हमें सब प्रकार से अपने साथ रख। (अस्माकं ब्रह्म) हमारा महान् स्तवन (उद्-यतम्) तेरे लिये ऊपर उठा हुआ है, तेरे लिये समर्पित है। (त्वा) हम तेरे से (तत् अमानुषं अवः) उसी अमानुष रक्षण, बल, प्रेम और ज्ञान की (याचामहे) याचना करते हैं जिसको कोई मनुष्य नहीं दे सकता (यत्) जो (अमानुषं) मनुष्यों की सीमा को पार करने वाले (शुष्णं) शोषक आसुरी बल को (हन्) नाश कर सके।

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।

त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ॥ ८ ॥

भा०—हे (अमित्र-हन्) शत्रुओं को दण्ड देने वाले प्रभो! जो (अकर्मा) स्वयं सत्कार्य न करने वाला, (दस्युः) प्रजा का नाशक (अमन्तुः) सबका अपमान करने वाला, (अन्यव्रतः) शत्रुओं सा काम करने वाला, (अमानुषः) मनुष्यों के बल, धर्म आदि से परे, राक्षसी स्वभाव का पुरुष (नः अभि) हमें घेरे पड़ा है। (त्वं तस्य) तू उस (दासस्य) सत्यानाशी को (वधः) दण्ड देकर उसे (दम्भय) विनष्ट कर।

त्वं नं इन्द्र शूर शूरैरुत त्वोतासो बर्हणा।

पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (शूर) शूरवीर! (बर्हणा) संग्रामादि के अवसरों में हम (त्वा-ऊतासः) तेरे बल से सुरक्षित रहें। (ते पूर्तयः) तेरे कामनाएं पूर्ण करने के साधन भी (पुरुत्रा) बहुत से हैं। वे

(यथा क्षोणयः) भूमियों के समान (वि नवन्त) विविध प्रकार से वर्णन किये जाते हैं।

त्वं ताँ वृत्रहत्ये चोदयो नॄन्कार्पाणे शूर वज्रिवः ।

गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥ १० ॥ ७ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक वीर ! हे (वज्रिवः) बलशालिन् ! (यदि) जो तू (कवीनां) क्रान्तदर्शी जनों और (न-क्षत्र-शवसाम्) क्षात्रबल और धनबल से रहित (विशां) प्रजाजनों के (गुहा) हृदय और बुद्धि में विराजमान है वह (त्वं) तू (वृत्र-हत्ये) दुष्ट पुरुष के मारक (कार्पाणे) तलवार से होने वाले संग्राम में (तान् नॄन्) नाना योद्धा नायकों को (चोदयः) प्रेरित करता है । इति सप्तमो वर्गः ॥

मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।

यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥ ११ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! हे (वज्रिवः) बलशालिन् ! (आक्षाणे) शत्रुहननकार्य में, (दाना प्नसः) प्रजा पर कृपाकारी दानरूप कर्म करने वाले (ते) तेरे (ता) वे नाना कर्म (मक्षु) शीघ्र हों । (यत्) क्योंकि तू (ह) निश्चय से (स-यावभिः) एक साथ मार्ग में आगे बढ़ने वालों के द्वारा (शुष्णस्य) प्रजापोषक पुरुष के (विश्वं जातं) उत्पन्न हुए समस्त बलादि का (दम्भयः) नाश करने में समर्थ है ।

माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।

वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अस्मे) हमारी (अभिष्टयः) अभिलाषाएं और (वस्वीः) धन सम्पदाएं भी (अकुध्र्यग्) निष्फल (मा भूवन्) कभी न हों । हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! (वयं-वयं) हम सब सदा (ते सुम्ने) तेरे दिये सुख वा रक्षा में (आसां) इन प्रजाओं के बीच (स्याम) सदा रहा करें ।

अस्मे ता तं इन्द्र सन्तु सत्याऽहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वंज्रिवः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अस्मे ता) हमारी वे अभिलाषा और यज्ञ आदि क्रियाएं (ते उपस्पृशः) तेरे तक पहुँचने वाली होकर (सत्या) सज्जनों का कल्याण करने वाली और (अहिंसन्तीः) किसी की हिंसा आदि न करने वाली (सन्तु) हों। हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! (यासां) जिनके फलस्वरूप (धेनूनां न) वाणियों वा गौओं के समान (भुजः विद्याम) भोग्य पदार्थों को प्राप्त करें।

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद् विश्वायवे नि शिश्नथः ॥ १४ ॥

भा०—(यद्) जैसे (वेद्यानां शचीभिः) विद्वानों के कर्मों द्वारा (अहस्ता अपदी) ऊबड़खाबड़, मार्ग रहित (क्षाः वर्धत) भूमि बढ़ कर विस्तृत हो जाती है और तब सूर्य जैसे (विश्वायवे) सबके पालन के लिये (प्रदक्षिणित्) खूब प्रबल (शुष्णं) ग्रीष्मताप को भी (नि शिश्नथः) मेघादि से शिथिल करता है वैसे ही हे ऐश्वर्यवन् ! (वेद्यानां शचीभिः) विद्वान् पुरुषों और वेदों की वाणियों से (अहस्ता) बे-हाथ और (अपदी) बे-पांव अत्याचारियों से पीड़ित (क्षाः) भूमिवासिनी प्रजाएं भी (वर्धत) बढ़ती हैं। तब तू भी (विश्वायवे) समस्त प्रजा के हितार्थ (प्रदक्षिणित्) सबको घेर कर बैठे बलशाली (शुष्णं) प्रजा के रक्त शोषक दुष्ट जन को (नि शिश्नथः) शिथिल कर दे।

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥१५।८॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोमं पिब-पिब) बल वीर्य और राष्ट्र का पालन और उपभोग किया कर। हे (वसवान) बसे प्रजाजनों को चाहने वाले ! तू स्वयं (वसुः सन्) आत्मा

के समान राष्ट्र में बसने वाला, रक्षक होकर (मा रिषण्य:) प्रजा का नाश मत कर। (उत) बल्कि, (गृणत: मघोन:) स्तुतिकर्ता सम्पन्न जनों की भी (त्रायस्व) रक्षा कर। (न:) हमारे (मह: राय:) बहुत २ धन हों और (न: रेवत: कृधि) हमें भी दान देने योग्य धनों से सम्पन्न बना। इत्यष्टमो वर्ग: ॥

[२३]

विमद ऐन्द्र: प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्र: ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४ आर्ची भुरिग् जगती। ६ आर्ची स्वराड् जगती। ३ निचृज्जगती। ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं वि व्रतानाम्।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा ॥१॥

भा०—हम लोग (वि व्रतानाम्) काम करने वाले, (हरीणां) मनुष्यों के बीच में (रथ्यं) रथयोग्य अश्ववत् कार्यभार में समर्थ और (वज्र-दक्षिणम्) शस्त्र आदि को, दायें हाथ में धारण करने वाले (इन्द्रं) दुष्टों के दमनकारी पुरुष का (यजामहे) आदर करें, रहें। वह (राधसा वि दयमान:) ऐश्वर्य के बल से प्रजाओं का पालन करता हुआ (सेनाभि:) आज्ञा पालने वाली सेनाओं सहित (श्मश्रु प्र दोधुवत्) आश्रित केशों वा बाहुओं को कंपाता हुआ (वि) विविध प्रकार से (ऊर्ध्वथा भूत्) सर्वोपरि हो।

हरी न्वस्य या वने विदे वस्विन्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत्।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षा: पत्यते शवोऽव क्ष्णौमि दासस्य नाम चित् २

भा०—(या हरी) जो स्त्री पुरुष वर्ग (अस्य वने) इसके भोग्य राष्ट्र में (वसुविदे) धन प्राप्त करते हैं (इन्द्र:) शत्रुहन्ता राजा (मघै: मघवा) उन्हीं से प्राप्त धनों का स्वामी होकर (वृत्रहा भुवत्) बढ़ते शत्रु के नाश में समर्थ होता है। वह (ऋभु:) सत्य से चमकने वाला और (वाज:)

बलशाली, (ऋभु-क्षाः) न्यायशील पुरुषों का आश्रय होकर (शवः पत्यते) बल और धन का पालक हो जाता है। तब मैं प्रजा वर्ग भी (दासस्य) दुष्ट जन के (शवः) बल और (नाम चित्) नाम तक को (अव क्षणौमि) नष्ट कर देता हूँ।

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥३॥

भा०—(अस्य यं रथं) इसके जिस रथवत् राष्ट्र को (हरी वहतः) स्त्री और पुरुष धारण करते हैं। और (मघवा) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सूरिभिः) विद्वानों सहित (यदा) जब उस (वज्रं) बलस्वरूप (हिरण्यम्) हित और रमणीय (रथं) सबको सुख देने (यम्) जिस राष्ट्र पर (वि तिष्ठति, आ तिष्ठति) विविध प्रकार से बैठता और शासन करता है तब वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सन-श्रुतः) दानादि से प्रख्यात, तप और वेद में बहुश्रुत होकर (वाजस्य दीर्घ-श्रवसः पतिः) दीर्घ काल तक श्रवण करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य का पालक स्वामी हो जाता है।

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (इन्द्रः) सूर्य (हरिता) अपने प्रखर तेज से (श्मश्रूणि) भूमि पर लोमवत् उगे वनस्पतियों को (अभि प्रुष्णुते) जल से सींचता है, (सो चित् नु वृष्टिः) वही उत्तम वर्षा कहाती है। वैसे ही (इन्द्रः) धन-ऐश्वर्य देने वाला प्रभु (स्वा सचा यूथ्या) अपने सहयोगी समूहों को (अभि प्रुष्णुते) सींचता और बढ़ाता है, (सो चित् नु वृष्टिः) राजा की प्रजा के प्रति वही उत्तम वृष्टि है। वह राजा (सुते) ऐश्वर्य प्राप्त होने पर (सु-क्षयं अव वेति) उत्तम भवन को प्राप्त होता है, और (मधु वेति) मधुर सुखदायक अन्न प्राप्त करता है तब (यथा वातः वनम्) जैसे प्रबल

वायु वन को कंपा देता है, वैसे ही वह भी (वनम्) स्व-सैन्य को जलवत् (उद् धुनोति) संचालित करता और परसैन्य को त्रस्त करता है।

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः॥५॥

भा०—(यः) जो प्रभु वा राजा (वि-वाचः) विपरीत, विविध वाणी वालों और (मृध्रः-वाचः) मर्मवेधिनी वाणी का प्रयोग करनेवालों को (जघान) दण्ड देता है, और जो (पुरु) बहुत से (सहस्रा) अनेक (अशिवा) अकल्याणकारी दुष्टों को (जघान) नष्ट करता है, हम (अस्य) इसके ही (तत् तत् इत् पौंस्यं) उस २ बल पराक्रम का (गृणीमसि) वर्णन करते हैं। वह राजा वा प्रभु (पिता इव) पिता के समान (तविषीं वावृधे) बल वा सेना को बढ़ाता है और (शवः वावृधे) अन्न एवं ज्ञान की वृद्धि करता है।

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे॥ ६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वि-मदाः) मद से रहित तृप्ति-योग से युक्त होकर विद्वान् (ते सु-दानवे) उत्तम तुझ दाता के (अपूर्व्यं) आश्चर्यजनक, (पुरु-तमं) सबसे श्रेष्ठ (स्तोमं) गुणस्तवन को (अजीजनन्) प्रकट करते हैं। (अस्य इनस्य) उस तुझ स्वामी के (भोजनं विद्म हि) ऐश्वर्य को हम जानें और प्राप्त करें। (पशुं न गोपाः) गोपालक पशु को सदा अपने सामने रखता और बुलाता है वैसे ही हम (गो-पाः) इन्द्रियों के पालक होकर (त्वां पशुं आ करामहे) तुझ सर्वद्रष्टा को बुलावें और अपने समक्ष रखें।

माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि॥७॥२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वि-मदस्य तव ऋषेः) हर्ष आदि से युक्त द्रष्टा तेरे (एना सख्या) ये मैत्रीभाव (माकिः वि यौषुः) कोई न तोड़े

और ये कभी न टूटें। हे (देव) सब सुखों के देने वाले! हम (ते प्रमतिम्) तेरी बुद्धि को (विद्म हि) अवश्य जानें, (जामिवत्) भाई के प्रति बहिन के समान (ते) तेरे (सख्या) मित्रता के भाव (अस्मे शिवा निसन्तु) हमारे लिये कल्याणकारी हों। ऐसे ही प्रेम भाव (ते शिवानि सन्तु) तेरे प्रति हमें बांधने वाले हों। इति नवमो वर्गः॥

[२४]

ऋषिः विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुकः॥ देवताः—१—३ इन्द्रः। ४—६ अश्विनौ॥ छन्दः—१ आस्तारपंक्तिः। २ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। ३ शङ्कुमती पंक्तिः। ४, ६ अनुष्टुप्। ५ निचृदनुष्टुप्॥ षडृचं सूक्तम्॥

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम्।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! प्रभो! राजन्! तू (इमं सुतम्) इस उत्पन्न हुए (मधुमन्तं) मधुर अन्न जलादि से युक्त (सोमम्) ऐश्वर्यमय (चमू) भूमि और आकाश में स्थित जगत् को पुत्रवत् (पिब) पालन कर। और हे (पुरु-वसो) सर्वान्तर्यामिन्! तू (अस्मे) हमें (सहस्रिणं रयिं नि धारय) सहस्रों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान कर। हे मनुष्यो! वह (विवक्षसे) महान् प्रभु (वः वि-मदे) तुम सबको विविध प्रकार से सुखी करता है।

त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे॥२॥

भा०—हे (शची-पते) शक्तियों के पालक! हम लोग (यज्ञेभिः उक्थेभिः हव्येभिः) यज्ञों, मन्त्रों और आहुति योग्य पदार्थों सहित (त्वाम् ईमहे) तुझे प्राप्त होते हैं। तू (शचीनां श्रेष्ठं वार्यं नः धेहि) कर्मों का सर्वोत्तम वरणयोग्य फल दे। हे मनुष्यों! वह (विवक्षसे वः विमदे) प्रभु आपके लिये नाना तृप्ति-योग कराने में समर्थ है।

यस्पतिर्वार्याणामसि रध्रस्य चोदिता ।
इन्द्र स्तोतॄणामविता वि वो मदे द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (यः) जो तू (वार्याणाम् पतिः असि) वरण करने योग्य धनों का स्वामी है और (रध्रस्य चोदिता) आराधक को भी सन्मार्ग में चलाने वाला और तू (स्तोतॄणाम् अविता) स्तुतिशील जनों का रक्षक है, तू (नः द्विषः) हमें द्वेष करने वाले जनों (अंहसः) और पाप से (पाहि) बचा । (वि वः मदे विवक्षसे) प्रभु महान् है । हे मनुष्यों ! वह तुम्हें सुख देने में समर्थ है ।

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (मायाविना) सृष्टि के उत्पादक परिपक्व रज वीर्य की शक्तियों से युक्त (शक्रा) हे शक्तियुक्त पति-पत्नी वा स्त्री पुरुषों ! (युवं) आप दोनों (समीची) परस्पर मिलकर (निर् अमन्थतम्) निर्मन्थन करो (वि मदेन यद् ईडिता) विविध हर्ष प्रीतियोगादि से प्रेरित होकर हे (नासत्या) सत्य व्रतचारी जनों ! आप (निर् अमन्थतम्) निर्मन्थन अर्थात् यज्ञादि का मन्थन कर अग्न्याधान करो।

विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।
नासत्यावब्रुवन् देवाः पुनरा वहतादिति ॥ ५ ॥

भा०—(समीच्योः) परस्पर आदरपूर्वक संगत हुए और (निष्पतन्त्योः) संसार में आने वाले दोनों व्यक्तियों पर (विश्वेः देवाः) सब विद्वान् जन (अकृपन्त) कृपा करें । (देवाः) वे विद्वान् (नासत्यौ अब्रुवन्) परस्पर असत्य आचरण न करने वाले स्त्री और पुरुष को उपदेश करें कि (पुनः आवहतात् इति) सत्य प्रतिज्ञा के अनन्तर उत्साहित होकर पुनः २ गृहस्थ का भार धारण करो ।

मधुमन्मे परायणं मधुमत्पुनरायनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ॥ ६ ॥ १० ॥

भा०—(मे परा-अयनम्) मेरा दूर देश में गमन (मधुमत् स्नेह) से युक्त हो और (पुनः आ-अयनम्) पुनः लौट आना भी (मधुमत्) प्रीति से युक्त हो। हे (देवाः) उत्तम फल के इच्छुक स्त्री-पुरुषों ! इस प्रकार (युवं) आप दोनों (देवतया) दान के भाव से (नः मधुमतः कृतम्) हमें मधुर स्नेह से युक्त बनाओ। इति दशमो वर्गः ॥

[२५]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वसुकृद्वा वासुक्रः ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, १०, ११ आस्तारपंक्तिः । ३—५ आर्षी निचृत् पंक्तिः । ७-९ आर्षी विराट् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्गावो न यवसे विवक्षसे १॥

भा०—हे परमेश्वर ! (नः) हमें (भद्रं मनः अपि वातय) कल्याणकारी चित्त प्राप्त करा। (भद्रं दक्षम् उत क्रतुम्) सुखदायी बल एवं कर्मसामर्थ्य प्रदान कर। (यवसे न गावः) पशुगण जैसे चारे के इच्छुक होते हैं, वे उसे प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं वैसे ही जीवगण (ते सख्ये अन्धसः रणन्) तेरे मित्रभाव में रह कर नाना प्रकार से अन्न, कर्मफल प्राप्त कर आनन्द लाभ करते हैं। हे मनुष्यों ! (विवक्षसे वः वि मदे) वह महान् प्रभु आप लोगों को विविध आनन्द देने वाला है।

हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे वि तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे॥२॥

भा०—हे (सोम) उत्पादक और प्रेरक ! (अध) और (इमे) ये सब (मम कामाः) मेरे कामनाशील (वसूयवः) बसने योग्य लोकों और ऐश्वर्यों

के इच्छुक जन (विश्वेषु धामसु) समस्त स्थानों से (हृदि-स्पृशः) अतिप्रिय होकर (ते आसते) तेरी उपासना करते हैं और (वि तिष्ठन्ते) स्थिर रहते हैं। हे मनुष्यों! वह प्रभु (विवक्षसे वः वि मदे) महान् और हर्ष देने वाला है।

उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ॥३॥

भा०—(उत) और हे (सोम) सर्वशासक! (अहं पाक्या) मैं परिपक्व बुद्धि से (ते व्रतानि प्र मिनामि) तेरे कर्मों को प्राप्त करूं। तू (वधात् अभि चित्) विनाश से बचा कर (सूनवे पिता इव नः मृड) पुत्र को पिता के समान हमें सुखी कर। हे मनुष्यों! वह (विवक्षसे वः वि मदे) महान् प्रभु आप लोगों को विविध आनन्द देवे।

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ॥४॥

भा०—(सर्गासः अवतान् इव) जल जैसे स्वभावतः नीचे की ओर चले जाते हैं और (सर्गासः अवतान् इव) जैसे जलार्थी लोगों की रस्सियां कूपों की ओर जाती हैं वैसे ही हे (सोम) सर्वशक्तिमन्! (नः धितयः) हमारी समस्त स्तुतियां (क्रतुं सं यन्ति उ प्र यन्ति) जगत् के विधाता तुझ तक पहुँचती हैं। तू (नः) हमें (चमसान् इव जीवसे) प्राण और दीर्घ-जीवन के लिये अन्न से पूर्ण पात्रों के समान नाना पदार्थ (धारय) प्रदान कर। हे मनुष्यों! (विवक्षसे वः विमदे) वह महान् प्रभु आप सबको आनन्द प्रदान करता है।

तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे। गृत्सस्य
धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥५॥११॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यप्रद! (त्ये) वे (नि-कामासः) तुझे चाहने वाले (धीराः) बुद्धिमान् जन (तवसः) बलशाली (गृत्सस्य) स्तुत्य (तव)

तेरी (शक्तिभिः) शक्तियों से (गोमन्तम् अश्विनं व्रजं वि ऋण्विरे) गौवों और अश्वों से समृद्ध पशुशाला के समान ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों से सम्पन्न इस देह को प्राप्त करते हैं। (विवक्षसे) वह महान् प्रभु हे मनुष्यों! (वः वि मदे) तुम्हें बहुत आनन्द देने वाला हो। इत्येकादशो वर्गः॥

पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत्। समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वा सम्पश्यन्भुवना विवक्षसे॥ ६॥

भा०—हे (सोम) जगदुत्पादक! तू (नः) हमें (पशुं) पशु को गोपाल के समान (रक्षसि) रक्षा करता है और तू (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से (वि-स्थितं जगत्) व्यवस्थित जगत् की भी (रक्षसि) रक्षा करता है। हे प्रभो! तू (विश्वा भुवना) समस्त भुवनों को (सम्-पश्यन्) देखता हुआ (जीवसे) जीव के सुख के लिये (सम् आकृणोषि) सब पदार्थों की उचित व्यवस्था करता है। हे मनुष्यो! (विवक्षसे वः वि मदे) वह प्रभु तुम्हें सुख देने में समर्थ है।

त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव। सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे॥ ७॥

भा०—हे (सोम) जगत् सञ्चालक प्रभो! तू (अदाभ्यः) अविनाशी है। (नः विश्वतः गोपाः भव) तू हमारा सब प्रकार से रक्षक हो। हे (राजन्) राजन्! तू (स्रिधः) हमारा नाश करने वाले दुष्टों को (अप सेध) दूर कर। (दुः-शंसः) कठोर बोलने वाले (नः मा ईशत) हम पर शासन न करें। हे मनुष्यों! (विवक्षसे) वह महान् प्रभु (वः वि मदे) आप लोगों को आनन्द देने के लिये हो।

त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि। क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे॥८॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! (त्वं सु-क्रतुः) तू उत्तम क्रियावान् और (क्षेत्रवित्-तरः) देहरूप निवासस्थान को प्राप्त कराने वाला है।

(वयः-धेयाय) अन्न, बल और ज्ञान के लिये (जागृहि) सदा जाग । तू (नः) हमें (अहंसः मनुषः) पापी मनुष्य से और (द्रुहः मनुषः) द्रोही मनुष्य से (पाहि) बचा । हे मनुष्यों ! (विवक्षसे वः वि मदे) वह महान् प्रभु आप लोगों को सुख दे ।

त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।
यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे९

भा०—हे (वृत्रहन्तम) दुष्टों के नाशक ! हे (इन्दो) परमैश्वर्यवन् ! (त्वं नः शिवं सखा) तू हमारा कल्याणकारी मित्र है और तू (इन्द्रस्य शिवः सखा) ऐश्वर्यवान् का भी सखा है । (यत्) क्योंकि (तोक-सातौ समिथे) धनैश्वर्य की प्राप्ति के लिये संग्राम में (युद्धयमानाः) युद्ध करते हुए मनुष्य भी (सीं हवन्ते) तुझे रक्षार्थ पुकारते हैं । (विवक्षसे वः वि मदे) वह प्रभु हे मनुष्यों ! तुम्हें विविध सुख देने में समर्थ है ।

अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो विं वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे ॥१०॥

भा०—(अयं घ) यह निश्चय से (तुरः) शीघ्र कार्य करने में चतुर (इन्द्रस्य मदः) समृद्ध राष्ट्र को सन्तुष्ट करने में समर्थ, (प्रियः) सर्वप्रिय होकर (वर्धत) वृद्धि को प्राप्त होता है । और (अयं) यह (कक्षीवतः) कार्य करने के साधनों से युक्त (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष की (मतिं) बुद्धि को (वर्धयत्) बढ़ा देता है । हे मनुष्यों ! (विवक्षसे वः वि मदे) वह महान् शक्तिशाली तुम्हें सुख देने में समर्थ है ।

अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः । अयं सप्तभ्य
आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे ॥ ११ ॥ १२ ॥

भा०—(अयं) वह प्रभु (दाशुषे विप्राय) दानशील (विप्राय) बुद्धिमान् पुरुष को (गोमतः वाजान्) वाणी से युक्त ज्ञानों और भोग्य

अर्थों को (इयर्त्ति) प्राप्त कराता है। (अयं) वह (सप्तभ्यः) सातों को (वरं) वरण करने योग्य ज्ञान (आ) प्रदान करता है। और (विवक्षसे) वह महान् प्रभु (वः) आप लोगों के (अन्धं श्रोणं च प्रतारिषत्) चक्षु से, 'श्रोण' अर्थात् चरण आदि से हीन जीव को (मदे) मोक्षानन्द देने के लिये (प्र तारिषत्) पार पहुँचा देता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

[२६]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१ उष्णिक ४ आर्षी निचृदुष्णिक्। ३ ककुम्मत्यनुष्टुप्। ५—८ पादनिचृदनुष्टुप्। ९ आर्षी विराडनुष्टुप्। २ आर्ची स्वराडनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः।

प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः ॥ १ ॥

भा०—(नियुतः) लक्षों (स्पार्हाः) प्रेमयुक्त (मनीषाः) मन की इच्छाएं (अच्छ प्र यन्ति) भली प्रकार स्वयं निकलती हैं (माहिनः पूषा) महान् पोषक प्रभु (नियुद्-रथः) सहस्रों, लक्षों लोकों का स्वामी, महारथी के समान (दस्रा) कर्म करने वाले जीवों की (प्र अविष्टु) रक्षा करे।

यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः।

विप्र आ वंसद्धीतिभिश्चिकेत सुष्टुतीनाम् ॥ २ ॥

भा०—(अयं जनः) यह मनुष्य (यस्य) जिस प्रभु के (वाताप्यं) वायु वा प्राण द्वारा प्राप्त होने योग्य, जीवनप्रद (त्यत् महित्वं) महान् सामर्थ्य को (धीतिभिः आ वंसत्) खान-पान क्रियाओं, स्तुतियों और ध्यान धारणाओं द्वारा प्राप्त करता है वह (विप्रः) मेधावी ही (सु-स्तुतीन चिकेत) उत्तम स्तुतियों को भली प्रकार जानता है।

स वेद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा।

अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (इन्दुः न) ऐश्वर्यवान्, दयार्द्र के समान (पूषा) सर्वपोषक (वृषा) सुखों को बरसाने वाला प्रभु (स-स्तुतीनां वेद) उत्तम स्तुतियों को प्राप्त करता है। वही (प्सुरः अभि प्रुषायति) रूपवान् प्राणियों पर कृपाजल वृष्टि करता है और वह (व्रजं नः आ प्रुषायति) हमारे गन्तव्य मार्ग वा गोष्ठवत् देह को भी सींचता है।

मंसीमहि त्वा वयमस्माकं देव पूषन्।
मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (पूषन्) जगत् के पोषक! हे (देव) जगत् के प्रकाशक! (वयम्) हम (त्वा) तुझे (अस्माकं मतीनां) अपनी बुद्धियों को (साधनं) सफल करने वाला और (विप्राणां च) बुद्धिमान् पुरुषों का (आधवं च) स्वामी और पवित्र करने वाला (मंसीमहि) जानते हैं।

प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम्।
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (यज्ञानां प्रति-अर्धिः) यज्ञों का प्रत्यक्ष फलदाता, (रथानाम् अश्व-हयः) रथों में लगे घोड़ों के समान रम्य पदार्थों और सूर्यादि लोकों का सञ्चालक है। (सः) वह (ऋषिः) सब पदार्थों का द्रष्टा, (मनुः) ज्ञानमय, (विप्रस्य सखः) बुद्धिमान् (यवयत्) सबके दुःखों को दूर करता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च।
वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥ ६ ॥

भा०—(आ-धीषमाणायाः) सब प्रकार से धारण की गई (शुचायाः च) सत्व गुण से युक्त, कान्तिमती प्रकृति का और (शुचस्य च) 'स्व-प्रकाश' आत्मा का भी (पतिः) पालक है। और जैसे (वासः-वायः अवीनां वासांसि मर्मृजत्) तन्तुवाय भेड़ की ऊन के वस्त्र स्वच्छ रूप में बनाता है

वैसे ही वह प्रभु (वासः-वायः) प्राणियों के रहने योग्य जगत्-पट का बनाने वाला (अवीनाम्) अरक्षित जीवों के लिये (वासांसि आ मर्मृजत्) आच्छादक देह वा बसने योग्य नाना लोक बनाता है।

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा ।
प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः ॥ ७ ॥

भा०—वह प्रभु (वाजानां इनः) समस्त बलों और पदार्थों का स्वामी और (पतिः) पालक है (पुष्टीनां इनः) वही अन्न समृद्धियों का स्वामी, (सखा) सबका मित्र है। वह (हर्यतः) तेजस्वी (श्मश्रु वृथा प्र दूधोत्) बालों के समान जगत् के पदार्थों को अनायास सञ्चालित करता है और (यः अदाभ्यः) वह अविनाशी है।

आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (पूषन्) पालक प्रभो! तू (विश्वस्य-अर्थिनः) समस्त प्रार्थी जनों का (सखा) मित्र है। तू (सनः-जाः) अजन्मा (अनपच्युतः) ध्रुव, अविनाशी है। (ते रथस्य धुरं) तेरे जगत्-चक्र के धारक बल को (अजाः ववृत्युः) प्रकृति और आत्मा तथा अग्नि, वायु, विद्युत्, जल आदि चला रहे हैं।

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः ।
भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥ ९ ॥ १४ ॥

भा०—(पूषा) जगत् का पोषक प्रभु (माहिनः) महान् है। वह (अस्माकं रथं) हमारे (रथ) रमण योग्य देह को (ऊर्जा) शक्ति से (अविष्टु) संचालित करे। वह (वाजानां वृधे भुवत्) बलों और ज्ञानों को बढ़ाने वाला हो। वह (नः इमं हवम् शृणवत्) हमारी इस प्रार्थना को सुने। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२७]

वासुक्र ऐन्द्रः ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१,५,८,१०,१४,२२, त्रिष्टुप्। २, ९, १६, १८ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ११, १२, १५, १९–२१, २३ निचृत् त्रिष्टुप्। ६, ७, १३, १७ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। २४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥
चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

('वसुक्रः' वसु करोति तादृशः इन्द्र एव ऐन्द्रः, सोऽस्य सूक्तस्य ऋषिः)

अस॒त्सु मे॑ जरितः॒ साभि॑वे॒गो यत्सु॑न्व॒ते यज॑मानाय॒ शिक्ष॑म्।
अना॑शीर्दाम॒हम॑स्मि प्रह॒न्ता स॑त्य॒ध्वृतं॑ वृजिना॒यन्त॑मा॒भुम् ॥१॥

भा०—हे (जरितः) उपदेष्टः! (मे सः अभि-वेगः सु असत्) मेरा वह उत्साह और वेग सदा बना रहे (यत्) कि मैं (सुन्वते यजमानाय शिक्षम्) यज्ञशील, देवोपासक को दान दिया करूं। मैं ईश्वर, राजा, (अनाशीः-दाम्) आशा अनुरूप न देने वालों को (प्र-हन्ता अस्मि) नाश करने वाला हूँ। मैं (सत्य-ध्वृतं) सत्य के विनाशक और (वृजिनयन्तम्) पापाचरण करने वाले (आभुम्) शक्तिशाली को (प्र-हन्ता अस्मि) नष्ट कर देता हूँ।

यदीद॒हं यु॒धये॑ स॒न्नया॒न्यदे॑वयून्त॒न्वा॒३ शूशु॑जानान्।
अमा॑ ते॒ तुम्रं॑ वृष॒भं प॑चानि ती॒व्रं सु॒तं प॑ञ्चद॒शं नि षि॑ञ्चम् ॥२॥

भा०—(यदि इत्) जब भी (अहं) मैं (युधये) युद्ध के निमित्त (तन्वा शूशुजानान्) विस्तृत सेनादि से बढ़ते हुए (अदेवयून्) ईश्वर की पूजा न करने और विद्वानों को दान न देने वाले दुष्ट जनों को (सं-नयानि) लक्ष्य करके सैन्य बल को एकत्रित करूं तब मैं हे प्रभो! (ते) तेरे (तुम्रं) बलशाली (वृषभम्) प्रजा पर कृपा-वर्षण करने वाले बल को (पचानि) परिपक्व करूं। मैं (तीव्रं) अति तीक्ष्ण, (सुतं) अभिषेक योग्य (पञ्च-दशं) १५ वें पद पर स्थित, पूर्ण चन्द्रवत् विराजमान, बलवान् पुरुष को (नि-षिञ्चम्) मुख्य पद पर अभिषिक्त करूं।

चन्द्रमा वै पञ्चदशः । एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते पञ्चदश्यामापूर्यते । तै० १ । ५ । १० । ५ ॥ चतुर्दश ह्येवैतस्यां करूकराणि वीर्यं पञ्चदशम् ॥ गो० पू० ५ । ३ ॥

नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥ ३ ॥

भा०—(अदेवयून्) विद्वानों, और प्रभु को न चाहने वाले शत्रुओं को (सम्-अरणे) संग्राम में (जघन्वान्) विनाश करता हूँ (यः इति ब्रवीति) जो ऐसा कहता है (तं) उसको (अहं न वेद) मैं नहीं जानता । (यद् ऋघावत्) जो हिंसादि से युक्त (सम्-अरणम्) संग्राम को (अव-अख्यत्) देखता हूँ । (आत् इत्) तभी विद्वान् (मे) मेरे (वृषभा) बलयुक्त कर्मों का (प्र ब्रुवन्ति) वर्णन करते हैं ।

यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ॥४॥

भा०—(यत्) जब मैं (अज्ञातेषु वृजनेषु) अज्ञात मार्गों में (आसन्) होऊं तब (विश्वे मघवानः) सब उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (सतः) सज्जन (मे) मेरे (आसन्) रहें । जैसे सूर्य (क्षेमे) जगत् रक्षणार्थ, (आ सन्तं आभुं) जल को एकत्र करके उसे पर्वतों पर मेघरूप में प्रेरित करता है वैसे ही (क्षेमे) जगत् के रक्षण के लिये (आ सन्तं आभुं) सब तरफ फैले शत्रु को (जिनामि वा इत्) अवश्य पराजित करूं (पाद-गृह्य) उसका पैर पकड़ और उसका आश्रय छीन कर उसे (पर्वते प्र क्षिणाम्) पर्वत से खदेड़ दूं ।

न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात् ॥५॥१५॥

भा०—(मां) मुझको कोई भी (वृजने) गन्तव्य मार्ग से (न वा उ वारयन्ते) नहीं हटा सकते । (यद् अहं मनस्ये) जब मैं चाहता हूँ तो

(पर्वतासः न) पर्वतों के समान विशाल पदार्थ भी मुझे उत्तम मार्ग से रोक नहीं सकते (मम स्वनात्) मेरे शब्द से (कृणु-कर्णः भयाते) अल्प-शक्ति जन भयभीत होता है। (एव इत् अनुद्यून्) ऐसे ही सब दिनों, (किरणः) किरणों वाला सूर्य भी मुझ ईश्वर की शक्ति से (सम् एजात्) चला करता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

दर्शं॒न्वत्र॑ शृत॒पाँ अ॑नि॒न्द्रान्बा॑हु॒क्षदः॒ शर॑वे॒ पत्य॑मानान्।
घृषुं॑ वा॒ ये नि॑नि॒दुः सखा॑य॒मध्यू॒न्वे॑षु प॒वयो॑ ववृत्युः ॥ ६ ॥

भा०—मैं (अत्र) इस जगत् में (अनिन्द्रान्) ऐश्वर्यवान्, प्रभु से रहित (शृत-पान्) परिपक्व फल का उपभोग करने वालों को और (बाहु-क्षदः) पीड़ित करने वाले साधनों से दूसरों के नाशकों को और (शरवे) हिंसक बल को प्राप्त करने के लिये (पत्यमानान्) दौड़ते हुए ऐश्वर्य पाने वालों को भी देखता हूँ। (वा) और उनको भी देखता हूँ (ये) जो (घृषुं सखायम्) अपने सहायक प्रभु की (निनिदुः) निन्दा करते हैं (एषु) उन पर (उ नु) निश्चय से ही (पवयः अधि ववृत्युः) मेरे वज्र शासन करते हैं।

अभू॒र्वौक्षी॒र्व्यु१॒॑ आयु॑रान॒ड् दर्ष॒न्नु पूर्वो॒ अप॑रो॒ नु द॑र्षत्।
द्वे प॒वस्ते॒ परि॒ तं न भू॑तो॒ यो अ॒स्य पा॒रे रज॑सो वि॒वेष॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (अभूः उ) अजन्मा ही है, जो (औक्षीः) जगत् को उत्पन्न करने के लिये बीज बोता है। तू (आयुः आनट्) समस्त जीव-सर्ग में व्यापक है। (पूर्वः दर्षत् नु) जो पूर्व विद्यमान या शक्तिशाली होता है वही सबका विदारण करता है (अपरः नु दर्षत्) और दूसरा कोई विदारण नहीं कर सकता। (द्वे) ये आकाश और भूमि, जीव और प्रकृति (पवस्ते) विस्तृत होकर भी (तं न परि भूतः) उसको नहीं ढांप सकते (यः) जो (अस्य रजसः पारे विवेष) इस लोक के पार भी व्याप रहा है।

गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥ ८ ॥

भा०—(सह-गोपाः गावः चरन्तीः यवम्) जैसे गोपाल के साथ चरती हुई गौएं यव आदि को प्राप्त होती हैं वैसे ही (सह-गोपाः) रक्षक के साथ, (गावः) ये भ्रमणशील जीव (चरन्तीः) गति करते हुए (प्रयुताः) व्यवस्थित होकर (यवं अक्षन्) अपना कर्मफल भोगते हैं । और मैं (अर्यः) स्वामी के समान (ताः अपश्यम्) उन सबको देखता हूँ । वे (अर्यः अभितः) स्वामी के चारों ओर (हवाः इत्) बुलाये हुए से (सम् आयन्) एकत्र हो जाते हैं (आसु) उनमें (स्व-पतिः) स्वयं प्रभु (कियत् छन्दयाते) कितना ही आनन्द प्रदान करता है ।

सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद् ववन्वान् ॥९॥

भा०—(यत्) क्योंकि (वयम् जनानाम्) जन्मधारी जीव गणों में हम सब (यव-सादः) चारे के समान कर्मफल को भोगने वाले हैं और (उर्वज्रे अन्तः) महान् आकाश के भीतर हम लोग (यव-अदः) अन्नवत् भोग्यों को भोगने वाले हैं । (अत्र) इस लोक में (युक्तः) समाहित चित्त होकर मनुष्य (अव-सातारं) उस प्रभु को (इच्छात्) चाहा करे । (अथो) और वह (ववन्वान्) दाता प्रभु (अयुक्तं युनजत्) मनोयोग न देने वाले को सन्मार्ग में लगाता है ।

अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः १०।१६

भा०—(अत्र इत् उ) यहां ही (मे) मेरे विषय में (उक्तम् सत्यं मंससे) हे जीव ! तू उपदेश किये को ठीक ठीक जान ले कि (यत् द्विपात् च चतुष्पात् च) जो भी दोपाये मनुष्य वा चौपाये जीव हैं उनको मैं (सं

सृजानि) उत्पन्न करता हूँ। (अत्र) इस संसार में (यः) जो (स्त्रीभिः) स्त्रियों के सदृश पराधीन वा सेनाओं से युक्त होकर भी (वृषणं) बलवान् मुझसे (पृतन्यात्) युद्ध करता है मैं (अयुद्धः) विना युद्ध किये ही (अस्य वेदः वि भजानि) उसके धन को नष्ट भ्रष्ट कर देता हूँ। इति षोडशो वर्गः॥

यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम्।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वावरेयात्॥ ११॥

भा०—(यस्य) जिसके अधीन (अनक्षा) नेत्र आदि ज्ञान साधनों से रहित (दुहिता) सब ऐश्वर्यों को देने वाली प्रकृति पुत्रीवत् (जातु आस) है। (कः विद्वान्) कौन ज्ञानी (ताम् अन्धाम्) उस अन्धी प्रकृति को (अभि मन्याते) अपना जानेगा। (यः ईं वहाते) जो इसको धारण करता है और (यः ईं वरेयात्) जो इसको वारण करता है (तं) उस (मेनिं) वज्रवत् दृढ़ बल को (कतरः प्रति मुचाते) कौन धारण करता है।

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्॥१२॥

भा०—(कियती योषा) कितनी स्त्री ऐसी हैं जो (वधूयोः मर्यतः) वधू की कामना करने वाले मनुष्य के (पन्यसा वार्येण परिप्रीता) स्तुति-युक्त वचन और धन से सन्तुष्ट हो जाती हैं। वस्तुतः (भद्रा वधूः भवति) वही वधू कल्याणकारिणी होती है (यत् सुपेशाः) जो सुभूषित होकर (सा) वह (जने चित् मित्रं स्वयं वनुते) मनुष्यों के बीच अपने मित्र पुरुष को पति रूप से स्वीकार करती है।

पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम्।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम्॥१३॥

भा०—पुरुष प्रकृति को किस प्रकार व्यापता है। (पत्तः) व्याप्त होकर वह पुरुष (जगार) इस जगत् को अपने भीतर लील लेता है।

और (प्रत्यञ्चम् अत्ति) उसके प्रति व्याप्त प्रकृति का वह मानो उपभोग करता है, इस जगत् के (शिरः वरूथम्) शिरोवत् ऊर्ध्वतन भाग को (शीर्ष्णा प्रति दधौ) अपने शिर के तुल्य आकाश रूप से धारण करता है। वह (ऊर्ध्वाम्) ऊपर विद्यमान प्रकृति को (उपसि आसीनः क्षिणाति) मानो उसके समीप बैठकर प्रेरित करता है और (उत्तानाम् भूमिम्) उत्तान भूमि को भी (न्यङ् अनु एति) मानों नीचे व्यापकर उसके प्रत्येक अवयव में व्याप्त होता है।

बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः ।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ॥१४॥

भा०—वह प्रभु (बृहन्) महान् (अच्छायः) अन्धकार वा मृत्यु से रहित (अपलाशः) 'पल' अर्थात् कर्मफल के अशन अर्थात् भोग से रहित, (अर्वा) दुःखों का नाशक, (माता) जगत् का निर्माता और पदार्थों का प्रमाता, (वि-षितः) बन्धनों से रहित, (गर्भः) सब जगत् को धारण, आकर्षण और प्रलीन करने वाला होकर (अत्ति) इस चराचर जगत् को खा जाता है। वह (धेनुः) जीवों को आनन्दरस-पान कराने वाला प्रभु (अन्यस्याः) अपने से भिन्न प्रकृति के (वत्सं) पुत्रवत् उत्पन्न जगत् को (रिहती) बच्चे को प्रेम से चाटती गौ के समान उस पर अनुग्रह करता है, (मिमाय) शब्द करता, वेदवाणी का उपदेश करता है, वह (कया भुवा) भला किस अभिप्राय या भाव से (ऊधः) जगत को पालन करने के लिये अन्तरिक्ष में सूर्य, रात्रि आदि जीवनदायक पदार्थों को, बच्चे के प्रति स्तन-वत् (नि दधे) प्रदान करता है।

सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात्समजग्मिरन्ते । नव पश्चातात्स्थिविमन्त आयन्दश प्राक्सानु वि तिरन्त्यश्नः ॥१५॥१७

भा०—उस (अश्नः) राजा के तुल्य आत्मा के (सप्त वीरासः) सात प्राण (अधरात्) नाभि से (उत् आयन्) ऊपर को उठते हैं। और (ते)

वे ही (अष्ट) आठ होकर (उत्तरात्-तात्) ऊपर से आकर (सम् अजग्मिरन्) एक स्थान पर संगत होकर बैठते हैं। (ते) वे (पश्चात्तात्) पीछे की ओर (स्थिवि-मन्तः) स्थिति वाले होकर (आयन्) प्राप्त होते हैं और वे ही (दश) दश होकर (अश्नः) भोक्ता आत्मा को (सानु) सुख-दुःखादि की (वि तिरन्ति) वृद्धि करते हैं। सप्त वीर शिरोगत सात प्राण नाभि से उद्गत होते हैं, वे उत्तर शिरोभाग में वाक्रूप अष्टमी शक्ति सहित आठ होकर मूर्धाभाग में संगत होते हैं। पीछे पीठ की ओर से देखें तो वे नव द्वारवत् हैं वा पीठ के नव मोहरे रूप में ग्रीवा दशवीं है, भोक्ता शरीर के वश ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय उसके सुख-दुःख का भोग करते हैं। इति सप्तदशो वर्गः ॥

दुशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥ १६ ॥

भा०—(दशानाम्) उन दशों के बीच में (एकं) एक, ग्यारहवें वा दशों में से एक दशवें को (समानम्) सबके प्रति समान भाव से रहने वाला, विशेष शक्ति से सम्पन्न, (कपिलम्) सबको कंपित करने वाला जानते हैं। (तम्) उसको (पार्याय क्रतवे) परम स्थान में प्राप्त कराने वाले कर्म-यज्ञादि करने के लिये (हिन्वन्ति) योगी जन प्रेरित करते हैं। (माता) जगत्-निर्मात्री प्रकृति उसके जीवात्मा को (अवेनन्तम्) विशेष कामना न करने वाले उस पुरुष को (वक्षणासु सुधितं गर्भम्) गर्भ-धारण में समर्थ नाड़ियों के बीच सुख से धारण किये गर्भ के समान ही मानो (तुषयन्ती बिभर्त्ति) प्रसन्न होकर धारण करती है।

पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्व१न्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥ १७ ॥

भा०—वे (वीराः) दशों प्राण (पीवानं) सबके पोषक, (मेषं) आत्मा को (अपचन्त) परिपक्व करते हैं और वे (नि-उप्ताः अक्षाः) देह में अंकुरित

इन्द्रियगण (अनु) उस आत्मा के इच्छानुसार (दीवे) उसके सुख के लिये (आसन्) होते हैं और (अप्सु अन्तः) प्राणों में व्यापक होकर (द्वा) दो मुख्य प्राण, अपान (पवित्रवन्ता) शरीर के शोधक बल से युक्त होकर (पुनन्ता) शरीर को पवित्र करते हुए (अन्तः चरन्ति) शरीर के कण २ में विचरते हैं।

वि क्रो॑श॒नासो॒ विष्व॑ञ्च॒ आय॒न्पचा॑ति॒ नेमो॑ न॒हि पक्ष॑द॒र्धः ।
अ॒यं मे॑ दे॒वः स॑वि॒ता तदा॑ह॒ द्र्व॑न्न॒ इद्व॑नवत्स॒र्पिर॑न्नः ॥ १८ ॥

भा०—(क्रोशनासः) उस प्रभु को पुकारते हुए (विष्वञ्चः) विविध मार्गों में जाने वाले जीव (वि आयन्) इस लोक में आते हैं। (नेमः) उनमें एक वर्ग (पचाति) पकाता है अर्थात् एक तप करके साधना करता है और (अर्धः नहि पक्षत्) दूसरा वर्ग तप नहीं करता, वह भोग करता है। (अयं) यह (देवः) सुख दुःखादि कर्म फलों का दाता (सविता) सूर्यवत् तेजस्वी प्रभु (मे तत् आह) मुझे उस परम पद का उपदेश करे। वस्तुतः (द्रुवन्नः इत्) जैसे काष्ठ को अन्नवत् खाने वाला अग्नि (सर्पिः-अन्नः) घृत को भक्षण करने वाला होकर (वनवत्) आहुति के पदार्थों को खा जाता है, वैसे ही जो जीव (द्रुवन्नः) वनस्पतियों का अन्नवत् भोग करता है और जो (सर्पिः-अन्नः) संसार के जन्म मरण रूप सुख-दुःखों का भोग करता है वही (वनवत्) ऐश्वर्यों का भोग करता है।

अप॑श्यं॒ ग्राम॒ं वह॑मानमा॒राद॑च॒क्रया॑ स्व॒धया॒ वर्त॑मानम् ।
सिष॑क्त्य॒र्यः प्र यु॒गा जना॑नां स॒द्यः शि॒श्ना प्र॑मिना॒नो नवी॑यान् १९

भा०—मैं (अचक्रया) स्वयं कार्य न करने वाले, जड़ (स्वधया) अपने आप जगत् को बनाते और चलाते हुए और (आरात्) अनादि-काल से प्रवाह रूप से (ग्रामं वहमानः) इस भूत-संघ को वहन करते हुए उस प्रभु को (अपश्यम्) देख रहा हूँ। वह (नवीयान्) स्तुत्य, (अर्यः) स्वामी (सद्यः) सदा (शिश्ना प्रमिनानः) दुःखदायी कारणों का

नाश करता हुआ (जनानां युगा) जीवों के जोड़ों को (प्र सिसक्ति) उत्पन्न करता और मिलाता है ।

एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥२०।१८॥

भा०—हे प्रभो ! (मे प्रमरस्य) प्राणों को त्याग कर मरने वाले मेरे (एतौ) ये दोनों (गावौ) प्राण और अपान-रथ में लगे दो बैलों के समान (युक्तौ) देह में जुड़े हैं, उन दोनों को (मो सु प्रसेधीः) तू कभी दूर न कर । प्रत्युत (मुहुः इत्) बार २ (ममन्धि) जोड़ । (अस्य) इस जीव के (आपः) सूक्ष्म शरीर (चित्) ही (अस्य अर्थं विनशन्ति) इसको प्राप्य लोक तक पहुँचाते हैं । और वह प्रभु (सूरः च) सूर्य के समान और (मर्कः) समस्त जगत् का शोधक (उपरः) मेघ के समान पदार्थों का दाता (बभूवान्) है । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥ २१ ॥

भा०—(अयं) यह (यः) जो (वज्रः) दुःखों को वारण करने वाला, सबका सञ्चालक (पुरु-धा) जीवों को धारण करने में समर्थ (वि-वृत्तः) विविध प्रकार से वर्त्त रहा है, वह (सूर्यस्य) सूर्य के सदृश सर्वसंचालक (बृहतः) महान् प्रभु के (पुरीषात्) अखंड ऐश्वर्य से ही (अवः) हमें प्राप्त होता है । (एना परः) इस लोक में दृष्ट प्रभु के ऐश्वर्य से उत्कृष्ट (अन्यत्) दूसरा भी (श्रवः इत् अस्ति) श्रवण करने योग्य परमैश्वर्य है (तत्) उसको (अव्यथी) बाधादि से रहित (जरिमाणः) बन्धनों को जीर्ण करने और प्रभु की स्तुति वाले भक्त (तरन्ति) प्राप्त करते हैं ।

वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद् गौस्ततो वयः प्र पतान्पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२॥

भा०—(वृक्षे वृक्षे) मानो धनुष् २ में (नियता) बंधी (गौः मीमयत्) डोर झनकारती है और (ततः) उससे (पुरुषादः वयः प्रपतान्) देह-पुर में बसे जीवों को खाने वाले तीर निकल रहे हैं। (अथ इदं विश्वम् भुवनं) इसी से यह समस्त उत्पन्न जगत् (भयाते) अनुभव करता है और (इन्द्राय सुन्वत्) उस प्रभु की पूजा करता और उसी (ऋषये च) सर्वद्रष्टा के लिये (शिक्षत्) दान देता है।

देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन्।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥ २३ ॥

भा०—(देवानां माने) दिव्य भावों से युक्त अग्नि, विद्युत् सूर्य, भूमि या वायु आदि और अध्यात्म में इन्द्रिय आदि की तन्मात्राओं के निर्माण में (प्रथमाः) प्रथम कारण रूप प्रकृति के परमाणु (अतिष्ठन्) विद्यमान थे। (एषां कृन्तत्रात्) इन कारण परमाणुओं के छेदन भेदन अर्थात् संयोग विभाग से प्रथम (उपराः) मेघ सदृश तत्व जो परम कारण के अति समीपतम, कार्य रूप होते हैं वे (उद् आयन्) उत्पन्न होते हैं। उसके पश्चात् (त्रयः) तीन तत्व अग्नि, विद्युत् सूर्य (अनूपाः) अनुकूल होकर, जीवों की रक्षा में समर्थ होकर (पृथिवीम् तपन्ति) भूमि को तप्त करते हैं। जिनमें से (द्वा) दो विद्युत् और सूर्यस्थ अग्नि, (बृबूकम्) जल को (वहतः) धारण करते हैं, और (द्वा पुरीषं वहतः) दो मेघस्थ विद्युत् और भूमि पोषक अन्न को धारण करते हैं।

सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते
॥ २४ ॥ १९ ॥

भा०—हे प्रभो ! (ते) तेरी ही (सा जीवातुः) वह प्राणदात्री शक्ति है (उत) और तू ही (तस्य विद्धि) उसे जानता है। (स-मर्त्ये) मरणधर्मा प्राणियों से युक्त लोक के निमित्त तू (एतादृग्) ऐसे अपने प्राणदायक

स्वरूप को (मा अपगूहः स्म) मत छिपा। हे मनुष्य! (अस्य निर्णिजः) इस तत्व का (सः पादुः) वह चेतनामय स्वरूप (न मुच्यते) कभी नहीं समाप्त होता है, वह (स्वः आविः कृणुते) अपना प्रकाश प्रकट करता है और (बुसं गूहते) जल को जैसे सूर्य वाष्परूप से भूतल से लेता है वैसे ही प्रभु भी अपने (स्वः) तेजोमय ज्ञान को प्रकट करता है, (बुसं गूहते) कर्म बन्धन को नष्ट कर देता है। इस प्रकार वह प्रभु का (सः) वह (पादुः) ज्ञान-व्यापार समाप्त नहीं होता। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[२८]

इन्द्रवसुक्रयोः संवाद। ऐन्द्रः ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१,२,७,८,१२ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ६ त्रिष्टुप्। ४, ५, १० विराट् त्रिष्टुप्। ९, ११ पादनिचृत् त्रिष्टुप्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

विश्वो ह्य१न्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्स्वाशितः पुनरस्तं जगायात्॥१॥

भा०—(अन्यः) मुख्य व्यक्ति से अतिरिक्त, (विश्वः) समस्त नगर में, देह में आत्मा के समान प्रवेश करने वाला (अरिः) स्वामी (आ जगाम) आ जावे, (अह) और (मम इत्) यह मेरा है इस प्रकार अधिकार करने वाला (श्व-शुरः) सर्व प्रथम प्राप्त होने वाला नायक (न आजगाम) नहीं आवे। यह अनुचित है। वस्तुतः वही (धानाः जक्षीयात्) राष्ट्र की धारक शक्तियों का अन्नवत् उपभोग करता है, (उत) और वही (सोमं) ऐश्वर्य का ओषधिवत् (पपीयात्) पान करता वा ऐश्वर्य का पालन करता है और (सु-आशितः) राष्ट्र को प्राप्त होकर ही (पुनः अस्तं जगायात्) उत्तम गृह या पद को प्राप्त होता है।

स रोरुवद्वृषभस्तिग्मशृङ्गो वर्ष्मन्तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः।
विश्वेष्वेनं वृजनेषु पामि यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति॥२॥

भा०—(सः) वह (वृषभः) मेघ के समान प्रजागण पर सुखों का वर्षक (तिग्म-श्रृङ्गः) सूर्यवत् तीक्ष्ण साधनों से सम्पन्न (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरिमन्) विस्तृत (वर्ष्मन्) उत्तम पद पर (आ तस्थौ) आदरपूर्वक विराजे और प्रतिज्ञा करे कि (सुत-सोमाः) अन्नादि का उत्पादक (यः) जो प्रजावर्ग (मे कुक्षी) मेरे दोनों पार्श्वों पर विद्यमान सैन्यों को (पृणाति) पालन करता है। मैं (एनं) उसकी (विश्वेषु वृजनेषु) समस्त संग्रामों में (पामि) रक्षा करूं।

अद्रिणा ते मन्दिनं इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान्पिबसि त्वमेषाम्। पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन्हूयमानः॥ ३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (मन्दिनः) स्तुतिशील (ते) तेरे लिये (अद्रिणा) विदीर्ण न होने वाले दृढ़ क्षात्र बल से (तूयान्) आशुगामी (सोमान्) वीर पुरुषों का (सुन्वन्ति) अभिषेक करते हैं। (त्वम् एषाम्) तू इनका (पिबसि) पालन करता है। (ते) तेरे लिये वे (वृषभान्) बलवान् पुरुषों को (पचन्ति) दृढ़ करते हैं, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (हूयमानः) आदरपूर्वक प्रार्थना किया जाकर (तेषां पृक्षेण) उनके स्नेह से (अत्सि) ऐश्वर्य का भोग करता है।

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति। लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥४॥

भा०—हे (जरितः) शत्रुओं को नाशक! तू (इदं) यह सामर्थ्य (मे) मेरा भी जान (हि) कि (नद्यः) नदियां (प्रतीपं शापं वहन्ति) विपरीत दिशा को जल बहाने लगती हैं। वैसे ही यह राजा का सामर्थ्य है कि (नद्यः) स्तुतियुक्त, वा समृद्ध, वा गर्जती सेनाएं वा प्रजाएं (शापं प्रतीपं वहन्ति) ललकारते हुए शत्रु को भी उलटा भगा देती हैं। (लोपासः = रोपासः) तृणचारी पशु भी (प्रत्यञ्चम् सिंहं) आगे आते सिंह के समान हिंसक को (अत्सात्) नष्ट करता है, और (क्रोष्टा) श्रृगालवत् रोने वाला

निर्बल भी (वराहं) शूकर के समान बलवान् को (कक्षात् निर्-अतक्त) मैदान से निकाल देता है ।

कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्संस्य पाकस्तवसो मनीषाम् ।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः ॥५॥

भा०—हे प्रभो ! हे विद्वन् ! (गृत्सस्य) स्तुत्य और (तवसः) सर्व-शक्तिमान् (ते मनीषाम्) तेरी इच्छा और (एतत्) इस सबको (कथा अहम् आ चिकेतम्) मैं कैसे जान सकता हूँ । (त्वं) तू ही (विद्वान्) सर्वज्ञ (नः) हमें गुरुवत् (ऋतु-था) समय २ पर (वि वोचः) विशेष रूप से उपदेश करता है । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (यम् अर्धं) जिस अंश का (वि वोचः) विशेष रूप के उपदेश करता है वही (क्षेम्याः धूः) धारण करने में आश्रयवत् होता है ।

एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान ६।२०

भा०—(एव हि) इस प्रकार (तवसं मां) बलशाली मुझको लोग (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं । (बृहतः मे) महान् मेरी (दिवः चित्) सूर्य और आकाश से भी अधिक (उत्तरा धूः) उत्कृष्ट धारण शक्ति है । मैं (पुरु सहस्रा) सहस्रों शत्रुओं को (साकं) एक साथ (नि शिशामि) नष्ट कर सकता हूँ । (जनिता) उत्पादक प्रभु मुझे (अशत्रुं जजान) विना शत्रु का करे । इति विंशो वर्गः ॥

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणमिन्द्र देवाः ।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (देवाः) सुखों के इच्छुक प्रजाजन (मां एव तवसं) मुझ बलवान् पुरुष को (कर्मन्-कर्मन्) प्रत्येक काम में (उग्रं) शत्रुओं को भय दाता और (वृषणम्) सुखों का वर्षक (जज्ञुः) जानें । मैं (वज्रेण महिना) बड़े बल वीर्य से (मन्दसानः) प्रसन्न होकर

(वृत्रं वधीम्) मेघ को सूर्यवत्, शत्रु का नाश करूं और (दाशुषे व्रजं अप वम्) दानशील प्रजा के लिये मार्ग खोल दूं ।

देवास आयन्परशूँरबिभ्रन्वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्र्वं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥ ८ ॥

भा०—(देवासः) विजय के इच्छुक मनुष्य (आयन्) आवें, और (परशून् अबिभ्रन्) हथियारों को धारण करें । वे (वना वृश्चन्तः) वन तुल्य शत्रुदल को काटते हुए (विड्भिः) प्रजाओं सहित (अभि आयन्) मुकाबला करें और (वक्षणासु) अंगुलियों में (सुद्र्वं) वेग से दौड़ने वाले अश्व को (नि दधतः) नियम में रखते हुए (यत्र) संग्राम में (कृपीटम् अनु) अपने सामर्थ्य के अनुसार (तत्) शत्रु-सैन्य को (दहन्ति) दग्ध करें।

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात् ।
बृहन्तं चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥ ९ ॥

भा०—(शशः) मृग के समान तेज जाने वाला वीर (प्रत्यञ्चं क्षुरं) मुकाबले पर आने वाले शस्त्रादि को (जगार) निगल सकता है, उसे व्यर्थ कर सकता है । और मैं (लोगेन) जन समूह के बल पर प्रकाश वा विद्युत् से (अद्रिं) पर्वत के तुल्य विशाल शत्रु को भी (आरात् वि अभेदम्) दूर से ही छिन्न भिन्न करूं और (ऋहते) बढ़ाने वाले स्वामी के लिये मैं (बृहन्तं) भारी शत्रु को भी (रन्धयानि) वश करूं । (वत्सः) बच्चा भी (शूशुवानः) वृद्धि को प्राप्त होकर (वृषभं वयत्) बैल से टक्कर लेता है ।

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१०॥

भा०—वह बलवान् पुरुष (तस्मै) उस स्वामी के लिये (सुपर्णः) उत्तम रथ आदि साधनों से सम्पन्न होकर बाज के समान (इत्था) इस प्रकार (नखम्) बांधने योग्य शत्रु को (आसिषाय) ऐसे बांध लेता है

जैसे (अवरुद्धः सिंहः) रुका हुआ सिंह (परिपदं न) अपना पंजा आक्रमण के लिये सदा तैयार रखता है। जैसे (निरुद्धः महिषः चित्) रुका हुआ भैंसा (तर्ष्यावान्) प्यासा अपने सींगों को सदा मारने को तैयार रखता है (तस्मै) उस युद्धैषवान् के लिये (गोधाः) बाण फेंकने वाली धनुष् की डोरी को धारण करने वाला सैनिक (अयथं) असाधारण तौर पर (एतत् कर्षत्) धनुष् को खींचती है।

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ॥११॥

भा०—(ये) जो (अन्नैः) अन्नों के कारण (ब्रह्मणः प्रतिपीयन्ति) विद्वानों का नाश करते हैं और जो (अव-सृष्टान्) छोड़े गये (सिमः उक्षणः) वीर्य सेचन में समर्थ सांड़ों को (अदन्ति) खा जाते हैं, और (स्वयं तन्वः) अपने ही शरीर के (बलानि शृणानाः) बलों को नष्ट करते हैं (तेभ्यः) उनके लिये (गोधाः) भूमि या धनुष् की डोर धारण करने वाला (अयथं कर्षत्) धनुष् का आकर्षण करे। खूब पराक्रम करे।

एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥१२॥२१॥

भा०—(ये) जो (उक्थैः) उत्तम वचनों से (सोमे तन्वः हिन्विरे) उत्तम ओषधि के आधार पर शरीरों को पुष्ट करते हैं (एते) वे (शमीभिः) शान्तिदायक कर्मों में (सुशमी अभूवन्) कर्मवान् पुरुष हो जाते हैं। (वीरः) वीर और विविध विद्याओं का उपदेष्टा पुरुष (नृवतः) नायक के समान (नः उप वदन्) हमें उपदेश और आज्ञा देता हुआ (वाजान्) ऐश्वर्यों और संग्रामों को (उप माहि) करे और (दिवि) भूमि पर (श्रवः नाम दधिषे) श्रवण योग्य, कीर्त्ति देने वाला बल धारण करे। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[२९]

वसुक्रः ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

वने न वायो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १ ॥

भा०—(वने वायः स्तोमः न) 'वन' अर्थात् वृक्ष पर जैसे पक्षियों का दल (चाकन्) फल चाहता हुआ (भुरणौ) अपने पोषक पक्षों को (अजीगः) संचालित करता है, वैसे ही (शुचिः) शुद्ध धार्मिक, (वायः स्तोमः) रक्षक जनों का दल, (चाकन्) ऐश्वर्यों को चाहता हुआ (वने) राष्ट्र में (नि अधायि) स्थापित किया जावे । और हे (भुरणौ) राष्ट्र के पालने वाले राजा और अमात्य जनों ! वह दल (वां अजीगः) तुम दोनों को प्राप्त हो । (यस्य इत्) जिसका (इन्द्रः) सेनापति (पुरु-दिनेषु) बहुत दिनों तक (होता) स्वीकार करने वाला और (नृणां नर्यः) मनुष्यों के बीच नेता के योग्य, (नृतमः) नायकों में श्रेष्ठ और (क्षपावान्) शत्रुओं की विनाशक सेना का स्वामी हो ।

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान् ॥२॥

भा०—(यः) जो तू (त्रि-शोकः) सूर्यवत् तीनों लोकों में व्याप्त प्रकाश वाला, मन्त्र, बल और धन तीनों से चमकने वाला होकर (अनु) अपने पीछे (शतं नॄन् अवहन्) सौ नायकों को लेकर चलता हुआ, (कुत्सेन) शत्रु को काटने में समर्थ शस्त्र बल से (रथः) महारथ होकर (ससवान्) शत्रुओं का अन्त करता है उस (नृणां नृतमस्य) नायकों में श्रेष्ठ नायक (ते) तेरी (अस्याः उषसः) इस शत्रुदाहक सेना (अपरस्याः) और दूसरी सेना के (नृतौ) संचालन करने में हम (प्र प्र स्याम) आगे बढ़ें ।

कस्ते मद॑ इन्द्र रन्त्यो॑ भूद्दुरो॒ गिरो॑ अ॒भ्यु१॒ग्रो वि धा॑व ।
कद्वाहो॑ अ॒र्वागुप॑ मा मनी॒षा आ त्वा॑ शक्यामुप॒मं राधो॒ अन्नैः॑ ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरा (कः मदः) कौन सा तृप्ति-कारक पदार्थ (रन्त्यः) तुझे सुखदायी है तू (उग्रः) बलवान् होकर (दुरः) द्वारों को (अभि धाव) लक्ष्य कर वेग से जा और (गिरः-वि धाव) उत्तम स्तुतियों को प्राप्त कर। (वाहः) सुख-समृद्धि को प्राप्त कराने वाला तू (कत् अर्वाक्) कब हमारे सन्मुख हो और (मा मनीषा उप कत्) मेरी मन की अभिलाषा कब पूर्ण होगी और मैं (उपमं) अपने समीप स्थित (त्वा) तुझे (कद्) कब (अन्नैः) अन्नों द्वारा स्वामी को जैसे वैसे (राधः आ शक्याम्) आराधना द्वारा प्रसन्न कर सकूंगा ?

कदु॑ द्यु॒म्नमि॑न्द्र॒ त्वाव॑तो॒ नॄन्कया॑ धि॒या क॑रसे॒ कन्न॒ आग॑न् ।
मि॒त्रो न स॒त्य उ॑रुगाय भृ॒त्या अन्ने॑ समस्य॒ यदस॑न्मनी॒षाः ॥४॥

भा०—हे प्रभो ! (कत् उ द्युम्नम्) वह तेजोमय ऐश्वर्य कब होगा ? और तू (कया धिया) किस प्रकार के कर्म और बुद्धि से (नॄन् त्वावतः करसे) सब मनुष्यों को अपने जैसा सुखी करता है और तू (नः कत् आगन्) हमें कब प्राप्त होगा ? हे (उरु-गाय) बहुत कीर्त्ति वाले ! (समस्य भृत्यै) समस्त जगत् के पोषण के लिये (अन्ने) अन्न उत्पन्न करने और देने में (यत्) जो तेरी (मनीषाः असन्) चेष्टाएं हैं उनसे प्रतीत होता है कि (सत्यः मित्रः न) तू सबका सच्चा मित्र के समान है।

प्रेर॑य॒ सूरो॒ अर्थं॒ न पा॒रं ये अ॑स्य॒ कामं॑ जनि॒धा इ॑व॒ ग्मन् ।
गिर॑श्च॒ ये ते॑ तुविजात पू॒र्वीर्नर॑ इन्द्र प्रति॒शिक्ष॒न्त्यन्नैः॑ ॥५॥२२॥

भा०—हे (तुवि-जात) अनेक लोकों के उत्पादक हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन् (ये) जो (जनिधाः-इव) पत्नी के धारण करने वाले गृहस्थ के समान

(ते अस्य कामं ग्मन्) इस साक्षात् कामना योग्य वा कान्तियुक्त तेरे उज्ज्वल रूप को प्राप्त होते हैं और (ये) जो (नरः) मनुष्य (ते पूर्वीः गिरः) तेरी ज्ञानपूर्ण वाणियों को (अन्नैः) अन्नों सहित (प्रति-शिक्षन्ति) अन्यों को सिखाते हैं उनको तू (सूरः) सूर्य के समान होकर (अर्थं न) धन को धनस्वामी के तुल्य (अर्थं पारं) प्राप्तव्य मोक्ष पद को (प्रेरय) प्राप्त करा। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (द्यौः पृथिवी) आकाश और भूमि दोनों (ते) तेरे (काव्येन मज्मना) विद्वानों द्वारा ज्ञेय बल से (सु-मिते) उत्तम रीति से बनी और (मात्रे नु) नाना लोकों को बनाने वाली हैं। (ते) तेरे (सुतासः) बनाये पदार्थ (घृत-वन्तः) घी से युक्त पदार्थों के समान (घृत-वन्तः) जल और तेज से युक्त होकर (वराय स्वाद्मन् भवन्तु) श्रेष्ठ पुरुष के लिये सुख से भोग्य हों और (मधूनि) जल आदि तेरे मधुर पदार्थ (पीतये भवन्तु) पान करने के लिये हों।

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥

भा०—(अस्मै) इस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् के लिये (मध्वः पूर्णम् अमत्रम्) मधुपर्क आदि से भरे पात्र को (आ असिचन्) आदर से दें। (सः हि सत्य-राधाः) वह सत्य ज्ञान के धन से पूर्ण है। (सः नर्यः) वह मनुष्यों का हितकारी (पृथिव्याः वरिमन्) पृथिवी के बड़े भारी देश में (क्रत्वा पौंस्यैः च) अपने पराक्रमों से (आ वावृधे, अभि वावृधे) सब ओर बढ़े।

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ८।२३।८

भा०—(सु-ओजाः) उत्तम सामर्थ्यवान्, (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (पृतनाः वि आनट्) स्व और पर मनुष्यों वा सेनाओं को व्याप लेता है, (पूर्वीः) समस्त प्रजाएं (अस्मै सख्याय) इसके मित्र-भाव के लिये (आ यतन्ते) सब प्रकार से यत्न करती हैं। हे ऐश्वर्यवन्! (यं) जिस (रथं) रथ के समान राष्ट्र को (भद्रया) कल्याणकारिणी (सु-मत्या) शुभमति से (चोदयासे) प्रेरित कर सके उस पर (पृतनासु) प्रजाओं के बीच (आ तिष्ठ) विराज। इति त्रयोविंशो वर्गः॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः॥

[३०]

कवष एलूष ऋषिः। देवता—आप अपान्नपाद्वा॥ छन्दः—१, ३, ९, ११, १२, १५ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ४, ६, ८, १४ विराट् त्रिष्टुप्। ५, ७, १०, १३ त्रिष्टुप्। पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति।
मही मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम्॥१॥

भा०—(मनसः प्रयुक्ति न) मन के योग के समान (ब्रह्मणे गातुः) ब्राह्मण वा परमेश्वर की वाणी, (अपः) प्रजाजनों को (देव-त्रा) विद्वान् जनों द्वारा, (अच्छ प्र एतु) अच्छी प्रकार प्राप्त हो। (मित्रस्य वरुणस्य) सर्वस्नेही, दुःखवारक प्रभु की (सुवृक्तिम् महीं धासिं) सुखप्रद, महती, अन्नवत् धारक शक्ति को (पृथुज्रयसे) बड़े बलशाली के लिये ही (रीरधः) वश कर।

अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूताच्छाप इतोशतीरुशन्तः।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्णस्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः॥२॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) यज्ञ की इच्छा करने वाले लोगों! आप (हविष्मन्तः हि भूत) उत्तम अन्न से युक्त होवो। स्वयं (उशन्तः) सुखों की कामना करते हुए (उशतीः) उसी प्रकार के सुखों वा (अपः) आप्त पत्नियों को (अच्छ इत) प्राप्त करो। (अरुणः) कान्तिमान् (सु-पर्णः)

उत्तम पालक, (याः अव चष्टे) जिनको प्रेम से देखता है, हे (सु-हस्ताः) क्रियाशील पुरुषों ! (अद्य) आज (तम् ऊर्मिम्) उस तरंग के समान उन्नत पुरुष को लक्ष्य कर (आ अस्यध्वम्) हवि आदि का यज्ञ में आहुति द्वारा प्रक्षेप करो ।

अध्वर्यवोऽप इता समुद्रमपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो दददूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥ ३ ॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) अपनी रक्षा के इच्छुक जनों ! आप (अपः इत) आप्त प्रजाजनों को प्राप्त करो और (समुद्रम् इत) समुद्र के समान उनके आश्रय रूप महापुरुष को भी प्राप्त हो । (सः) वह (अद्य) आज (वः) आप लोगों को (सु-पूतं) पवित्र (ऊर्मिम्) उत्साहमय जीवन (ददत्) प्रदान करे, (तस्मै) उसके लिये (मधुमन्तं सोमं सुनोत) मधुर और सुखप्रद पदार्थों से युक्त ऐश्वर्यपद प्राप्त कराओ । और उस (अपां नपातम्) आप्त प्रजाजनों को एकत्र बांधने और धर्म मर्यादा से न गिरने देने वाले रक्षक को (हविषा यजध्वम्) उत्तम अन्न और वचन से सत्कृत करो ।

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (अनिध्मः) बिना काठ के (अप्सु अन्तः) अन्तरिक्ष के बीच विद्युत् के समान (दीदयत्) प्रजाओं के बीच प्रकाशित होता है (विप्रासः यं) बुद्धिमान् जन जिसको (अध्वरेषु ईडते) प्रजा के रक्षणादि कार्यों में चाहते हैं वह (अपां नपात्) आप्त जनों को एकत्र बांधने वाला पुरुष मेघ के समान (मधुमतीः अपः) मधुर जलों से युक्त धाराओं के समान ही अन्नादि से समृद्ध आप्त प्रजाओं का प्रदान करे, (याभिः) जिनसे (इन्द्रः) राजा तेजस्वी होकर (वीर्याय वावृधे) बल की वृद्धि के लिये बढ़े ।

याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात्
॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—(कल्याणीभिः युवतिभिः मर्यः न) कल्याणी युवति पत्नी के साथ जैसे युवा पुरुष (मोदते हर्षते च) प्रसन्न होता और हर्ष अनुभव करता है, वैसे ही (याभिः) जिन (कल्याणीभिः) कल्याणकारिणी प्रजाओं के साथ (सोमः) उत्तम शासक (मोदते) आनन्द अनुभव करे और (हर्षते) हर्ष लाभ करे, हे (अध्वर्यो) प्रजापालन रूप कार्य के संचालक ! तू (ताः अपः) उनको (अच्छ परा इहि) दूर से प्राप्त कर । (यत् आ-सिञ्चाः) जैसे वृक्ष का सेचन किया जाता है और वह बढ़ता है, वैसे ही तू भी (यत् आ-सिञ्चाः) जिन आप्त जनों से राजा की वृद्धि करेगा, उनको तू भी (ओषधीभिः) ओषधिवत् तेज धारण करने वाली प्रजाओं द्वारा (पुनीतात्) पवित्र कर ।

एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥ ६ ॥

भा०—(यूने) युवा पुरुष की प्राप्ति के लिये जैसे (युवतयः नमन्त) युवती स्त्रियें झुकती हैं, (यत्) और जैसे (उशत्) कामनावान् पुरुष (उशतीः ईम् अच्छ एति) कामना वाली स्त्रियों को प्राप्त करता है, वैसे ही (अध्वर्यः) प्रजाओं के जन (मनसा) मन से (देवीः) उत्तम प्रजाओं को (सं जानते) विचारते और (धिषणां संचिकित्रे) बुद्धिपूर्वक विवेक करते हैं ।

यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥ ७ ॥

भा०—हे (आपः) आप्त जनों ! (यः) जो (वृताभ्यः) वरण किये गये (वः) आपके लिये (लोकं अकृणोत्) गृह बनाता है, (यः वः) जो आप लोगों को (मह्याः अभिशस्तेः) बड़ी निंदा और कष्टादि से (अमुञ्चत्)

मुक्त करता है, (तस्मै इन्द्राय) उस प्रभु (देव-मादनं) विद्वानों को हर्षित करने वाले (मधुमन्तं ऊर्मिम्) मधु से युक्त उत्तम तरंग या उत्साह (प्र-हिणोतन) प्रदान करो।

प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥ ८ ॥

भा०—हे (सिन्धवः) नदीवत् बहने वाली प्रजाओं! जैसे नदियां या जल अपने सार को समुद्र को प्रदान करती हैं, वैसे ही (वः) आप लोगों का, (यः) जो (मध्वः) अन्नादि का (उत्सः) उत्तम भाग है, (उत मधु-मन्तम् ऊर्मिम्) और मधुर गुणयुक्त उत्तम भाग को (अस्मै प्र हिनोत) इसके लिये प्राप्त कराओ। (रेवतीः) हे प्रजाओं! (अध्वरेषु) यज्ञों तथा दृढ़ कार्यों में (ईड्यम्) स्तुति योग्य (घृत-पृष्ठम्) अन्न, जल वा स्नेह से पुष्ट इसको प्राप्त होकर (मे हवं शृणुत) मेरा वचन श्रवण करो।

तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानमूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥ ९ ॥

भा०—(सिन्धवः मत्सरम् इन्द्रपानम् ऊर्मिं प्र हिन्वन्ति) जैसे नदियां आनन्द-संचारक, सूर्य द्वारा पाने योग्य ऊर्ध्वगामी जल को बढ़ाती हैं वैसे ही हे (सिन्धवः) वेग से जाने वाले सैन्यादि प्रजाओं! (तं) उस (मत्सरम्) हर्षदायक, (इन्द्र-पानं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के पालक, (ऊर्मिम्) आज्ञापक पुरुष को (प्र हेत) खूब बढ़ाओ, (यः) जो (उभे) राजा और प्रजा को (इयर्त्ति) सन्मार्ग में चलाता है, और (मद-च्युतम्) हर्षजनक (औशानं) समृद्धि की कामना करते हुए (नभः-जाम्) आकाश में सूर्यवत् उदय होने वाले (त्रि-तन्तुम्) तीन तन्तुओं वाले, यज्ञोपवीती और (उत्सम्) मार्ग पर चलने वाले, (परि वि-चरन्तं) सर्वोपरि विचरने वाले पूज्य को (प्र हेत) बढ़ाओ।

आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः १०।२९

भा०—हे (ऋषे) यथार्थ दर्शक ! तू (भुवनस्य) संसार को (जनित्रीः) उत्पन्न करने वाली और (पत्नीः) पालने वाली, (स-वृधः) समान रूप से बढ़ने वाली (स-योनीः) सबको संगत करने वाली (अपः) प्रकृति के परमाणु रूप जलों के तुल्य सृष्टि के प्रारम्भिक, माताओं को (वन्दस्व) आदर से वर्णन कर, उनका अन्यों को उपदेश कर। जो (आवर्वृतती:) आवर्त्त रूप से संसार को उत्पन्न करती हैं। (अध नु) और (द्वि-धाराः) जैसे जलधारा फट कर दो धाराओं को पूर्ण करती हैं, दोनों तटों को धारण करती हैं वैसे ही प्रकृति के उत्पादक मूल परमाणु भी (द्वि-धाराः) समष्टि व्यष्टि दोनों को धारण करते हैं वैसे ही स्त्रियें भी दोनों कुलों को वा सन्तान और पति को धारण करती हैं। (गोषु-युधः) मेघजल की धाराएं जैसे भूमियों पर आ पड़ती हैं वैसे प्राकृतिक परमाणु भी रश्मियों या गतिदायक शक्तियों के बल पर परस्पर मिलने वाली (नियवं चरन्तीः) नियम से संयोग करती हैं। वैसे ही स्त्रियां भी (गोषु-युधः) वाणीमात्र से प्रहार करने वाली, पतियों से मिलकर रहने वाली होती हैं।

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम्।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥११॥

भा०—हे (आपः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे (अध्वरं) अहिंसनीय पुरुष को (देव-यज्या) विद्वानों के आदर के लिये (हिनोत) प्रोत्साहित करो। और (धनानाम् सनये) हमें धन की प्राप्ति के लिये (ब्रह्म) वेद का (हिनोत) उपदेश करो। हे (आपः) आप्त प्रजाजनो ! (ऋतस्य योगे) जल के योग होने पर जैसे (ऊधः) अन्तरिक्ष के प्रतिबन्ध दूर हो जाते हैं और पानी बरसता है वैसे ही आप लोग (ऋतस्य योगे) ज्ञान के

प्राप्त होने पर (ऊधः वि स्यध्वम्) ज्ञानादि के धारक अन्तःकरण को खोलो । और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (श्रुष्टीवरीः भूतन्) जल-धाराओं के तुल्य ज्ञानदायक होवो ।

आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् १२

भा०—हे (आपः) प्रजाजनों ! हे (रेवतीः) समृद्ध गृह-लक्ष्मियों ! आप (वस्वः हि क्षयथः) ऐश्वर्य की स्वामिनी होवो और (क्रतुम् भद्रं) सुखप्रद कर्म और (अमृतं च) अन्न, जल, दीर्घ जीवन और सन्तान को (बिभृथ) धारण करो । आप (स्वपत्यस्य रायः) उत्तम सन्तान और ऐश्वर्य का (पत्नी) पालन करने वाली होवो । (सरस्वती) उत्तम ज्ञानयुक्त विदुषी (गृणते) विद्वान् को (तत् वयः) वह उत्तम ज्ञान (धात्) दे ।

प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि ।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः ॥१३॥

भा०—हे (आपः) आप्त स्त्रीजनों ! (यद्) जब (पयांसि) पुष्टिकारक दुग्धों और (मधूनि) अन्नों को (बिभ्रतीः) धारण करती हुई और (अध्वर्युभिः) यज्ञ के इच्छुक विद्वानों के साथ (मनसा संविदाना) चित्त से ज्ञान लाभ करती हुई और (इन्द्राय) अपने स्वामी के लिये (सु-सुतं सोमं भरन्तीः) उत्तम पुत्र को धारण करती हुई को (प्र अदृश्रम्) अच्छी प्रकार देखता हूँ तो आपकी स्तुति करता हूँ ।

एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः ।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥१४॥

भा०—(इमाः रेवतीः) ये उत्तम ऐश्वर्य से समृद्ध, (जीव-धन्याः) जीवित पुत्र, पति, पशु आदि जीवों को धन समझने वाली स्त्रियें (आ अग्मन्) आवे । हे (अध्वर्यः) यज्ञकर्त्ताजनों ! हे (सखायः) मित्रों !

(अपां नप्त्रा सं-विदानासः) आप्त दाराओं को साथ बांधने वाले पति से मन्त्रणा करती हुईं और (सोम्यासः) उत्तम पुरुष के योग्य (एनाः) उनको (बर्हिषि नि धत्तन) उत्तम आसन पर बिठाओ।

अग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या ॥१५॥२६॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) यज्ञकर्त्ता जनों! (उशतीः आपः अग्मन्) कामना करती हुई महिलायें आवें तो वे (देवयन्तीः) पति की चाहना करती हुईं (अध्वरे) यज्ञ में (इदं बर्हिः नि असदन्) आसन पर विराजें। आप लोग (सोमम् इन्द्राय सुनुत) ऐश्वर्ययुक्त जन को 'इन्द्र' अर्थात् स्वामीभाव के लिये प्रेरित करो, जिससे (वः) आपकी (देव-यज्या) विद्वानों का आदर और संगति, तथा ईश्वरोपासना आदि (सुशका अभूत् उ) सुख से सम्पन्न हो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[३१]

कवष ऐलूष ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवता छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ४, ५, ७, ११ त्रिष्टुप्। ३, १० विराट् त्रिष्टुप्। ६ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ९ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम ॥ १ ॥

भा०—(देवानां शंसः) मनुष्यों का उपदेष्टा विद्वान् (नः आवेतु) हमें प्राप्त हो और (यजत्रः) पूजनीय पुरुष (विश्वेभिः तुरैः) शत्रुनाशक उपायों सहित (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (उप वेतु) आवे। (तेभिः) उनसे ही (वयम्) हम (सु-सखायः भवेम) मित्र होकर रहें और (विश्वा दुरिता) समस्त बुरे आचरणों को (तरन्तः स्याम) पार करें।

परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत्।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् ॥ २ ॥

भा०—(मर्त्तः) मनुष्य (परि चित् द्रविणं) चारों ओर दौड़ने वाले मन को (ममन्यात्) वश करे और (नमसा) सत्कारपूर्वक (ऋतस्य) ज्ञान के मार्ग से (आ विवासेत्) बड़ों की शुश्रूषा करे। (उत) और (स्वेन क्रतुना) उत्तम ज्ञान से (सं वदेत) सम्यक् बोले और (श्रेयासं दक्षं) सर्वश्रेष्ठ कर्म को (मनसा जगृभ्यात्) मन से स्वीकार करे।

अधायि धीतिरससृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानामभूम॥ ३॥

भा०—(धीतिः) पानयोग्य सुधा के समान (धीतिः अधायि) धारणा को धारण करना चाहिये। (तीर्थेन) तीर्थ में (अंशाः) जलों के समान गुरु के आश्रय (अंशाः अससृग्रम्) प्राप्त होने वाले जीव शिष्यों के समान आते हैं। (ऊमाः दस्मं उप यन्ति) देशरक्षक जनों के समान जीव दुःखों के नाशक स्वामी को प्राप्त होते हैं। हम लोग (सुवितस्य शूषं) सुख से प्राप्त होने योग्य सुख को (अभि आनश्म) सब ओर से प्राप्त करें और हम (अमृतानाम् नवेदसः अभूम) मोक्ष-सुखों के प्राप्त करने वाले हों।

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात्॥४॥

भा०—(यस्मै) जिस जीव के उपकार के लिये (देवः सविता) जगत् का उत्पादक दिव्य प्रभु (जजान) पदार्थ उत्पन्न करता है (स्व-पतिः) समस्त धनों और स्वकीयों का पालक (दमूनाः) दमनशील, (नित्यः) सनातन प्रभु (अस्मै चाकन्यात्) उसे सदा चाहता है। (सः) वह (भगः) प्रभु (अर्यमा) न्यायकारी होकर (ईम्) इसके प्रति (गोभिः) वेद वाणियों से (अनज्यात्) ज्ञान प्रकाशित करता है। (उत) और (अस्मै) उसको (चारु) अच्छी प्रकार (छदयत् उत स्यात्) आच्छादित करने वाला होता है।

इ॒यं सा भू॑या उ॒षसा॑मिव॒ क्षा यद्ध॑ क्षु॒मन्त॒ः शव॑सा स॒माय॑न् ।
अ॒स्य स्तु॒तिं ज॑रि॒तुर्भिक्ष॑माणा॒ आ न॑ः श॒ग्मास॒ उप॑ यन्तु॒ वाजा॑ः॥५॥२७

भा०—(यत् ह) और जब (क्षुमन्तः) उपदेश योग्य विद्वान् (शवसा) ज्ञान से युक्त होकर (सम् आयन्) प्राप्त हों तब (उषसां क्षाः इव) प्रभात वेला में जैसे भूमि प्रकट होती है और उनके सन्मुख होती है वैसे ही उन ज्ञान वालों के अभिमुख (इयं क्षाः भूयाः) यह भूमिवासिनी प्रजा उनके समक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिये हो। और (अस्य जरितुः) इस अज्ञाननाशक उपदेष्टा के (स्तुतिं) उपदेश को (भिक्षमाणाः) चाहते रहें और (शग्मासः) सुखप्रद (वाजाः) अन्नादि ऐश्वर्य (नः आ उप यन्तु) हमें प्राप्त हों। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

अ॒स्येदे॒षा सु॑म॒तिः प॑प्रथा॒नाभ॑वत्पू॒र्व्या भूम॑ना॒ गौः ।
अ॒स्य सनी॑ळा अ॒सुर॑स्य॒ योनौ॑ स॒मान आ भर॑णे॒ बिभ्र॑माणाः ॥६॥

भा०—(अस्य इत् असुरस्य) सबके जीवनदाता, जगत् के संचालक उस प्रभु की (एषा) यह (सु-मतिः) उत्तम ज्ञान से युक्त, (भूमना) बहुत बड़ी, (पूर्व्या) सनातन (पप्रथाना) ज्ञानविस्तार करती हुई (गौः) वेदवाणी (अभवत्) है। (स-नीडाः) उसके समान आश्रय में रहने वाले शिष्यवत् जीव (समाने भरणे) एक समान धारण में विद्यमान रहकर (बिभ्रमाणाः) उस वाणी को धारण करते हुए (समाने योनौ) समान गृह वा आश्रय में (आ यन्तु) प्राप्त हों।

किं स्वि॒द्वनं॒ क उ॒ स वृ॒क्ष आ॑स॒ यतो॒ द्यावा॑पृथि॒वी नि॑ष्टत॒क्षुः ।
स॒न्त॒स्था॒ने अ॒जरे॑ इ॒तऊ॑ती॒ अहा॑नि पू॒र्वीरु॒षसो॑ जरन्त ॥ ७ ॥

भा०—(किं स्विद् वनं) वह कौनसा 'वन' और (कः उ सः वृक्षः आस) वृक्ष अर्थात् उपादान कारण है (यतः) जिससे (द्यावा-पृथिवी) आकाश और पृथिवी दोनों को (निः-ततक्षुः) बनाते हैं। ये दोनों (सं-तस्थाने) अच्छी प्रकार स्थिर (अजरे) नाश न होने वाली, (इतः-ऊती)

इस लोक से ही रक्षा प्राप्त करने वाली हैं। उनको (अहानि) दिन और (पूर्वीः उषसः) पूर्व की उषायें (जरन्त) बतलाती हैं।

नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥ ८ ॥

भा०—(एना परः अन्यत् न अस्ति) इससे परे दूसरा कुछ पदार्थ नहीं है, (उक्षा सः) वह जगत् को धारण करने और प्रकृति में जगत्-मूलक बीज निषेक करने वाला पुरुष ही (द्यावा पृथिवी) इस सूर्य और पृथिवी को (बिभर्त्ति) धारण करता है। वही (स्वधावान्) पोषणकारिणी शक्ति का स्वामी होकर (पवित्रं त्वचं) तेजोमय आकाश रूपी आवरण को (कृणुते) बनाता है, (यद् हरितः सूर्यं न) दिशाएं जैसे सूर्य को धारण करती हैं वैसे ही (ईम् वहन्ति) जगत् के पदार्थ उसको अपने में धारण करते हैं।

स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानोऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥ ९ ॥

भा०—(स्तेगः न) सूर्य जैसे (पृथ्वीं क्षां अति एति) भूमि को अति-क्रमण करता है (वातः न) वायु जैसे (अति भूम) बहुत अधिक (मिहं वि वाति) वृष्टि को लाता है। वैसे ही (स्तेगः) प्रकृति के परमाणु आदि का संघात करने वाला ईश्वर इस (पृथ्वीम्) विस्तृत (क्षाम् अति एति) निवास योग्य मूल प्रकृति से बढ़ कर है वह (वातः) प्रभु जीवों पर (मिहं) सुख की वृष्टि करता है, (यत्र) जिसके आश्रय में (अज्यमानः) देदीप्यमान (मित्रः) जलों का स्वामी सूर्य और (वरुणः) सूर्य द्वारा प्रकाशमान रात्रिकाल है। (वनेन) वन में या काष्ठ में जैसे (अग्निः शोकं वि असृष्ट) अग्नि अपने तेज को प्रकट करता है वैसे ही वह परमेश्वर भी (अग्निः) व्यापक होकर (वने) इस मूल-कारण प्रकृति तत्व में अपने (शोकम्) तेजोमय वीर्य को (वि असृष्ट) त्यागता और सृष्टियां उत्पन्न करता है।

स्तरीर्यत्सूतं सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा ।
पुत्रो यत्पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जैसे (अज्यमाना) वृषभ द्वारा निषिक्त हुई (स्तरीः) गौ (सूत) सन्तान उत्पन्न करती है, वह स्वयं (व्यथिः) पीड़ा अनुभव करती हुई (स्व-गोपा) अपने सामर्थ्य से रक्षित रहकर (अव्यथीः कृणुते) जीवों को व्यथारहित करती है, वैसे ही यह (स्तरीः) विस्तृत प्रकृति (सद्यः) अति शीघ्र (अज्यमाना) ब्रह्म बीज से युक्त प्रकाशित होती हुई, (स्व-गोपाः) स्वतः रक्षित एवं (व्यथिः) पीड़ित होकर जीवों को (अव्यथीः कृणुते) कर्म भुगा कर व्यथारहित मुक्त कर देती है । जैसे मानो (पुत्रः) पुत्र (पित्रोः पूर्वः) माता पिताओं के भी पूर्व विद्यमान हो ऐसे ही वह (पुत्रः) पालक प्रभु सृष्टि से पूर्व (जातः) विद्यमान होता है । और जैसे (गोः शम्यां जगार) भूमि शमी के वृक्ष को अपने भीतर लिये रहती है वैसे ही जो प्रभु (गोः) सर्वसञ्चालक (शम्यां) कर्म करने वाले जीव को (जगार) उपदेश करता है (यत् ह पृच्छान्) जिसके विषय में विद्वान् जिज्ञासा करते हैं, वही प्रभु है ।

उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुरुत श्यावो धनमादत्त वाजी ।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोधर्ऋतमत्र नकिरस्मा अपीपेत् ॥११।२८॥

भा०—(उत) और (कण्वं) विद्वान् पुरुष को (नृसदः) मनुष्यों के ऊपर विराजने वाले राज्य का (पुत्रम् आहुः) पुत्र के समान बहुतों का रक्षक कहा है । (उत) और (श्यावः) शक्तिशाली (वाजी) ज्ञानी पुरुष ही (धनम् आदत्त) धन प्राप्त करता है । (कृष्णाय) शत्रुओं के नाशक जन के लिये (रुशत् उधः) उज्ज्वल आकाशवत् प्रभु (ऋतम् अपिन्वत्) ज्ञान और न्याय की वृष्टि करता है, (अत्र) इस लोक में (अस्मै) उसके (ऋतम्) धन वा तेज को (नकिः अपीपेत्) कोई नष्ट नहीं करता । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[३२]

कवष ऐलूष ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्द—१, २, विराड्जगती। ३ निचृज्जगती ४ पादनिचृज्जगती। ५ आर्ची भुरिग् जगती। ६ त्रिष्टुप्। ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ८, ९ निचृत त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वरां अभि षु प्रसीदतः।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत्सोम्यस्यान्धसो बुबोधति ॥१॥

भा०—(धियसानस्य) कर्मकारी ज्ञानी पुरुष के (सक्षणि) संग (ग्मन्ता) जाते हुए स्त्री पुरुष को (इन्द्रः प्र जुजोषति) ऐश्वर्यवान् पुरुष अच्छी प्रकार प्रेम करता है और (प्र-सीदतः) प्रसन्न हुए विद्वान् के (वरेभिः) श्रेष्ठ कर्मों द्वारा वे दोनों स्त्री पुरुष (वरान् अभि सु) उत्तम सुखों को प्राप्त करें। (इन्द्रः) वह विद्वान् राजा (अस्माकम्) हमारे (उभयं) हित और अहित को (जुजोषति) प्राप्त करता है, क्योंकि वह (सोम्यस्य अन्धसः) ऐश्वर्ययुक्त अन्न को (बुबोधति) अच्छी प्रकार जानता है।

वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (दिव्यानि) आकाश के (रोचना) तेजोमय और (पार्थिवा) पृथिवी के समस्त लोकों को (रजसा) रजोगुण द्वारा (वि यासि) विशेष रूप से व्यापता है। (ये) जो विद्वान् (अध्वरान्) यज्ञों को तुझे लक्ष्य करके (मुहुः) बार २ (वहन्ति) धारण करते हैं (ते अराधसः) वे धनरहित भी (वग्वनान्) वाणी द्वारा सेवन योग्य सुखों को (वन्वन्तु) चाहें।

तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥३॥

भा०—(यत्) जैसे (पुत्रः) पुत्र (पित्रोः जानं अधीयति) माता पिता से जन्म ग्रहण करता है (तत्) वैसे ही यह (मे) मेरा आत्मा भी

(वपुषः वपुः-तरम्) सुन्दर से सुन्दर (जानं छन्त्सत्) जन्म प्राप्त करे। (जाया पतिम्) स्त्री पालक पति के साथ (सुमत् वग्नुना) उत्तम वचन से (वहति) विवाह करती है तब (परिष्कृतः वहतुः) सुशोभित दहेज (पुंसः इत्) पुरुष को ही (भद्रः) कल्याणकारी, सुखदायक होता है।

तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः॥ ४॥

भा०—हे प्रभो! (धेनवः वहतुं न) गौएं जैसे बैल घृत, दुग्ध, अन्नादि (शासन्) देती हैं और (यत् गावः वहतुं शासन्) बैल या घोड़े जैसे गाड़ी आदि का शासन करते हैं। (तद् इत्) वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (चारु सधस्थम्) उत्तम स्थान (अभि दीधय) प्रदान कर। (यत्) जैसे (पूर्व्या) प्रेम से पूर्ण, (मन्तुः) माननीय (माता) माता (पूर्व्यस्य अभि) अपने पुत्र के प्रति आती है और जैसे (जनः सप्त-धातुः वाणस्य) सात स्वरों को धारण करने वाले वाद्य यन्त्र को सुन उसकी ओर आकृष्ट होता है वैसे ही हे प्रभो! हमें भी तू (चारु सधस्थम्) ऐसा श्रेष्ठ स्थान (अभि दीधय) प्रदान कर (यत्) जिससे (वहतुं न) रथ के तुल्य (धेनवः शासन्) रस पान कराने वाले इन्द्रियगण अनु-शासन करें। (यत्) जिसे (पूर्व्या माता) पूर्व विद्यमान मातृशक्ति (मन्तुः) मनन करने वाली बुद्धि (यूथस्य अभि शासन्) प्राणों को अपने शासन में रखे और (जनः) उत्पन्न हुआ प्राणी (इत्) भी (सप्त-धातुः) सात धारक पदार्थ रस, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा, मेद, शुक्र इन सात धातुओं से बने (वाणस्य) देह को (अभि शासत्) अपने वश में करे।

प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पदमेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु॥५॥२९॥

भा०—हे विद्वानो! जो (एकः) अद्वितीय, (तुर्वणिः) अति शीघ्रगामी होकर (रुद्रेभिः याति) दुःखों को दूर करने वाले जनों सहित प्रयाण

करता है, वह (देव-युः) सूर्य के समान विजिगीषु जन का स्वामी (वः अच्छ) तुम्हें प्राप्त होकर (पदं) ज्ञान एवं पद को (प्र रिरिचे) प्राप्त करता है। (वा) और (येषु) जिन (अमृतेषु) दीर्घजीवी जनों के बीच (जरा दावने) उत्तम वाणी उत्तम ज्ञान देने के लिये है, उन (ऊमेभ्यः) गुरुजनों के लिये आप (मधु परि सिञ्चत) अन्न और जल प्रदान करो। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥६॥

भा०—(देवानां) तेजस्वियों का (व्रत-पाः) व्रतपालन कराने वाला (मे) मुझे (अप्सु) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं, और (आपः) जलों में छुपे प्राणों वा लिङ्ग शरीरों के बीच (नि धीयमानम्) स्थापित हुए (अप-गूढम्) गूढ़ आत्मतत्व को (मे प्र उवाच) मुझे उपदेश करे। हे (अग्ने) आत्मरूप अग्ने ! (हि) निश्चय से (इन्द्रः हि) आत्मा वा प्रभु उस तत्व को साक्षात् करने वाला (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (त्वा अनु चचक्ष) तेरा अनुभव द्वारा साक्षात् करता है। (तेन अनु-शिष्टः) उससे शिक्षण पाकर मैं (त्वा अनु आ अगाम्) तुझे प्राप्त होऊं।

अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥ ७ ॥

भा०—(अक्षेत्रवित्) मार्ग को न जानने वाला (हि) अवश्य (क्षेत्र-विदं अप्राट्) मार्ग को जानने वाले पुरुष से पूछता है। (सः) वह (क्षेत्र-विदा) क्षेत्रज्ञ विद्वान् से (अनुशिष्टः) शिक्षित होकर (प्र एति) उत्तम मार्ग को प्राप्त करता है। (अनुशासनस्य) गुरु के अनुशासन का (एतत् वै भद्रम्) यही कल्याणदायक फल है कि वह अनुशासित, अज्ञ पुरुष भी (अञ्जसीनाम्) ज्ञान को प्रकाशित करने वाला, वाणियों की (स्रुतिं) (विन्दति) प्राप्त करता है।

अद्येदु प्राणीदममन्निमाहापीवृतो अधयन्मातुरूधः ।
एमेनमाप जरिमा युवानमहेळन्वसुः सुमना बभूव ॥ ८ ॥

भा०—वह (अद्य इत् उ प्राणीत्) आज ही प्राण लेने लगता है (इमा अममन्) इन नाना संकल्पों को सोचने लगता है। (अपि-वृतः) देह में आवृत रहकर वह (मातुः ऊधः अधयत्) माता का स्तन्य पान भी ठीक उसी प्रकार से करता है जैसे तेजों से आवृत अग्नि वा सूर्य माता पृथिवी का जलपान करता है। (ईम् एनम् युवानं) अनन्तर इस युवा को जैसे बुढ़ापा आता है वैसे ही (युवानम्) माता से पृथक् होते हुए नव-उत्पन्न बालक को भी (जरिमा) वाणी (आप) प्राप्त होती है। वह (अहेडन्) अनादृत होकर, (वसुः) गुरु के अधीन वास करता हुआ (सुमनाः बभूव) ज्ञान से सम्पन्न हो जाता है।

एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।
दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ९।३०।७

भा०—हे (कलश) ज्ञान और शोडष कलाओं के धारक ! विद्वन् ! हे (कुरु-श्रवण) 'यह कार्य कर, यह कार्य कर' ऐसी कर्मप्रेरणाओं को सुनने वाले पुरुष ! (मघानि) उत्तम ज्ञानों और धनों को (ददतः) देने वाले हम (एतानि भद्रा क्रियाम) इन कल्याणकारक कर्मों को करें। हे (मघवानः) ज्ञान के स्वामी जनो ! (सः वः दानः इत्) वह प्रभु तुम्हें देने वाला (अस्तु) हो और (अयं च सोमः) यह सोम, सत् शिष्य भी तुम्हें ज्ञानादि देवे, (यं हृदि बिभर्मि) जिसको मैं अब अपने चित्त में धारण करता हूँ। इति त्रिंशो वर्गः ॥ इति सप्तमाष्टके सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अष्टमोऽध्यायः

[३३]

कवष ऐलूष ऋषिः ॥ देवताः—१ विश्वे देवाः । २,३ इन्द्रः । ४,५ कुरुश्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानस्तुतिः ६—९ उपमश्रवा मित्रातिथिपुत्राः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ निचृद् बृहती । ३ भुरिग् बृहती । ४—७,९ गायत्री । ८ पादनिचृद् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण ।
विश्वे देवासो अध मामरक्षन्दुःशासुरागादिति घोष आसीत् ॥१॥

भा०—(प्र-युजः) मनुष्यों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाले विद्वान् (मा प्र युयुज्रे) मुझे भी उत्तम मार्ग में चलावें । मैं (जनानां पूषणम्) मनुष्यों के पोषक प्रभु को (अन्तरेण) अपने भीतर (वहामि) धारण करूं। (देवासः) विद्वान् और वीरजन (माम् अरक्षन्) मेरी रक्षा करें । (दुःशासुः आगात्) बड़ी कठिनता से कहने योग्य अवर्णनीय एवं (दुःशासुः) अन्यों से वश न करने योग्य प्रभु (आगात्) हमें प्राप्त हो, (इति घोषः आसीत्) इसी कारण उसके बतलाने के लिये वेदवाणी का उपदेश हमें प्राप्त है ।

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः ॥ २ ॥

भा०—(सपत्नीः) सौतों के समान (पर्शवः) आत्मा से स्पर्श करने वाली कुवासनाएं (मा अभितः तपन्ति) मुझे सब ओर से तपाती हैं । (अमतिः) अज्ञान (मा नि बाधते) मुझे पीड़ित करता है । और (नग्नता मा नि बाधते) नंगापन जैसे लज्जित, शीत ग्रीष्मादि से पीड़ित करता है वैसे ही (नग्नता नि बाधते) हे प्रभो ! तेरी स्तुतियोग्य वाणी का अभाव भी मुझे दुःख देता है । ऐसे ही (जसुः नि बाधते) सर्वनाशक मृत्यु का भय भी मुझे, बेचैन कर रहा है । (वेः न मतिः) हे प्रभो ! पक्षी के

समान उत्तम ज्ञानी की (मतिः) शत्रुस्तम्भनकारिणी शक्ति और बुद्धि, (मा वे वीयते) मुझे निरन्तर प्राप्त हो।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो।

सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव॥ ३॥

भा०—(मूषः शिश्ना न) चूहा जैसे रस से भीगे सूतों को खा जाता है वैसे ही हे (शत-क्रतो) अनेक बल वाले प्रभो! (आध्यः मा वि अदन्ति) मानसी चिन्ताएं मुझे खाए डालती हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (मघ-वन्) उत्तम पदार्थों के स्वामिन्! (नः सकृत् सु मृडय) हमें एक बार खूब सुखी कर। (अध पिता इव नः भव) और तू हमारे पिता के समान हो।

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम्।

मंहिष्ठं वाघतामृषिः॥ ४॥

भा०—मैं (ऋषिः) अतीन्द्रिय पदार्थ का द्रष्टा (वाघताम्) कार्य और ज्ञान को धारण करने वालों में (मंहिष्ठम्) अधिक दानी, (त्रासद-स्यवम्) भयभीत शत्रुओं को उखाड़ने वाले (कुरु-श्रवणम्) कार्य करने वाले जनों की सुनने वाले, तत्पर (राजानं) तेजस्वी, प्रभु को (आ वृणि) सब प्रकार से वरण करता हूँ।

यस्य मा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया।

स्तवै सहस्रदक्षिणे॥ ५॥ १॥

भा०—(यस्य रथे) जिसके रमण योग्य रथ में (तिस्रः हरितः) तीन नाड़ियां (साधुया) उत्तम मार्ग में (मा वहन्ति) मुझे ले जाती हैं उसी को मैं (सहस्र-दक्षिणे स्तवै) अनेक पदार्थों के निमित्त स्तुति करता हूँ। यह रथ देह है, इसमें तीन नाड़ी इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आत्मा को साधु मार्ग से ले जाती हैं। इति प्रथमो वर्गः॥

यस्य प्रस्वादसो गिर उपमश्रवसः पितुः।

क्षेत्रं न रण्वमूचुषे॥ ६॥

भा०—(यस्य) जिस (पितुः) सबके पिता के तुल्य (उपम-श्रवसः) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न प्रभु गुरु के (गिरः प्र-स्वादसः) निगलने योग्य अन्नों के समान, उपदेश द्वारा प्रदत्त वाणियां अति सुखप्रद हैं। सेवन करने वाले आत्मा के लिये (यस्य क्षेत्रं रण्वं ऊचुषे) जिसका निवासस्थान भी अति रमणीय क्षेत्र, दिव्य अन्न, कर्म फलादि का उत्पादक होता है, मैं उसी सहस्रों दक्षिणा अर्थात् अन्नादिवत् कर्म फल दाता प्रभु की स्तुति करूं।

अधि पुत्रोपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिहि।

पितुष्टे अस्मि वन्दिता ॥ ७ ॥

भा०—हे (पुत्र) प्रजाओं के रक्षक! हे (उपम-श्रवः) ज्ञान के देने हारे गुरो! (मित्रातिथेः नपात्) स्नेही और अतिथिवत् स्वल्प काल के लिये तेरे गृह आने वाले को नीचे न गिरने देने वाले तू (अधि इहि) हम पर अधिवक्ता होकर विराज। (ते पितुः) पिता के समान तुझ पालक का मैं (वन्दिता अस्मि) अभिवादन, करने वाला हूँ।

यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम्।

जीवेदिन्मघवा मम ॥ ८ ॥

भा०—(यद्) यदि मैं (अमृतानाम्) न मरने वाले अविनाशी तत्वों (उत वा) और (मर्त्यानाम्) मरणधर्मा विनाश होने वाले पदार्थों का (ईशीय) स्वामी हो जाता हूँ तभी (मम मघवा) मेरा आत्मा (जीवेत् इत्) प्राण धारण करने में समर्थ होता है।

न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति।

तथा युजा वि वावृते ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—(देवानां व्रतं अति) विद्वानों के स्थिर किये व्रत नियम आदि को अतिक्रमण करके कोई (शतात्मा चन) सौ बरस तक भी (न जीवति) नहीं जीता और (तथा) उसी प्रकार (युजा) अपने सहयोगी मित्र बन्धु वा देहादि से (वि ववृते) वियुक्त हो जाता है। इति द्वितीयो वर्गः॥

[३४]

कवष ऐलूषोऽक्षो वा मौजवान् ऋषिः। देवताः—१,७,९,१२,१३ अक्षकृषिप्रशंसा। २—६, ८, १०, ११, १४ अक्षकितवनिन्दा। छन्दः—१, २, ८, १२, १३ त्रिष्टुप्। ३, ९, ११, १४ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५, ९, १० विराट् त्रिष्टुप्। ७ जगती॥ चतुदशर्चं सूक्तम्॥

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्॥१॥

भा०—अक्षकृषि प्रशंसा और अक्ष-कितव निन्दा। (इरिणे वर्वृतानाः) सूखे कूप में उत्पन्न हुए, अथवा निर्धनता की दशा में ले जाने वाले, (प्र-वाते-जाः) नीचे देश में पैदा हुए, (प्रावेपाः) भयोत्पादक, (बृहतः) बड़े भारी फल के तुल्य जुए के पासे (मा मादयन्ति) मुझे हर्षित करते हैं। यह (वि-भीदकः) बहेड़े के वृक्ष से उत्पन्न जुए का गोटा, (मौजवतः सोमस्य-इव भक्षः) मुञ्जवान् पर्वत पर उत्पन्न सोम लता के भक्षण योग्य रस के समान आस्वादन योग्य, (जागृविः) जीता जागता मानो (मह्यम् अच्छान्) मुझे फुसलाता है। जुआ आदि कृत्रिम साधन लोभी को इसी प्रकार फांसते हैं।

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम्॥ २॥

भा०—(एषा) यह (मा न मिमेथ) मुझे दुःख नहीं देती, (न जिहीडे) न अनादर करती है। (सखिभ्यः उत मह्यम्) मेरे मित्रों और मेरे लिये सुखकारिणी (आसीत्) है, तो भी (एकपरस्य अक्षय्) एक की प्रधानता वाले अक्ष अर्थात् जुए के (हेतोः) कारण (अनुव्रताम् जायाम्) पतिव्रता स्त्री को भी (अप अरोधम्) मैं रख नहीं सकता, उसे भी हार देता हूँ।

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ॥३॥

भा०—जुए के दुष्परिणाम । जो जुआरी जुए में सर्वस्व खो चुकता है उससे (श्वश्रूः) उसकी सास भी (द्वेष्टि) द्वेष करती है । (जाया अप रुणद्धि) स्त्री भी विरक्त हो जाती है । (नाथितः) दुःखित होकर भी म डतारं न विन्दते) वह किसी को अपने पर कृपालु नहीं पाता वा मांगने वाला होकर भी किसी से धन नहीं पाता । ठीक है, (जरतः अश्वस्य-इव) बूढ़े घोड़े के समान और (जरतः वस्न्यस्य) पुराने वस्त्र के समान (अहं) मैं भी (कितवस्य) जुआरी के समान (भोगं न विन्दामि) सुख और रक्षा नहीं पाता हूँ ।

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्य१क्षः ।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥ ४ ॥

भा०—जुआखोर की दुर्दशा । (यस्य वेदने) जिसके धन पर (वाजी अक्षः) बलवान् जुए का व्यसन (अगृध्रत्) ललचा जाता है (अस्य) उसकी (जायां) स्त्री को भी (अन्ये परि मृशन्ति) दूसरे, लोग हथियाते हैं । (पिता माता भ्रातरः एनम् आहुः) पिता माता भाई लोग भी उसको लक्ष्य कर कहते हैं कि (न जानीमः) हम इसे नहीं जानते कि यह कौन है ? (एतम् बद्धम्) इसको बांध कर (नयत) ले जाओ ।

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः ।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥५॥३॥

भा०—मैं व्यसनी पुरुष (यद् आदीध्ये) जब ध्यान करता हूँ, उनकी चिन्ता करता हूँ तब (एभिः न दविषाणि) इनके द्वारा दुःखित नहीं होता, प्रत्युत (परायद्भ्यः सखिभ्यः) दूर से आने वाले सखातुल्य उनके लिये (अव हीये) बड़ा ध्यान देता हूँ । (२) वे (बभ्रवः) लाल-पीले गब्रू रंग के (न्युप्ताः) फेंके जाकर (वाचम् अक्रत) मानो कहते हैं और मैं भी (एष

निष्कृतं) इनके स्थान पर (जारिणी इव एमि इत्) व्यभिचारिणी स्त्री के समान चला जाता हूँ। इति तृतीयो वर्गः॥

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥६॥

भा०—(तन्वा) शरीर से (शूशुजानः) चमकता हुआ (पृच्छमानः) और पूछता हुआ, (कितवः) द्यूत का व्यसनी (सभाम् एति) द्यूतसभा में आता है और समझता है कि (जेष्यामि इति) 'मैं अब जीतूंगा।' (प्रतिदीव्ने) प्रतिपक्षी को पराजित करने के लिये (कृतानि) कृत नामक अक्षों को (आ दधतः) रखने वाले (अस्य) इस द्यूत-व्यसनी के (अक्षासः) वे अक्ष (कामं वितिरन्ति) धन-अभिलाषा को बढ़ाते हैं।

अक्षास इदंकुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा ७

भा०—उत्तम अध्यक्षों का वर्णन। ये (अक्षासः) अध्यक्षजन (इत्) ही (अंकुशिनः) हाथी पशुओं के तुल्य बड़ों बड़ो को सन्मार्ग पर चलाने वाले वशीकरण साधनों से सम्पन्न (नि-तोदिनः) बैल आदि के समान कार्य-भारवाही शासकों को व्यथित कर सन्मार्ग में प्रेरित करने के साधनों को रखने वाले, (नि-कृत्वानः) दुष्टों को नष्ट करने वाले, (तपनाः) सूर्य-किरणों के तुल्य तपाने वाले, और (तापयिष्णवः) दुष्टों को संतापित करने वाले, (कुमार-देष्णाः) कुत्सित भावों के नाशक और (जयतः) विजय करने वाले (कितवस्य) 'तेरा क्या २' इस प्रकार ललकारने वाले को (पुनर्-हणः) फिर से या बार २ दण्डित करने या मारने वाले, (मध्वा) मधुर वचन और शत्रु को कंपा देने वाले बल से (सम्पृक्ताः) युक्त वा (मध्वा सम्पृक्ताः) अन्न के द्वारा अपने स्वामी से सम्बद्ध, (बर्हणा) स्वामी को बढ़ाने और शत्रु का नाश करने वाले हों।

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥८॥

भा०—अध्यक्षों का पुनः वर्णन । (एषां) इनका (त्रि-पञ्चाशः व्रातः) ५३ का संघ (सत्य-धर्मा) सत्य धर्म का पालक (सविता) सूर्यवत् तेजस्वी (देवः) स्वामी के समान (क्रीडति) खेलता है, वह (उग्रस्य चित् मन्यवे) भयंकर से भयंकर क्रोध के आगे (न नमन्ते) नहीं झुकता । (एभ्यः) इनके लिये (राजा चित् नमः इत् कृणोति) राजा भी नमस्कार ही करता है ।

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥९॥

भा०—नीच अध्यक्षों का वर्णन । जो लोग (नीचाः) नीच प्रवृत्ति के लोग (वर्त्तन्ते) होते हैं । वे (उपरि) ऊंचे पद पर आकर (स्फुरन्ति) अधीनों को कष्ट देते हैं । वे (अहस्तासः) हनन साधनों से रहित होकर ही (हस्तवन्तं) हथियार वालों को (सहन्ते) सहते हैं, वे (दिव्याः) क्रीड़ा-शील, मोदप्रिय होकर (इरिणे अङ्गाराः) कूए में जलते अंगारों के समान (इरिणे) अन्न-जल दाता के लिये भी (अंगाराः) अंगारों के तुल्य सन्ताप-दायक (न्युप्ताः) बने रहते हैं । वे (शीताः सन्तः) ठण्डे, निरपेक्ष और निर्दय होकर (हृदयं निर्दहन्ति) दिल को जलाया करते हैं ।

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥४॥

भा०—(कितवस्य) 'तेरा क्या' इस प्रकार अन्यों पर आक्षेप करके विचरने वाले, उच्छृंखल वा द्यूतव्यसनी पुरुष की (हीना) त्यागी हुई (जाया) स्त्री भी (तप्यते) दुःखित होती है और (क्वस्वित् चरतः) कहीं कहीं विचरते व्यसनी पुत्र की (माता) माता भी (तप्यते) दुःखी होती है । वह (ऋणावा) ऋण ग्रस्त होकर (धनम् इच्छमानः) धन चाहता

हुआ, (बिभ्यद्) भय करता हुआ, (नक्तम्) रात के समय (अन्येषाम् अस्तम्) औरों के घर चोरी के लिये (एति) जाता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम्।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥११॥

भा०—(कितवं = कितवः) तेरा क्या ? इस प्रकार अन्यों से छीन झपट करने वाला मनुष्य (स्त्रियं दृष्ट्वा तताप) स्त्री को देख कर दुःखित होता है। वह (अन्येषां जायां) औरों की स्त्री को और (सुकृतं योनिं च) औरों के पुण्य कर्म वा उत्तम रीति से बने घर को देख कर (तपाप) दुःखी होता है। वह (पूर्वाह्णे) दिन के पूर्व भाग में (बभ्रून्) हृष्ट पुष्ट, (अश्वान्) वेगगामी अश्वों के तुल्य अपने प्राणों को (युयुजे) जोड़ता है। (सो) वह (वृषलः) मूढ, अधार्मिक (अग्नेः अन्ते) रात में आग के समीप (पपाद) पहुँच जाता है।

यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२॥

भा०—हे विद्वान् जनों ! (वः महतः गणस्य) आप लोगों के समूह का जो (सेनानाः) नायक है और जो (प्रथमः राजा बभूव) सर्वश्रेष्ठ राजा है (तस्मै अहं दश प्राचीः कृणोमि) मैं उसके आदरार्थ दशों अंगुली आगे करता हूँ, उसे नमस्कार करता हूँ। अथवा, (तस्मैः दश प्राचीः कृणोमि) उसके लिये मैं प्रभु दशों दिशाओं को प्राचीदिशा के समान बढ़ने वा उदय होने के लिये करता हूँ। (न धना रुणध्मि) उसके लिये मैं धन भी रोक के नहीं रखता हूँ। (तत् ऋतं वदामि) उसके लिये मैं सत्य वचन का उपदेश करता हूँ।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥१३॥

भा०—हे (कितव) गर्वीले राजा ! तू अधिकार मद से आकर प्रजा को कह लेता है कि 'किं तव' तेरा क्या है, इसी से तू भी 'कितव' है। (अक्षैः मा दीव्यः) पासों से मत खेल, प्रत्युत (कृषिम् इत् कृषस्व) तू खेती किया कर, परिश्रम से भूमि में कृषि कर। और उसी को (बहु मन्यमानः) बहुत मानता हुआ (वित्ते रमस्व) प्राप्त धन में आनन्द लाभ कर। हे (कितव) उत्तम कर्म करने वाले ! (तत्र गावः) उसी कर्म में तेरी गौएं, (तत्र जाया) उसी में स्त्री, अर्थात् गृहसुख प्राप्त होता है (अयम् अर्यः सविता) यह सर्वप्रेरक स्वामी (मे तत् वि चष्टे) मुझे उसी का उपदेश करे।

मि॒त्रं कृ॑णु॒ध्वं खलु॑ मृ॒ळता॑ नो॒ मा नो॑ घो॒रेण॑ चरता॒भि धृ॒ष्णु।
नि वो॒ नु म॒न्युर्वि॑शता॒मरा॑ति॒र॒न्यो ब॑भ्रू॒णां प्रसि॑तौ॒ न्व॑स्तु ॥१४॥५॥

भा०—हे अध्यक्ष जनों ! आप (मित्रं कृणुध्वम्) हमें अपना और अपने को हमारा मित्र बनाओ। (नः मृडत खलु) हमें सुखी करो। (नः) हमें (धृष्णु) दुःखजनक (घोरेण) संतापदायक क्रोध से (मा अभि चरत) मत आक्रमण करो। (मन्युः अरातिः) अभिमानी और क्रोधी (वः नि विशताम्) आप लोगों के नीचे रहे (अन्यः) शत्रु (बभ्रूणां) प्रजापालक अध्यक्षों के, (प्र-सितौ नु अस्तु) बन्धन में रहे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३५]

लुशो धानाक ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१,६,९,११ विराड्जगती। २ भुरिग् जगती। ३, ७, १०, १२ पादनिचृज्जगती। ४, ८ आर्चीस्वराड् जगती। ५ आर्ची भुरिग् जगती। १३ निचृत् त्रिष्टुप्। १४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

अबु॑ध्रमु॒ त्य इन्द्र॑वन्तो अ॒ग्नयो॒ ज्योति॒र्भर॑न्त उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टिषु।
म॒ही द्यावा॑पृथि॒वी चे॑तता॒मपो॒ऽद्या दे॒वाना॒मव॒ आ वृ॑णीमहे ॥१॥

भा०—(त्ये) वे (अग्नयः) अग्नि के समान तेजस्वी जन (इन्द्र-वन्तः) उत्तम प्रभु वा गुरु को बीच में रखते हुए, (उपसः व्युष्टिषु) प्रभात के प्रकट होने पर (ज्योतिः भरन्तः) अपने में तेज और ज्ञान को धारण करते हुए (अबुध्रम् उ) जाग जाते हैं। (मही) पूज्य (द्यावा पृथिवी) सूर्य भूमिवत् माता पिता भी (अपः चेतताम्) कर्मों का ज्ञान करें। (अद्य) आज हम (देवानाम् अवः आवृणीमहे) विद्वान् पुरुषों का ज्ञान सत्संग, उनकी रक्षा आदि प्राप्त करें।

दिवस्पृथिव्योरव आवृणीमहे मातृन्त्सिन्धून् पर्वताञ्छर्यणावतः।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः २

भा०—हम (दिवः पृथिव्योः) आकाश और भूमिवत् माता पिताओं के (अवः) रक्षण और बल की याचना करते हैं और (मातृन्) ज्ञानवान् (सिन्धून्) महानदों के समान अगाध जल वाले एवं हृदयों से बांधने वाले प्रेमी, (शर्यणावतः) दुष्टों के नाश करने की शक्ति से युक्त (पर्वतान्) पर्वतवत् दृढ़, पालकशक्ति के स्वामी पुरुषों और (सूर्यम् उषासम्) सूर्यवत् तेजस्वी, उषावत् कान्तियुक्त, जन को प्राप्त कर उनसे (अनागास्त्वं) पापरहित होने की (ईमहे) प्रार्थना करें। (सुवानः सोमः) अभिषेक और विद्या आदि में निष्णात (सोमः) शासक वा प्रभु (अद्य नः भद्रं कृणोतु) आज हमारा कल्याण करे।

द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(नः) हम (अनागसः) पाप से रहितों को (द्यावा पृथिवी) सूर्यवत् तेजस्वी, और पृथिवी के तुल्य आश्रय देने में समर्थ, (मही) पूज्य बड़े (मातरा) माता पिता के तुल्य राजा, राजसभा, दोनों (सुविताय) उत्तम मार्ग पर चलाने और सुख प्राप्ति के लिये (त्रायेताम्) हमारी रक्षा करें। (उच्छन्तीः) गुण प्रकाश करती हुई (उषा) प्रभात वेला के

तुल्य गुणों से अलंकृत विदुषी और राज्य में सेना (अघम् अप बाधताम्) पाप को रोके। हम (समिधानम् अग्निम्) तेज से देदीप्यमान अग्निवत् प्रकाशक नेताजन वा प्रभु से (स्वस्ति ईमहे) सुख की प्रार्थना करें।

इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥४॥

भा०—(इयं) यह (प्रथमा) सर्वश्रेष्ठ, (उस्रा) उत्तम पद को प्राप्त करने वाले (रेवती) प्रभुशक्ति, (सु-देव्यं) उत्तम सुखजनक, कामनावान् पुरुषों के योग्य (रेवत्) धनादि से समृद्ध, (नः सनिभ्यः) हमारे में से भजनशील वा ज्ञानादि के दाता जनों को (वि उच्छतु) उषावत् प्रकाशित करे। हम लोग (दुः-विदत्रस्य) दुःखदायी धन वाले के (मन्युं) क्रोध और अभिमान को (आरे धीमहि) दूर करें। (अग्निं समिधानम् स्वस्ति ईमहे) अग्निवत् ज्ञान प्रकाशक प्रभु से हम कल्याण की याचना करते हैं।

प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ।५।६॥

भा०—जैसे (व्युष्टिषु) विशेष रूप से प्रकाश हो जाने पर (उषसः सूर्यस्य रश्मिभिः ज्योतिः भरन्तीः सिस्रते) प्रभात वेलाएं सूर्य की किरणों के प्रकाश को अपने में धारण करती हुई आती हैं, वैसे ही (याः उषसः) जो उत्तम कामनायुक्त, विदुषी स्त्रियां (सूर्यस्य) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु की (रश्मिभिः) प्रकाशक और नियामक व्यवस्थाओं से (ज्योतिः भरन्तीः सिस्रते) ज्ञान धारण करती हुई आगे बढ़ती हैं। वे (अद्य) आज (नः श्रवसे) हमें अन्न और श्रवण योग्य हमारे यश और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (भद्राः) कल्याण और सुख देने वाली होकर (वि उच्छत) गुणों का प्रकाश करें। (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) हम प्रकाश-स्वरूप प्रभु को प्राप्त होकर, उससे कल्याण की याचना करते हैं। इति षष्ठो वर्गः॥

अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥६॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं वा प्रातः प्रभाएं (नः) हमें (अनमीवाः आ चरन्तु) रोगरहित करें। प्रजाओं के समान उत्तम स्त्रियां (अनमीवाः) रोगरहित (नः आ चरन्तु) हमें प्राप्त हों। वे (अग्नयः) सूर्यादि अग्नियों के समान (बृहत् ज्योतिषा) बड़े भारी तेज से (उत् जिहताम्) उदय को प्राप्त हों। (अश्विना) वेगवान् पशुओं के स्वामी, स्त्री पुरुष (तूतुजिं रथं) वेग से जाने में समर्थ रथ को जोड़ें। हम (समिधानम् अग्निम् ईमहे) प्रकाशमान् तेजोमय विद्वान् वा प्रभु से सुख और कल्याण की प्राप्ति करें।

श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि ।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥७॥

भा०—हे (सवितः) हे स्वामिन् ! तू (नः) हमें (अद्य) आज (श्रेष्ठं) सबसे उत्तम (वरेण्यम्) वरण करने योग्य, मार्ग में ले चलने वाला (भागम् आ सुव) सेवने योग्य धन आदि प्राप्त करा। (सः हि) वह तू (रत्न-धाः असि) रमणीय पदार्थों का धारक और दाता है। हे मनुष्यों ! मैं तुम लोगों को (रायः जनित्रीम्) धन के पैदा करने वाली (धिषणाम् उपब्रुवे) वाणी का उपदेश करता हूँ। (अग्निं समिधानं स्वस्ति ईमहे) अग्निवत् ज्ञान से चमकते हुए प्रभु से हम सुख की याचना करते हैं।

पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या अमन्महि ।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥८॥

भा०—हम (मनुष्याः) विचारशील लोग (यत् अमन्महि) जिसका ज्ञान करते हैं (देवानां) विद्वान् जनों के (ऋतस्य) सत्य ज्ञान और यज्ञादि का (तत् प्र-वाचनम्) वह उपदेश और अध्यापन आदि (मा पिपर्तु)

मुझे पालन और ज्ञान से पूर्ण करे। (सूर्यः) सूर्य के समान ज्ञान का प्रकाशक (विश्वाः उस्राः स्पट्) ऊपर उठने वाली वाणियों को प्रकाशित करता हुआ (उत् ऐति) उदय को प्राप्त हो। ऐसे (समिधानम् अग्निम् स्वस्ति ईमहे) प्रकाश करने वाले अग्निवत् ज्ञानी से हम सुख की प्रार्थना करें।

अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साधं ईमहे।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे९

भा०—(अद्य) आज (बर्हिषः स्तरीमणि) वृद्धिशील राष्ट्र के विस्तारक और (ग्राव्णां योगे) उत्तम उपदेष्टा और शत्रु नाशक वीरों के संयोग होने पर (मन्मनः साधे) मनन करने योग्य ज्ञान के साधना-काल में हम (अद्वेषः ईमहे) द्वेषरहित पुरुषों को प्राप्त करें। हे मनुष्य! यदि तू (भुरण्यसि) आगे बढ़ना चाहता है तो तू (आदित्यानां) सूर्यकिरणों के समान ज्ञानप्रकाशक और पृथिवी के उपासक कृषकों के तुल्य अन्नोत्पादक जनों के (शर्मणि) दिये सुख में (स्थाः) रह। हम (समिधानम् अग्निं स्वस्ति ईमहे) प्रकाश देने वाले अग्निवत् ज्ञानी पुरुष से अपने कल्याण की याचना करते हैं।

आ नो बर्हिः सधमादे बृहद्दिवि देवाँ ईळे सादया सप्त होतॄन्।
इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे १०॥७

भा०—हे विद्वन्! मैं (बृहद् दिवि) महान् ज्ञान-प्रकाश के निमित्त (देवान् ईडे) विद्वान् पुरुषों का आदर करूं। हे विद्वन्! (सध-मादे) एक साथ हर्षित होने के स्थान में (नः) हमारे (बर्हिः) वृद्धिकारक राष्ट्र में तू (सप्त होतॄन्) यज्ञ में सात ऋत्विजों के समान सात विद्वान् पुरुषों को (सादय) स्थापित कर। हम लोग (सातये) धनादि के लिये (इन्द्रं मित्रं वरुणं भगं) ऐश्वर्यवान्, सर्वस्नेही, दुःखवारक, सर्वश्रेष्ठ, (समिधानम् अग्निम् ईमहे) तेजस्वी ज्ञानी प्रभु से कल्याण की प्रार्थना करें। इति सप्तमो वर्गः॥

त आदित्या आ गता सर्वतातये वृधे नो यज्ञमवता सजोषसः।
बृहस्पतिं पूषणमश्विना भगं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥११॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी पूज्य जनों! (ते) वे आप लोग (सर्व-तातये) सबके कल्याण के लिये (आगत) आइये। आप लोग (स-जोषसः) प्रेम से युक्त होकर (नः वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (यज्ञम् अवत) हमारे दिये अन्न यज्ञ आदि को प्रेम से स्वीकार करो, हमारे यज्ञ की रक्षा करो। (बृहस्पतिम्) ज्ञान और वाणी के पालक, (पूषणम्) सबके पोषक और वर्धक (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों, (भगं) ऐश्वर्यवान् और (समिधानम् अग्निम्) तेजस्वी, दीप्तिदायक, प्रभु से हम (स्वस्ति ईमहे) कल्याण की प्रार्थना करते हैं।

तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनं छर्दिरादित्याः सुभरं नृपाय्यम्।
पश्वे तोकाय तनयाय जीवसे स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥१२॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् दाता गुरुजनों! आप लोग (नः) हमें (तत्) उत्तम २ (सु-प्रवाचनं यच्छत) सुखदायक, वचनोपदेश दो। हे (आदित्याः) ज्ञानवान् पुरुषों! आप लोग (नृ-पाय्यम्) मनुष्यों के पालन में समर्थ (सु-भरं) उत्तम रीति से पोषण करने में योग्य (छर्दिः) गृह (यच्छत) दो। (पश्वे) पशु, (तोकाय) पुत्र, (तनयाय) पौत्र इनके (जीवसे) जीवन और (स्वस्ति) कल्याण के लिये हम (अग्निं समिधानम्) ज्ञानप्रकाशक आचार्य वा प्रभु से (ईमहे) याचना करते हैं।

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे १३

भा०—(विश्वे मरुतः) बलवान्, शत्रुनाशक और वैश्य मनुष्य, (अद्य) आज (नः ऊती भवन्तु) हमारी रक्षा के लिये हों और (विश्वे) सभी प्राणी (नः ऊतये भवन्तु) हमारी रक्षा के लिये हों। (विश्वे अग्नयः)

समस्त ज्ञानी, अग्रणी जन (ऊतये) रक्षा के लिये (सम्-इद्धाः) अच्छी प्रकार तेजस्वी, अग्निवत् ज्ञान के प्रकाशक (उती भवन्तु) हमारी ज्ञानवृद्धि के लिये हों। (विश्वे देवाः) समस्त दानशील जन (अवसा) ज्ञान और रक्षा सहित (नः आगमन्तु) हमें प्राप्त हों। और (अस्मे) हमें (विश्वम्) सब प्रकार का (द्रविणम्) धन-ऐश्वर्य और (वाजः अस्तु) ज्ञान और बल प्राप्त हो।

यं दे॑वा॒सोऽव॑थ॒ वाज॑सातौ॒ यं त्राय॑ध्वे॒ यं पि॑पृ॒थात्यंहः॑।
यो वो॑ गोपी॒थे न भ॒यस्य॒ वेद॒ ते स्या॑म दे॒ववी॑तये तु॒रासः॑ १४॥८

भा०—हे (देवासः) विद्वान् पुरुषों! (वाज-सातौ) संग्राम, भोग और ज्ञानप्राप्ति के अवसर पर (यम् अवथ) जिसकी रक्षा करते हो, और (यं त्रायध्वे) जिसको कष्ट या शत्रु आदि से बचाते हो, (यं अंहः अति पिपृथ) जिसको पाप से पार करते हो। और (यः वः गोपीथे भयस्य न वेद) जो आपकी रक्षा में भय नहीं जानता ऐसे (ते) वे तीनों वर्गों के हम (तुरासः) शीघ्रकारी जन (देव-वीतये) सूर्यवत् तेजस्वी होने और राजा की रक्षा करने में (स्याम) सदा समर्थ हों। इत्यष्टमो वर्गः॥

[३६]

लुशो धानाक ऋषिः॥ विश्वे देवा देवताः॥ छन्दः—१, २, ४, ६—८, ११ निचृज्जगती। ३ विराड् जगती। ५, ९, १० जगती। १२ पादनिचृज्जती। १३ त्रिष्टुप्। १४ स्वराट् त्रिष्टुप्॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम्॥

उ॒षासा॒नक्ता॑ बृह॒ती सु॒पेश॑सा॒ द्यावा॒क्षामा॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा।
इन्द्रं॑ हुवे म॒रुतः॒ पर्व॑ताँ अ॒प आ॑दि॒त्यान्द्यावा॑पृथि॒वी अ॒पः स्वः॑॥१॥

भा०—(उषासा नक्ता) प्रभातवेला या दिन-रात्रिकाल के समान कर्मनिष्ठ स्त्री पुरुष, (बृहती) बड़े (सु-पेशसा) रूपवान्, ऐश्वर्ययुक्त, (द्यावा क्षामा) सूर्य, भूमि के तुल्य सर्वोपकारक और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, (मित्रः) स्नेहवान्, (अर्यमा) दुष्ट पुरुषों के नियन्ता, इनको और (इन्द्रं) शत्रुहन्ता,

(मरुतः) वायुवत् बलवान्, (पर्वतान्) पर्वतों के समान अचल, (अपः) जलों के समान शीतल, (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमिवत् तेजस्वी और (स्वः) आकाशवत् सुखप्रद, (अपः) अन्तरिक्ष के समान विशाल, इन सब जनों को मैं (हुवे) आदर से बुलाऊं।

द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः।
मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥२॥

भा०—(द्यौः च पृथिवी च) सूर्य और पृथिवी और उनके तुल्य सर्वाश्रय और अन्नप्रद, (प्र-चेतसा) ज्ञानवान्, उदार चित्त वाले, (ऋत-वरी) जलवत् शान्तिदायक और अन्नवत् पुष्टिकारक, जन (नः) हमारी (रिषः) नाशकारी (अंहसः) पाप से (रक्षताम्) रक्षा करें। (दुः-विदत्रा) दुःखदायक, (निर्ऋतिः) कष्टदशा (नः मा ईशत) हम पर अधिकार न करे। (तत्) इसी कारण (अद्य) आज हम (देवानाम्) विद्वानों और मेघ, भूमि, सूर्य आदि के (अवः) बल की (वृणीमहे) याचना करें।

विश्वस्मान्नो अदितिः पात्वंहसो माता मित्रस्य वरुणस्य रेवतः।
स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(मित्रस्य) स्नेही वायुवत् जीवन के रक्षक और (वरुणस्य) दुःखों के वारक, राजा आदि और (रेवतः) ऐश्वर्यवान् की भी (माता) जननी के तुल्य उत्पादक, उनको भी शासक आदि बनाने वाली, (अदितिः) शक्तियुक्त, ब्रह्मशक्ति वा राजसभा (नः विश्वस्मात् अंहसः पातु) हमें समस्त प्रकार के पाप से बचावे। हम लोग (अवृकं) अहिंसाकारी कष्टों वा छल कपट आदि से रहित (स्ववंत् ज्योतिः) तेजःप्रकाश को (नशीमहि) प्राप्त हों। (तत् देवानां अवः अद्य) हम विद्वानों और दिव्य पदार्थों के इसी ज्ञान और सामर्थ्य को (वृणीमहे) प्राप्त करें।

ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुःष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम्।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥४॥

भा०—(वदन्) उपदेश देता हुआ, (ग्रावा) शत्रुओं को चूर्ण कर देने वाला क्षत्रिय और उपदेष्टा विद्वान् (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को (अप सेधतु) दूर करे। वह (दुः-स्वप्न्यं) दुःखकारक शयन, (निर्ऋतिम्) पीड़ा, क्षुधा आदि और (विश्वम् अत्रिणम्) सब प्रकार के प्रजाओं के भक्षकों को (अप सेधतु) दूर करे। हम लोग (आदित्यं) 'अदिति' अर्थात् सूर्य, भूमि, माता, पिता, पुत्र, राजा आदि से प्राप्त होने योग्य (मरुतां शर्म) विद्वानों के सुख को (अशीमहि) प्राप्त करें। हम (देवानां तत्) विद्वानों और दिव्य पदार्थों के उस (अवः) ज्ञान और बल आदि को (वृणीमहे) सदा चाहें।

इन्द्रो॑ ब॒र्हिः सीद॑तु॒ पिन्व॑तामि॒ळा बृह॒स्पति॒: साम॑भिर्ऋ॒क्वो अ॑र्चतु।
सु॒प्रके॑तं जी॒वसे॒ मन्म॑ धीमहि॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे ॥५॥९॥

भा०—(इन्द्रः) तेजस्वी पुरुष (बर्हिः आसीदतु) आसनवत् प्रजा पर आ विराजे। (इडा) भूमि और वाणी, ये (पिन्वताम्) सबको तृप्त करें। (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक (ऋक्वः) अर्चना के साधनों का जानने वाला, (सामभिः) साम गायनों से उद्गाता के समान (अर्चत) पूज्यों की अर्चना करे और हम (जीवसे) जीवन के लिये (मन्म) मनन करने योग्य (सु-प्र-केतम्) श्रेष्ठ ज्ञान और धन को (धीमहि) धारण करें। (देवानां तत् अवः वृणीमहे) हम विद्वानों के उस ज्ञान, रक्षा आदि को चाहें। इति नवमो वर्गः ॥

दि॒वि॒स्पृशं॑ य॒ज्ञम॒स्माक॑मश्विना जी॒राध्व॑रं कृणुतं सु॒म्नमि॒ष्टये॑।
प्रा॒चीन॑रश्मि॒माहु॑तं घृ॒तेन॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या को प्राप्त करने वाले, वेगवान् अश्वों के स्वामिवत् स्त्री पुरुषो! आप (अस्माकम्) हमारे (इष्टये) इष्ट लाभ के लिये (यज्ञं) दान, अर्चनादि को (दिविस्पृशम्) कामनामय मार्ग में जाने वाला, (जीराध्वरं) प्राणियों का नाश न करने वाला और (सुम्नं)

सुखदायक (कृणुतम्) करो और (प्राचीन-रश्मिम्) आगे बढ़ने वाले रश्मियों से युक्त अग्नि को (घृतेन) घृत से (आहुतम् कृणुतम्) आहुति-युक्त करो। हम (तद् देवानां अवः अद्य वृणीमहे) देवों विद्वानों के उस ज्ञान को प्राप्त करें।

उप॑ ह्वये सु॒हवं॒ मारु॑तं ग॒णं पा॑व॒कमृ॒ष्वं स॒ख्याय॑ शं॒भुव॑म्।
रा॒यस्पोषं॑ सौश्रव॒साय॑ धीमहि॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे ॥७॥

भा०—मैं (सु-हवं) यज्ञशील, उत्तम नाम के धारक (मारुतं गणम्) वायुवत् बली पुरुषों के तुल्य प्राणगण को (उप ह्वये) समीप बुलाऊं। मैं (सख्याय) मित्र भाव के लिये (शं भुवम्) शान्तिदायक, (ऋष्वं) महान् (पावकम्) पवित्रकर्ता प्रभु की (उप ह्वये) स्तुति करता हूँ। (सौश्रवसाय) उत्तम सुखपूर्वक ज्ञानादि के लिये हम (रायः पोषम् धीमहि) धन के परिपोषक को धारण करें। (देवानां तद् अवः अद्य वृणीमहे) विद्वानों के उस २ ज्ञान, धन, बलादि को हम प्राप्त करना चाहें।

अ॒पां पेरुं॑ जी॒वध॑न्यं भरामहे दे॒वा॒व्यं॑ सु॒हव॑मध्वर॒श्रिय॑म्।
सु॒र॒श्मिं सोम॑मिन्द्रि॒यं य॑मीमहि॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे ॥८॥

भा०—हम लोग (अपां पेरुम्) जलों के पालक मेघ वा समुद्रवत् प्रजाओं और प्राणों के रक्षक, (देव-अव्यम्) विद्वानों से प्राप्य कामना-वान् जनों से स्वामीवत् स्नेह करने योग्य, (सु-हवं) सुखप्रद, सुगृहीत नाम वाले उत्तम दाता, (अध्वर-श्रियम्) यज्ञ की शोभा को धारण करने वाले, अविनाशी सम्पदा से युक्त, प्रभु को (भरामहे) धारण करें। और हम (सु-रश्मिम्) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य वा अश्व, सारथिवत् (सोमम्) जगत् वा देह के प्रेरक स्वामी के तुल्य (इन्द्रियम्) ऐश्वर्यों के स्वामी, इन्द्रियों के अध्यक्ष, प्रभु आत्मा को (यमीमहि) संयम द्वारा प्राप्त करें। (तत् देवानां अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानों का वह ज्ञान, और प्राणों का वह बल भी प्राप्त करें।

सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः ।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ९ ॥

भा०—(वयम्) हम (अनागसः) पापरहित (जीव-पुत्राः) जीवित पुत्रों से युक्त, (जीवाः) स्वयं जीवित रहते हुए (सनित्वभिः) दानशील पुरुषों सहित, (सुसनिता तत् सनेम) सुखपूर्वक सेवन करने और दान आदि के द्वारा उस प्रभु का भजन, सेवा, आदि करें। और (ब्रह्म-द्विषः) विद्वानों, वेदों और आत्मा, परमात्मा के द्वेषी जन (एनः) पाप आदि अपराध को (विश्वक् भरेरत) सब प्रकार से भोगें; वे पाप का दण्ड प्राप्त करें। (देवानां तत् अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानों और दानशील पुरुषों के उस उत्तम स्नेह को प्राप्त करें।

ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्दधातन ।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यशस्तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१०।१०॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषों! (ये) जो (मनोः) मननशील आत्मा की (यज्ञियाः) पूजा में तत्पर (स्थ) हो, (ते) वे आप (शृणोतन) आत्मा का श्रवण करो। और हे (देवाः) दानशील जनों, हम (वः यत् ईमहे) आप लोगों से जो ज्ञान की याचना करते हैं (तत् दधातन) उसको धारण कराओ हमें (जैत्रं क्रतुम्) संकटों पर विजय कराने वाले ज्ञान और कर्म बल, और (रयिमत् वीरवत् यशः) धनों और पुत्रों से युक्त यश आदि प्रदान करो। (अद्य देवानाम् अवः वृणीमहे) हम ज्ञानी, दानशील विद्वानों का रक्षण प्राप्त करें। इति दशमो वर्गः ॥

महदद्य महतामा वृणीमहेऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम् ।
यथा वसु वीरजातं नशामहै तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥११॥

भा०—(अद्य) आज, हम लोग (महताम्) बड़े (अनर्वणाम्) अहिंसक (बृहताम्) ज्ञान आदि में बढ़े हुए (देवानाम्) विजयार्थियों

और दानियों का (अवः आवृणीमहे) शरण चाहते हैं। (यथा) जिससे (वीर-जातं) हम वीर पुत्र और (वीर-जातं वसु) वीरों से प्राप्य ऐश्वर्य को (नशामहै) प्राप्त करें। (देवानाम् अद्य तत् अवः वृणीमहे) हम विद्वानों के उस उत्तम बल ज्ञान, रक्षा आदि को चाहते हैं।

महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१२॥

भा०—(महः) बड़े (समिधानस्य) देदीप्यमान प्रभु के (शर्मणि) सुख में रहें। हम (स्वस्तये) कल्याण की प्राप्ति के लिये (मित्रे) स्नेहवान् (वरुणे) प्रभु के अधीन (अनागाः स्याम) अपराधरहित होकर रहें। और (सवितुः) उत्पादक प्रभु के (श्रेष्ठे सवीमनि) श्रेष्ठ शासन में (स्याम) रहें। (देवानाम् तत् अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानों का वह ज्ञान, बल, स्नेह प्राप्त करें।

ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः।
ते सौभगं वीरवद्गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥१३॥

भा०—(ये) जो (देवाः) विद्वान् (सत्य-सवस्य मित्रस्य) सत्य के स्वामी, (वरुणस्य) दुःखों के वारणकर्त्ता, प्रभु के (व्रते) व्रत में तत्पर हैं, (ते विश्वे) वे (वीरवत्) वीरों से युक्त (गोमत्) वाणियों, भूमियों और पशुओं से समृद्ध, (सौभगं) ऐश्वर्य, (अप्नः) ज्ञान, कर्म और (चित्रं) अद्भुत (द्रविणं) धन (अस्मे) हमें (दधातन) प्रदान करें।

सविता पश्चातात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात्।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः १४।११

भा०—(सविता पुरस्तात्) उत्पादक प्रभु हमारे आगे हो (सविता पश्चातात्) सन्मार्ग में सञ्चालक प्रभु हमारे पीछे हो, (सविता उत्तरात्तात्) ऐश्वर्यवान् प्रभु हमारे उत्तर में, बायें या ऊपर हो और (अधरा-

त्तात् सविता) वही उत्पादक हमारे दक्षिण में या नीचे हो। (सविता नः सर्वतातिं सुवतु) वह सर्वोत्पादक प्रभु हमारा अभिलषित सुख प्रदान करे। (सविता नः दीर्घम् आयुः रासतां) वह सर्वप्रेरक जगदीश्वर हमें दीर्घ आयु प्रदान करे। इत्येकादशो वर्गः॥

[३७]

अभितपाः सौर्य ऋषिः॥ छन्दः—१–५ निचृज्जगती। ६–९ विराड् जगती। ११, १२ जगती। १० निचृत् त्रिष्टुप्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

नमो॑ मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ चक्ष॑से म॒हो दे॒वाय॒ तदृ॒तं स॑पर्यत।
दू॒रे॒दृशे॑ दे॒वजा॑ताय के॒तवे॑ दि॒वस्पु॒त्राय॒ सूर्या॑य शंसत॥ १॥

भा०—(मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे) मित्र दिन और वरुण रात्रि दोनों को प्रकट करने वाले (महः देवाय) बड़े भारी प्रकाशक सूर्य के (ऋतम्) तेज को जैसे आप लोग श्रेष्ठ मानते और उसका उपयोग लेते हैं वैसे ही हे विद्वान् लोगो! (मित्रस्य वरुणस्य) परम स्नेही और सर्वश्रेष्ठ रूप के (चक्षसे) दिखाने वाले (महः देवाय) बड़े भारी प्रकाशस्वरूप प्रभु के (तद् ऋतं) उस सत्य ज्ञान का (सपर्यत) आदर करो। और (दूरे-दृशे) दूर से दीखने वाले, (देव-जाताय) प्रकाशमान पदार्थों और विद्वानों में प्रकट होने वाले (केतवे) ज्ञानस्वरूप, (दिवः पुत्राय) आकाश के पुत्र (सूर्याय) सूर्य तुल्य तेजस्वी एवं (दिवः पुत्राय) ज्ञान-प्रकाश के द्वारा हृदय में प्रकट (सूर्याय) सबके प्रेरक प्रभु की ही (शंसत) स्तुति करो।

सा मा॑ स॒त्योक्तिः॒ परि॑ पातु वि॒श्वतो॒ द्यावा॑ च॒ यत्र॑ त॒तन॒न्नहा॑नि च।
विश्व॑म॒न्यं नि वि॑शते॒ यदेज॑ति वि॒श्वाहापो॑ वि॒श्वाहोदे॑ति॒ सूर्यः॑॥२॥

भा०—(यस्य) जिसके आश्रय (द्यावा च अहानि च) दिन और रात्रियां भी (ततनन्) उत्पन्न होती हैं, (यद् एजति) जो चल रहा है वह (अन्यत् विश्वम्) जड़ से भिन्न चेतन भी जिसके आश्रय (नि-विशते) बसा है और जिसके आश्रय पर (आपः विश्वाहा) नदी, समुद्रादि और

समस्त प्रजाएं स्थित हैं, (विश्वाहा सूर्यः उदेति) जिसके आश्रय पर सूर्य उदित होता है। (सा सत्योक्तिः) वह सत्य वचन (मा विश्वतः परिपातु) मेरी सब प्रकार से रक्षा करे।

न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जैसे सूर्य (एतशेभिः पतरैः) वेग से जाने वाले अश्वों के तुल्य श्वेत किरणों से (रथर्यति) प्राप्त होता है, और कोई (अदेवः न निवासते) पदार्थ अप्रकाशित नहीं रह जाता है, (प्राचीनं रजः अनु वर्त्तते) तब उसका एक प्रकाश पूर्व दिशा की ओर प्रकट होता है, और (अन्येन ज्योतिषा याति) दूसरे, पश्चिमगामी, ज्योति से अस्त होता है। ऐसे ही हे (सूर्य) सूर्यवत् उदय अस्त होने वाले आत्मन्! (यत्) जो तू (पतरैः) गमनशील (एतशेभिः) अश्ववत् प्राणों से (रथर्यति) देह रूप रथ से प्राप्त होता है, तब (ते) तेरा कोई भी (प्र दिवः) पुराना अंश (अदेवः) अप्रकाशित (न निवासते) नहीं रह जाता। हे (सूर्य) प्रेरक आत्मन्! (अन्यत्) एक विशेष (प्राचीनं) अति उत्तम (रजः) जल वा उत्पादक वीर्य (अनु वर्त्तते) विकसित होकर प्राणिरूप में प्रकट होता है और (अन्येन ज्योतिषा) एक दूसरे ही प्रकार के तेज से तू इस देह से (उत् यासि) उत्क्रमण करता है।

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुःष्वप्न्यं सुव ॥ ४ ॥

भा०—हे (सूर्य) सर्वोत्पादक प्रभो! तू (येन ज्योतिषा तमः बाधसे) जिस तेज से अन्धकार को दूर करता है और (येन भानुना) जिस प्रकाश से (विश्वम् जगत् उत् इयर्षि) समस्त जगत् को उत्पन्न करता है, (तेन) उससे तू (अस्मत्) हमसे (विश्वाम्) समस्त (अनिराम्) अन्न जल के अभाव, (अनाहुतिम्) यज्ञादि के अभाव, (अमीवाम्) रोग व्याधि, (दुःस्वप्न्यं) दुःस्वप्न आदि के कारण को (अप सुव) दूर कर।

विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतमहेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ॥५॥

भा०—हे प्रभो ! तू (प्रेषितः) भक्तों द्वारा चाहा जाता है। तू (अहेडयन्) किसी का अनादर न करता हुआ, (विश्वस्य हि व्रतम् रक्षसि) सबके व्रतों, कर्मों और जगत् के नियम की रक्षा करता है। हे प्रभो ! (अद्य) आज (यत् त्वा उप ब्रवामहै) जिस कर्म की हम तुझसे उपासना द्वारा प्रार्थना करते हैं (तत् क्रतुम्) उस कर्म की (देवा अनु मंसीरत) विद्वान् हमें अनुमति देवें।

तं नो द्यावा पृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य सन्दृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ६।१२

भा०—(द्यावापृथिवी) माता और पिता, (नः तं हवं शृण्वन्तु) हमारे उस आह्वान को श्रवण करें। (आपः) आप्त जन हमारे (तं) उस आह्वान को सुनें। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वीरजन और (मरुतः) वायुवद् बलवान् (नः वचः शृण्वन्तु) हमारे वचन सुनें। (सूर्यस्य सं-दृशि) सूर्य के समान तेजस्वी प्रभु वा शासक के प्रकाशमय दर्शन के अधीन हम (शूने मा भ्रम) शून्य, निस्सार न रहें, प्रत्युत (भद्रं जीवन्तः) सुखदायी जीवन व्यतीत करते हुए (जरणाम् अशीमहि) वृद्ध-अवस्था को प्राप्त हों। इति द्वादशो वर्गः॥

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥७॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्यवत् सर्वप्रकाशक प्रभो ! हम (विश्वाहा) सदा, (सु-मनसः) शुभ मन वाले (सु-चक्षसः) उत्तम ज्ञान-नयनों से सम्पन्न, (प्रजावन्तः) उत्तम प्रजा वाले, सुसन्तानयुक्त, (अनमीवाः) रोगरहित, (अनागसः) निरपराध, हों। हे (मित्र-महः) स्नेही जनों से पूज्य ! महान् ! हम तुझे (दिवे-दिवे उत् यन्तं पश्येम) दिन प्रतिदिन ऊपर उठता

हुआ देखें। हम (जीवाः) जीवित रहते हुए (ज्योक् प्रति पश्येम) चिरकाल तक तेरा दर्शन करें।

महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषे चक्षुषे मयः।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥८॥

भा०—हे (विचक्षण) जगत् के देखने वाले! (चक्षुषे-चक्षुषे) प्रत्येक आंख के लिये (मयः) सुख और (महि ज्योतिः विभ्रतम्) बड़े भारी तेज को धारण करते हुए (भास्वन्तं) प्रकाश से चमकते हुए, और (बृहतः पाजसः परि) बड़े भारी समुद्र पर उदय होते सूर्यवत् (बृहतः पाजसः परि) बड़े भारी बल से चलने वाले विश्व के संचालक, काल के ऊपर (आरोहन्तं) चढ़े हुए, हे (सूर्य) प्रभो! (त्वा) तेरा हम (प्रति पश्येम) साक्षात् करें।

यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः।
अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्याह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि ॥९॥

भा०—हे (हरि-केश) तेजोयुक्त किरणों वाले! (यस्य ते) जिस तेरे (केतुना) ज्ञान-प्रकाश से (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (प्र ईरते च) अच्छी प्रकार चलते हैं और (ते अक्तुभिः) तेरे प्रकाशों से (प्रति विशन्ते च) अच्छी प्रकार स्थिर हैं। वह तू (अनागास्त्वेन) पाप आदि से रहित करता हुआ (वस्यसा-वस्यसा) श्रेयस्कर (अह्ना-अह्ना) दिनोंदिन (उत् इहि) उदय को प्राप्त हो।

शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन।
यथा शमध्वञ्छमसद्दुरोणे तत्सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ १० ॥

भा०—हे (सूर्य) सर्वप्रेरक प्रभो! तू (चक्षसा) सर्वशक्तिमान् तेज से (नः शं भव) हमें शान्तिदायक हो। (नः अह्ना शं) दिनवत् बल से हमें शान्ति दे। (हिमा शं) तू शीतलस्वरूप से हमें शान्ति दे। (घृणेन शम्)

अपने तापयुक्त तेजस्वी स्वरूप से हमें शान्ति दे। (भानुना शम्) हमें अपने रूप से शान्ति दे। तू (तत्) वह परम (चित्रं द्रविणं धेहि) ज्ञानमय ऐश्वर्य प्रदान कर (यथा) जिससे (अध्वन् शम् असत्) जीवनमार्ग में हमें शान्ति प्राप्त हो। (दुरोणे शम् असत्) गृह में हमें शान्ति प्राप्त हो।

अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे।
अदत्पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ॥ ११ ॥

भा०—हे (देवाः) तेजस्वी जनों! आप (उभयाय जन्मने) जन्म लेने वाले दोनों प्रकार के (द्विपदे चतुष्पदे) दोपाये और चौपाये सबको (शर्म यच्छत) सुख प्रदान करो। (अदत्-पिबत्) खाया पिया हुआ और (आशितम्) प्राप्त किया गया, पदार्थ भी (ऊर्जयमानम्) बल उत्पन्न करने वाला हो। आप लोग (अस्मे) हमें (अरपः) निष्पाप (शं योः) दुःखनाशक वस्तु (दधातन) प्रदान करो।

यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम्।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन्तदेनो वसवो नि धेतन ॥ १२ ॥ १३ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषों! (वः) आप लोगों के प्रति (जिह्वया) वाणी द्वारा (यत्) जो हम (गुरु देवहेडनम् चकृम) भारी विद्वानों का भारी अनादर करें (वा) अथवा (मनसः प्रयुतीः) मन के प्रयोग से अपराध करें तो (यः) जो (नः) हमारे बीच (अरावा) अदानशील, दुष्ट शत्रु (नः अभि) हम पर सब ओर से (दुच्छुनायते) कष्ट देना चाहता है, (तस्मिन्) उसके निमित्त उस पर हे (वसवः) विद्वान् जनों! (तत् एनः) वह पाप (नि धेतन) स्थापित करो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३८]

इन्द्रो मुष्कवान् ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती। २ पादनिचृज्जगती। ३, ४ विराड् जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्राव सातये।
यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक्पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये ॥१॥

भा०—जैसे (इन्द्रः) सूर्य वा मेघ (यशस्वति शिमीवति) अन्न जल से युक्त अन्तरिक्ष में (पृत्सुतौ क्रन्दसि) प्राणियों के पालक अन्न की उत्पत्ति के लिये गर्जता है और (गो-साता) भूमि पर पड़ते हुए (खादिषु धृषितेषु) जलग्राही रश्मियों के असह्य तापवान् होने पर (दिद्यवः पतन्ति) चमकती बिजुलियां पड़ती हैं, वैसे ही (यत्र) जिस (गो-साता) भूमि आदि के लाभ के निमित्त (नृ-साह्ये) वीर पुरुषों से विजय योग्य युद्ध में (धृषितेषु) बलात्कार करने वाले (खादिषु) एक दूसरे को खा जाने वाले शत्रुओं पर (दिद्यवः) चमचमाते अस्त्र-शस्त्र (पतन्ति) वेग से जाते हैं। (अस्मिन्) इस (पृत्सुतौ) सेनादि सञ्चालन करने योग्य (यशस्वति) यशोदायक, (शिमीवति) नाना कर्मों वाले युद्ध में हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक (नः क्रन्दसि) तू हमारे बीच में मेघवत् गर्जता है, हमें (क्रन्दसि) बुलाता है, वह तू (सातये) धनादि के लिये (नः प्र अव) हमारी रक्षा कर।

स नः क्षुमन्तं सदने व्यूर्णुहि गोअर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम्।
स्याम ते जयतः शक्र मेदिनो यथा वयमुश्मसि तद्वसो कृधि ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! जैसे सूर्य (क्षुमन्तं गो-अर्णसं रयिम् वि ऊर्णोति) अन्नयुक्त भूमि के धनरूप ऐश्वर्य को प्रकट करता है वैसे ही (सः) वह तू (नः सदने) हमारे आश्रय में (क्षुमन्तम्) शब्द-उपदेश से युक्त, (श्रवाय्यम्) श्रवण करने योग्य (गो-अर्णसम्) वेदवाणी और धन से सम्पन्न (रयिम्) ज्ञानैश्वर्य को (वि ऊर्णुहि) प्रकट कर। (जयतः ते) तेरे विजय करते हुए हे (शक्र) शक्तिशालिन्! हम (मेदिनः स्याम) बलवान् योद्धा हों। हे (वसो) सबको बसाने वाले! स्वामिन्! (यथा वयम् उश्मसि) हम जो कामना करें तू (तत् कृधि) वह कर।

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम सङ्गमे ३

भा०—हे (पुरु-स्तुत) मुख्य शासक! (यः) जो (नः) हमारे बीच (दासः) हमारा भृत्य वा (आर्यः) श्रेष्ठ स्वामी, (अदेवः) हमारे अधिकार और ऋण आदि को न देता हुआ (युद्धये चिकेतति) युद्ध करने के लिये सोचता है, (ते) तेरे वे सब शत्रु (अस्माभिः) हम द्वारा (सु-सहाः सन्तु) पराजित हों। और (त्वया) तुझ द्वारा (वयं) हम भी (तान्) उन शत्रुओं को (संगमे) संग्राम में (वनुयाम) विनष्ट करें।

यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभिर्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये।
तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरमर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ॥४॥

भा०—(यः) जो (दभ्रेभिः) स्वल्पबल और (यः च) जो (भूरिभिः) बहुत बलशालियों से भी (हव्यः) स्तुति योग्य है, (यः) जो (नृ-साह्ये अभीके) वीर नायकों द्वारा विजय योग्य संग्राम में (वरिवः-वित्) धन प्राप्त कराने वाला है, (वि-खादे) विविध प्रकार से मनुष्यों का नाश करने वाले संग्राम में (सस्निं) निष्णात (श्रुतं) प्रसिद्ध (तं) उस, (इन्द्रम्) सूर्यवत् (नरम्) नायक को (अवसे) रक्षा के लिये (अर्वाञ्चं करामहे) साक्षात् करें।

स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम्।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते ५।१४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वाम्) तुझको मैं (स्व-वृजम्) स्वयमेव सब बन्धनों को काटने वाला, असङ्ग ही (शुश्रव) श्रवण करता हूँ और तुझको मैं (अनानुदम्) दूसरे के दान की अपेक्षा न करने वाला (रध्र-चोदनम्) वशगामियों को सन्मार्ग में चलाने वाला (शुश्रवे) सुनता हूँ। हे (वृषभ) बलशालिन् तू (कुत्सात्) निन्दित मार्ग से (प्र मुञ्चस्व)

अपने को वा अन्यों को शीघ्र मुक्त कर (इह परि आगहि) यहां आ। (किम् उ) क्या (त्वावान्) तेरे जैसा ज्ञानी (मुष्कयोः बद्धः) अण्डकोशों में बंधा अर्थात् भोग्य इन्द्रिय सुखादि में वा पतङ्गादि योनियों में बंधा (आसते) रह सकता है। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[३९]

घोषा काक्षीवती ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१,६,७,११,१३ निचृज्जगती २, ८, ९, १२ जगती। ३ विराड् जगती। ४, ५ पादनिचृज्जगती। १० आर्ची स्वराड् जगती। १४ निचृत् त्रिष्टुप्॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम्॥

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे॥ १॥

भा०—हे (अश्विना) प्रजा राजावत् अश्वों इन्द्रियों के स्वामी जनों वा स्त्री पुरुषों! (यः) जो (वां) तुम दोनों में से (परि-ज्मा) बलपूर्वक जानने वाला, (सुवृत्) उत्तम आचरणवान्, (सुवृत् रथः) सुखपूर्वक चलने वाले रथ के समान उद्देश्य तक पहुँचाने वाला है, वह उपदेष्टा, (दोषाम् उषसः) रात दिन (हविष्मता) अन्नादि साधनों वाले जन से (हव्यः) आदर सत्कार करने योग्य है। (वाम्) आप में से (तं) उसी के (सुहवम् नाम) सुगृहीत नाम वाले (पितुः न नाम) पिता के पालक स्वरूप को (इदम्) इस २ प्रकार (हवामहे) पुकारते और (पितुः इदं नाम) पालक के इस पद के लिये स्वीकार करें।

चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरन्धीरीरयतं तदुश्मसि।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् २

भा०—हे (अश्विनौ) स्त्री पुरुषों! आप (सूनृताः) सत्य वाणियों का (चोदयतम्) उपदेश करें। और (धियः पिन्वतम्) उत्तम कर्मों और प्रजापोषक उद्योगों को समृद्ध करें। (पुरम्-धीः उत् ईरयतम्) अनेक मतियों और सद्-विचारों का उपदेश करो। (उश्मसि) हम जो २ चाहते

हैं (नः भागम्) हमारे उस ऐश्वर्य को (कृणुतम्) प्रदान करो और (नः) हमारे (मघवत्सु) ऐश्वर्यवान् जनों के (सोमं न चारु) सोम, वैद्यों के तुल्य ओषधि के समान ऐश्वर्य (कृतम्) उत्पन्न करो ।

अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ३

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वाले स्त्री पुरुषों ! (युवम्) आप परस्पर (अमा-जुरः) एक दूसरे के साथ जरा-वस्था को प्राप्त होने वाले संगी के (भगः) सेवन करने और परस्पर सुख देने वाले (भवथः) होवो । आप दोनों (अनाशोः चित्) भोजन आदि से रहित जन के भी (अवितारा भवथः) रक्षक होवो । आप (अपमस्य चित् अवितारा भवथः) जाति या गुणों में निकृष्ट, छोटे से छोटे जीव के भी रक्षक होवो । आप (अन्धस्य चित्) अन्धे के (कृशस्य चित्) और दुर्बल तक के रक्षक होवो । (युवाम्) आप दोनों को (रुतस्य चित्) पीड़ित के (भिषजा) रोग को वैद्यों की तरह दूर करने वाली (आहुः) कहते हैं ।

युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या ॥४॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषों ! हे प्राण अपानों ! (यथा रथं पुनः चरथाय तक्षथुः) जैसे रथ को पुनः चलने के लिये ठीक करते हैं वैसे ही आप दोनों (सनयं च्यवानं) उत्तम नीति से युक्त, आगे बढ़ने वाले नायक को (युवानं) बलवान् करके (पुनः) फिर (चरथाय) चलने में समर्थ (तक्षथुः) बनाओ । प्राण अपान ये दोनों ही (सनयं च्यवानम्) सनातन, आत्मा को पुनः पुनः युवा बनाते, उसे कर्मफल भोगार्थ देह प्रदान कराते हैं । तुम दोनों (तौग्र्यम्) प्रजापालक पद पर विद्यमान राजा को (अद्भ्यः परि निर ऊहथुः) आप्त प्रजाओं के ऊपर शासकवत् धारण करो ।

(वाम् ता) तुम दोनों के वे (विश्वा) सब कार्य (सवनेषु प्र-वाच्या) यज्ञ, आदि अवसरों में उपदेश करने योग्य हैं।

पुराणा वां वीर्या३ प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा।
ता वां नु नव्यावव॑से करामहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ५।१५

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (वां) तुम दोनों के (पुराणा वीर्या) पूर्व काल के वीर-जनोचित कार्यों का मैं (जने) मनुष्यों में (प्र-ब्रव) अच्छी प्रकार कथन करूं। (अथो ह) और आप दोनों (मयः-भुवा) सुखोत्पादक, (भिषजा) रोगों को दूर करने वाले, (आसथुः) होवो। हे (नासत्या) नासिका में विद्यमान प्राणों के समान प्रमुख जनों! आप दोनों (नव्यौ) स्तुति योग्य जनों को (नु) शीघ्र ही (अवसे) रक्षार्थ नियुक्त (करामहे) करें। (यथा) जिससे (अयम् अरिः) यह स्वामी मनुष्य (श्रत् दधत्) सत्य को धारण करे। इति पञ्चदशो वर्गः॥

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम्।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ६

भा०—हे (अश्विना) विद्या में पारंगत गुरुजनों! (वां) आप दोनों को (इयम्) यह मैं ब्रह्मचारिणी (अह्वे) प्रार्थना करती हूँ। आप दोनों (पुत्राय इव पितरा) पुत्र को माता पिता के समान (मह्यं) मुझे (शिक्षतम्) ज्ञान दो। मैं (अनापिः) बन्धुरहित, (अज्ञाः) ज्ञानरहित, (असजात्या) समान गुणादि वाले अनुरूप पुरुष से रहित, और (अमतिः) सुमति से रहित हूँ। आप दोनों (तस्याः अभिशस्तेः पुरा) उस नाना प्रकार का निन्दा आदि प्राप्त होने के पूर्व ही, मुझे (अव स्पृतम्) पालन करो।

युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम्।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंधये॥७॥

भा०—हे स्त्री पुरुषों ! (युवं) आप दोनों (वि-मदाय) विशेष हर्षयुक्त, पुरुष के सुख के लिये (पुरु-मित्रस्य) बहुत मित्रों से युक्त पुरुष की (शुन्ध्युवम्) निर्दोष, (योषणाम्) प्रेमयोग्य कन्या को (नि ऊहथुः) विवाह द्वारा प्राप्त कराओ और (युवम्) आप दोनों (वध्रिमत्याः) जितेन्द्रिय स्त्री के (हवम्) सादर आह्वान और प्रार्थना को (आ गच्छतम्) प्राप्त करो। (युवम्) तुम दोनों (पुरंधये) पुर के रक्षक के समान गृह के रक्षक स्त्री पुरुष के लिये (सु-मतिम्) उत्तम ऐश्वर्य (चक्रथुः) करो।

युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः।
युवं वन्दनमृश्यादादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः॥ ८॥

भा०—(युवं) आप दोनों (जरणाम् उपेयुषः) स्तुतिकारिणी वाणी को प्राप्त होने वाले (कलेः) ज्ञानवान् और (विप्रस्य) विविध ज्ञानों में अन्यों को पूर्ण करने वाले पुरुष के (वयः) जीवन और बल को (पुनः) बार २ (युवत्) समृद्ध (अकृणुतं) करो। (युवं) तुम दोनों (वन्दनं) ईश्वर का गुण वर्णन करने वाले भक्त का (ऋश्यदात्) दुःख से (उद्-ऊपथुः) उद्धार करो। और (विश्पलाम्) प्रजा की पालक सेना को (सद्यः एतवे) शीघ्र चलने योग्य (कृथः) करो।

युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये॥ ९॥

भा०—हे (वृषणा) सुखों की वर्षा करने वाले, हे (अश्विना) विद्या में निष्णात स्त्री पुरुषों! आप (गुहा हितम्) देहरूप गुफा वा बुद्धि में स्थित, (ममृवांसं) प्राण-त्याग करने वाले (रेभम्) शब्दकारी जीव को (उत् ऐरयतम्) ऊपर उठाओ। (युवं) तुम दोनों (सप्त-वध्रये) सातों को निर्बल कर वश में करने वाले (अत्रये) भोक्ता जीव के लिये (तप्तं) संतापदायी (ऋबीसम्) आग वाले भाड़ के समान देहादि-बन्धनकारी कारण को भी (ओमन्वन्तम्) सुखदायी (चक्रथुः) बनाते हो।

युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम्।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥१०।१६

भा०—हे (अश्विना) प्राण-उदानवत् स्त्री पुरुषों! (युवं) आप दोनों (पेदवे) ज्ञान करने वाले जीव को (नवभिः नवती) ९९ (वाजैः) सामर्थ्य से युक्त (वाजिनम्) बल और विभूतियों से युक्त, (अश्वम्) भोगों से सम्पन्न (श्वेतम्) शुभ्र और (चर्कृत्यं) कर्म करने में समर्थ वीर पुरुष को अश्व के समान (ददथुः) प्रदान करते हो। इसी प्रकार (नृभ्यः) सभी जीवों को (द्रावयत्-सखं) मित्र साथियों को द्रुतगति से चलाने वाले, (मयः-भुवम्) सुखदायक, (हव्यं) स्तुत्य स्वीकार करने योग्य अन्न के तुल्य (भगं न) सेवनीय, कर्मफल के अनुरूप ऐश्वर्ययुक्त देह प्रदान करते हो। इति षोडशो वर्गः॥

न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम्।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥११॥

भा०—हे (अश्विना) विद्यादि शुभ गुणों में व्याप्त जनों! (सु-हवा) शुभ नाम से पुकारने योग्य (रुद्र-वर्त्तनी) दुःखों को दूर करने वाले होकर (यम्) जिसको (पत्न्या सह) पालक शक्ति से सहित (पुरः-रथम्) अग्रगामी रथ वाला, वीर (कृणुथः) कर देते हो। हे (राजाना) शुभगुणों से चमकने वालों! हे (अदिते) माता पितावत् तेजस्वियों! (तं) उसको (अंहः) पाप (कुतः चन) कहीं से भी (न अश्नोति) नहीं प्राप्त होता। (न दुरितं) न कोई दुष्ट कर्म उसको प्राप्त होता और (नकिः भयम्) न कोई भय उसे लगता है।

आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः १२

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों! (यं) जिस सुखदायक (रथं) गृहस्थरूप रथ को (ऋभवः चक्रुः) शिल्पी जनों के तुल्य सत्य का

प्रकाश करने वाले विद्वान् उपदेश करते हैं (तेन) उससे (मनसः जवीयसा) मन के बल से चलने वाले, उस रथ से (आयातम्) आओ जाओ और (यस्य योगे) जिसके जुड़ने पर (दिवः दुहिता जायते) तेजस्वी सूर्य की कन्या उषा के समान शुभगुणों से युक्त कन्या (सुदिने उभे अहनी) उत्तम सुखदायक दिन और रात में (विवस्वतः) विशेष ऐश्वर्य के स्वामी पति की (दिवः दुहिता) कामनाओं को पूर्ण करने वाली (जायते) हो जाती है।

ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसिताममुञ्चतम् ॥१३॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामी जनों ! (ता) वे दोनों आप (जयुषा रथेन) जयशील रथ आदि से (पर्वतं) पर्वत के समान उच्च स्थान के प्रति (वर्त्तिः) उत्तम मार्ग पर (यातम्) गमन करो। (शयवे) शिशुवत् अज्ञानी पुरुष के हितार्थ (धेनुम्) वाणी का (अपिन्वतम्) उपदेश करो। (वृकस्य चित् आस्यात् वर्त्तिकाम्) भेड़िये के मुख के भीतर पड़ी बटेरी के तुल्य और शासक वर्ग के मुख से (अन्तः ग्रसिताम्) भीतर निगली गई पीड़ित प्रजा को (युवं) आप दोनों (अमुञ्चतम्) छुड़ाओ।

एतं वां स्तोममश्विनावकर्मा तक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः ॥१४॥१७॥

भा०—हे (अश्विनौ) अश्वादि वेगवान् साधनों के स्वामियो ! (भृगवः न रथम्) गतिमान् साधनों को वश करने वाले विद्वान् लोग जैसे रथ को विवेक पूर्वक बनाते हैं वैसे ही हम भी (वां एतं स्तोमं अतक्षाम) आप दोनों के लिये यह गुणवर्णन और उपदेश योग्य वचन कहें। (मर्ये योषणां न) युवा पुरुष के अधीन जैसे प्रेमयुक्त स्त्री को सौंपा जाता है, वैसे ही हम भी आप दोनों समर्थ पुरुषों के अधीन (योषणां) प्रेम पूर्वक रहने वाली प्रजा वा राजसभा को (नि अमृक्षाम) आप दोनों को सौंपें और (तनयं दधानाः) पुत्र का पोषण करते हुए माता पिता जन (सूनुं न

नित्यं नि अमृक्षन्त) उसे नित्य नहलाते-धुलाते हैं वैसे ही हम (दधानाः) आप दोनों को स्थापित करते हुए (नित्यं सूनुं) नित्य, शासक रूप से (नि अमृक्षाम) नियमपूर्वक अभिषिक्त करें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[४०]

ऋषिर्घोषा काक्षीवती ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, १२, १४ विराड् जगती। २, ३, ७, १०, १३ जगती। ४, ९ ११ निचृज्जगती। ६, ८ पादनिचृज्जगती ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

रथं॒ यान्तं॒ कुह॒ को ह॑ वां नरा॒ प्रति॑ द्यु॒मन्तं॑ सुवि॒ताय॑ भूषति।
प्रा॒त॒र्यावा॑णं वि॒भ्वं॑ वि॒शेवि॑शे॒ वस्तो॑र्वस्तो॒र्वह॑मानं धि॒या शमि॑ ॥१॥

भा०—हे (नरा) नायकवत् स्त्रीपुरुषों! (वां) आप दोनों के (सुविताय) अभ्युदय के लिये (यान्तं) गमन करते हुए (द्युमन्तं) दीप्तियुक्त, (प्रातर्यावाणं) प्रातः २ ही प्राप्त होने वाले, (विशे विशे वस्तोः वस्तोः) प्रजा को दिन प्रतिदिन (विभ्वं वहमानः) सुखादि प्राप्त कराने वाले (रथं) रथ के प्रति (धिया शमि) मन या कर्म से भी (कुह कः) कहां और कौन (प्रति भूषति) मुकाबले पर आ सकता है। अर्थात् उनकी कोई बराबरी नहीं कर सकता।

कुह॑ स्वि॒द्दोषा॒ कुह॒ वस्तो॑र॒श्विना॒ कुहा॑भिपि॒त्वं क॑रतः॒ कुहो॑षतुः।
को वां॑ शयु॒त्रा वि॒धवे॑व दे॒वरं॒ मर्यं॒ न योषा॑ कृणुते स॒धस्थ॒ आ ॥२॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप दोनों (दोषा कुह स्वित्) रात्रि में कहां और (वस्तोः) दिन के समय कहां रहते हो? और (अभिपित्वं कुह करतः) कहां आगमन करते हो। (कुह ऊषतुः) कहां वास करते हो? (शयुत्रा देवरं विधवा इव) शयनस्थान में द्वितीय वर को विधवा स्त्री के समान और (सधस्थे मर्यं योषा न) एकत्र रहने के स्थान सेज आदि पर पुरुष को स्त्री के समान (वां) तुम दोनों का भी (कः आ कृणुते) कौन सत्कार करता है।

प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ॥३

भा०—हे (नरा) उत्तम स्त्री पुरुषों ! (जरणा इव कापया) उत्तम स्तुति योग्य वृद्ध पुरुषों के समान आप दोनों (प्रातः जरेथे) प्रातःकाल उपदेश के योग्य होवो। (यजता) आदर योग्य होकर (वस्तोः वस्तोः) दिन प्रतिदिन (गृहम् गच्छथः) गृह को प्राप्त होवो। यह भी बराबर विचार रखो कि आप दोनों (कस्य) किस २ दोष के (ध्वस्रा भवथः) नाशक होते हो और (राजपुत्रा इव) राजपुत्र राजपुत्री के तुल्य (कस्य सवना) किसके यज्ञों अभिषेक योग्य अधिकारों को (अव गच्छथः) प्राप्त करते हो।

युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (मृगण्यवः) शिकारी (मृगा वारणा) सिंह सिंहनी और हाथी हथिनी दोनों को (हविषा नि ह्वयन्ते) खाद्य पदार्थ द्वारा ग्रहण करते हैं वैसे ही हम लोग भी अभिषेकादि से शुद्ध, नायक नायकादि को चाहने वाले (मृगा इव युवां) सिंह सिंहिनी के तुल्य तुम दोनों को और (वारणा युवां) दुःखों के दूर करने वाले आप दोनों को (हविषा) उत्तम अन्न आदि द्वारा (नि ह्वयामहे) आदरपूर्वक बुलावें। हे (नरा) उत्तम नायकों ! (युवं) आपकी हितकामना से (ऋतुथा होत्राम् जुह्वते) समय २ पर उत्तम वाणी प्रदान करते हैं क्योंकि आप दोनों (शुभस्पती) जलों के पालक सूर्य मेघवत् शुभ गुणों के पालक होकर (जनाय इषं वहथः) मनुष्यों के लाभार्थं अन्न एवं उपदेश आदि को धारण करते हो।

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५॥१८॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायक जनों! हे (अश्विना) अश्वादि के नायक जनों (परि यति) यत्न करती हुई (राज्ञः दुहिता घोषा) राजा के कार्यों को पूर्ण करती हुई, राजा की आज्ञा, घोषणा वा सभा, (वां पृच्छे) तुम दोनों को पूछती है, (अह्नः उत अक्तवे) दिन और रात आप दोनों (मे भूतम्) मेरे हित के लिये तैयार रहें और (अश्वावते रथिने अर्वते शक्तम्) अश्व रथादि से युक्त शत्रु के नाश के लिये समर्थ होवो। इत्यष्टादशो वर्गः॥

युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा॥६॥

भा०—हे (कवी) दूरदर्शी विद्वानों! हे (अश्विना) विद्या आदि में पारंगत जनों! आप दोनों (कुत्सः न) शत्रुओं को काटने वाले वज्र तुल्य (जरितुः विशः) स्तुतिकर्त्ता प्रजावर्ग के ऊपर (रथं परि स्थः) रथ पर रह कर शासन करो। और (नशायथः) दुःखों का नाश करो। हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामी जनों! (युवोः) तुम दोनों के अधीन सभा, सेना (मक्षा) मधु-मक्खी के समान (आसा) मुख द्वारा (मधु) मधु तुल्य वचन और उत्तम अन्न ज्ञान, बल (परि भरत) धारण करो। (योषणा न निष्कृतम्) स्त्री जैसे गृह को संभालती है वैसे ही प्रेमयुक्त प्रजा-सभा वा ऐश्वर्य को धारण करें।

युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके॥७॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथीवत् स्त्री पुरुषों (युवं ह) आप दोनों निश्चय से (भुज्युम् उपारथुः) पालक को प्राप्त होवो। (युवं) तुम दोनों (वशं) वश करने वाले तेजस्वी पुरुष को प्राप्त करो (युवं शिंजारं) तुम दोनों उत्तम वचन कहने वालों को प्राप्त करो। तुम दोनों (उशनाम्) अपने को चाहने वाले को प्राप्त करो। (युवोः ररावा) तुम दोनों का

उत्तम दाता और उपदेष्टा (सख्यं परि आसते) मित्रभाव को प्राप्त करे। (अहम्) मैं उपदेष्टा वा उपदेष्ट्री (अवसा) आप दोनों की रक्षा ज्ञान और स्नेह से (सुम्नम् आ चके) सुख चाहता हूँ या चाहती हूँ।

युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥ ८ ॥

भा०—(युवं ह) हे स्त्री पुरुषों! आप दोनों (कृशम्) निर्बल की और (युवं शयुम्) तुम दोनों सोने वाले, अचेत की और (युवं विधन्तं) तुम दोनों सेवा करने वाले की और (विधवाम्) पतिहीन स्त्री की (उरुष्यथः) रक्षा किया करो। (अश्विना) उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषों! (युवं) आप दोनों (सनिभ्यः) ज्ञानदाता गुरुजनों के लिये (स्तनयन्तम्) स्तनवत् मधुर ज्ञान धारा पिलाने वाले के प्रति (सप्तास्यम्) सात मुख वाले (व्रजम्) इन्द्रियगण का (अप ऊर्णुथः) उद्धार करो, उनको व्यसनों से बचाओ।

जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दंसना अनु।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पतित्वनम् ९

भा०—(योषा जनिष्ट) स्त्री भूमिवत् सौभाग्यवती होकर सन्तान उत्पन्न करे। (कनीनकः पतयत्) उज्ज्वल बालक उसे प्राप्त हो और (वीरुधः) लताओं के समान स्त्री-जन वा प्रजाएं (दंसनाः अनु) अपने २ कर्मों के अनुरूप (वि अरुहन् च) विविध प्रकार से उन्नति पथ पर चढ़ें। (निवना इव सिन्धवः) नीचे प्रदेशों की ओर जलधाराओं के समान वे प्रजाएं (अस्मै) इस तेजस्वी पुरुष को (आ रीयन्ते) सब ओर से प्राप्त हों। और (अस्मै अह्ने) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य इस वीर पुरुष का (तत्) तब ही (पतित्वनम्) पतित्व, उत्तम स्वामित्व होता है।

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥
॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—लोग (जीवं रुदन्ति) अपने प्रिय को लक्ष्य कर रोते हैं। ऐसा करके वे (अध्वरे) पवित्र यज्ञ में (वि मयन्ते) विपरीत शब्द करते हैं। (ये) जो मनुष्य (इदम्) इस परस्पर विवाह आदि कर्म को (पितृभ्यः) अपने पूर्व पालक पिता आदि के लिये (वामम्) सुन्दर विवाह का कार्य करते हैं उन (नरः) मनुष्यों को चाहिये कि (दीर्घाम् प्रसितिम् अनु दीधियुः) वे दूर तक फैले हुए बन्धन का विचार करें और (जनयः) स्त्रियां भी (अनुदीधियुः) ऐसा विचार किया करें कि वे (परिष्वजे) आलिंगनादि कार्य में (पतिभ्यः मयः) अपने पतियों के लिये सुख प्राप्त करावेंगी और स्वयं भी उनसे सुख प्राप्त करेंगी। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

न तस्य॑ विद्म॒ तदु॒ षु प्र वो॑चत॒ युवा॑ ह॒ यद्यु॑व॒त्याः क्षेति॒ योनि॑षु।
प्रि॒योस्रि॑यस्य वृष॒भस्य॑ रे॒तिनो॑ गृ॒हं ग॑मेमाश्विना॒ तदु॑श्मसि॥११॥

भा०—युवक-युवति जन अपने आप्त माता पिता से कहते हैं—(यत्) जो (युवा) युवा पुरुष (युवत्या योनिषु) युवति स्त्री के साथ गृहों में (क्षेति) निवास करता है हम अबोध युवक युवतिजन (तस्य न विद्म) उस गृहस्थ के विषय में कुछ नहीं जानते (तत् उ सु प्र वोचत) हे विद्वान् पुरुषों! आप लोग हमें उसका अच्छी प्रकार उपदेश करो। हे (अश्विना) माता पिता आप्त जनों! हम नवयुवतियां (प्रिय-उस्रियस्य) युवति वधू को प्रेम करने वाले, (वृषभस्य) प्रेम से बांधने वाले, (रेतनः) वीर्यवान् पति के (गृहं गमेम) घर को जावें, हम (तत् उश्मसि) सदा उसी को चाहा करें।

आ वा॑मगन्त्सुम॒तिर्वा॑जिनीवसू॒ न्य॑श्विना हृ॒त्सु कामा॑ अयंसत।
अभू॑तं गो॒पा मि॑थु॒ना शु॑भस्पती प्रि॒या अ॑र्य॒म्णो दुर्या॑ँ अशीमहि॥१२॥

भा०—हे (वाजिनीवसू) धन उत्पन्न करने वाले स्वामिनी, एवं वर वधू जनों! (वाम्) आप दोनों को (सुमतिः आ अगन्) शुभ मति प्राप्त हो। हे (अश्विना) अश्ववत् इन्द्रियों के वश करने वाले स्त्री पुरुषों! (हृत्सु) हृदयों में (कामाः) नाना प्रकार की अभिलाषाएं (नि अयंसत)

नियमपूर्वक उत्पन्न होवें तुम (गोपा) वाणी के रक्षक और परस्पर गृह के स्वामी स्वामिनी, (मिथुना) जोड़े और (शुभः पती) शुभ गुणों परिपालक वा पति पत्नी (अभूतम्) होकर रहो । (प्रियाः) हम स्त्रियां अपने पतियों की प्यारी होकर (अर्यम्णः) स्वामी के (दुर्यान्) गृहों को (अशीमहि) प्राप्त हों ।

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥१३॥

भा०—हे (शुभस्पती) शोभायुक्त पदार्थों के रक्षक स्त्री पुरुषों ! (ता) आप दोनों (मनुषः दुरोणे) मननशील विद्वान् के गृह में रह कर (मन्दसाना) अन्न और ज्ञान से अपने को तृप्त करते हुए, (वचस्यवे) उत्तम वेदज्ञाता विद्वान् पुरुष के (राये) ज्ञानरूप धन को (आधत्तम्) सब प्रकार से धारण करो और (सह-वीरं) वीर पुत्र से युक्त (रयिं धत्तम्) ऐश्वर्य को प्राप्त करो । आप दोनों (शुभस्पती) शोभायुक्त उत्तम गुणों वाले (सु-प्र-पाणं तीर्थं) सुख से जलपानयोग्य नदीधारा के समान (सुप्रपाणं तीर्थं) व्रत पालन कराने वाले गुरु को (कृतम्) करो । आप (पथेष्ठाम् स्थाणुम्) मार्ग में स्थित वृक्ष के समान आश्रय देने वाले, आश्रयदाता जन को स्वीकार करो । और (दुर्मतिम् अप हतम्) विपरीत ज्ञान को दूर करो ।

क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती ।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् ॥
॥ १४ ॥ २० ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम विद्यावान् पुरुषों ! हे (दस्रा) दुष्टों और दुर्गुणों के नाशक स्त्री पुरुषों ! (अद्य) आज (क्वस्वित्) कहां और (कतमासु विक्षु) किन प्रजाओं के बीच (मादयेते) सबको प्रसन्न करो और स्वयं भी प्रसन्न होवो ? हे (शुभस्पती) शुभ गुणों के पालक जनों !

(ईम् कः नियेमे) आप दोनों को कौन बांध कर रख सकता है? और (कतमस्य विप्रस्य) किस विद्वान् पुरुष के (गृहम्) गृह और (कतमस्य यजमानस्य गृहम्) किस धन ज्ञान आदि के दाता, स्वामी के गृह पर (जग्मतुः) जाओ, यह बात ठीक २ विवेक से जानो। इति विंशो वर्गः॥

[४१]

१-३ सुहस्त्यो घौषेयः ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१ पादनिचृज्जगती। २ निचृज्जगती। ३ विराड् जगती॥ तृचं सूक्तम्॥

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं१ रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम्।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे॥ १॥

भा०—(वयम्) हम लोग (उषसः व्युष्टा) प्रभात वेला के प्रकट होने पर (त्यम् उ) उस परम (समानम्) समान (पुरु-हूतम्) बहुतों से स्तुतियोग्य, (उक्थ्यं) वेद द्वारा उपदिष्ट, (त्रिचक्रं रथं) तीन चक्र वाले रथ के समान भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीन चक्रों वाले वेगवान् (सवना) ऐश्वर्यों और लोकों को प्राप्त (परिज्मानं) व्यापक, (विदथ्यं) ज्ञानमय प्रभु को (सु-वृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों से (हवामहे) हम प्रार्थना करें।

प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम्।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना॥२॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य मार्ग पर न चलने वाले स्त्री पुरुषों! आप दोनों (प्रातः युजं) प्रातःकाल समाहित चित्त से जानने योग्य, (प्रातर्यावाणं) प्रातःकाल जाने वा प्राप्त करने योग्य, (मधु-वाहनं) मधुर अन्न सुख प्राप्त कराने वाले, (रथं) सुखदायी, प्रभु को (अधि तिष्ठथः) अपना आश्रय बनाओ। (येन) जिसके द्वारा (यज्वरीः) देव पूजा करने वाली प्रजाओं को (गच्छथः) प्राप्त होवो और हे (नरा) उत्तम स्त्री पुरुषों! हे (अश्विना) विद्या आदि शुभ गुण युक्त जनों! और (कीरेः

चित्) उत्तम उपदेष्टा पुरुष के (होतृमन्तं यज्ञम्) उत्तम होता से युक्त यज्ञ को (गच्छथः) प्राप्त होवो ।

अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत्सवनानि गच्छथोऽत आ यातं मधुपेयमश्विना ॥
॥ ३ ॥ २१ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् पुरुषों ! आप दोनों (मधुपाणिं) वेद का प्रवचन करने वाले, (अध्वर्युं) यज्ञ कराने में श्रेष्ठ (सु-हस्त्यम्) हस्त क्रिया में कुशल, (अग्निधम्) अग्नि को धारण करने वाले, (धृत-दक्षम्) उत्तम बल के धारक, (दमूनसं) जितेन्द्रिय, पुरुष के पास (आ-यातम्) आओ । और (यत्) जो आप दोनों (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष के (सवनानि) आज्ञा और अनुशासनों को (गच्छथः) प्राप्त होवोगे तभी (अतः) इससे (मधु-पेयम् आयतम्) वेद ज्ञान के रस का पान कर सकोगे । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[४२]

ऋषिः कण्वः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७—९, ११ त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ६, १० विराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१॥

भा०—(अस्ता इव) बाण को फेंकने वाला धनुर्धर जैसे (अस्यन्) बाण फेंकता हुआ (प्रतरम् लायं भरति = हरति) दूर स्थित लक्ष्य पर प्रहार करता है और (भूषन् इव) जैसे आभूषणों से सजने वाला पुरुष आभूषणों को पहिन (सु प्र भरति) सजता है, वैसे ही हे (विप्राः) विद्वान् पुरुषों ! आप लोग (लायम्) ग्रहण करने योग्य (प्रतरम्) उत्कृष्ट, संकटों से पार उतारने वाले प्रभु को (सु प्र भर) धारण करो, उसे प्राप्त

करो। और उस (अर्यः वाचम्) स्वामी की वाणी को (वाचा प्र तरत) अपनी वाणी से पार करो, उसका नित्य स्वाध्याय करो। हे (जरितः) उत्तम उपदेष्टा ! तू (सोमे) आत्मा में (इन्द्रम् नि रमय) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को नित्य रमा।

दोहे॑न॒ गामुप॑ शिक्षा॒ सखा॑यं॒ प्र बो॑धय जरितर्जा॒रमिन्द्र॑म्।
कोशं॒ न पू॒र्णं वसु॑ना॒ न्यृ॑ष्ट॒मा च्या॑वय मघ॒देया॑य॒ शूर॑म् ॥ २ ॥

भा०—हे (जरितः) स्तुतिकर्त्ता ! (दोहेन गाम्) दूध दोहने के लिये जैसे गौ की सेवा की जाती है वैसे ही (दोहेन) अभीष्ट फलों को प्राप्त करने के हेतु (जारम्) विद्वान् (इन्द्रम्) संशयों के उच्छेदन करने वाले, ऐश्वर्यवान् (सखायं) परम मित्र, समदर्शी प्रभु को (उप शिक्ष) प्राप्त कर, (पूर्णं कोशं न) जल से पूर्ण मेघ के समान (वसुना नि-ऋष्टं) ऐश्वर्य से पूर्ण (शूरम्) शूरवीर प्रभु को (मघ-देयाय) ऐश्वर्य दान के लिये (आ च्यवय) प्रेरित कर, उसकी उपासना कर।

किम॒ङ्ग त्वा॑ मघवन्भो॒जमा॑हुः शिशी॒हि मा॑ शिश॒यं त्वा॑ शृणोमि।
अप्न॑स्वती॒ मम॒ धीर॑स्तु शक्र वसु॒विदं॒ भग॑मि॒न्द्रा भ॑रा नः ॥ ३ ॥

भा०—(अङ्ग मघवन्) हे ऐश्वर्यवन् ! (त्वां किम् भोजम् आहुः) विद्वान् तुझको सबका पालक क्यों कहते हैं ? तू (मा शिशीहि) मुझे कार्य करने में उत्साहित कर, (त्वा शिशयं शृणोमि) तुझे मैं उत्साह देने वाला शासक सुनता हूँ। (मम धीः अप्नस्वती) मेरी बुद्धि कर्म करने वाली (अस्तु) हो। हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (नः) हमें (वसुविदं भगं आ भर) उत्तम धन प्राप्त कराने वाला ऐश्वर्य दे।

त्वां जना॑ ममस॒त्येष्वि॑न्द्र॒ सन्तस्थाना वि ह्व॑यन्ते स॒मीके॑।
अत्रा॒ युजं॑ कृणुते॒ यो ह॒विष्मा॒न्नासु॑न्वता स॒ख्यं व॑ष्टि॒ शूरः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (जनाः) लोग (त्वा) तुझको (मम-सत्येषु) "मेरा कथन सत्य है, प्रतिवादी का नहीं" इस प्रकार के वाद-

विवाद के अवसरों में (वि ह्वयन्ते) विशेष आदर से बुलाते हैं, और (समीके सं तस्थानाः वि ह्वयन्ते) युद्ध में जाते हुए तुझको पुकारते हैं। (अत्र) इस अवसर में (यः) जो मनुष्य (हविष्मान्) उत्तम साधनों से युक्त होता है वही (त्वां युजं कृणुते) तुझे अपना सहयोगी बना लेता है, क्योंकि (असुन्वता) उपासना न करने वाले के साथ (शूरः) वह शूर (सख्यं न वष्टि) मित्रता करना नहीं चाहता।

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आ सुनोति प्रयस्वान्।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥
॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—(यः) जो (प्रयस्वान्) प्रयास करने वाला, उद्योगी पुरुष (बहुलं) बहुत से (धनं न स्पन्द्रं) धनतुल्य ही पशु अश्वादि सैन्य को और (तीव्रान् सोमान्) वेग से जाने वाले शासकों और ऐश्वर्यों को (अस्मै आ सुनोति) इसके लिये देता है, वह (तस्मै) उसके (सु-तुकान्) हिंसाकारी हथियारों वाले और (सु-अष्ट्रान्) अश्वादि साधनों से युक्त (शत्रून्) शत्रुओं को भी (अह्नः प्रातः) दिन के पूर्व भाग में ही (युवति) दूर करता है और (वृत्रम् नि हन्ति) विघ्न आदि का नाश करता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥

भा०—(यस्मिन् इन्द्रे) जिस वीर पुरुष के लिये (वयम् शंसम् दधिम) हम स्तुति और शस्त्र धारण करते हैं और (यः) जो (मघवा) ऐश्वर्य का स्वामी होकर (अस्मै) हमें (कामम्) अभिलषित धन (शिश्राय) देता है। (अस्य शत्रुः आरात् चित् सन् भयताम्) उसका शत्रु दूर से ही भय करे। (अस्मै) उसको (जन्या द्युम्ना) जन-हितकारी धन भी (नि नमन्ताम्) प्राप्त हों।

आराच्छत्रुमप॑ बाधस्व दू॒रमु॒ग्रो यः शम्बः॑ पुरुहूत॒ तेन॑ ।
अ॒स्मे धे॑हि॒ यव॑मद् गोम॑दिन्द्र कृ॒धी धियं॑ जरि॒त्रे वाज॑रत्नाम् ॥७॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुत प्रजाजनों द्वारा पुकारे गये राजन्! (यः उग्रः शम्बः) जो उग्र, बलशाली, शत्रुओं को मार कर सुला देने वाला शस्त्रबल है (तेन) उससे तू (आरात्) दूर रहते ही (शत्रुम् अप बाधस्व) शत्रु को पीड़ित कर और (अस्मे) हमें (यवमत् गोमत्) अन्न और गौ आदि पशुओं वाला ऐश्वर्य प्रदान कर और (जरित्रे) स्तुति करने वाले की (धियं) बुद्धि को (वाज-रत्नां धेहि) ज्ञान से सुशोभित कर।

प्र यम॒न्तर्वृ॑षस॒वासो॒ अग्म॑न्ती॒व्राः सोमा॑ बहु॒लान्ता॑स॒ इन्द्र॑म् ।
नाह॑ दा॒मानं॑ म॒घवा॒ नि यं॑सन्नि सु॑न्व॒ते व॑हति॒ भूरि॑ वा॒मम् ॥ ८ ॥

भा०—(यम् इन्द्रम्) जिस इन्द्र को (बहुल-अन्तासः) बहुत से ऐश्वर्य, (तीव्राः) तीव्र स्वभाव वाले, (वृषसवासः) बलवान् पुरुषों और अश्वों के सञ्चालक (सोमाः) उत्तम शासक (प्र अग्मन्) प्राप्त होते हैं; वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् (दामानम् अह) दानशील को (न नि यंसन्) नहीं बांधता प्रत्युत (सुन्वते) राजा के ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले के हितार्थ वह (भूरि वामम् नि वहति) बहुत सा धन देता है।

उ॒त प्र॒हाम॑ति॒दीव्या॑ जयाति कृ॒तं यच्छ्व॒घ्नी वि॑चि॒नोति॑ का॒ले ।
यो दे॒वका॑मो॒ न धना॑ रु॒णद्धि॒ समित्तं रा॒या सृ॑जति स्व॒धावा॑न् ॥९॥

भा०—(यत् श्वघ्नी कृतं जयाति) जैसे जूआखोर 'कृत' नाम पासे को (काले वि चिनोति) अवसर पर प्राप्त करता है और (प्रहाम् अतिदीव्य जयति) अपने पासे को मारने वाले को जीत लेता है। (यत् श्वघ्नी) वीर पुरुष स्वकीय इष्ट जनों को प्राप्त करने और शत्रुधन को आहरण करने वाला (कृतं) स्वोपार्जित धनादि को एवं उद्योग द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य को (काले वि चनोति) उचित समय पर संग्रह कर लेता है और (प्रहाम्) कार्यबाधक विघ्न पर विजय पा लेता है और (यः) जो (देवकामः) प्रभु

का प्रिय होकर (धना न रुणद्धि) अपने धनैश्वर्यों का खुल कर दान देता है (तम् इत्) उसको ही (स्वधावान् राया सम् सृजति) शक्ति से सम्पन्न ऐश्वर्यवान् जन धनैश्वर्य से युक्त कर देता है। इति च पदपाठः ॥

गोभि॑ष्टरे॒माम॑तिं दु॒रेवां॒ यवे॑न॒ क्षुधं॑ पुरुहूत॒ विश्वा॑म् ।
व॒यं राज॑भिः प्रथ॒मा धना॑न्य॒स्माके॑न वृ॒जने॑ना जयेम ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने योग्य प्रभो! हम लोग (दुरेवाम्) दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञान को (गोभिः तरेम) वेदवाणियों से पार करें। और (यवेन विश्वाम् क्षुधं तरेम) यव आदि अन्न से सब प्रकार की भूखों को तरें। (वयम्) हम लोग (राजभिः) तेजस्वी पुरुषों और (अस्माकेन वृजनेन) अपने बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ धनों को प्राप्त करें।

बृह॒स्पति॑र्नः॒ परि॑ पातु प॒श्चादु॒तोत्त॑रस्मा॒दध॑रादघा॒योः ।
इन्द्रः॑ पु॒रस्ता॑दु॒त म॑ध्य॒तो नः॒ सखा॒ सखि॑भ्यो॒ वरि॑वः कृणोतु
॥ ११ ॥ २३ ॥ ३ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) राष्ट्र और वाणी का पालक (नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमें पीछे से, ऊपर से और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायोः पातु) पापाचारी से बचावे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे से और बीच से भी (नः परि पातु) हमारी रक्षा करे। (सखा सखिभ्यः) वह सबका मित्र न्यायी, हम मित्रों के उपकारार्थ (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन प्रदान करे। इति त्रयोविंशो वर्गः॥
इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[४३]

१–११ ऋषिः कृष्णः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१,९ निचृज्जगती। २ आर्ची स्वराड् जगती। ३, ६ जगती । ४, ५, ८ विराड्जगती। १० विराट् त्रिष्टुप्। ११ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१॥

भा०—(मे) मेरी (स्वः-विदः) ज्ञान-प्रकाशप्रद, (सध्रीचीः) परस्पर सुसम्बद्ध, (विश्वाः) सब प्रकार की, (उशतीः) प्रभु को चाहने वाली (मतयः) बुद्धियां और वाणियां (इन्द्रम् अच्छ अनूषत) प्रभु की खूब स्तुति करती हैं। (यथा जनयः पतिं मर्यं ऊतये) जैसे स्त्रियां अपने पुरुषों, पतियों को सुख समृद्धि के लिये (परि ष्वजन्ते) आलिंगन करती हैं वैसे ही (शुन्ध्युं मघवानम्) परम पावन ऐश्वर्यवान् प्रभु को ये वाणियां (ऊतये) रक्षा के लिये (परि ष्वजन्ते) प्राप्त करती हैं ।

न घा त्वद्रिगप॑ वेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुत मनुष्यों से पुकारे गये प्रभो ! (त्वद्रिग्) तेरे प्रति लगा हुआ (मे मनः) मेरा मन (न घ अप वेति) तुझसे दूर नहीं जाता, प्रत्युत (त्वे इत् कामं शिश्रय) तुझमें ही मैं अपनी अभिलाषा स्थापित करता हूँ। (राजा इव बर्हिषि) राजा जैसे आसन वा प्रजा पर विराजता है, वैसे ही हे (दस्म) दर्शनीय तू (अस्मिन् बर्हिषि राजा इव नि षदः) इस लोक-समूह वा यज्ञ में राजा के तुल्य अधिष्ठित हो। (अस्मिन् सोमे) इस जगत् में (ते सु अवपानं अस्तु) तेरा ही सर्वश्रेष्ठ परि-पालन कार्य हो ।

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ३

भा०—(इन्द्रः) जैसे सूर्य जब (विषू-वृत्) विषुवत् वृत्त पर अति-क्रमण कर रहा होता है तब वह (मघवा) मघा नक्षत्र का योग करता हुआ (रायः वस्वः ईशते) अन्नप्रद वसु नक्षत्र का स्वामी होता है और (अमतेः उत क्षुधः) दारिद्रय, भूख एवं अकाल को वश में करता है। (इमे प्रवणे

सप्त सिन्धवः) ये निम्न देश में बहने वाली जलधाराएं (तस्य इत् शुष्मिणः वृषभस्य वयः वर्धन्ति) उस बलशाली शोषक, वृष्टिकर्त्ता सूर्य के बल को बढ़ाते हैं। ठीक उसी प्रकार (वि-सु-वृत्) उत्तम व्यवहार करने में कुशल, (इन्द्रः) राजा (अमतेः) प्रजा के भीतर विद्यमान अज्ञान और (क्षुधः) भूख पर वश करे। क्योंकि (सः इत्) वह ही (रायः) प्रजाओं के देने योग्य (वस्वः) प्रजाओं को सुखपूर्वक बसाने वाले धन, अन्नादि का भी (ईशते) सब प्रकार से स्वामी है। (अस्य इत् इमे) उसके ही ये (प्रवणे) शत्रु को मारने वाले सैन्य बल में (सप्त-सिन्धवः) सात वेग से दौड़ने वाले वेगवान् अश्व सैन्य हैं जो (उषभस्य) बलवान् (शुष्मणः) शत्रुपोषक पुरुष के (वयः) जीवन को (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं।

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥

भा०—(वयः सुपलाशम् वृक्षं न) जैसे पक्षिगण उत्तम पत्तों से हरे भरे वृक्ष का आश्रय लेते हैं वैसे ही (मन्दिनः) उत्तम रीति से स्तुति करने और उसके साथ हर्ष अनुभव करने वाले, (चमू-सदः सोमासः) बड़ी २ सेनाओं पर अध्यक्ष रूप से विराजने वाले नायकगण (वयः) शत्रुनाशक, वेग से जाने में समर्थ होकर उस (वृक्षं) भूमि को वरण कर (सु-पलाशम्) उत्तम भोग्यों को प्राप्त करने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् स्वामी को (आ असदन्) प्राप्त कर चारों ओर उसके समीप विराजते हैं। (एषाम् अनीकं) उनका मुख और सैन्य (शवसा) बल से खूब (दविद्युतत्) चमकता है और (मनवे) विचारपूर्वक शासन करने वाले प्रबन्धक को (आर्यम्) सर्वश्रेष्ठ (ज्योतिः) तेज और (स्वः) सुख (विदत्) प्राप्त कराता है।

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥५।२४॥

भा०—(श्वघ्नी देवने कृतं न) दूसरों के धनों को बाजी से मार लेने वाला कुशल द्यूतकार जैसे खेलते समय 'कृत' नाम अक्ष को प्राप्त करता है वैसे ही (मघवा) ऐश्वर्यवान् राजा (श्वघ्नी) शत्रु के ऐश्वर्यों को लूटने में समर्थ होकर (देवने) विजयकाल में (सं-वर्गं) शत्रु को वर्जन करने में समर्थ (कृतं) कार्य करने में कुशल (सूर्यं) तेजस्वी पुरुष को (वि चिनोति) विशेष रूप से संग्रह करता है और (जयत्) जय लाभ करता है (तत्) उस समय हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (ते अन्यः) तेरे से दूसरा कोई (ते वीर्यं न अनु शक्नत्) तेरे बल वीर्य का मुकाबला नहीं कर सकता । (न पुराणः उत न नूतनः) ऐसा न कोई पुराना और न कोई नया ही सम्भव है।

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ६

भा०—(मघवा) ऐश्वर्य का स्वामी राजा (विशं-विशं परि अशायत) प्रजा के ऊपर सुख से शासन करता हुआ उन्हें बढ़ावे वह (वृषा) सुखों का वर्धक और उत्तम प्रबन्धक पुरुष (जनानां धेनाः अव चाकशत्) मनुष्यों की प्रार्थनाओं को सुने, उन पर ध्यान दे। (शक्रः) शक्तिशाली पुरुष (यस्य) जिस प्रजाजन के (सवनेषु) ऐश्वर्यों के बीच (रण्यति) आनन्द लाभ करता है, (सः) वह (तीव्रैः सोमैः) वेगगामी, विद्वान् पुरुषों द्वारा (पृतन्यतः सहते) सेनाओं द्वारा युद्ध करके शत्रुओं को पराजित करे।

आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥

भा०—(आपः सिन्धुं न) नदियों वा जलधाराएं जैसे समुद्र की ओर बह आती हैं, (कुल्याः इव ह्रदम्) जैसे छोटी २ नालियां बड़े तालाब की ओर बह आती हैं। वैसे ही (आपः) आप्त (कुल्याः) कुलवान् (सोमासः) शासक जन (इन्द्रं सिन्धुम्) समुद्र के समान गम्भीर और

(हृदं) आज्ञापक, शत्रुहन्ता के शरण ही (सम् अक्षरन्) भली प्रकार आते हैं। (वृष्टिः दिव्येन दानुना यवं न) वृष्टि जैसे आकाश के जल से यवों को बढ़ाती है वैसे ही (विप्राः) विद्वान् पुरुष (अस्य सादने) इसके शासन में रह कर (दिव्येन दानुना) युद्धार्थ दिये दान और शस्त्र-बल से (अस्य यवं वर्धन्ति) शत्रुहनन सामर्थ्य को बढ़ाते हैं।

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८॥

भा०—(रजःसु क्रुद्धः वृषा न) मट्टी के ढेरों पर जैसे क्रुद्ध सांड (पतयत्) वेग से पड़ता है और (रजःसु क्रुद्धः वृषा न) रजोधर्मयुक्त गौओं के निमित्त साभिलाष सांड जैसे प्रतिद्वन्द्वी पर क्रुद्ध होकर पड़ता और विजयी हो पतिवत् आचरण करता है, वैसे ही (मघवा) धनों का स्वामी (वृषा) राजा (क्रुद्धः) क्रोधयुक्त होकर ही (रजःसु) ऐश्वर्ययुक्त प्रजा-जनों में (पतयत्) पालक होकर, उन पर शासन करे। वह (इमाः अपः) इन जल-स्वभाव की, निम्न भाव से जानने वा विनय से झुकने वाली, प्रजाओं वा सेनाओं को (अर्यपत्नीः) स्वामी की पत्नियों के समान स्वामी द्वारा पालन योग्य (अकृणोत्) बना लेवे। (सः) वह (सुन्वते) ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले, (जीर-दानवे) प्राणदायक, अन्न देने वाले (हविष्मते) अन्न के स्वामिरूप, (मनवे) कृषक आदि मनुष्य वर्ग के लिये (ज्योतिः अविन्दत्) तेज और पराक्रम, प्राप्त करे।

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत्।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्व१र्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः॥९॥

भा०—(परशुः) शत्रुओं का नाशक, राजा, (ज्योतिषा सह) तेज के साथ (उत् जायताम्) उन्नत पद को प्राप्त हो। हे राजन्! तू (सु-दुघा) दुग्ध देने वाली, गौ के समान और (पुराणवत्) वृद्ध जन के समान, प्रजा का पालक, होकर (ऋतस्य) धन, ज्ञान का (सु-दुघाः) देने वाला

(भूयाः) हो। (अरुषः) स्वयं तेजस्वी, निष्क्रोध होकर (भानुना वि रोचताम्) तेज से चमके। वा (शुचिः) शुद्ध, कान्तिमान्, (स्वः न शुक्रं) स्वच्छ प्रकाशक सूर्य के समान (सत्पतिः) पालक होकर (शुक्रं शुशुचीत) शुद्ध तेज से प्रकाश करे, और (शुक्रं = शुक्लं) शुभ कर्म से आत्मा को पवित्र करे।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने योग्य प्रभो! हम लोग (दुरेवाम्) दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञात को (गोभिः तरेम) वेदवाणियों से पार करें और (यवेन विश्वाम् क्षुधं तरेम) यव आदि अन्नों से भूखों को तरें। (वयम्) हम लोग (राजभिः) तेजस्वी पुरुषों और (अस्माकेन वृजनेन) अपने बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ धनों को प्राप्त करें।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥
॥ ११ ॥ २५ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) राष्ट्र और वाणी का पालक (नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमें पीछे से, ऊपर से और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायोः पातु) पापाचारी से बचावे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे से और बीच से भी (नः परि पातु) हमारी रक्षा करे। (सखा सखिभ्यः) वह सबका मित्र, न्यायी हम मित्रों के उपकारार्थ (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन प्रदान करे। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[४४]

ऋषिः कृष्णः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। २, १० विराट् त्रिष्टुप्। ३, ११ त्रिष्टुप्। ४ विराड्जगती। ५—७, ९ पादनिचृज्जगती। ८ निचृज्जगती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

(ह्रदं) आज्ञापक, शत्रुहन्ता के शरण ही (सम् अक्षरन्) भली प्रकार आते हैं। (वृष्टिः दिव्येन दानुना यवं न) वृष्टि जैसे आकाश के जल से यवों को बढ़ाती है वैसे ही (विप्राः) विद्वान् पुरुष (अस्य सादने) इसके शासन में रह कर (दिव्येन दानुना) युद्धार्थ दिये दान और शस्त्र-बल से (अस्य यवं वर्धन्ति) शत्रुहनन सामर्थ्य को बढ़ाते हैं।

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८॥

भा०—(रजःसु क्रुद्धः वृषा न) मट्टी के ढेरों पर जैसे क्रुद्ध सांड (पतयत्) वेग से पड़ता है और (रजःसु क्रुद्धः वृषा न) रजोधर्मयुक्त गौओं के निमित्त साभिलाष सांड जैसे प्रतिद्वन्द्वी पर क्रुद्ध होकर पड़ता और विजयी हो पतिवत् आचरण करता है, वैसे ही (मघवा) धनों का स्वामी (वृषा) राजा (क्रुद्धः) क्रोधयुक्त होकर ही (रजःसु) ऐश्वर्ययुक्त प्रजा-जनों में (पतयत्) पालक होकर, उन पर शासन करे। वह (इमाः अपः) इन जल-स्वभाव की, निम्न भाव से जानने वा विनय से झुकने वाली, प्रजाओं वा सेनाओं को (अर्यपत्नीः) स्वामी की पत्नियों के समान स्वामी द्वारा पालन योग्य (अकृणोत्) बना लेवे। (सः) वह (सुन्वते) ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले, (जीर-दानवे) प्राणदायक, अन्न देने वाले (हविष्मते) अन्न के स्वामिरूप, (मनवे) कृषक आदि मनुष्य वर्ग के लिये (ज्योतिः अविन्दत्) तेज और पराक्रम, प्राप्त करे।

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत्।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः॥९॥

भा०—(परशुः) शत्रुओं का नाशक, राजा, (ज्योतिषा सह) तेज के साथ (उत् जायताम्) उन्नत पद को प्राप्त हो। हे राजन्! तू (सु-दुघा) दुग्ध देने वाली, गौ के समान और (पुराणवत्) वृद्ध जन के समान, प्रजा का पालक, होकर (ऋतस्य) धन, ज्ञान का (सु-दुघाः) देने वाला

(भूयाः) हो। (अरुषः) स्वयं तेजस्वी, निष्क्रोध होकर (भानुना वि रोचताम्) तेज से चमके। वा (शुचिः) शुद्ध, कान्तिमान्, (स्वः न शुक्रं) स्वच्छ प्रकाशक सूर्य के समान (सत्पतिः) पालक होकर (शुक्रं शुशुचीत) शुद्ध तेज से प्रकाश करे, और (शुक्रं = शुक्रं) शुभ कर्म से आत्मा को पवित्र करे।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने योग्य प्रभो! हम लोग (दुरेवाम्) दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञात को (गोभिः तरेम) वेदवाणियों से पार करें और (यवेन विश्वाम् क्षुधं तरेम) यव आदि अन्नों से भूखों को तरें। (वयम्) हम लोग (राजभिः) तेजस्वी पुरुषों और (अस्माकेन वृजनेन) अपने बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ धनों को प्राप्त करें।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥
॥ ११ ॥ २५ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) राष्ट्र और वाणी का पालक (नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमें पीछे से, ऊपर से और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायोः पातु) पापाचारी से बचावे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे से और बीच से भी (नः परि पातु) हमारी रक्षा करे। (सखा सखिभ्यः) वह सबका मित्र, न्यायी हम मित्रों के उपकारार्थ (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन प्रदान करे। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[४४]

ऋषिः कृष्णः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। २, १० विराट् त्रिष्टुप्। ३, ११ त्रिष्टुप्। ४ विराड्जगती। ५—७, ९ पादनिचृज्जगती। ८ निचृज्जगती॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान्।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (स्व-पतिः) स्वजनों और धनों का पालक पुरुष (यः) जो (धर्मणा) न्याय से (तूतुजानः) शत्रुओं का नाश और प्रजाओं को ऐश्वर्य देता हुआ (तुविष्मान्) बलवान् हो। वह (अपारेण) अपार, (महता वृष्ण्येन) महान् बल से युक्त होकर (विश्वा सहांसि अति) समस्त शत्रु-सैन्यों को पार करके (प्र त्वक्षाणः) उनका नाश करता हुआ हमें प्राप्त हो।

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥

भा०—हे (नृपते) मनुष्यों के पालक (ते रथः सु-स्थामा) तेरा रथ सुखपूर्वक ठहरने वाला हो। (ते हरी सु-यमा) तेरे दोनों अश्व सुख से नियन्त्रित हों। (ते गभस्तौ) तेरी बाहु में (वज्रः मिम्यक्ष) शस्त्र-बल रहे। हे (राजन्) राजन्! तू (शीभं) शीघ्र ही (सुपथा अर्वाङ् याहि) उत्तम मार्ग से जाया कर। हम (ते पपुषः) तुझ सर्वपोषक के (वृष्ण्यानि वर्धाम) बलों को बढ़ावें।

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम्।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥

भा०—(अस्मत्रा) हममें से (इन्द्र-वाहः) ऐश्वर्य और बल को धारण करने में समर्थ, (उग्रासः) उग्र, (तविषासः) बलशाली (सध-मादः) एक साथ हर्ष प्राप्त करने वाले जन (नृपतिं) मनुष्यों के पालक (वज्र-बाहुम्) तलवार से युक्त बाहु वाले (उग्रम्) भयप्रद (प्र-त्वक्षसं) तेजस्वी, (सत्य-शुष्मम्) सत्यबल से बलशाली (वृषभम्) नरश्रेष्ठ को (आ वहन्तु) धारण करें।

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४॥

भा०—(एव) इसी प्रकार के (द्रोण-साचं) राष्ट्र की सेवा करने वाले (स-चेतसम्) ज्ञानी, सहृदय (ऊर्जः स्कम्भम्) बल पराक्रम के स्तम्भवत् धारक पुरुष को (धरुणे) धारण करने वाले पद पर हे प्रजाजन ! तू (आ वृषायसे) आदरपूर्वक बलशाली की कामना कर। हे राजन् ! तू (ओजः कृष्व) बल वीर्य सम्पादन कर (त्वे) तू अपने में ही हमें (सं गृभाय) अच्छी प्रकार ग्रहण कर। (यथा) जैसे तू (केनिपानां इनः) सुखमय विद्वानों का स्वामी होकर (वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (अपि असः) समर्थ हो।

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा
॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—हे राजन् ! (असूनि अस्मे गमन्) जीवन को सुखपूर्वक बिताने वाले धनैश्वर्य हमें प्राप्त हों। मैं तुझे (सु-आशिषं शंसिषम्) उत्तम आशीष् कहूँ। तू (सोमिनः भरम् आ याहि) ऐश्वर्ययुक्त सोम के यज्ञ वा राष्ट्र कार्य को प्राप्त हो (त्वम् ईशिषे) तू ही सबका स्वामी हो। तू ही (बर्हिषि आ सत्सि) इस वृद्धियुक्त लोक वा प्रजाजन पर अध्यक्षवत् विराज। (तव पात्राणि) तेरे प्रजा पालन के समस्त सैन्यादि साधन (धर्मणा) धर्म आदि के बल से (अनाधृष्या) किसी से पराजय प्राप्त करने योग्य न हों। इति षड्विंशो वर्गः ॥

पृथक् प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥

भा०—(प्रथमाः) श्रेष्ठ (देव-हूतयः) ईश्वर के स्तुति करने वाले जन (पृथक्) अलग २ (प्र अग्मन्) आगे बढ़ जाते हैं। वे (श्रवस्यानि) श्रवण करने योग्य (दुस्तरा) अपूर्व कीर्तिजनक कर्म का सम्पादन कर लेते

हैं। और (ये) जो (यज्ञियाम् नावम्) प्रभु की उपासनामयी नौका पर (आरुहम् न शेकुः) आरूढ़ नहीं हो सकते (ते) वे (केपयः) कुत्सित आचरणों में लिप्त रहकर (ईर्मा इव नि अविशन्त) ऋणग्रस्त के तुल्य नीचे पड़े रहते हैं।

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७॥

भा०—(एव एव) इस प्रकार (अपरे) दूसरे जो ब्रह्म की उपासना से रहित (दूढ्यः) दुष्ट-बुद्धि जन हैं (येषां) जिनके (दुः-युजः अश्वाः) कुमार्ग में जाने वाले अश्वों के तुल्य बलवान् इन्द्रियगण (आ युयुज्रे) इधर उधर के विषयों में लगते हैं। वे (अपाग् एव एव सन्तु) दूर वा नीचे ही नीचे पतित (सन्तु) हो जाते हैं। (यत्र) जिसमें (पुरूणि वयुनानि) बहुत से ज्ञान और (पुरूणि भोजना) बहुत से ऐश्वर्य हैं उस (परे) ब्रह्म में जो (दावने सन्ति) दान देने के लिये सदा तत्पर हैं वे (इत्था) सचमुच (प्राक् सन्तु) आगे बढ़ने वाले होते हैं।

गिरींरज्राञ्रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत्।
समीचीने धिषणे विष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥

भा०—वह प्रभु (अज्रान्) गमनशील, (गिरीन्) मेघों और (रेजमानान्) बिजुली से कांपते हुओं को (अधारयत्) धारण करता है। (द्यौः क्रन्दत्) बिजुली शब्द करती है, तब मानो वह (अन्तरिक्षाणि) मेघों को लक्ष्य कर (कोपयत्) क्षुभित करता, मानो उन पर क्रोध करता है। (समीचीने) परस्पर मिले हुए (धिषणे) आकाश और पृथिवी लोकों को (वि स्कभायति) थामता है और वह (वृष्णः पीत्वा) जलवर्षक रसों का मेघवत् पान करके (मदे) आनन्द में मानो (उक्थानि शंसति) स्तुत्य वचनों का उपदेश देता है।

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥९॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (येन) जिससे तू (शफारुजः) दुर्वचनों से, वा दुष्ट जनों को (रुजासि) पीड़ित वा नष्ट करता है मैं (ते) तेरे (सुकृतं) उत्तम रीति से बने उस (अंकुशं) अंकुश को (बिभर्मि) धारण करूं। (ते अस्मिन् सवने) तेरे इस शासन में (ओक्यं सु अस्तु) सुखपूर्वक गृह का निवास हो। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (आ-भगः) सब प्रकार से ऐश्वर्यवान् होकर (सुते इष्टौ) उत्तम रीति से सम्पादित यज्ञ में (बोधि) हमारी स्तुतियों को जान।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने योग्य प्रभो! राजन्! हम लोग (दुरेवाम्) दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञान को (गोभिः तरेम) वेद-वाणियों से पार करें और (यवेन विश्वाम् क्षुधं तरेम) यव आदि अन्न से सब प्रकार की भूखों को तरें। (वयम्) हम लोग (राजभिः) तेजस्वी पुरुषों और (अस्माकेन वृजनेन) अपने बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ धनों को प्राप्त करें।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥
॥ ११ ॥ २७ ॥

भा०—(बृहस्पति) राष्ट्र और वाणी का पालक (नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमें पीछे से, ऊपर से और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायोः पातु) पापचारी से बचावे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे और बीच से भी (नः परि पातु) हमारी

रक्षा करे। (सखा सखिभ्यः) वह सबका मित्र न्यायी हम मित्रों के उपकारार्थ (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन प्रदान करे। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[४५]

ऋषिर्वत्सप्रिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१—५, ७ निचृत् त्रिष्टुप। ६ त्रिष्टुप्। ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ९-१२ विराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥ १ ॥

भा०—(प्रथमं) पहले (अग्निः) अग्नि (दिवः परि) आकाश में प्रकट हुआ, वह सूर्यरूप अग्नि ब्रह्माण्ड में सबसे मुख्य है। उसी प्रकार मूर्धा भाग में मुख्य प्राण ही मुख्य अग्नि है। और (द्वितीयं) दूसरा (जातवेदाः) सब पदार्थों के भीतर विद्यमान (अग्निः) अग्नि स्वरूप दूसरे नम्बर पर प्रकट होता है, उसी प्रकार दूसरे नम्बर पर यह जाठर अग्नि है। और (तृतीयम्) तीसरा, (नृ-मणाः) सञ्चालक शक्ति से पदार्थों को स्तब्ध करने में समर्थ वा (नृ-मणाः) मनुष्यों के बीच मनन, ज्ञानशक्ति देने वाला, (अप्सु) अन्तरिक्षों वा जलों में विद्युत् रूप होता है। (एनं अजस्रम् इन्धानः) इस अग्नि को कभी नष्ट न होने देता हुआ, पुरुष (स्वाधीः सु-आधीः) सुखों को धारण करने वाला सुखी और नीरोग होकर (जरते) वृद्धावस्था को प्राप्त होता है।

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! (ते) तेरे हम (त्रेधा) तीन स्थानों में (त्रयाणि) तीन रूपों को (विद्म) जानें। (ते धाम) तेरे तेजों, जन्मों को (पुरुत्रा विभृता विद्म) बहुत से स्थानों में धारित रूपों को भी जानें। (गुहा ते यत् परमं नाम विद्म) बुद्धिस्थ जो निगूढ़ तेरा परम स्वरूप है उसको भी हम जानें। हम (तम् उत्सं विद्म) उस कारणरूप निकास को जानें (यतः आ जगन्थ) जहां से तू आता है।

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्व१न्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥३॥

भा०—(नृ-मणाः) मननशील और (नृ-चक्षाः) मनुष्यों में ज्ञान का द्रष्टा, हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वा) तुझे, समुद्र में (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर से और (दिवः ऊधन्) आकाशस्थ मेघ से प्राप्त करके प्रदीप्त कर लेता है। और (तृतीये रजसि तस्थिवांसम्) तीसरे लोक में स्थित सूर्यरूप (त्वा) तुझको (अपाम् उपस्थे) जलों के भी ऊपर (महिषाः) भूमि पर आने वाले किरण (अवर्धन्) अधिक शक्तिशाली बनाते हैं।

अक्रन्दद्ग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥४॥

भा०—जैसे (द्यौः) तेजस्वी विद्युत् (स्तनयन्) गर्जती हुई (क्षामा रेरिहत्) भूमि तक पहुँचती है और जैसे (अग्निः) आग (वीरुधः) वनस्पतियों को (सम् अञ्जन्) चमकाता हुआ (अक्रन्दत्) गर्जता है। वैसे ही (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (क्षामा रेरिहत्) भूमियों वा शत्रु सेनाओं को प्राप्त करता हुआ और (वीरुधः) विपरीत रोक करने वाली बाधक सेनाओं का (सम् अञ्जन्) साम्मुख्य करता हुआ, वा (वीरुधः) विविध रूप से उत्पन्न प्रजाओं को (सम् अञ्जन्) प्राप्त होता और उनको प्रकाशित करता हुआ (स्तनयन्-इव अक्रन्दत्) गर्जते मेघ के समान गर्जे। और सूर्य जैसे (जज्ञानः) उत्पन्न होता हुआ (इद्धः) प्रदीप्त होकर (भानुना) अपने प्रकाश से (रोदसी अन्तः) भूमि और आकाश के बीच क्षितिज पर (भाति) चमकता है और (सद्यः वि अख्यत्) विशेष रूप से प्रकाशित करता है वैसे ही वह भी (इद्धः) चमक कर (रोदसी अन्तः) शास्य-शासकों के बीच (भाति) प्रकाशित हो और (वि अख्यत्) विशेष घोषणा, उपदेश आदि करे।

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥५॥

भा०—वह राजा, विद्वान्, प्रभु, (श्रीणाम् उत्-आरः) ऐश्वर्यों और आश्रितों को उन्नत करने वाला, (रयीणां धरुणः) धनों को धारण करने वाला, (मनीषाणां आर्पणः) उत्तम बुद्धियों को देने वाला, (सोम-गोपाः) ऐश्वर्यों का रक्षक है। वह (वसुः) सबको बसाने वाला, (सहसः) बलवान् सैन्य को (सूनुः) सन्मार्ग पर चलाने वाला, (अप्सु राजा) प्रजाओं में तेजस्वी राजा (इधानः) दीप्त होकर (उषसाम् अग्रे विभाति) प्रभात वेलाओं के अग्र भाग में सूर्य के समान शोभा देता है।

विश्व॑स्य के॒तुर्भुव॑नस्य॒ गर्भ॒ आ रोद॑सी अपृणा॒ज्जाय॑मानः।
वी॒ळुं चि॒दद्रि॑मभिनत्परा॒यञ्जना॒ यद॒ग्निमय॑जन्त॒ पञ्च॑ ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—वह राजा, प्रभु (विश्वस्य भुवनस्य केतुः) समस्त जगत् का प्रकाशक, (गर्भः) सबको वश करने वाला और सबमें छुपा हुआ, (जायमानः) व्यक्त होकर (रोदसी आ अपृणात्) जमीन और आकाश को पूर्ण कर रहा है। वह (वीडुम् अद्रिम् अभिनत्) अभेद्य तम को भी छिन्न भिन्न करता है, (यत् अग्निम्) जिस तेजस्वी नायक को (जनाः परायन्) मनुष्य परम जान कर आश्रय करते और (पञ्च) पांचों जन जिसकी (अयजन्त) उपासना करते हैं।

उ॒शिक्पा॑व॒को अ॑र॒तिः सु॑मे॒धा मर्ते॑ष्व॒ग्निर॒मृतो॒ नि धा॑यि।
इय॑र्ति धू॒मम॑रु॒षं भरि॑भ्र॒दुच्छु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॒ द्यामिन॑क्षन् ॥ ७ ॥

भा०—वह राजा (पावकः) सबका पवित्र कर्त्ता, (उशिक्) सबको चाहने वाला, (अरतिः) सबका स्वामी, (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान्, (अग्निः) प्रकाशक, ज्ञानी, (मर्तेषु) मनुष्यों में (अमृतः) अविनाशी (नि धायि) स्थापित हो। वह (अरुषम्) प्रकाशमान, तेजोमय रूप को (भरिभ्रत्) धारण करता हुआ, (धूमम् इयर्त्ति) शत्रु को कंपा देने वाले सैन्य बल को संचालित करे, और (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध कान्ति से (द्याम् इनक्षन्) आकाश को सूर्यवत् समाज में शिरोभाग रूप सभा को शोभित करे।

दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत्सुरेताः ॥ ८ ॥

भा०—(दृशानः) प्रत्यक्ष द्रष्टा, (रुक्मः) इच्छाओं से युक्त, (उर्विया) महान् (वि अद्यौत्) यह आत्मा रूप अग्नि प्रकाशित होता है। वह (दुर्मर्षम्) कठिनता से पराजय योग्य होकर (आयुः) प्राणरूप, (श्रिये) शोभा की वृद्धि के लिये (रुचानः) प्रकाशस्वरूप है। तेजस्वी सूर्य का प्रकाश अग्नि को उत्पन्न करता है, वही काष्ठों द्वारा बढ़कर नहीं बुझता, उसी प्रकार वह (अग्नि) ज्ञानयुक्त तेजस्वी होकर (वयोभिः अमृतः अभवत्) अन्नों और प्राणों से अमृत, अर्थात् नहीं मारने वाला हो जाता है। (यत्) जब कि (सु-रेताः द्यौः एनं जनयत्) उत्तम वीर्यवान् पिता इसे पुत्र रूप से उत्पन्न करता है।

यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥ ९ ॥

भा०—हे (भद्र-शोचे) कान्ति से युक्त ! हे (देव) तेजस्विन् ! (अद्य) आज (यः) जो (ते) तेरे लिये (घृतवन्तं अपूपं कृणवत्) घृत से युक्त अन्न करता है तू (तम्. प्र नय) उसको उत्तम सुख प्राप्त करा और (तम्) उसको (अच्छ वस्यः प्रतरं नय) उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर। हे (यविष्ठ) बलवन् ! और (देव-भक्तम्) प्राणों से सेवने योग्य तू (सुम्नम् अभि नय) सब प्रकार से सुख प्रदान कर।

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनदुदुज्जनित्वैः ॥१०॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! शिष्य ! तू (सौश्रवसेषु) श्रवण योग्य ज्ञानोपदेशों के अवसरों पर (तम् आ भज) उसी प्रभु की उपासना कर और (शस्यमाने उक्थे उक्थे) उपदेश योग्य प्रत्येक वेदमन्त्र में तू (तं भज) उस प्रभु की गुरुवत् उपासना कर। वह प्रभु (सूर्ये प्रियः) सूर्य में भी

चमकता है। वही (अग्नौ प्रियः भवति) अग्नि में चमकता है। वह (जातेन उत् भिनदत्) उत्पन्न हुए बीज से जैसे वृक्ष धरती को फोड़ कर निकलता है उसी प्रकार व्यक्त जीव से या पूर्व उत्पन्न कर्म-बीज से देहादि को उत्पन्न करता है और (जनित्वैः उत् भिदनत्) इसी प्रकार आगे भी उत्पन्न होने वाले बीजरूप कारणों से, जगत् आदि कार्य उत्पन्न करता रहेगा।

त्वाम॑ग्ने॒ यज॑माना॒ अनु॒ द्यून्विश्वा॒ वसु॑ दधिरे॒ वार्या॑णि।
त्वया॑ स॒ह द्रवि॑णमि॒च्छमा॑ना व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ वि व॑व्रुः ॥११॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने, सर्वज्ञ! (अनु द्यून्) सब दिनों (त्वा यजमाना) तेरे उपासक जन उपासना करते हुए (विश्वा वसु दधिरे) समस्त ऐश्वर्यों को धारण करते हैं। और वे (त्वया सह) तेरे साथ (द्रविणम् इच्छमानाः) ज्ञान की प्राप्ति करना चाहते हुए (उशिजः) मेधावी (गोमन्तं व्रजं वि वव्रुः) नाना वाणियों से युक्त ज्ञानमार्ग का प्रसार करते हैं।

अस्ता॑व्य॒ग्निर्न॒रां सु॒शेवो॑ वैश्वान॒र ऋषि॑भिः॒ सोम॑गोपाः।
अ॒द्वे॒षे द्यावा॑पृथि॒वी हु॑वेम॒ देवा॑ ध॒त्त र॒यिम॒स्मे सु॒वीर॑म् १२।२९।८।७

भा०—वह (नरां सु-शेवः) मनुष्यों में सुख से सेवने योग्य, (वैश्वानरः) मनुष्यों का हितकारी, (सोम-गोपाः) जीवों का रक्षक (अग्निः) ज्ञानमय प्रभु (अस्तावि) स्तुति किया जाता है। हम (अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम) द्वेषरहित, सूर्य-भूमिवत् माता पिता की प्रार्थना करते हैं और हे (देवाः) विद्वान् जनों! आप लोग (अस्मे सुवीरं रयिं धत्त) हमें उत्तम वीरों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो॥ इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥ इत्यष्टमोऽध्यायः॥

इति सप्तमोऽष्टकः।

इति श्रीविद्यालंकार-मीमांसातीर्थ-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
ऋग्वेदालोकभाष्ये सप्तमोष्टकः समाप्तः॥